हिन्दू धर्म की आख्यायिका

लेखक
आचार्य श्री नृसिहप्रसाद कालिकाप्रसाद भट्ट

अनुवादक
श्री काशिनाथ त्रिवेदी एव अशोककुमार

हिन्दी मंदिर, प्रयाग

मुद्रक—
देवीप्रसाद शर्मा
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

विषय-सूची

हिन्दू-धर्म की आख्यायिकाएँ

१

सत्यकाम जाबाल

गौतम ऋषि के आश्रम के द्वार पर दस-बारह वर्ष का एक ब्रह्मचारी आया। उसके हाथ मे समिध न थी, उसकी कमर मे मुंजा न थी, उसके कंधे पर अजिन न था, उसके कण्ठ मे उपवीत (जनेऊ) न था।

ब्रह्मचारी गौतम के निकट जाकर उन्हे साष्टांग प्रणाम किया और बोला : "महाराज ! मैं आपके गुरुकुल मे रहने आया हू। मै ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहूगा। मैं आपकी शरण मे आया हूं। मुझे स्वीकार कीजिए।"

सीधे-सादे और सरल इस ब्रह्मचारी के ये शब्द गौतम के हृदय मे अंकित होगये। ऋषि ने पूछा : "बेटा ! तेरा गोत्र क्या है ? तेरे पिता का नाम क्या है ? अच्छा हुआ, जो तू आया।" गौतम के आसपास बैठे हुए सभी शिष्य ब्रह्मचारी के मुह की ओर ताक रहे थे। ब्रह्मचारी ने तुरन्त ही जवाब दिया : "गुरुदेव ! मुझे अपने गोत्र का पता नही, अपने पिता का नाम भी मैं नही जानता, मैं अपनी माता से पूछकर आता हूं। किन्तु गुरुदेव ! मैं आपको शरण आया हूं। मैं ब्रह्मचर्य का ठीक ठीक पालन करूँगा। क्या आप मुझे नहीं स्वीकारेंगे ?"

नवागत बालक के मुह से अभी ये शब्द निकले ही-निकले थे कि गुरु की शिष्यमंडली मे एक दबी-सी हसी शुरू हो गई।

किसीने कहा : "अरे, यह अपना गोत्र भी नहीं जानता ! होगा कोई शूद्र।"

दूसरे ने कहा : "अरे, इसे अपने पिता तक का पता नहीं ! किसी वेश्या का लड़का तो नहीं है ?'

तीसरे ने गुरु के मुँह की ओर देखकर कहा "गुरुवर्य ! क्या आप इस वर्णसंकर के साथ हमें रखना चाहते हैं ?"

एक काना शिष्य बोला : "अरे भाई, यह तो गुरु की शरण में आया है शरण में ! न समिध का ठिकाना है, न मुंज का, और न उपवीत का। मालूम होता है, जैसा माँ ने जना वैसा ही यह इधर चला आया है।

नये आये हुए बालक ने यह सब सुना और इसके सिवा भी बहुत कुछ जो शिष्यों की आँखों में और चेहरों पर लिखा हुआ था, पढ़ा। कुछ देर के लिए वह ढिङ्मूढ़-सा खड़ा रह गया। यह देख गौतम बोले : "बेटा ! तुम अपने घर जाओ। अपनी माँ से पूछकर आओ।" फिर अपने शिष्यों को संबोधन करके बोले—"जब तक यह बटुक लौटता नहीं है, हम सब इसके बारे में कोई चर्चा न करेंगे।'

× × × ×

साँझ का समय था। ऋषि होम-हवन में निपटकर अपने सारे परिवार के साथ चौक में बैठे थे, इतनेमें वह बटुक फिर आया। गुरु का ध्यान किसी दूसरी तरफ था, अतएव वही काना शिष्य बोला : "गुरुदेव ! देखिए, यह ब्रह्मण पुत्र फिर आगया है।"

गुरु ने तुरन्त ही बटुक की ओर देखा और कहा : "क्यों बेटा, तुम आगये ? आओ, बैठो ! अपनी माँ से पूछ आये न ?

बटुक ने जवाब दिया : "जी महाराज, ' माँ ने तो कहा कि वह अपनी जवानी में अनेक साधु सन्तों की सेवा करती थी। उन्हीं दिनों मैं उनके गर्भ में रहा था। अतएव उन्हें भी पता नहीं कि मेरे पिता कौन,

थे और उनका गोत्र क्या था। हाँ, माँ ने अपना नाम जाबाला बताया है और कहा है कि आचार्य पूछे, तो उनसे यह सब इसी तरह कह देना।"

शिष्यो के दल मे खिलखिलाहट मच गई।

एक लगडे शिष्य ने कहा : "मैने तो यह सोच ही रक्खा था।"

दूसरे एक शिष्य ने उस काने के कान मे कहा : "साधु संतो की सेवा के फल इतने सुन्दर निपजते है, यह तो आज ही मालूम पड़ा।"

एक तीसरा शिष्य थूकने के लिए उठता-उठता बड़बड़ाया : "तिस पर भाई साहब कहते थे, मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।"

इस प्रकार चारो ओर से ताने-तिस्नो की बौछार हो रही थी कि इस बीच गुरु ने आँख मूँदकर और गहरे उतरकर कुछ सोच लिया। फिर बोले : "बेटा! जिस निडरता के साथ और जैसी निर्दोष रीति से तुमने सारी बाते कही हैं, उससे मुझे तो तुम सत्यकाम मालूम देते हो। तुम्हारे पिता कोई भी क्यो न रहे हो, तुम्हारे आचरण की शुद्धता, तुम्हारे स्वभाव की सरलता बताती है कि तुम ब्राह्मण ही हो, मैं तुम्हे ब्राह्मण प्रमाणित करता हूं। जाबाला के पुत्र सत्यकाम, आओ। आज से मैं तुम्हे अपने शिष्य मडल मे स्वीकार करता हू। ब्रह्मचारियो! इस सत्यकाम का उपनयन सस्कार मै करूगा। तुम अपने मन मे जो चाहो सोचो, पर मैं तो देख रहा हू कि सद्विद्या को ग्रहण करने की जो योग्यता तुममे वर्षों के गुरुकुलवास से भी अबतक नही पैदा हुई, वह मुझे इस सत्यकाम मे आज ही मौजूद नजर आती है। कल मैं इसका उपनयन सस्कार करूगा और तुम्हारी आचार्य-पत्नी इसे भुजा बाधेगी।"

गुरु का यह निर्णय सुनकर शिष्य सब चकित रह गये। वे सब अपने मन को किसी तरह समझाते हुए, मन-ही-मन खीझते हुए, काना-फूसी करते हुए, अभी-अभी जो बाते हुई उनको याद कर करके दाँत

किटकिटाते हुए, और बीच-बीच मे लंगड़े और काने की विनोदभरी चुटीली बातें सुनते हुए अपने अपने काम पर चले गये।

× × × ×

एक दिन सवेरे प्रातर्होम समाप्त करने के बाद आचार्य ने सत्यकाम से कहा : "सत्यकाम! आज से तुम्हें आश्रम से दूर वन मे रहना होगा।"

सत्यकाम प्रसन्नतापूर्वक बोला : "गुरुदेव! आप मुझे जहाँ रहने को कहेंगे, वही मेरा आश्रम होगा। आज आप इस भूमि के आचार्य हैं, इसलिए यह आश्रम कहलाती है। वैसे भूमि क्या यहा की और क्या और जगह की, सब सरीखी है।

"मैंने तय किया है कि तुम्हें ये चार सौ गाये सौंप दूं : दुबली-पतली मरियल गायें। इन गायो को लेकर तुम यहा से चलदो। जिस दिन इन चारसौ की हजार कर पाओ, उस दिन आश्रम मे वापस आ-जाना। बोलो, तैयार हो?"

सत्यकाम ने कहा : "महाराज! आपको इतना पूछना पड़ता है, इसीको मैं तो अपना बड़ा दुर्भाग्य मानता हूं। मुझे सब कुछ शिरोधार्य है। मैं यह चला।' इतना कहकर सत्यकाम ने गुरु के चरणो मे नमस्कार किया और गुरु गोतम वहाँ से चल दिये।

एक शिष्य ने कहा : "बेवकूफ, मर जायगा मर! इन मरियल गायों को सँभालना सहल नहीं है।"

दूसरा बोला : "सत्यकाम! हमे यहाँ आये आज बारह वर्ष हो चुके हैं। एक समय था, जब गुरुजी हमें भी गायें चराने का काम सौंपते थे, मगर हम अपनी बहानेबाजी से बच जाया करते थे। तबसे उन्होंने हमारा नाम ही लेना छोड़ दिया। बात यह है कि जहा हम दबे नहीं कि गुरुजी हमपर सवार हुए नहीं।"

काना कहने लगा : "अजी जाने भी दो, मारा गोला अरे साको गुरुजी की नाक का बाल बनने की सूझे तो बने, हमारी बला से। अच्छा भाई, अच्छा! तुम अपने मोज से जाओ! जब चार सौ की एक हजार गायें करके आओगे, तो हम भी खुश होगे और भरपेट दूध पीयेंगे।"

लंगड़ा बोला : "कुछ समझते भी हो, भलेमानस! तुम वेदो को रट रटकर मर जाओगे, तो भी गुरुजी तुम्हे ज्ञान की दीक्षा न देंगे। और मैं देख रहा हूं कि यह सत्यकाम गाये चराकर भी दीक्षा पा लेगा। इसे वहा न रटाई करनी होगी, न स्वर की उदात्त या अनुदात्त की झंझट रहेगी; न आचार्य के प्रवचन सुनने पड़ेंगे, और न रोज सुबह अग्नि मे समिध होमनी होगी। यह तो पट्ठा जंगल मे गायों को खुली छोड़कर किसी पेड़ पर चढ जायगा और वहा बैठा-बैठा गीत गाता रहेगा। जब भूख लगेगी, दौड़कर किसी गाय के आचल से चिपक जायगा। हम तुम बेवकूफ हैं, जो वेद पढने के लिए यहा पडे हुए हैं। आचार्य से कहो न कि वे हमे भी गाये चराने भेज दे? जगल मे जो दो-चार दिन बीतेंगे, वही गनीमत होंगे। अगर वहा पटरी ठीक-से न बैठी, शेर ने एकाध गाय को मार डाला, तो रोते-पीटते वापस आजायगे, गुरु जी हमे सात्वना देदेंगे और गुरुपत्नी अच्छा-अच्छा खाने को देगी। बोलो है विचार? अगर भगवान् ने मुझे अच्छे-भले पैर दिये होते, तो सच कहता हू, मैं सत्यकाम के साथ ही चल दिया होता।"

सत्यकाम ने कहा : "भैया, तुम जरूर चलो, मुझे बड़ी खुशी होगी। जहा तुम थक जाओगे, वही हम टिक जायेंगे और आहिस्ते-आहिस्ते आगे बढेंगे।"

लगड़े ने कहा : "बात तो ठीक है, पर मुझसे चला नहीं जायगा। अपने राम तो यहीं भले हैं।"

सत्यकाम गोशाला से चार सौ गायें और साथ में एक सांड लेकर चल दिया। चलते समय उसने आश्रम के समूचे शिष्यमंडल को प्रणाम किया और गद्गद स्वर से बोला : "भला आप सबको छोड़कर जाने की इच्छा क्योंकर हो? आप सब पुराने आश्रमवासी हैं। मैं तो अभी कल का हूं। आप मुझे चिढ़ाते हैं तब भी भले ही लगते हैं। मैं तो निरा गॅवार हूॅ। गुरुजी के आशीर्वाद से थोड़ा आदमी बनने लगा हूॅ। अपनी अनुपस्थिति में मुझे अपने कुल पिता की चिन्ता रहेगी।" लॅगड़े की ओर देखकर : " भैया, तुम नहीं जानते कि तुम्हारी बातों से गुरुजी का चित्त कितना खिन्न होता है। मेरे लौटने तक अपनी तीखी बातें मेरे लिए ही सुरक्षित रखना।"

लॅगड़ा गरज उठा : " हां रे, गुरुजी अकेले तेरे ही तो हैं। मानो हमारे तो वे कोई होते ही नहीं। तू नहीं था, तब गुरुजी को कौन सॅभालता था? जानता है, हम लोग जब तक आचार्य को खरी-खरी नहीं सुनाते, वे जमीन पर पैर ही नहीं रखते। तू खूब है, जो तुझे हम सबकी इतनी चिन्ता हो रही है! भाई, तू अपने काम पर जा। हम सब आपस में निपट लेंगे।"

सत्यकाम ने कहा : "भाई, तुम मुझे समझे नहीं! खैर! तुम सब मुझ पर अपनी ममता बनाये रखना और जब आचार्य के दर्शन करना. उनकी सेवा में मेरा भी प्रणाम कह देना। मुझे याद करते रहना।"

काना बोला : "तू तो दिन में पचासों बार याद आयेगा। तुझे कौन भूल सकता है?"

सत्यकाम ने हाथ जोड़कर कहा : "मित्रो! अब मुझे इजाजत दो, मैं जाता हूं।"

लगडे ने कहा : "सत्यकाम, तू जा ! देख, यह छोटी बछिया जरा लँगड़ाती है। इसे उठाकर ले जाना भला।"

"आओ, अब हम वापस चलें। जब सत्यकाम हजार गायें लेकर लौटेगा, हमें उसकी अगवानी के लिए भी तो जाना पड़ेगा न ?"

× × × ×

सत्यकाम चल दिया : हाथ में एक लट्ठ था, कंधे पर डोल और कमडल था, पीछे चार सौ दुर्बल गायें थीं। कभी वह आगे चलता, कभी बीच में चलता, कभी पीछे चलता। कभी गायों को हाकता चलता कभी उनपर हाथ फेरता, कभी पुचकारता, जहाँ रास्ते में कुँआ मिलता, उन्हें पानी पिलाता चलता जहाँ हरियाली मिलती चराता चलता। चलते-चलते वह एक घने हरे भरे प्रदेश में पहुचा और सुन्दर स्थान देखकर वहीं टिक गया। वहा दूर दूर तक गायों के लिए हरी-हरी घास मौजूद थी, जहाँ तहाँ पानी भी खूब था, आसपास का रमणीय सृष्टि-सौंदर्य देखते ही बनता था। सत्यकाम ने अपने मुकाम के लिए इसी स्थान को पसन्द किया और गुरु ने जिनकी उपासना का काम उसे सौंपा था उनकी उपासना शुरू करदी।

एक रात बीती, दो रातें बीतीं, हफ्ता बीता, पखवाड़ा बीता, महीना बीता, साल बीता, और फिर तो साल पर साल बीतते चले गये। अरण्य में सत्यकाम ने अपना एक नन्हा सा गुरुकुल ही बसा लिया। रोज सुबह आश्रम के वेदोच्चार को भी लजानेवाला हर्षोच्चार उसकी गोशाला में गूँजने लगा रोज सवेरे आचार्य के प्रातर्होम की बराबरी करनेवाली गायों को पानी पिलाने की विधि सत्यकाम अपने हाथों करता, प्रतिदिन आचार्य-पत्नी की-सी ममता से सत्यकाम सब गायों को चराता बीमार गायों को अपने हाथों चारा खिलाता· प्रतिदिन समूची दुनिया के श्रोताओं को लजानेवाली

शान्ति से गायें बैठकर जुगाली करती प्रतिदिन रात में सत्यकाम सिंह और बाघ से गायों की रक्षा ऐसे करता, मानो गुरु की अग्नि की रक्षा राक्षसों से कर रहा हो। और यह सब वह किस लिए करता था? गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए। सत्यकाम की दृष्टि में ये गायें चार पैर और चार आँचल वाली गायें मात्र न थीं वह तो इनमें वेदों के दर्शन करता था और कभी-कभी किसी गाय को सहलाते-सहलाते, घास खिलाते-खिलाते ऐसा समाधिस्थ हो जाता कि घंटों अपनी देह की सुध-बुध भूले रहता।

इस तरह बरसों बीत गये। एक दिन एक बैल को मानव की बोली प्राप्त हुई। उसने सत्यकाम से कहा : "सत्यकाम !"

सत्यकाम अचानक बोल उठा : 'भगवन् !" और ज्योंही सजग होकर उसने अपने आसपास देखा, उसे एक बैल बोलता सुनाई पड़ा। बैल ने कहा : "अब हम हजार हो चुके हैं। हमें आचार्य के पास ले चल तू ज्ञान का अधिकारी बन चुका है, अत मेरी ओर देख, मैं तुझे ज्ञान की कुछ बातें कहूंगा।"

यों कहकर बैल ने सत्यकाम को थोड़ा ज्ञानोपदेश किया और कहा : "बस, आगे का उपदेश अग्निदेव तुझे करेंगे।" इतना कहकर बैल चुप हो गया।

दूसरे दिन सत्यकाम गायों को लेकर गुरुकुल की ओर रवाना होगया। रास्ते में जहां शाम पड़ी, वहीं उसने डेरा डाल दिया और गायों को एकत्र करके अग्नि में होम करने बैठा। इतने में अग्निनारायण प्रकट हुए। उन्होंने कहा : "सत्यकाम !"

"भगवन !'

"तेरा अधिकार परिपक्व होचुका है। मैं तुझे थोड़ा ज्ञानोपदेश करूँगा।" यों कहकर अग्नि ने उसे थोड़ा उपदेश दिया और कहा.

"कल हंस तुझे अधिक उपदेश देंगे।" इतना कहकर अग्निनारायण अन्तर्द्धान होगये।

तीसरे दिन नित्यकर्म से निवृत्त होकर सत्यकाम आगे बढ़ा। जहा साझ हुई, वहाँ फिर डेरा डाला। सब काम से निवृत्त होकर वह बैठा अग्नि के उपदेश पर विचार कर रहा था कि इतने मे एक हंस उड़कर उसके पास आया और बोला : "सत्यकाम !"

"भगवन् !"

हंस ने कहा · "मैं भी तुझे थोड़ा ज्ञान दूँगा। तेरा अंतःकरण तैयार हो चुका है।' यो कहकर हंस ने सत्यकाम को थोड़ा उपदेश दिया और अन्त मे कहा : "कल एक जलमुर्गी भी तुझे उपदेश देगी।"

चौथे दिन सत्यकाम फिर आगे बढा। साझ पड़ते ही फिर पड़ाव डाला। वह अग्निहोम के लिए बैठा ही था कि इतने मे एक जलमुर्गी उसके पास आकर बोली · "सत्यकाम !"

"भगवति !"

"मैं भी तुझे थोड़ा ज्ञान दूँगी। तू उसे स्वीकार कर।" यो कह जलमुर्गी ने सत्यकाम को ज्ञानोपदेश किया और चली गई।

यों चलते-चलते आखिर एक दिन सत्यकाम अपने गुरुकुल मे जा पहुँचा। सत्यकाम को और उसके पीछे-पीछे चलनेवाली मोटी-ताजी एक हजार गायो के झुंड को आश्रम की ओर आता देखकर सभी आश्रम-वासी आचार्य की पर्णकुटी के पास एकत्र हो गये।

आचार्य ने कहा : "सत्यकाम !"

सत्यकाम ने जाकर गुरु के चरणो मे प्रणाम किया, गुरुपत्नी के चरण छुए, और गायो को गोशाला की ओर रवाना करके स्वय गुरु के समीप बैठ गया।

उसकी इन्द्रियाँ प्रसन्न थीं, उसका चेहरा खिला हुआ था, उसका मन क्लेश-रहित प्रतीत होता था, उसके समूचे शरीर से, अंग-अंग से जीवन की कृतार्थता का एक अद्भुत-सा तेज जगमगा रहा था। सत्यकाम को देखकर आचार्य ने कहा : "सत्यकाम ! तू तो महाज्ञानी-सा दीखता है। तूने किसी अन्य गुरु से ज्ञान की दीक्षा तो नहीं प्राप्त की ?"

वह काना शिष्य अपने मित्र के कान में कहने लगा : "गुरुजी ने ठीक पकड़ा ! देखा, कैसी शान से बैठा है, मानो स्वयं ही आचार्य हो ! जरा इसके मुँह की ओर तो देखो। पहलेवाला सत्यकाम ही नहीं लगता।"

सत्यकाम बोला : "गुरुदेव ! मुझे ऐसे प्राणियों ने उपदेश दिया है जो मनुष्यों की गिनती में नहीं आते। किन्तु महाराज ! सत्यकाम तो आप ही का शिष्य है। आपको छोड़ मेरा दूसरा कोई गुरु नहीं। जबतक आप मुझे उपदेश न करेंगे, मैं अपनेको कृतार्थ न मानूँगा।"

सत्यकाम के इन वचनों को सुनकर आचार्य ने कहा : "धन्य है, बेटा ! तू धन्य है ! शिष्यो ! मैं जानता हूँ कि सत्यकाम को बैल, अग्नि, हंस और जलमुर्गी ने उपदेश किया है। आज से वर्षों पहले जब सत्यकाम गायों के साथ आश्रम से गया था, तुमने क्या-क्या सोचा और कहा था, सो तनिक याद करलो। यह भी सोचो कि जब मैंने इसे शिष्य के रूप में स्वीकार किया था, तब तुम मेरे पास आकर क्या-क्या कह जाते थे। मुझे याद है कि तुम में से किसीने इसे वेश्या पुत्र तक कह डाला था। आज वही सत्यकाम ज्ञानी बनकर लौटा है। तुम्हें अपने ब्रह्मत्व का अभिमान है, अपनी शक्ति का अभिमान है, अपने वेदज्ञान का अभिमान है, इसीलिए तुम यहां पड़े हुए हो। तुममें से कोई वेद पढ़ता है, कोई उपवेद पढ़ता है, कोई शिक्षा के अध्ययन में लगा है और कोई व्याकरण में व्यस्त है। सत्यकाम को न मैंने वेद पढ़ाये, न उपवेद पढ़ाये,

न शिक्षा पढ़ाई, न निबन्ध पढाया, मैंने उसे जीवन को गुनने भेज दिया। आज जब जीवन की उस विद्या मे पारगत होकर सत्यकाम वापस आ पहुँचा है, तुम अभी अपने वेदों और उपवेदो से ही छुट्टी नहीं पा सके हो और इस जीवन मे कदाचित् पा भी न सको। तुम अपनी विद्या के गोरखधन्धे मे ऐसे उलझे हो कि मत्रो और अक्षरो के बाहर जो सच्चा जीवन प्रवाहित है, उस ओर देखने का विचार तक तुम्हारे हृदय मे पैदा नही होगा। मैं तुमसे क्या कहूं? ये वेद आदि तो सब बाह्य विद्याए हैं, यदि ये सच्ची विद्या की प्राप्ति मे सहायक होती हैं तो अच्छी हैं, अन्यथा सच मानो कि यह सब बोझ ही बोझ है। सच्चा जीवन इन सबसे परे की कोई चीज है। सत्यकाम ने उस चीज को पा लिया है अगर तुम चाहोगे तो वह अपनी सारी बात अथ से इति तक तुम्हे सुनायेगा। वेदो से भी जो वस्तु प्राय: नहीं मिलती, जीवन के रहस्य का उद्घाटन करनेवाली वह वस्तु इस तरह की चर्चा मे से मिल जाती है। मैं तो इससे भी अधिक तुम्हें कहना चाहता हूँ। जानते हो, जिन वेदों का तुम अभ्यास करते हो, वे वेद हैं क्या चीज? सत्यकाम के समान पुरुष जब जीवन के रहस्य को पा जाते हैं, तो उनकी वाणी ही वेद बन जाती है। इसलिए हमारे ऋषि-मुनि कह गये हैं कि वेद अनत हैं। तुम अपने समीप बैठे हुए इस जीते-जागते वेद को भूलकर अपने रटे हुए वेदो से चिपके न रहना। बेटा, सत्यकाम! आओ, मैं तुम्हे ज्ञान की अन्तिम दीक्षा दूं। इसके बाद तुम्ही इस गुरुकुल के आचार्य हो। मेरे दिन तो अब बीत चुके हैं। मुझे जाने दो।"

यों कह गुरु ने सत्यकाम को अन्तिम दीक्षा दी और सारा आश्रम उसीके सुपुर्द करके स्वय चले गये।

२

नचिकेता

प्राचीन काल मे वाजश्रवा नाम का एक मुनि था। एक बार वाजश्रवा ने सर्वमेध नामक यज्ञ किया। सर्वमेध यज्ञ का एक नियम यह है कि यजमान अपना सब कुछ यज्ञनारायण को समर्पित कर देता है। शास्त्रो मे कहा गया है कि जो सच्चे दिल से सर्वमेध यज्ञ करता है वह मृत्यु को भी जीत लेता है : मृत्युञ्जय बन जाता है।

वाजश्रवा ने पूर्णाहुति के दिन यज्ञ-कुण्ड मे नारियल को अन्तिम आहुति डाली और फिर ब्राह्मणो को दक्षिणा देनी शुरू की। वाजश्रवा की सम्पत्ति मे गाये मुख्य थी। वह ब्राह्मणो को दक्षिणा मे गाये देने लगा। लेकिन इसी बीच वाजश्रवा के मन मे एक विचार आया : "सब गाये दे डालने पर मेरे पास कुछ भी न रह जायगा।" बस, इस एक विचार ने उसे घबड़ाहट मे डाल दिया। जिस समय उसने सर्वमेध यज्ञ का संकल्प किया था, और यज्ञ की दीक्षा ली थी, उस समय भी यह बात उसके ध्यान मे तो थी ही किन्तु आज जब वह अपने हाथो दान करने बैठा, तो सर्वस्व त्याग की कठोरता मूर्तिमान हो उठी मन उसका विचलित हो उठा। फलतः वाजश्रवा ने बड़ी चालाकी से काम लिया। किसीको कानोंकान पता न चलने दिया। अच्छी-अच्छी गाये पीछे रख छोड़ीं और बूढ़ी-बूढ़ी गायों को दक्षिणा मे देना शुरू किया। इन बूढी गायों का कोई क्या वर्णन करे? दक्षिणा के लिए छांट छांटकर चुनी हुई ये गाये इतनी बूढी हो चुकी थीं कि न तो किसीमे दूध देने की ही

ताक़त रह गई थी, न किसीमें फिर से एक बार चारा चरने की ही शक्ति बची थी, और न एक बार पानी पीने की हिम्मत थी। जब वाजश्रवा इन जीवन्मृत गायों को एक के बाद एक दान में देने लगा तो यह सब देखकर नचिकेता को आन्तरिक दुःख हुआ।

नचिकेता वाजश्रवा का एकलौता पुत्र था। उसकी उम्र इस समय आठ-नौ साल की रही होगी। नचिकेता सोच में पड़ गया : "यह सर्वमेध यज्ञ है या वृद्धमेध यज्ञ? पिताजी इन बूढ़ी गायों को देकर इस समूचे यज्ञ को क्यों निष्फल बना रहे हैं? आदमी आदमी को तो धोखा देता ही है, पर क्या वह यज्ञनारायण को भी धोखा दे सकता है? पिताजी का यह समर्पण चित्रगुप्त के बहीखातों में किस भांति जमा होगा? पिताजी यह सब मेरे लिए तो नहीं कर रहे हैं? क्या मेरे स्वार्थ के लिए वे सर्वमेध यज्ञ के फल का भी परित्याग करने बैठे हैं? इस अवसर पर पुत्र के नाते मेरा धर्म क्या हो सकता है? क्या मैं स्वयं अपने दान द्वारा पिता जी को इस अकल्याण से परावृत नहीं कर सकता?"

एक ओर नचिकेता विचारों के इस भँवर में गोते लगा रहा था और दूसरी ओर दान में बूढ़ी-बूढ़ी गायें देकर व अच्छी-अच्छी अपने लिए रखकर वाजश्रवा ब्राह्मणों को बिदा कर रहा था। नचिकेता स्वस्थ न रह सका। वह तुरन्त ही वाजश्रवा के पास दौड़ा गया और बोला : "पिता जी! ये सब गायें तो आपने ब्राह्मणों को दे डालीं, अब मुझे किसे दीजिएगा?"

नचिकेता ने एक बार कहा, दो बार कहा, तीन बार कहा। इसपर वाजश्रवा ने आंखें तरेरकर नचिकेता की ओर देखा, और चोट खाये हुए नाग की भांति भौंहें चढ़ाकर बोल उठे : "चुप रह। छोटे मुँह बड़ी बातें न कर। मैं तुझे यमराज को दूंगा।"

मुनि के मुँह से तीर छूट तो गया पर तुरन्त ही उन्हें मन ही मन बड़ा पश्चात्ताप हुआ। किन्तु किसी तरह उन्होंने अपने मन को समझा लिया और शान्त हो रहे। इस बीच कुमार नचिकेता ने यमराज के घर जाने की तैयारी कर डाली।

यह देख वाजश्रवा ने गद्‌गद् कण्ठ से पूछा : "बेटा, तू कहाँ जा रहा है? मेरी बात का खयाल न कर! मैं वैसे ही कुछ बोल गया था। भले मानस, इस तरह कोई यमराज के घर जाता भी है?"

लेकिन ब्रह्मा ने कुमार को कच्ची मिट्टी का नहीं बनाया था। वह बोला : "पिताजी! हमारी इक्कीस पीढ़ियों में आजतक किसीने अपना वचन भंग नहीं किया है। हम यह भी नहीं चाहते कि हमारी आनेवाली इक्कीस पीढ़ियों में कोई अपने वचन का भंग करे। अतः आप भी अपनी बात को मिथ्या न कीजिए और मुझे जाने की अनुमति दीजिए।"

वाजश्रवा ने नचिकेता को खींचकर छाती से लगा लिया और बोला, "बेटा! मैं तो यमराज के विचार-मात्र से भयभीत हो उठता हूँ। तुम उसके पास क्योंकर जा सकोगे? जिसके नाम मात्र से लोग काँपते हैं, मृत्यु के वह देव तुम्हारे समान सुकुमार बालक को कितने भयावने दीखेंगे? बेटा! मैंने कहा हो चाहे न कहा हो पर मैं तुम्हें यमराज के पास नहीं भेज सकता।"

कुमार ने पिता के भयभीत मुँह की ओर टक लगाते हुए कहा : "पिताजी! आप यह क्या कहते हैं? भला यमराज से कोई क्यों डरे? मैं तो बिलकुल नहीं डरता। लोग अपने हृद्‌गत पापों के कारण उनसे डरते हैं, और अपने डर का आरोपण यमराज के माथे करते हैं। पिता जी! आप यमराज से नहीं डरते, बल्कि अपने पाप से डरते हैं। आपने संकल्प एक किया और काम कुछ दूसरा ही किया, इसका आपको डर

है। यमराज जिस प्रकार मृत्यु के देवता हैं, उसी प्रकार वह जीवन के देवता भी हैं। आप ही न उस दिन कहते थे कि अंधकार भी प्रकाश का ही एक रूप है। इसी प्रकार मृत्यु भी जीवन ही का एक रूप क्यों न हो? यमराज की कल्पना जितनी भयकर है, उससे कहीं भयकर मनुष्य का असत्य है। मेरी ममता के कारण आप आज अपना वचन भंग करने बैठे हैं, यह क्या कोई कम भयंकर बात है? आप शान्त होइए और मुझे प्रसन्न मन से बिदा कीजिए। आपने दक्षिणा देने मे जो न्यूनता रक्खी है उसकी पूर्ति मैं आत्मार्पण से करना चाहता हूँ। आपके पुत्र के नाते मुझे भी यह अधिकार है कि मैं सर्वमेध यज्ञ मे आपका सर्वस्व समर्पित होते देखूँ। पिताजी! दुखी न होइए। मैं संभव हुआ तो जीकर अन्यथा मरकर भी आपके यज्ञ को सार्थक बनाना चाहता हूँ।"

इतना कहकर नचिकेता ने वाजश्रवा के चरण छुए और वहाँसे चल दिया। उसके हाथ मे एक दण्ड था। कमर मे एक लँगोटी थी। जीवन मरण के पर्वत पर चढकर सारे संसार का सिंहावलोकन करने की इच्छावाले किसी यात्री की भाँति मुनिकुमार चल दिया: चलते-चलते वह बहुत दूर निकल गया कुछ देर तक उसकी छोटी-सी मूर्ति दिखाई दी, फिर धुँधली हुई, फिर अदृश्य हो गई!

× × ×

यमराज का घर दूर होते हुए भी निकट और निकट रहते हुए भी दूर था। जिस समय नचिकेता वहाँ पहुँचा, यमराज कहीं बाहर गये हुए थे, इसलिए नचिकेता को उनके घर के बाहर ही डेरा डालना पड़ा। तीन रात और तीन दिन बीतने पर जब यमराज लौटे तो देखा कि चबूतरे पर एक ब्राहाण कुमार लेटा हुआ है।

यमराज ने पूछा: "कुमार! तुम कौन हो? यहा किसलिए आये हो?"

कुमार ने नम्रतापूर्वक कहा . "यमदेव ! मैं वाजश्रवा नामक मुनि का पुत्र हूँ। मेरा नाम नचिकेता है। मेरे पिताजी ने सर्वमेध यज्ञ किया था। मेरे आग्रह से उन्होने उस यज्ञ की दक्षिणा मे मुझे आपके सुपुर्द किया है।"

यमराज ने पूछा : "दक्षिणा मे कुमार? और सो भी मुझको? यमराज को? नचिकेता! मेरा नाम सुनकर तुम डरे नहीं? भयभीत नहीं हुए?"

कुमार ने कहा : "नहीं महाराज! हम बालक भय को जानते ही नहीं। लेकिन बड़े-बूढे हमें भयभीत होना सिखाते हैं। मैंने भी आपके भयावने रूप के बारे मे बहुत कुछ सुन रक्खा था, लेकिन आज मुझे तो आपका यह रूप तनिक भी भयावना नहीं मालूम होता। आपकी अनुपस्थिति में मैंने आपके सम्बन्ध मे बहुत कुछ जान लिया है। लोग मृत्यु से व्यर्थ ही डरते हैं। मृत्यु मानवों पर आपका एक उपकार है। भूखा होने पर जो मनुष्य को भोजन देता है, वह उसपर उपकार करता है, प्यासा होने पर जो उसे पानी पिलाता है, वह भी उसपर उपकार करता है थक कर लोथ-पोथ होजाने पर जो उसे आश्रय देता है, वह भी मनुष्य पर उपकार ही करता है। तो फिर जिस क्षण आदमी जीवन से ऊब जाता है, उस क्षण उसे मौत देनेवाले का क्या उसपर कोई कम उपकार है? मौत संतप्त आत्मा को शान्ति देती है। यही कारण है कि राक्षसों ने न मरने के अनेक वरदान माँगे, तो भी कृपालु परमात्मा ने उनसे मृत्यु का यह सुख कभी छीना नहीं। जिस दिन सारे ससार का नियन्त्रण करनेवाली सत्ता संसार के एक भी आदमी को मृत्यु से सदा के लिए मुक्त करेगी, उस दिन यह दुनिया मनुष्यो के बसनेलायक न रह जायगी।"

इसपर यमराज ने फिर पूछा : "किंतु कुमार ! तुम यहा आये किस लिए हो।"

कुमार ने कहा : "यहाँ न आऊँ, तो जाऊँ कहाँ ? मुझे तो अपने पिता को यज्ञ के पाखण्ड से बचाना था, उन्हे अपनी ममता से मुक्त करना था, असत्य से उनकी रक्षा करनी थी, अतएव मेरे लिए कोई मार्ग ही न था। आप कृपापूर्वक मुझे ग्रहण कीजिए, जिससे मेरे पिता का कल्याण हो। ब्राह्मणो को दक्षिणा मे जो गाये उन्होने दी थी, वे तो वेचारी कभी की मर चुकी होगी, और उनको ठिकाने लगाने का खर्च वेचारे ब्राह्मणों को अपनी गाँठ से देना पड़ा होगा ! मेरी प्रार्थना यही है कि मैं इस प्रकार आपके लिए बोझ न बनूँ।"

कुमार नचिकेता की इन बातो को सुनकर यमराज बहुत प्रसन्न हुए और बोले : "कुमार, तुम बोझ नही बनोगे उलटे मेरा बोझ हलका करोगे ! तुम्हारी वाणी मे मिठास है, तुम्हारे हृदय मे कोमलता है, तुम्हारे स्वभाव मे ऋजुता (सरलता) है, और तुम्हारी आँखों मे दृढता है। कुमार ! सच कहू ? तुम ब्राह्मणपुत्र हो। मुझे दु:ख है कि तुम्हारे समान ब्राह्मणपुत्र को तीन-तीन रात खुले मे बिना ओढे, बिना बिछाये चबूतरे, पर रहना पड़ा। अपने इस दु:ख को कम करने के लिए मैं तुम्हे तीन वर देता हू, तुम जो चाहो, माग लो बेटा ! तुम्हारे मुह से फूल झड़ते हैं। बोलो, मागो मुझे कृतार्थ करो।"

जब यमराज ने कुमार नचिकेता से यह बात कही, तो कुमार कुछ क्षण के लिए विचार मे पड़ गया। फिर बोला : "प्रभो ! मैं तो आपकी दक्षिणा हू। यह आपकी महानता है, जो मुझे वर देते हैं। जहां लोग आपके नाममात्र से भयभीत होते हैं, वहा आप मुझे वर देते हैं, इससे बढकर अहोभाग्य और क्या हो सकता है ? महाराज ! जबसे मैं आपकी

सेवा मे आने को घर से चला हू मेरे पिताजी पागल-से हो उठे हैं। मेरे इधर चले आने से उनकी समस्त आशाओ पर पानी फिर गया है! आशीर्वाद दीजिए कि मेरे पिता पुन स्वस्थ हों, और मेरे विषय की उनकी चिन्ताएं मिट जाय! यह मेरा पहला वर है।"

यमराज ने कहा : "तथास्तु! तुम्हारे पिता तुम्हारे संबंध की सब चिन्ताओं से मुक्त होजायगे। अब तुम दूसरा वर मॉगो।"

कुमार ने फिर कहा : "महाराज! आप स्वर्गप्राप्ति की विद्या जानते हैं। ऐसी कृपा कीजिए जिससे मुझे वह विद्या प्राप्त हो सके। यह मेरा दूसरा वर है।"

यमराज बोले : "तथास्तु! तुम्हे स्वर्गविद्या अपने आप प्राप्त होगी। अब तीसरा वर मागो। तुम्हारी बातें इतनी मीठी होती हैं कि मन उनसे कभी अघाता ही नही।"

तुरंत ही कुमार ने कहा : "महाराज! जिस प्रकार आप अग्निविद्या के श्रेष्ठ उपासक हैं, उसी प्रकार आप जीवनविद्या के भी आचार्य हैं। अतः आप मुझे जीवनविद्या प्रदान कीजिए। यह मेरा तीसरा और अंतिम वर है।"

कुमार की इस मॉग को सुनकर यमराज क्षणभर के लिए स्तब्ध रह गये। अंत मे गंभीर स्वर से बोले : "कुमार! तुम जिस आत्मविद्या की कहते हो, वह तो देवों के लिए भी दुर्लभ है। तुम जानते हो कि मैं स्वयं भी मृत्यु का देव हूं, जीवन का नहीं। अतएव तुम कोई दूसरा वर मॉगो। यह वर तुम्हारे किसी काम का नहीं।'

कुमार सहज मे डिगनेवाला न था। उसने दृढतापूर्वक कहा : "यदि जीवनविद्या देवों के लिए भी दुर्लभ है, तब तो सचमुच सब प्रकार के कष्ट सहकर भी पाने योग्य कुछ है तो यही है। आप मृत्यु के देव हैं, इसीलिए

तो जीवन के भी देव हैं। इस विद्या को सिखानेवाले आपके समान दूसरे आचार्य मुझे और कहा मिलेंगे ? यमराज ! मेरा वर तो यही रहेगा।"

यमराज ने पुन: नचिकेता को उसके निश्चय से डिगाने का यत्न करते हुए कहा : "बेटा नचिकेता ! तुम भूलते हो। यदि तुम चाहो, तो तुम्हे इस संसार के और स्वर्ग एव अतरिक्ष के सभी भोग विलास देने को तैयार हू, तुम चाहो, तो तुम्हे तुम्हारी इच्छानुसार लबी से-लंबी उमर देने को तैयार हू, तुम चाहो, तो तुम्हे सारी पृथ्वी का राज्य देने को तैयार हू, तुम चाहो, तो तुम्हे मन चाहे रथ, घोडे, हाथी, बाग-बगीचे, महल, नौकर, चाकर, स्त्री, दास दासी, सभी कुछ देने को तैयार हूं, मृत्युलोक मे और स्वर्गलोक मे भोग विलास की जितनी भी सामग्री प्रस्तुत है, सो सभी मैं तुम्हारी सेवामे उपस्थित कर सकता हूँ। लेकिन यह वर तुम न माँगों। मुझसे इस तरह का वर माँगना तुम्हारे लिए उचित नही।"

कुमार ने यमराज के इन वचनो को अतिशय धैर्यपूर्वक सुना, सुनकर तुरत ही उन्हे हृदय मे उतारा, सोचा और फिर दूसरे ही क्षण कुछ निश्चय-सा करके जवाब दिया : "यमदेव ! आप जिन भोगविलासो की बात करते हैं, उनका क्या ठिकाना ? वे आज हैं और कल नही। आप ही बताइए, क्या इद्रियो के ये भोग इद्रियो के तेज मे वृद्धि करते है ? महा-राज ! मैं तो यह समझा हूं कि ये सारे भोगविलास इद्रियो की शक्ति का ह्रास करते हैं, और जिस बल का उपयोग जीवन को उन्नत बनाने मे होना चाहिए उसे व्यर्थ ही नष्ट कर डालते हैं। महाराज ! आप चाहे तो मृत्युलोक का ही क्यों, सारे ब्रह्माण्ड का साम्राज्य दे सकते हैं। पर जिस आदमी ने अपने अगुष्ठमात्र अत:करण पर आधिपत्य प्राप्त नही किया है, उसे इस ससार के साम्राज्य से सन्निपात ही न होगा ? महाराज ! ये हाथी, घोडे, रथ, रमणी आदि आप ही को मुबारक हो ! मेरी यह सामर्थ्य नही।

"आप मुझे दीर्घायु देने को कहते हैं, सो ठीक है। लेकिन आप अधिक-से-अधिक कितनी लंबी उमर देंगे? सौ, हजार, लाख, करोड़, या अरब वर्षों की ही न देंगे? अधिक-से-अधिक आप मुझे ब्रह्मा की उम्र दे सकेंगे। तथापि महाराज! अनन्तता की तुलना में हिरण्यगर्भ की आयु का हिसाब क्या? आयुष्यमात्र के लिए काल की मर्यादा तो है ही। मैं तो आपसे जीवनविद्या माँग रहा हूँ, जिससे मैं काल से भी परे पहुँच सकूँ।

"और महाराज! आपके समान देव के दर्शनों को पाकर भी यदि मैं नितांत अल्पायु या दरिद्र बना रहा तो इसकी लाज आपको ज्यादा होगी। मैं उसकी चिन्ता क्यों करूँ? आप अमोघदर्शन कहलाते हैं, फिर भला मुझे इन छोटी-मोटी बातों की पर्वा ही क्यों हो? देव! आप मुझे जीवन-विद्या सिखाइए, और दूसरी सब बातों को छोड़ दीजिए। नचिकेता आप से दूसरा कोई वर मांगेगा ही नहीं।"

नचिकेता के इस दृढ़ निश्चय को सुनकर यमराज बहुत प्रसन्न हुए और बोले: "धन्य हो, कुमार धन्य हो! मनुष्यमात्र के जीवन में एक समय ऐसा आता है, जब उसके सम्मुख दो रास्ते खड़े रहते हैं: एक श्रेय का, दूसरा प्रेय का। एक आत्मिक कल्याण का, दूसरा भोगविलास का। एक उन्नति का, दूसरा पतन का। जब हम जरा गहराई में बैठकर देखते हैं, तो मानव-जीवन में पग-पग पर ये दो मार्ग उपस्थित मिलते हैं। लेकिन मनुष्य सदैव ही इतना जागरूक नहीं रहता। इन दोनों में श्रेय का मार्ग कंटीला है, विकट है, शुरू में कड़ुआ लगनेवाला है जब कि प्रेय का मार्ग सरल है, मोहक है, और सुलभ है। जीवन में कई बार इन दो में से एक को चुनने के अवसर मनुष्य के सम्मुख खड़े होते हैं। ऐसे समय जो आदमी सोच-समझकर श्रेय के मार्ग को पसंद करता है, और

प्रेय के मार्ग को मोहक प्रतीत होते हुए भी छोड़ देता है, वह वीर है, सच्चा आदमी है, और मनुष्यता या आदमियत की राह पर है।

"कुमार! तुम्हारे सम्मुख भी आज ये दो मार्ग थे। मेरे प्रबल आग्रह के रहते हुए भी तुम प्रेय मार्ग को ठुकराकर श्रेय मार्ग पर दृढ़ रहे हो, यह देखकर मैं तुमपर अतिशय प्रसन्न हुआ हूँ।

"बेटा! मैं तुम्हे जीवनविद्या सिखाऊंगा। संसार के बहुतेरे लोग अपनी बुद्धि द्वारा इस जीवनविद्या को जानते-बूझते हैं, पर इन लोगो के जीवन मे यह ओत-प्रोत नही हो पाती : वह कच्चे पारे की भाति शरीर के अंग-प्रत्यंग से फूट निकलती है। इस प्रकार के अनधिकारी लोग न केवल दुनिया को बल्कि अपनेआपको भी धोखा देते हैं। जो जीवनविद्या को सचमुच पाना चाहते है, उन्हे पहले उसे पाने की पात्रता प्राप्त करनी चाहिए, अधिकारी बनना चाहिए। तुममे यह पात्रता, यह अधिकार है। तुम स्वयं सत् असत् को पहचानते हो। तुम स्वयं भोगविलास से स्वभावतः उदासीन हो। तुम इस विद्या को प्राप्त करने के लिए अतिशय आतुर और उत्कंठित हो। अतएव कुमार! मैं तुम्हे वह विद्या देता हूं। इस विद्या का सच्चा अधिकारी तो सैकड़ो-हजारो वर्षों मे कभी एकाध बार जन्म लेता है।"

यो कहकर यमराज ने नचिकेता को जीवनविद्या या ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया।

३

गजेन्द्रमोक्ष

कहते हैं, मानव ससार को क्षीरसागर नामक एक बड़ा महासागर चारों ओर से घेरे हुए है। आजतक कोई नही जान पाया कि इस क्षीर-सागर की लहरें किस किनारे पर टकराती हैं।

इस सागर मे त्रिकूट नाम का एक बड़ा पर्वत था। इस पर्वत के तीन बड़े-बड़े शिखर थे, जो बरबस लोगो का ध्यान अपनी ओर खींचते थे : एक रुपहला, दूसरा सुनहला, तीसरा मणिमय। चकोर और मोर, तोता और मैना, गौरया और चिड़िया सभी इस रुपहले शिखर पर किल्लोल किया करते, रात मे चॉद अपनी शील किरण से शिखर को नहलाता रहता, त्रिकूट के सुनहले शिखर पर जब सूरज की किरणें पड़ती, सारा पर्वत ऊपर से नीचे तक जगमगा उठता, जब पर्वत के मणिमय शिखर पर रंग-बिरंगे वस्त्र पहनकर अप्सराएं नृत्य करतीं, सारे पर्वत पर रूप और रंग की तरगें लहराने लगती। त्रिकूट पर्वत पर अप्सराएं विहार करती, किन्नर मधुर गान गाते, सिद्ध और मुनि तप तपते, देव और देविया स्वर्ग का सुख लूटती समूचे पर्वत पर सागौन और देवदार, आम और जामुन, बर-गद और पीपल, नीम और बकुल आदि विविध वृक्षो की कतारें सुशोभित थी। जब पर्वत की गुफाओ से निकल कर सिंह और बाघ गर्जन करते तो ऐसा मालूम होता, मानो दूध की लहरो को विदीर्ण कर रहे हों! वैसे क्षीरसागर की श्वेत तरंगे और उन तरगो से भी अधिक श्वेत उनका फेन जब पर्वत के चरणो को धोता नजर आता तो समूचे पर्वत

पर एक प्रकार की श्वेत छाया फैल जाती। पर्वत के शिखरो से निकलकर कोई झरना उछलता-कूदता नीचे की किसी गुफा मे अदृश्य होजाता, तो दूसरा कोई धीमे-धीमे बहता हुआ पर्वत के अनेक गली-कूचो का चक्कर लगाकर बाहर निकलता नजर आता, कोई झरना पेड़ो की जड़ों को सीचता हुआ धीरे-धीरे बहता, तो दूसरा बहुत ही ऊपर से गिरकर अपने गर्जन से सारे पर्वत को गुंजाये रहता। और इन नन्हे-नन्हे झरनो से घुलनेवाली रंग-बिरंगी मिट्टी से युक्त वह पर्वत विभिन्न रंगो द्वारा सजाये हुए किसी मदोन्मत्त हाथी की-सी शोभा को धारण किये रहता।

इस पर्वत्त पर एक बड़ा सरोवर था। सरोवर दस योजन लंबा, दस-योजन चौड़ा और तीन योजन गहरा था। सरोवर का पानी अत्यन्त निर्मल था, किन्तु अतिशय गहरा होने के कारण कही-कही उसका रंग भूरा और कही हरा दिखाई पड़ता था। पर्वत पर निवास करनेवाले सिद्ध और चारण, मुनि और तपस्वी इस सरोवर की रत्न-शिलाओ पर बैठकर स्नान ध्यान करते थे, पर्वतनिवासी देव और देविया, यक्ष और गंधर्व सभी इस सरोवर के जल मे क्रीड़ा करते थे, इस सरोवर के सहस्रदल कमल भगवान् विष्णु पर चढ़ाये जाते थे, पर्वतवासी छोटे-बड़े सभी पशु-पक्षियो की प्यास इसी सरोवर के जल से बुझती थी।

ऐसे इस समृद्धिशाली पर्वत पर एक हाथी रहता था। विशाल उसका गंडस्थल था, सुन्दर और लंबी उसकी सूंड थी, चौड़े और सुहावने उसके कान थे, बड़े-बड़े नुकीले और श्वेत उसके दाँत थे, मस्त और मनोहर उसकी चाल थी। गंडस्थल से उसके सदा मद झरता रहता था। ऐसा मदमस्त हाथी था वह। जब यह हाथी प्रतिदिन अपनी हथिनियो के साथ सरोवर में जल-क्रीड़ा के लिए प्रवेश करता, तब बेचारे अनेक प्राणी डरते-डरते पानी पीते, और कुछ तो मारे डर के प्यासे ही भाग जाते।

जब मस्ती मे आकर हाथी छोटे-मोटे पेड़ों को जड़मूल से उखाड़ डालता, तो अनेक पशु-पक्षियो के घोंसले व घर नष्ट हो जाते और अनगिनत मादाएँ अपने आक्रंद से पर्वत को गुंजा देती। यह हाथी जब हजार-हजार हथिनियो को साथ लेकर झूमता हुआ निकलता, तो सारा पर्वत उनके पदाघात से कॉप उठता। और जब हाथी अपनी सूंड मे पानी भर उसे ऊपर फव्वारे की तरह उड़ाता, तो ऐसा प्रतीत होता, मानो पहाड़ पर बारिश शुरू होगई हो! हथिनियो की सूंड मे अपनी सूंड डालकर जब हाथी उनके साथ अठखेलिया करता, तो देव और देविया भी उस दृश्य को एकटक निहारा करती। जब हाथी सूंड मे पानी भर-भरकर अपनी प्रियतमाओ को घूंट-घूंट पिलाता, तब तो रसिक मानवो को भी उसकी रसिकता के आगे शरमाना पड़ता। जब हाथी अपनी सूंड से किसी कमल को तोड़कर अपनी प्यारी हथिनी पर उसे छत्र की भाति थामे रहता, तब तो वहा स्नेह अपनी चरमसीमा को पहुंच जाता। ऐसा जीवन बितानेवाला, ऐसे-ऐसे भोग-विलासो में रत रहनेवाला, अपनेको समूचे पर्वत का स्वामी समझने वाला यह हाथी इस पर्वत पर रहता था। अपनी सूंड मे पेड़ों के तनों को लपेट-लपेटकर जब यह उन्हे जड़मूल से उखाड़ता, तो साथ ही अनेक छोटे-मोटे मछिया का दम भी उखड़ जाया करता। यह मदोन्मत्त हाथी जब सरोवर के जल में पैठता, तो अनेक छोटे मोटे जलचर जीव इसके डर से ही मर जाते। तिसपर भी हाथी तो अपना और अपनी हथिनियो का ही विचार करता और निरंकुश भाव से पर्वत पर उपद्रव मचाया करता।

चारो ओर अनंत और अपार क्षीरसागर था सागर की श्वेत लहरों बीच अटलभाव से खड़ा हुआ त्रिकूट पर्वत था पर्वत पर विशाल फैलाववाला सरोवर था, और सरोवर मे नित्य यौवन का आनन्द लूटनेवाला यह

गजराज था ! गजराज के चहु ओर हथिनिया थी, कमल थे, सरोवर था, पेड़, भ्रमर, शोभा, सुख, मस्ती और विलास की विपुलता थी।

एक बार हाथी अपनी हथिनियो के साथ सरोवर मे पानी पीने आया। उसके गण्डस्थल से मद झरता था, अपनी लंबी सूँड को वह बीच-बीच मे हथिनियों की पीठ पर डुलाता था, उसकी भारी भरकम चाल से सारा पहाड़ डोलने लगा था उसकी मदोन्मत्त और अधमुँदी आँखों मे सुख का नशा छाया हुआ था। आज मारे प्यास के उसका कंठ इतना सूख रहा था कि ज्योंही वह सरोवर के पास आया, सीधा पानी मे पैठ गया, और पलक मारते मे बड़ी दूर निकल गया।

इस सरोवर मे एक मगर रहता था। पर्वत की गोद मे जब सरोवर का जन्म हुआ, तो साथ ही उसमे यह मगर भी पैदा होगया। कमलो का वन इस मगर का निवासस्थान था। यह जगह बहुत ही चिकनी-फिसलन-वाली थी। एक ओर सुन्दर-सा ढाल था और ढाल के खत्म होते ही तुरन्त एक गहरा खड्ड आ जाता था। यो यह जगह बड़ी भयावनी थी। जब हाथी प्रतिदिन कमलवन को कुचलता इधर आता, तो इस स्थान से बचकर आया करता, लेकिन आज प्यास के मारे जोश ही जोश मे वह एक-दम धँस पड़ा और धँसते ही उसका पैर फिसला। मगर हाथी की ताक मे छिपा हुआ था, मौका पाकर वह एकदम ऊपर आया और पूँछ के एक प्रहार से हाथी को सहज परेशान करके उसने उसका पैर पकड़ लिया। पहले हाथी जरा घबरा-सा गया, लेकिन फिर तुरन्त ही उसने अपना पैर उठाया और मगर को पैर के झटके से दूर फेंकने को कोशिश की। किन्तु मगर की पकड़ जबर्दस्त थी। उसने अपनी दाढो को हाथी के पैर मे पूरी ताकत से चुभो दिया था। मगर हजार हथिनियो के स्वामी उस हाथी को पानी मे खीचने लगा।

हाथी ने मारे वेदना के चिंघाड़ना शुरू किया, हथिनियों की सूँड में सूँड डालकर वह अपना पैर खीचने की कोशिश करने लगा, क्रोध और पीड़ा से सतप्त होकर उसने खूब पानी उड़ाया, पर व्यर्थ हुआ! हथिनियाँ शुरू मे आकुल-व्याकुल होकर सरोवर के तट पर भाग गई, वहाँ खड़ी-खड़ी रोने लगी; और फिर पानी मे पैठकर हाथी के नजदीक पहुँची एवं उसे किनारे की ओर खींचने लगी। लेकिन किसकी हिम्मत थी जो मगर की दाढ़ों से हाथी को निकाल पाता?

हाथी और मगर की यह खीचातानी एक हजार साल तक चली। हाथी अपनेको और अपने साथ मगर को सरोवर के तट की ओर खींचता, और मगर हाथी के पैर को तथा उसके समूचे शरीर को गहरे पानी में ले जाने की कोशिश करता हाथी ने अपनी ताकत आजमाने में कोई कसर न रक्खी, लेकिन मगर की दाढ से छूटना उतना ही कठिन था जितना मौत की दाढ़ से छूटना। पूरे एक हजार वर्ष तक दोनो की यह खींचातानी चली। अन्त मे हाथी थक गया उसका अग-अग शिथिल पड़ गया उसकी आवाज बैठ गई उसकी शक्ति क्षीण हो गई, उसकी सूँड लड़खड़ाने लगी। सारे पर्वत को हिला डालनेवाला गजराज शिथिल-गात्र बन गया।

अपने प्रियतम की ऐसी दुर्दशा देख हथिनियाँ बेचारी रोने लगीं। जिस सरोवर मे आजतक हाथी के साथ जल-क्रीड़ाए की थीं, उसी सरोवर मे अपने उसी प्रियतम हाथी को असहाय और मृत्यु-मुख में छोड़कर एकाकी वापस लौटना पड़ेगा, इस विचार मात्र से वे बेचारियाँ तिल-मिलाने लगीं।

और हाथी? वही पर्वत था, वही वृक्ष, वही सरोवर, वही स्वच्छ जल, वही सुनहले कमल सब कुछ वही था किन्तु हाथी को आज वही

सब कुछ और ही प्रतीत होता था। त्रिलोकी को तिनके के समान समझने-वाला गजराज दीन बन गया था। जो मछलियाँ हाथी को जल मे पैठते देखकर मारे भय के पलायन कर जाती थी, वे ही अब वर्षों बाद हाथी के पैरो के इर्द-गिर्द खेलने लगी और उसे चिढ़ाने लगी, जिन मादाओ ने हाथी की निरंकुश क्रीड़ाओ के कारण अपने प्राणप्यारे बच्चो को अपने सामने मरते देखा था, जिन्होने अपने प्यारे अंडो को हाथी के पैरो तले नष्ट होते देखा था, और जिन मादाओ के मामूली भोग-विलासो की हाथी अब तक हँसी उड़ाता आया था, वही मादाएँ अब तट के पेड़ों पर बैठी मनमानी किलकती और चहकती थी। हाथी ने पैर की पीड़ा को भूलकर एक नज़र सरोवर के आस पास डाली। पर्वत के पशु-पक्षी, सरोवर के वृक्ष, पर्वतवासी देव और देविया, छोटे बड़े झरने, पर्वत के प्रकाशमान शिखर, पर्वत के चरणो को धोनेवाली क्षीरसागर की तरंगे, अपनी जवानी, जवानी की शरारतें, हथिनियों के साथ की जल-क्रीड़ा, सभी कुछ उसके सामने खड़े होगये और मानो उससे जीवन का हिसाब पूछने लगे। हाथी के अङ्ग-अङ्ग से पसीना छूटने लगा, वह सिर से पैर तक कॉप उठा।

क्षीरसागर के एक सुदूर प्रदेश मे भगवान् विष्णु शेषनाग पर शय्या बनाकर रहते थे। यह स्थान त्रिकूट पर्वत से बहुत दूर था, पर क्षीरसागर की रचना कुछ ऐसी थी कि उस स्थान से एक छोटा सा प्रवाह अदृश्य रूप से त्रिकूट की ओर निरन्तर बहा ही करता था, और इसी गुप्त प्रवाह के प्रताप से ही समूचा त्रिकूट पर्वत ओजस्वी बना रहता था। त्रिकूट पर्वत के प्राणी जान मे हों या अनजान मे, इच्छा से हो या अनिच्छा से, इसी प्रवाह के बल पर जीते थे, हाथी ने इस प्रवाह के ओजस् का खूब पान किया था, किन्तु आज वह सब पीना न पीना बराबर होगया था।

शरण में आया हूँ। मैं निर्बल हूँ और आपका शरणागत हूँ। मैं निर्धन हूँ और आपकी शरण मे हूँ। मैं दीन हूँ और आपकी शरण मे आया हूँ। यह सूँड, ये दाँत, ये पैर, यह समूचा शरीर मैं आपके चरणो मे चढाता हूँ। नाथ! मुझे बचाइए। आप अनाथों के नाथ हैं, आप अशरण-शरण हैं, निर्बल के बल है।"

गजराज की इस आर्त्त पुकार को सुनकर भगवान् विष्णु तुरन्त ही वहाँ पधारे। भगवान् को देखते ही हाथी के पैर मे जोर आगया, उसने अपनी सूँड द्वारा पानी की छोटी-सी अजुली भगवान् को समर्पित की, छोटा-सा एक कमल प्रभु के चरणो मे चढाया और नतमस्तक हो इस तरह प्रभु के सामने खड़ा रहा, मानो अपना सर्वस्व प्रभु के चरणो मे चढ़ा रहा हो!

हाथी के इस समर्पण से भगवान् प्रसन्न हुए। विष्णु के सुदर्शन चक्र ने सनातन नियमानुसार मगर का संहार कर डाला और हाथी का पैर छूट गया।

चाहिए। सुन्द-उपसुन्द की उग्र तपस्या से सारा पर्वत सतप्त हो उठा। इसपर देवो ने अप्सराओं को भेजा। लेकिन सुन्द-उपसुन्द सदृश अटल पहाड़ो पर अप्सराओं के बाण बरसे तो भी क्या और न बरसे तो भी क्या? इन दोनो भाइयों ने अपनी इन्द्रियो को इस बुरी तरह जकड़ रक्खा था कि किसी भी प्रकार का प्रलोभन वहाँ प्रवेश नही कर पाता था।

सुन्द-उपसुन्द की इस उग्र तपश्चर्या से ब्रह्मा प्रसन्न हुए। वे आये और बोले : "वत्सो! मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हुआ हूँ। तुम अपना मन चाहा वर मुझसे माँग लो।"

ब्रह्मा के इन शब्दो को सुनकर दोनो भाई उठे। उन्होंने ब्रह्मा को प्रणाम किया और कहा : "पितामह! यदि आप प्रसन्न हुए हैं, तो हमे अपने इसी शरीर मे अमर बना दीजिए। हम तीनो लोको को जीत लेना चाहते हैं।"

भाइयो की इस माँग पर ब्रह्मा ने कहा : "देखो भाई, जब तुमने तप शुरू किया था, तुम्हारा विचार केवल त्रिलोक-विजय का ही था, अमर बनने का नही। इसलिए मैं तुम्हे अमरता तो नही दे सकूँगा। अमरता छोड़ और जो कुछ तुम्हे माँगना हो, माँग लो।"

दोनो ने एकसाथ कहा : "तो पितामह! आशीर्वाद दीजिए कि हम स्थावर, जगम किसी भी प्राणी या पदार्थ द्वारा न मरे। अगर मरे ही, तो आपस मे एक-दूसरे को मारकर ही मरे, बस, यही हमारी इच्छा है।"

ब्रह्मा ने कहा : "वत्स! तथास्तु! बड़े पक्के मालूम होते हो तुम। अपने बूढे पितामह को भी बेच खाने लायक होशियारी तुममे आगई है न? तुम समझते हो कि इस तरह परस्पर मरने का वरदान माँगकर तुमने एक तरह से अमरता का ही वरदान पा लिया है। सच है न?

गया। इस प्रकार तीनो लोकों को शून्यवत् बनाकर ये दानव भाई कुरुक्षेत्र मे आनन्द से रहने लगे।

जगत् की ऐसी हीन और निर्जीव दशा देखकर जगत् के संरक्षक देव चिन्तित हो उठे। वे डरे कि तीनों लोको को धारण करनेवाले धर्म का यदि नाश होगया तो फिर इस दुनिया का क्या हाल होगा? अतः वे सब ब्रह्मा के पास पहुँचे और कहने लगे : "पितामह! आपके वरदान से मदोन्मत्त बनकर ये दानव-बन्धु तीनों लोको का सर्वनाश कर रहे हैं। आपने इन्हें अमरता तो नहीं दी, पर इनकी यह एकता इन्हे अमरवत् बनाये हुए है। लोग सब त्राहि-त्राहि पुकार रहे हैं, यदि कुछ ही दिन और यही दशा रही, तो त्रिलोको में धर्म नाम की कोई वस्तु न रह जायगी। आप महान् हैं, सर्वसमर्थ हैं पर हमारे हृदय विदीर्ण हो रहे हैं, इसलिए अपनी इस गुहार के साथ आपकी सेवा मे उपस्थित हुए हैं।"

ब्रह्मा ने हँसते-हँसते कहा : "ससार के सरक्षको! आपकी व्यथा को मैं समझता हूँ। समय ऐसा आलगा है कि इसमे क्षणभर के लिए आपकी श्रद्धा भी डगमगा सकती है। किन्तु याद रक्खो कि परमात्मा के अटल नियमों को कोई बदल नहीं सकता। जो अपनी माँ के पेट से पैदा हुआ है वह कभी मौत से बचा नहीं और विश्वास रक्खो कि बचेगा भी नहीं। मनुष्य ने मृत्यु से बचने के लिए अबतक नाना प्रकार की युक्ति-प्रयुक्तियों से काम लिया है, वरदान पाये हैं, पर अन्त मे मृत्यु से वह बच नहीं पाया है। पागर मनुष्य ईश्वर की सपूर्ण शक्ति को नहीं पहचान पाता, इसीलिए वह परमेश्वर को भी धोखा देने की युक्तियाँ सोचता है, लेकिन अन्त मे मनुष्य अपनी इन्हीं युक्तियों से मरता है। आप घबराएँ नहीं। संसार मे जबतक ईश्वर है, तबतक धर्म भी है। ससार कभी धर्मविहीन नहीं होगा। आज जिस उथल-पुथल को आप देख रहे हैं,

में एक-दूसरे की गलतियो को निवाह लेने की पवित्र उदारता नही, वह एकता निरी राक्षसी एकता है। यह एकता प्रकट मे कितनी ही प्रचण्ड क्यों न दिखाई पडे, तो भी संसार की एक साधारण-सी वस्तु भी इसको छिन्न-भिन्न कर सकती है, और ऐक्य का अभेद्य प्रतीत होनेवाला क़िला एक पल मे धराशायी हो सकता है। सुन्द-उपसुन्द की एकता ऐसी ही राक्षसी एकता है। अभीतक वे अपने शत्रुओ को पराजित करने मे लगे थे, अब शत्रुओ का अन्त आलगा है, अतः कौन कह सकता है कि वे आपस मे लड़ेंगे ही नही? दोनों नौजवान हैं, दोनो साधन सम्पन्न हैं, दोनों मदोन्मत्त हैं, दोनों मास-मिट्टी के पुतले हैं, दोनो हृदयवान हैं, और दोनो वासना के पुतले हैं। कौन जानता है कि कल ही इनमे से किसके हृदय में कौनसी वासना जाग उठेगी और वह कैसा रूप धारण कर लेगी? मैं तो ऐसे राक्षसी स्वभाव वाले लोगो की एकता मे रत्तीभर भी विश्वास नही करता, क्योंकि रागद्वेष से युक्त लोगो की एकता केवल स्वार्थवश ही टिकती है, और विश्वास रक्खो कि इस प्रकार का एक स्वार्थ दूसरे स्वार्थ से रगड़ खाकर चकनाचूर हो रहता है।"

देव बोले : "पितामह! आपने हमे जो कुछ समझाया है, उसे हम स्वयं नही समझ पाये थे। इन दानव-बन्धुओ की एकता देखकर हम तो भयभीत हो उठे थे। किन्तु आपका यह कथन यथार्थ है कि ऐसी सभी एकताएँ बालू की दीवार से अधिक नही होती। दूसरों मे सच्ची एकता तो ठीक, यह नकली एकता भी नही होती, इसलिए सुन्द-उपसुन्द की यह एकता हमें मुग्ध किये डालती है। प्रभो! आज्ञा दीजिए। हमने आपको व्यर्थ ही कष्ट दिया।"—यों कहकर देव चले गये।

सुन्द-उपसुन्द तीनो लोकों को जीतकर घर आये। अब चूँकि सारे ससार मे उनका कोई शत्रु न रह गया था, कोई विरोधी न बचा था,

सुन्द ने दाहिना हाथ पकड़ा ही था कि उस सुन्दरी के स्पर्शमात्र से वह अपनी सुध बुध खो बैठा और कहने लगा : "उपसुन्द ! जानते हो, यह तुम्हारी भाभी है ?"

उपसुन्द के हाथ मे तिलोत्तमा का बायॉ हाथ था। वह उसके स्पर्श का सुखानुभाव करता हुआ ऑखे मूॅदकर बोला : "सुन्द ! जानते नही, यह तुम्हारी अनुज-वधू है ?"

फिर क्या था। बात की बात मे सुन्द और उपसुन्द तिलोत्तमा के हाथों की खीचा-तानी में लग गये, खीचा-तानी से गाली-गलौज पर पहुँचे, और अन्त मे मारपीट पर उतर आये। तिलोत्तमा के एक कटाक्ष ने उनकी एकता, उनके संगठन और उनकी बन्धुता को अतीत की वस्तु बना दिया, और इन सबके गर्भ मे जो निरी पशुता छिपी बैठी थी, वह अचानक प्रचंड हो उठी। दोनो की ऑखो से चिनगारिया निकल रही थी। दोनो की जबान पर सारी दुनिया की विषैली वाणी सवार हो चुकी थी। दोनो की भुजाओं मे त्रिलोक-मर्दन का सामर्थ्य तो था ही। दोनो के हृदयों को तिलोत्तमा ने वेध डाला था। दोनो भाई द्वन्द्व-युद्ध मे गुथ गये और मरणासन्न दशा मे धरती पर ढुलक पडे।

प्रतिदिन एकसाथ खाने-पीने और एकसाथ सोने-बैठनेवाले ये त्रिलोकजयी भाई जब मृत्यु के ग्रास बन गये, तो तिलोत्तमा अपने स्थान को लौट गई। सुन्द-उपसुन्द को अन्त तक यह न सूझा कि उनकी एकता की जड़ मे घुन लग चुका था। अन्त में संसार ने देखा कि एकता का वह मजबूत मचान खोखला बनकर एक क्षण मे खत्म होगया—मिट्टी मे मिल गया !

"याज्ञवल्क्य ! तुम्हारा यह साहस कि तुम आज गुरुकृपा की अवगणना करते हो ?" कहते-कहते गुरु की भौहे टेढ़ी होउठी।

अब याज्ञवल्क्य बच नही सकता था। उसे बलात् बोलना पड़ा। उसने कहा : "गुरुदेव ! मैं गुरुकृपा की अवगणना नही करता, बल्कि मानव-जीवन मे उसके समुचित मूल्य को अंकित करना ही मेरा ध्येय है। मेरी नम्र सम्मति मे मेरे ये मित्र और आप स्वयं गुरु-कृपा की अवहेलना कर रहे हैं।"

इस सीधे प्रहार को गुरु सह न सके। वे तिलमिला उठे और बरस पड़े : "मूर्ख ! गुरु-कृपा की मैं अवहेलना करता हूं ? मै तो अभी-अभी गुरु-कृपा की प्रशंसा कर रहा था। उस समय तू कहाँ था ? अवहेलना तो तू ही कर रहा है।"

याज्ञवल्क्य ने अपनेको संभाला और शान्तिपूर्वक कहना शुरू किया : "महाराज ! किसी भी वस्तु की या मनुष्य की हद से ज्यादा कीमत आँकना उस वस्तु अथवा उस मनुष्य की अवहेलना करने के समान ही है। चित्रकार कहते हैं कि मनुष्य को उसके वास्तविक रूप से अधिक रूपवान चित्रित करना उसका अपमान करने के समान है।"

अब तो गुरु के क्रोध का ठिकाना न रहा। वे वोले : "तू कितना सुयोग्य है, सो मे देख लूँगा। चल, तूने जो मुझसे विद्या सीखी है, उसे तू उगल दे !"

याज्ञवल्क्य ने कहा : "जैसी आपकी आज्ञा !" और तुरन्त ही गले मे अँगुली डालकर भरी सभा मे क़ै करदी। याज्ञवल्क्य की यह तत्परता देखकर गुरु भी स्तब्ध रह गये। लेकिन, अब वात बदलने का मौका न था। किसीके लिए इसकी गुंजाइश न रह गई थी। गुरु ने चित्त को स्वस्थ करके कहा : "मेरे प्यारे शिष्यो ! तुम सब तीतर बनकर इस विद्या को चुग

निरन्तर भ्रमणशील हूँ। मेरा रथ चौबीसों घंटे चलता रहता है। इसलिए तुम्हे विद्या सिखाने का समय मेरे पास नही है।"

सूर्य के इन वचनो को सुनकर याज्ञवल्क्य ने हँसेते-हँसते कहा : "भगवन्! आप समूचे ससार के स्वामी हैं। आपके कहने पर भी मैं कैसे मान लूँ कि आपके पास समय नहीं है? मैं जानता हूँ कि आप निरन्तर गतिशील हैं। किन्तु भगवन्! तीव्र-से-तीव्र गति मे भी क्या एकाध बिन्दु स्थिरता या शान्ति का नहीं होता? इस समय भी तो आप गतिमान हैं, तिसपर भी आपने मुझे दर्शन देने की कृपा की है, इसी प्रकार आप मुझे उपदेश देने की कृपा भी क्यो न करें?"

भगवान् सूर्यनारायण ने कहा : "तुम सच कहते हो। अपनी शाश्वत गति मे भी जब मैं मध्याह्न मे रहता हू तो एक क्षण के लिए अपने घोड़ो को ठहरा देता हूँ। उस एक क्षण मे तुम विद्या सीखना चाहो तो मैं तैयार हूँ। मैंने सोचा था, कदाचित् तुम्हे ऐसे क्षणिक उपदेश से तृप्ति न होगी।"

याज्ञवल्क्य ने कहा : "भगवन्! मैं लगातार वर्षों के उपदेशो से थकथकाकर तो आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ। मेरी प्रार्थना यही है कि मैं आपके इस एक क्षण के उपदेश को ग्रहण करने योग्य वनूँ। प्रतिदिन मध्याह्न मे जिस समय आपका रथ आकाश मे ठहरे आप मुझे उपदेश कीजिए। मैं मध्याह्न के समय आपकी प्रतीक्षा करता रहूँगा।"

"तथास्तु!" कहकर सूर्यनारायण अपन राह चल दिये और उस दिन से याज्ञवल्क्य भगवान् सवितादेव से विद्या सीखने लगे।

जिन शिष्यो ने तीतर वनकर वेदो को चुग लिया था उनसे यजुर्वेद की तैत्तरीय शाखा बनी, और मध्याह्न मे एक क्षण के अन्दर सूर्य भगवान ने याज्ञवल्क्य को जिस विद्या का उपदेश किया वह यजुर्वेद की माध्यदिनी

गाय-ढोर, घर-बार और धन-दौलत आदि को छोड़ना पसन्द करते हैं ?"

याज्ञवल्क्य ने कहा : "देवि ! इसमे समझाने की कौनसी बात है ? मैं तो स्पष्ट ही अमरता की प्राप्ति के लिए सन्यास लेना चाहता हूँ।"

मैत्रेयी ने पूछा : "तो ये गाय-ढोर, घरबार, धन-दौलत आदि आपको अमर न बनायेंगे ?"

याज्ञवल्क्य ने नि:शक होकर कहा : "नही। ये मुझे अमर नहीं बना सकते।"

मैत्रेयी ने फिर पूछा : "आप सोने से मढी हुई सारी पृथ्वी मुझे अकेली को दे जाय, तो उससे मुझे अमरता मिलेगी क्या ?"

याज्ञवल्क्य ने कहा : "मैत्रेयी ! ठीक पूछा। इस प्रकार की सम्पत्ति से आकण्ठ भोगविलास में डूबे हुए लोगो का जैसा जीवन होता है, वैसा ही तुम्हारा भी बनेगा। ऐसी सम्पत्ति द्वारा तुम्हे मोक्ष की तनिक भी आशा न रखनी चाहिए।"

मैत्रेयी बोली : "तो महाराज ! जिस घर-संसार को छोड़कर आप अमरता की टोह मे निकल पड़ना चाहते हैं, उस घर-बार को मैं क्या करूँ ? जिस ज्ञान के कारण आपको ये सब चीजे क्षुद्र प्रतीत होती हैं, जिस ज्ञान मे भीगकर आप आज इस सारे प्रपंच से मुँह मोड़ना चाहते हैं, जिस ज्ञान के बल पर सारी दुनिया के संत घरबार से नाता तोड़ एक लगोटी पहने चल पड़ते हैं, वही ज्ञान मुझे देने के बदले आप ये संसार मे बाँधकर रखनेवाली चीजे मुझे किस लिए सौप जाना चाहते हैं ? देव ! बहन कात्यायनी को इन चीजो की जरूरत हो, तो सब उन्हीको दे डालिए, यदि उन्हे भी इनकी जरूरत न हो, तो ये सब अपनेआप ही दुनिया मे अपने लिए जगह ढूँढ लेगी। आपके समान पति की पत्नी होकर भी

६

धर्म व्याध

"भद्र खटिक! आज तुम्हारे चरणो मे अपना सिर रखकर मैं कृतार्थ होता हूँ।" कहते-कहते कौशिक ने खटिक के चरण छुए और अपने आँसुओ से उसके पैर धोये।

खटिक ने कहा : "अरे, महाराज! आप यह क्या करते हैं? खड़े होइए, खड़े होइए। आप ब्राह्मण हैं, अत: अकेले मेरे ही लिए नही सारे ससार के लिए वन्दनीय हैं। आपको नही, बल्कि मुझे आपके चरणो मे मस्तक झुकाना चाहिए।"

कौशिक धीरे धीरे सिर उठाते हुए बोला : "भाई! एक दिन था, जब मैं अपनेको ब्राह्मण मानता था और आशा रखता था कि समूचे ससार को मेरे चरणो मे मस्तक झुकाना चाहिए। आज वह अस्त हो चुका है। मैं तो नामधारी ब्राह्मण हूँ, सच्चे ब्राह्मण तो तुम हो।"

खटिक बोला : "महाराज कौशिक! आप इतने निराश न हूजिए। निराशा का कोई कारण नही है।"

कौशिक ने जवाब दिया : "भाई, तुम्हारे मुँह से तो यही शोभा देता है। लेकिन जिसने अपनी एक भी इन्द्रिय पर अधिकार पाने का प्रयत्न नही किया, जिसके हृदय मे नाना प्रकार के विष भरे हुए हैं, स्वार्थ को छोड़ जिसका अन्य कोई व्यवसाय नही, झूठ बोलना, दूसरो को ठगना, जहाँ-तहाँ झगड़ना और झगड़ा मचवाना, दूसरो की हानि होते देखकर हर्षित होना, दूसरों के अवगुणो का पता लगाना और अवसर पाकर उन अव-

मेरी एक छोटी-सी माँग है। आप जानते हैं, मेरा व्यवसाय कितना कठिन है, अतएव कृपा होगी यदि अपनी बात आप थोड़े मे कह सुनायेंगे।"

कौशिक ने कहा : "बहुत अच्छा। कहानी तो सारे जीवन की सुनानी है। लेकिन आज थोड़ी ही कहूँगा, बहुत ही थोड़ी। जनेऊ धारण करने के बाद एक बार मैं तप करने गया था।"

खटिक बोला : "इसीमे ब्राह्मण की शोभा है। जिसके जीवनक्रम के आदि और अन्त मे तपश्चर्या है, वही सच्चा ब्राह्मण है।"

"अभी तप पूरा भी न हुआ था कि इस बीच एक दिन मैं विश्राम के विचार से एक वृक्ष के नीचे जा बैठा। इतने मे वृक्ष पर बैठी हुई एक चिड़िया ने मेरी देह पर बीट कर दी।"

खटिक ने हर्षित होकर कहा : "आप सचमुच बड़े भाग्यशाली हैं। जिस दिन अपने व्यवहार द्वारा हम पक्षियों मे इतनी निर्भयता पैदा कर देंगे कि वे हमारे हाथ-पैर पर बैठकर दाना चुग जायँ और कन्धो पर बैठकर चहकने लग जायँ, उस दिन सचमुच मोक्ष के द्वार हमारे लिए खुल जायँगे। दुनियादारो की, बाल-बच्चेवालो की गोद जबतक बच्चो के मल-मूत्र से सनती नही, तबतक यह समझिए कि उनका जीवन व्यर्थ ही बीता। तपस्वियो की जटाओ मे तो पक्षी अपने घोसले बनाते हैं। अहा, चिड़िया के बीट करने पर आपको कितनी खुशी हुई होगी!"

कौशिक ने हाथ जोड़कर कहा : "भाई! अब तुम अपनी ही कहोगे, या मेरी भी सुनोगे? तुम्हारा एक-एक शब्द मेरे मर्म को भेदे जाता है। तुम अहोभाग्य की चलाते हो, जब कि मैंने उस चिड़िया को जलाकर खाक कर डाला!"

"क्या कहा?"

"ठीक ही कहा। मेरे समान पवित्र ब्राह्मण पर एक चिड़िया चिरक

दे और मैं उसे सह लूँ ? मैंने ज्योंही क्रोधभरी दृष्टि से ऊपर देखा, चिड़िया जलकर खाक हो गई !" कौशिक ने जवाब दिया।

खटिक बोला : "महाराज ! सचमुच मुझे आपपर दया आती है।"

कौशिक ने कहा : "दया आती है ? तुम मुझपर दया क्यों करते हो ? तुम्हें तो मुझसे नफरत होनी चाहिए। मुझे धिक्कारना चाहिए। मुझे अपने तप का अभिमान था। मैं चिड़िया की हिमाकत को सह न सका।"

खटिक ने कहा : "महाराज! आपने सचमुच बहुत ही बुरा किया।"

कौशिक ने कहा : "तिसपर भी उस दिन मैं बहुत खुश रहा। जब मैंने चिड़िया को जलते देखा, मुझे हर्ष हुआ, अपने तप मे मेरा विश्वास बढा। इसीका नाम अभिमान है। मेरे अभिमान का मुझे सच्चा खयाल करा देनेवाले तुम दो हो—एक वह देवी और दूसरे तुम ! तुम दोनों को मैं अपना गुरु मानता हूँ।"

खटिक ने कहा : "सच है। यह अभिमान ही हम सबको सर्वनाश के गहरे गर्त मे डालता है। तिसपर विशेषता यह कि यह अभिमान हम सबको मधु सा मीठा लगता है।"

कौशिक बोला : "भाई! मैं तुम्हे क्या बताऊँ? वह मधु ही नही, अमृत से भी अधिक मीठा लगता है। खूबी यह है कि जिसे अपना अभिमान मीठा लगता है, वही दूसरे के अभिमान को कडुआ समझता है। भैया ! जिन दिनो मैं बच्चा था और मेरे पास-पड़ोस के धनिक लोग अपने धन का अभिमान करते थे, तब मुझे बड़ा गुस्सा आता था और मैं उन धनिको को गधा समझता था। जब मैं बच्चा था और मेरे छोटे-छोटे साथी सगी कुलीनो में खपकर झटपट अपनी सगाई करा लेते थे, मैं उन सबको मूर्ख कहकर चिढ़ाता था। अभिमान किस चीज का नही होता है ? रूप का होता है,

विद्या का होता है, शरीर-बल का होता है, तप का होता है और ज्ञान का भी होता है। अब मैं कुछ कुछ समझने लगा हूँ कि साधारणतया जब मनुष्य मे किसी बात की थोड़ी शक्ति आती है, तो उसके साथ ही उसमे उस शक्ति का अभिमान भी पैदा होता है।"

खटीक ने कहा : "इसीलिए तो शास्त्रो मे कहा गया है कि शक्ति प्राप्त करने से पहले शक्ति का उपयोग करने की पात्रता पा लेनी चाहिए। जो सच्चे गुरु होते हैं, वे इसी कारण अनधिकारी शिष्य को कभी विद्या सिखाते ही नही।"

कौशिक बोला : "भैया खटीक ! आज तो मुझे भी यह सब दीपक की भाति साफ दिखाई पड़ता है। पर उन दिनो तो मेरी आँखो मैं नशा छाया हुआ था। उस दशा मे मैं एक चिड़िया का चिरकना कैसे सह पाता ?"

खटीक ने पूछा : "अच्छा, तो फिर क्या हुआ ?"

कौशिक ने जवाब दिया : "मेरे पैरो मे दुगुना जोर आ गया। अभिमान भी एक तरह का नशा ही न है ? मैंने मान लिया कि जिस तरह चिड़िया जली है, उसी तरह दूसरे भी जल मरेंगे। यह सोचकर मैं उस महिला के गाव मे भीख माँगने पहुँचा। उसके घर जाकर मैंने दरवाजा खटखटाया और कहा, "भवति भिक्षा देहि।"

खटीक ने पूछा : " वह घर मे थी क्या ? "

कौशिक ने कहा : "हाँ, उसने तुरन्त ही अन्दर से जवाब दिया : 'महाराज ! ठहरिए। मैं बरतन मल रही हूँ। जरा मल चुकूँ, तो आपको भिक्षा दूँ।' "

खटीक ने पूछा : " फिर ? "

कौशिक ने जवाब दिया : " फिर तो फिर ही रहा। मैं भिक्षा की

आशा से घण्टों उसके दरवाजे पर खड़ा रहा। खड़े-खडे मेरे पैर दुखने लगे। मेरा जी उकताने लगा। पर वह देवी बाहर नही आई। मैंने कई बार दरवाजा खटखटाया, कई बार भिक्षा की पुकार मचाई, बार-बार पैर पछाड़े, कई बार अधीर होउठा, पर वह न आई। और जब आई, तो उलटे मुझीको धमकाती हुई कहने लगी, 'महाराज! यह बेताबी क्यों? यह अधीरता कैसी? क्या मुझे भी आपने पेड़ वाली चिड़िया समझ लिया है, कि आपकी लाल-पीली आँखे देखकर मैं जल मरूँगी?' "

खटीक ने कहा: "आपको भी अच्छी औरत से साबका पड़ा।"

"मैं चिड़िया को जलाकर ही उधर गया था। लेकिन जब उस देवी के सामने मेरी सारी शेखी हिरन हो गई, मेरा कोई बस न चला, तब तो दिल मे यही खयाल आया कि बस मौत आजाय और मैं मर जाऊँ तो अच्छा। मैं अपनी सुध-बुध भूलकर खड़ा रह गया। मैं सोचने लगा: मेरे तप का वह प्रभाव कहाँ चला गया? मुझे सोचता देख वह देवी कहने लगी: 'महाराज! इधर आपने भिक्षा की पुकार लगाई, उधर मेरे पति भूखे-प्यासे बाहर से घर आये थे। मैं उनकी सेवा में लग गई और आपको भूल गई। मुझे माफ कीजिए। जब मैं अपने धर्म के पालन मे लगी हुई थी, तब आप मुझपर रुष्ट हो रहे थे, यह देखकर दो कड़ी बातें मुझे कहनी पड़ी हैं। मैं जानती हूँ कि आप तपस्वी हैं, और एक चिड़िया को जलाकर इधर आ रहे हैं, सो भी मुझे मालूम है। लेकिन आपको अपने तप का अभिमान हुआ है। हम दुनियादार लोग जंगलों मे जाकर तप नहीं करते, किन्तु परमात्मा ने हमे घर मे रहकर तप करने का मार्ग बताया है। महाराज! अगर आप यह मानते हों कि घर मे रहकर की हुई तपस्या जंगल की तपस्या से हलकी होती है, तो आप भ्रम में हैं। तप की बुद्धि से किया हुआ तप ही सच्चा तप है। फिर आप उसे घर मे कीजिए, चाहे

जगल में कीजिए। महाराज ! सच कहूँ ? चिड़िया को जलाकर आपने अपना तप खो दिया है।"

खटीक बोला : "कौशिक ! देवी ने आपको खूब आड़े हाथों लिया।"

कौशिक बोला : "कुछ पूछो मत भाई ! उस समय तो बस यही हुआ कि धरती रास्ता करदे तो मैं उसमे समा जाऊँ। लेकिन फिर तो उस देवी ने अपना कथन समाप्त करते हुए कहा : 'महाराज ! यदि आप कुछ विशेष जानना चाहे तो मिथिला जाइए वहा एक खटीक रहता है, उससे मिलिए। वह आपको सब विस्तार से समझावेगा।' देवी के इन वचनो को सुनकर मैं तुम्हारी टोह में घूमता-घामता यहा आया। भैया ! पहली बार जब मैंने तुम्हे देखा, तुम हाथ में एक बड़ा-सा छुरा लिये मास के टुकड़े काट रहे थे और अपने गाहको को कुछ समझाते थे। मैंने सोचा : 'यह खटीक मुझे क्या समझायेगा ?' फिर तो तुम मुझे अपने घर लेगये, घर मे मैंने तुम्हारे परमेश्वरतुल्य माता-पिता के दर्शन किये, तुम्हे अपने माता-पिता की अनन्य सेवा करते देखा, और फिर जब तुम्हीसे यह सुना कि इस एकनिष्ठ सेवा के कारण ही तुम्हे बिना पढे-लिखे ही शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त हो गया है, तो मैं तो दग रह गया ! वैसे प्रकट में तुम सब मामूली जीवन बितानेवाले मनुष्य हो, पर तुम्हारा जीवन सच्चा धर्म-जीवन है। मेरे जैसे तपस्वी प्रतीत होनेवाले ब्राह्मण तप के बदले तप का ढोग अधिक करते हैं, समाज को अपने जाल में फँसाते हैं, और अन्त में स्वय बरबाद होजाते हैं।"

खटीक ने कहा : "महाराज ! अब मेरा समय हुआ, मुझे जाना चाहिए।"

कौशिक बोला : "भैया, तुम खुशी से जाओ ! तुमने मुझे सच्चे तप का दर्शन कराया है। अधिक तो क्या कहूँ, मैं तो आजतक शास्त्रो के

पीछे पड़ा था : शास्त्र-शास्त्र बका करता था। पर आज मैं समझा हूँ कि सच्चा शास्त्र तो तुम हो, और वह देवी है। जो लोग तुम्हारे सदृश लोगों के जीवन को पढना जान लेते हैं, वेही सच्चे शास्त्री बन सकते हैं।' भैया, अब तुम जाओ। मैं भी जाता हूँ। संसार के कोने कोने मे छिपे-छिपे हुए इन मूक तपस्वियो के पुण्य से ही यह ससार अब तक टिका हुआ है।"

इतना कहकर कौशिक चल दिया और खटीक भी अपने माता पिता की सेवा के लिए उनके सोने के कमरे की ओर चला।

७

राजा शिबि

बहुत बरसों पहले शिबि नाम का एक राजा था। एक बार वह अपनी यज्ञशाला मे बैठा था कि इतने मे एकाएक एक कबूतर उसकी गोद मे आ पड़ा। कबूतर के बदन पर चोच के जख्म थे, पंख उसके नुचे हुए थे, आँखे भय से विह्वल थी, शरीर सारा थर-थर काँप रहा था, पैर सीधे खडे न हो पाते थे। कबूतर ज्योही ची-ची करके राजा की गोद मे पड़ा, राजा ने उसे सॅभाल लिया, उसपर ठण्डा पानी छिड़का, और फिर उसके पंखो पर हाथ फेरता हुआ उसे चूमने लगा।

इतने मे सामने से कोई पुकार उठा : "राजन्! यह कबूतर मेरा है। तुम इसे मुझे देदो।" राजा ने सिर उठाकर जो देखा तो सामने पाट पर एक बाज बैठा नजर आया। बाज की आखो मे क्रूरता थी और आवाज मे कर्कशता। अपने शिकार को इस तरह हाथ से निकला देख वह क्रुद्ध हो उठा था।

बाज की बात सुनकर कबूतर राजा की गोद में और भी छिप गया। राजा ने कहा : पक्षियों के राजा! मेरी गोद मे आने से पहले तक यह कबूतर तुम्हारा था, अब मेरी गोद मे आकर यह मेरा होगया है। जिस समय मेरी गोद छोड़कर यह उड़ जायगा, फिर स्वतन्त्र होजायगा।"

बाज से न रहा गया। उसने छूटते ही कहा : "राजन्! यज्ञशाला में बैठकर तुम ऐसी अधर्म की बात कैसे कहते हो? कबूतर तो हमारा कुदरती आहार है। ईश्वर ने हम बाजो के लिए ही इसे पैदा किया है।

अगर तुमने यह कबूतर मुझे न दिया, तो मैं और मेरे बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे। फिर इसका सारा पाप तुम्हे लगेगा। जरा सोचो तो, इस एक कबूतर को बचाकर तुम दूसरे कितनों को मारोगे ?"

राजा ने शान्तिपूर्वक कहा : "देखो भाई, बेचारा अभी तक तुम्हारे डर से कॉप रहा है। मैं जानता हूँ कि कबूतर तुम्हारी खुराक हैं। लेकिन इस कबूतर को तुम छोड़ दो। मेरे महल मे इसके अलावा दूसरे अनेक खाद्य-पदार्थ पड़े हैं; उनमे से तुम जो चाहो ले लो। तुम चाहो तो मैं तुम्हें और तुम्हारे बाल-बच्चो के लिए देश-विदेश के अनाज दूॅ, देश-देशान्तर के मीठे और ताजे मेवे दूॅ, तुम कहो तो सारी दुनिया की साग-सब्जी तुम्हारे लिए हाजिर कर दूॅ, तुम चाहो तो दुनिया भर के अच्छे अच्छे फूल और फल तुम्हारे लिए मॅगा दूॅ, लेकिन यह कबूतर तुम्हे कदापि न दूॅगा। बाज ! तुम मे तनिक भी दया होती, तो तुम इन गरीब प्राणियों को कभी न मारते !"

शिबि की ये बातें सुनकर बाज ने हॅसते-हॅसते कहा : "मानवराज ! पृथ्वीपति होकर भी तुम यह क्या कहते हो ? जरा अपने इन भाईबन्दों की ओर देखो ! पेटभर खाने को मिल जाने पर भी ये अकारण ही शिकार खेला करते हैं। क्या ऐसे आदमियो को अधिकार है कि वे अपने मुँह से दया का नाम लें ? राजन् ! दुनिया के सभी प्राणी पेटभर खाने के बाद ही दया और धर्म की बातें कर सकते हैं। तुम खा-पीकर और तृप्त होकर जो कुछ कहते हो, उसे मैं भूखे पेट क्योंकर सुनूॅ ? अतएव यह कबूतर तुम मुझे दे दो, अपनी भूख बुझा चुकने पर मैं तुम्हारे धार्मिक प्रवचन सुनने आजाऊॅगा।"

बाज की इन मर्मस्पर्शी बातों को सुनकर राजा सजग हो उठा। वह तनकर बैठ गया और बोला : "पक्षीपति ! मैं क्षत्रिय पुत्र हूॅ। वैसे तो

तुम न जाने कितने कबूतरो को मारकर खाते होगे, मैं कभी तुम्हे मना करने नही आता। पर आज यह कबूतर मेरी शरण में आया है, इसलिए मैं इसे तुम्हे न दूँगा। शरण मे आये हुए प्राणी को बचाने के लिए आवश्यकता पड़ने पर अपनी जान तक दे देना हमारा धर्म है। क्षत्रिय इसके पालन मे नही चूकते। यदि शिबि इस धर्म का त्याग करेगा, तो उसका जीवन तीन कौड़ी का भी न रहेगा—तब तो वह जिन्दा भी मुर्दा ही कहलायेगा।"

बाज ने बड़ी चालाकी से काम लिया। वह बोला : "महाराज! शिबि क्षत्रिय है, तो इसमे मेरा और मेरे बच्चो का कोई कसूर? क्या शिबि अपनी क्षत्रियता की रक्षा मुझे और मेरे बच्चों को मारकर ही कर सकता है? राजन्! तुम मेरे लिए अपने सारे भण्डार खुले छोड़ने को तैयार हो, तो फिर उन्हें अपनी गरीब प्रजा के लिए क्यों नहीं खुले छोड़ देते, जिससे तुम्हारा क्षत्रियत्व अपनी चरमसीमा को पहुँच सके। दो पखों वाले एक छोटे-से कबूतर को बचाने मे कौन बड़ा क्षत्रियत्व है?"

राजा क्षणभर को क्षुब्ध हो उठा, पर दूसरे ही क्षण शान्तभाव से बोला : "पक्षीपति! क्षत्रियत्व कोई ऐसी-वैसी व्यापार की वस्तु नही जो हमारी-तुम्हारी तराजू में तौला जा सके। इन बातो को तौलने की तराजू तो भगवान ने भक्तों के हृदय में ही लगाई है। मैं किसी भी दशा में तुम्हे यह कबूतर न दूँगा। इसके बदले तुम दूसरा जो भी आहार माँगोगे, मैं देने को तैयार हूँ।"

बाज राजा के कुछ समीप जाकर बैठ गया और बोला : "राजन्! इस कबूतर का रक्त मास जितना मीठा है, वैसा मीठा रक्त-मास तुम मुझे कहासे दोगे? हाँ, तुमने बहुत बडे-बडे यज्ञ किये हैं, इससे कदाचित् तुम्हारा रक्त-मास मीठा हो सकता है।"

राजा ने तुरन्त कहा : " तो मैं अपनी सारी देह तुम्हे देने को तैयार हूँ। भले पछी ! तुमने अच्छा तोड़ सुझाया।"

बाज फिर हँसा और बोला : "राजन् ! तुम अपनी देह दोगे तो, लेकिन उसे मैं ले कैसे सकता हूँ ? तुमपर तुम्हारी सारी प्रजा का आधार है। वर्णाश्रम धर्म के तुम रक्षक हो। इस कबूतर जैसे अनेक दीन-दुखियों के तुम सहारे हो। भला यह कैसे होसकता है कि मैं इन सबके इतने बडे आधार को नष्ट कर डालूँ ? और राजन् ! तुम भी कैसे हो, जो एक मामूली-से कबूतर के लिए अपना त्रिलोकव्यापी राज्य, अपनी भरी जवानी और यह सुन्दर सुशोभन देह यो दे डालने को तैयार हुए हो ? मुझे तो तुम एक ही मूर्ख नजर आते हो।"

राजा ने हँसते-हँसते कहा : "पक्षीराज ! तुम सच कहते हो। बरगद की रक्षा का आग्रह करनेवाले लोग मूर्ख होते हैं। जो सयाने होते हैं, वे तो प्राय: बरगद-जैसी किसी चीज को मानते ही नही, कभी मानते भी हैं तो मौका पड़ने पर उसका त्याग करने मे आगा पीछा नही देखते। दुनिया का काम ऐसे सयानों के बल ही चलता है। तुमने जिस सचाई के साथ बात कही, वैसी शायद ही कभी कोई कहता है। सच न कहना भी तो सयानेपन की एक निशानी है ? पर भाई ! तुम बड़ी देर के भूखे हो। लो, मुझे खाना शुरू करो ! तुम खाते चलो और हम बातें करते चलें।"

बाज फिर हँसा और बोला · "धन्य है, शिबिराजा धन्य है ! पर आप को अपने क्षत्रियत्व की टेक है, तो मुझे भी अपने पक्षी होने की टेक है। मेरा अधिकार उतने रक्त मास पर है, जितना कबूतर मे हो सकता है। मैं तुम्हे योंही खाना शुरू न करूँगा। तुम मुझे इस कबूतर के जितना रक्त-मास अपने शरीर से काटकर तौलदो। मैं उसे ले जाऊँगा और अपने बाल-बच्चो के साथ बैठकर खाऊँगा।"

बाज के इन वचनो को सुनकर राजा ने तुरन्त यज्ञशाला में तराजू मँगाई, एक बड़ी-सी छुरी लाने को कहा, मास तोलनेवाले को बुलाया और फिर हलके-हलके अपनी देह को काटना शुरू किया। तराजू के एक पलड़े मे कबूतर बैठा, दूसरे पलड़े मे राजा ने अपना दाहिना पैर काट कर रक्खा।

ज्योंही राजा ने अपना दाहिना पैर चढाया और तौलनेवाले ने तराजू थामकर तौला कि बाज पुकार उठा : "राजन्! अभी तौल बराबर नही हुआ। वह देखो कबूतर वाला पलड़ा तो अभी जमीन पर ही टिका है।"

राजा ने फौरन ही अपना बायॉ पैर काटकर पलडे पर चढा दिया। पलड़ा फिर न उठा। बाज फिर बोला : "राजन्! अब भी थोड़ा कम है। यह कबूतर तो बड़ा वजनी निकला!"

इसके बाद तो राजा ने अपनी दाहिनी और बायी दोनो जॉघे चढ़ा दी, तो भी कबूतर वाला पलड़ा न उठा। तब तो राजा स्वयं तराजू पर पूरा चढ गया, और बोला : "पक्षीपति! मैंने तो पहले ही कह दिया कि मुझे खाना शुरू करो। पर तुम सुनो तब न! लो, अब तो तुम्हारी भी बात रह गई। आओ, खाना शुरू करो।"

राजा इस प्रकार कह ही रहा था कि इतने मे आकाश से पुष्पवृष्टि हुई! यह देख लोग चकित रह गये, और राजा के सामने दो तेजस्वी देवता आ खड़े हुए।

"राजन्! तुम धन्य हो! आज अपने त्याग द्वारा तुमने तीनों लोको को चकित कर दिया है। हम दोनो देवता तुम्हारी परीक्षा के लिए ही बाज और कबूतर बनकर आये थे। तुम जिसे सयानी, 'दुनिया कहते हो, निश्चय समझो कि सयानो की वह दुनिया भी तुम्हारे समान दीवानो और मूर्खों के प्रभाव से ही जीती है। मनुष्य तो आखिर

मनुष्य ही है, पर हम देवता भी ऐसी मूर्खता का पाठ सीखने के लिए तुम्हारे समान मनुष्यों की खोज मे रहते हैं। राजन्! अब हमें विदा होने दो।"

शिबि तराजू के पलड़े से नीचे उतरा, खड़ा हुआ और दोनो देवताओं को प्रणाम करके बोला: "प्रभो! मुझपर आपकी बड़ी कृपा हुई। कहिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?"

दोनो देवता चलने को हुए और जाते-जाते बोले: "राजन्! तुम्हारे समान साधु पुरुषो का अस्तित्व ही मानव-समाज की बड़ी से बड़ी सेवा है। इससे बढ़कर दूसरी सेवा क्या होसकती है कि तुम्हारे जीवन की सुगन्ध आस-पास सर्वत्र फैलती रहे?" इतना कहकर दोनो देवता चले गये - अन्तर्ध्यान हो गये।

८

व्यास और जैमिनी

जैमिनि व्यास भगवान के शिष्य थे। वे अपने आश्रम से पैदल चल कर प्रतिदिन व्यास जी के पास जाते और भारत की कथाएं सुनते।

एक बार किसी कथा के प्रसंग मे भगवान् व्यास ने कहा : "पुरुष को अपनी सगी बहन के साथ भी एकान्त मे नही बैठना चाहिए।"

जैमिनि से न रहा गया। वे तुरन्त ही प्रतिवाद कर उठे : "गुरो! आपका यह कथन यथार्थ नही है।"

व्यासजी ने कहा : "तुम्हारे-जैसो के लिए कदाचित् यथार्थ न हो, पर मानव-समाज के एक बहुत बड़े भाग के लिए यथार्थ है। मनुष्य स्वयं परमात्मा की संतान ही क्यो न हो, आखिर वह है तो मोम का ही पुतला न?"

बात जैमिनि के गले न उतरी : "महाराज! यदि ऐसा ही है, तो फिर धर्म, संयम, नाते-रिश्ते सब निरा पाखण्ड नहीं क्या? यह सोचकर कि ससार में कोई अपने मन पर अंकुश रख ही नही सकता, सबको एकान्त से सदा भयभीत रहना चाहिए क्या? आखिर स्त्री-पुरुष में ऐसी कौनसी अपवित्रता भरी है, कि जिससे एक-दूसरे को देखते ही उस अपवित्रता का विस्फोट होजाता है? यदि अन्त तक मनुष्य को ऐसा ही रहना है, तो फिर मानव कल्याण के सारे सपने व्यर्थ नही है क्या?"

व्यास भगवान् शान्ति-पूर्वक कहने लगे : " बेटा जैमिनी! तुम अभी जवान हो। ऊपर से बृहस्पति के समान प्रतीत होनेवाले

मनुष्य के हृदय मे किस-किस प्रकार की आग कब-कब रहती है, कौन जानता है ? कामदेव के बाणो की एक अद्भुत विशेषता यह है कि मनुष्य जिस समय उन बाणों का शिकार होने लगता है, वह खुद तो अपने लिए यही सोचता है कि उसे न तो इन बाणों ने कभी छुआ है, न कभी छू सकेंगे। ब्रह्मा ने अपनी सृष्टि के आदिकाल से मनुष्य को ऐसा ही रचा है, और प्रलयकाल तक मानव ऐसा ही रहने वाला है।"

जैमिनि असंम्मति दर्शक सिर हिलाते हुए बोले : "गुरो ! आपका कथन कुछ अंशो मे सत्य होसकता है। किन्तु यह कहना कि 'पुरुष को अपनी सगी बहन के साथ भी एकान्त मे नही बैठना चाहिए' मनुष्य जाति पर अविश्वास ही नही, भीषण अविश्वास करना है। इस तरीके से तो हम मानव-जाति मे कोई श्रद्धा ही न रख सकेंगे, और अपने रहे सहे आत्मविश्वास को भी छिन्न भिन्न कर डालेंगे।"

व्यास ने चर्चा का उपसंहार करते हुए कहा : "जैमिनि ! मैंने तुम्हारी अपेक्षा दो चौमासे ज्यादा बिताये हैं। मैंने मानव-जाति के सूक्ष्म भावो को निकट से समझने प्रयत्न भी किया है, इसलिए मैं तुमसे कहता हूॅ कि 'पुरुष को अपनी सगी बहन के साथ भी एकान्त मे नही बैठना चाहिए।' तिस पर भी अगर कोई बैठना ही चाहता है, तो क्या व्यास उसे वहा हाथ पकड़ कर उठाने जायगा ? इस एकान्त सेवन मे फिसलन है, और यह फिसलन इतनी मीठी होती है कि इसकी मिठास का मारा आदमी कब मुॅह की खा बैठेगा और हड्डी-पसली तुड़ावेगा सो वह खुद देख नही सकता। जो इस पछाड़ से बचना चाहता है उसे तो इस फिसलन की मिठास का मोह छोड़ना ही पड़ता है। यह मेरा अकेले का अनुभव नही है, बल्कि उन अनेक साधु-संतो और ऋषि-मुनियो का भी

यही अनुभव है जिन्होने अपना समूचा जीवन लोककल्याण करने में ही बिताया है।"

इस प्रकार कहते-कहते भगवान् व्यास ने कथा समाप्त की। जैमिनि अपने आश्रम की ओर जाते हुए मन ही मन कहने लगे : "मालूम होता है, बुढापे के कारण आचार्य को अश्रद्धा ने घेर लिया है। क्या मनुष्य सचमुच इतना पतित है ? नही, नही।"

× × × ×

नर्मदा के तट पर जैमिनि मुनि का आश्रम था। नर्मदा का उन्मत्त प्रवाह मुनि की पर्णकुटी के चरणों को धोता हुआ निरन्तर बहा करता था। चारो ओर बरगद की सुहावनी जटाएं थीं, बीच-बीच मे आम और बकुल के उपवन थे और उनके बीच मे इधर-उधर झाकती हुई छोटी-छोटी झोपड़िया सुहाती थी। सुनहले कमलो से सुशोभित छोटे-छोटे ताल आश्रम की रमणीयता में वृद्धि करते थे। और इन सबको व्याप्त करके समूचे आश्रम की शान्ति और पवित्रता विराजती थी।

एक बार रात का समय था। कोई बारह का अंदाज होगा, आश्रम-वासियो ने सुना, कोई आर्त्तस्वर से पुकार रहा है : "अरे मुझ निराश्रिता को कोई बचाओ!" पुकार की आर्त्तता में भी एक प्रकार की कोमलता थी। जैमिनि ने ज्यो ही इन शब्दो को सुना, तुरन्त अपने शिष्यो से कहा : "कोई है क्या ? बेटा, जाओ! देखो दरवाजे पर कौन है।"

एक बटुक आखे मलता हुआ उठा, आश्रम के दरवाजे तक गया और थोड़ी देर मे लौटकर बोला : "महाराज! कोई स्त्री है, और शेष रात के लिए आश्रम मे रहना चाहती है।"

जैमिनि कुछ देर तक सोचते रहे। फिर बोले : "आश्रम का नियम तो नही है, पर खैर उसे आने दो। एक ही रात का न प्रश्न है ? यदि

हम दीन-दुखियो को आश्रय भी न दे सकें, तो फिर यह आश्रम कैसा ? जाओ, उस स्त्री को बुला लाओ और गोशाला वाले कमरे में उसे रात-भर के लिए टिका दो। यहाँ आश्रम मे तो तुम सब ब्रह्मचारी सोये हुए हो, इसलिए उसे इस तरफ सुलाना उचित न होगा। कमरे को तुम जरा साफ-सूफ कर देना।"

इतना कहकर जैमिनि अपने बिस्तर पर उठकर बैठ गये। कुछ देर बाद बटुक उस स्त्री को लेकर उधर से निकला और गोशाला की तरफ चला गया। स्त्री को जाते देखकर जैमिनि ने फिर कहा : "बटुक, सुनो ! प्रबन्ध में कोई त्रुटि न रहे भला ! बहिन ! यहाँ सब ब्रह्मचारी सोये हैं, इसलिए आपको गोशाला मे टिकाना पड़ा है, बुरा न मानियेगा।"

बटुक ने स्त्री के ठहरने का प्रबन्ध कर दिया और अपनी जगह पर आकर सो गया। दूसरे सब ब्रह्मचारी गहरी नीद में सोये पड़े थे। सारा आश्रम सो रहा था। केवल एक-दो व्यक्ति जग रहे थे : एक चन्द्रमा और दूसरे जैमिनि।

जैमिनि फिर उठ बैठे और सोचने लगे : "नीद एक बार उचटी की फिर उचटी ही उचटी। मगर इस ब्रह्मचारी को देखो, अभी सोया है, पर ऐसा मालूम होता है मानो जागा ही न हो ! व्यास भगवान् प्राय: कहा करते हैं कि बिछौने मे पडे-पड़े करवटे बदलते रहना अच्छा नही। लेकिन अगर पड़े-पड़े परमात्मा का स्मरण किया जाय तो? लेटे-लेटे शास्त्रों का मनन किया जाय तो ? व्यास भगवान् की यही बात समझ मे नही आती। 'आखिर वे ऐसे जड़ता बढानेवाले नियम बनाते क्यो हैं ? वे यह क्यों नही कहते कि बिस्तर में लेटे-लेटे भी सत्कार्य किये जा सकते हैं और सत्कार्य न सूझें तो सोचकर निकाले जा सकते हैं ? लेकिन वे तो सौ बात की एक बात यही कहते हैं : "नही, किसी भी दशा मे बिस्तर में

पड़े न रहो !' खैर, यह भी अच्छा ही है। जब मुझे नींद नही आरही है, तो चलूँ एक चक्कर आश्रम का ही लगाऊँ। उस आगन्तुक स्त्री को गोशाला मे सुलाया है, उसकी सुख-सुविधा की पूछ-ताछ भी कर आऊँ। बटुक तो आखिर बटुक ही ठहरा। भले आदमी ने लौटकर कहा भी नही कि अतिथि के लिए क्या प्रबन्ध किया है !"

यों सोचते-विचारते जैमिनि बिस्तर छोड़कर खड़े होगये और हाथ मे दण्ड लेकर गश्त पर निकल पड़े। उन्होंने गहरी नीद मे सोये हुए सभी ब्रह्मचारियों को एक निगाह देखा, कुछ के वस्त्र अस्तव्यस्त हो गये थे, उन्हें ठीक करके अच्छी तरह ओढा दिया, एक ब्रह्मचारी अपने बिछौने से दूर हटकर सो रहा था, उसे फिर बिछौने पर सुलाया, और फिर चलते चलते गोशाला के पास पहुँचे। गोशाला मे जाकर कामधेनु को देखा और उसे खोलकर चरने के लिए छोड़ दिया। वहाँसे कुछ दूर गये, फिर लौटे, और गोशाला के कमरे से काफी दूरी पर खडे होकर बोले : "बहिन, बहिन ! आपके सोने-बैठने का सब प्रबन्ध तो हो गया है न ?"

स्त्री ने जवाब दिया : "जी, महाराज !"

जैमिनि सारे आश्रम का चक्कर लगाने के बदले वहींसे लौट आये और बिछौने मे आकर पड़ रहे। लेकिन नीद न आई। इतने मे आश्रम के भण्डार मे बिल्ली ने दूध का बरतन गिरा दिया, जिसकी बड़ी झन-झनाहटभरी आवाज हुई। जैमिनि तो अभी जागते ही थे। सोचने लगे : "मालूम होता है, बिल्ली गोशाला के छप्पर पर चढ़कर चूहे पकड़ने चली है। बेचारी उस स्त्री को वैसे ही गोशाला के जीव-जतु सता रहे होंगे, तिसपर यह खड़खड़ाहट ! इन बिल्लियो के मारे तो आश्रम में रहना मुश्किल होगया है।"

यह सोचकर हाथ मे डण्डा लिये जैमिनि फिर गाशाला के पास पहुँचे, और डण्डे की आवाज करते हुए बोले : " बहन ! नीद मे हो क्या ? लेकिन बिल्ली की यह खड़खड़ाहट तुम्हे क्यो सोने देती होगी ? अब कुछ ही घण्टो का सवाल है, किसी तरह काटलो। पिछली रात का समय है—सवेरा होने मे ज्यादा देर नही।"

अन्दर से जवाब मिला : "महाराज ! यहाँ बिल्ली नही है। हाँ, जब मैं आई, एक बिलाव यहाँ था। लेकिन उसे तो बाहर निकालकर ही मैंने दरवाजा बन्द किया है। आप क्यो इतनी चिन्ता करते हैं ?"

जैमिनि फिर अपनी पर्णकुटी मे लौट आये और लेट गये। पहले वे दायी करवट लेटे, फिर कुछ देर चित पडे रहे, और फिर बॉयी करवट से सोये। किन्तु योगनिद्रा का यह प्रयोग सफल न हो सका। वे सहसा उठकर बैठ गये। सामने पानी से भरा हुआ कमण्डल पड़ा हुआ था। उसपर निगाह ठहर गई। सोचा : "थोड़ा पानी ही पी लूँ, किसी तरह नीद त आये ! मालूम होता है, स्त्री को भी नीद नही आ रही। मैं दो बार गया, दोनो बार जागती मिली। जब तुम्हे अपनी पर्णकुटी मे नोद नही आती, तो उसे गोशाला मे कैसे आ सकती है ? वहा गायों के बदन पर रहने वाली जूँ होगी, गोचड़ होगी, दूसरे अनेक जीव-जन्तु होगे, चीटियाँ होगी, चीटे होगे। बिना जूँओं और चीटियोवाली अपनी शय्या जब मुझे काट-सी रही है, तो उसकी क्या दशा होती होगी ? जब जाग ही रहा हूँ, तो उधर का एक चक्कर और क्यो न लगा आऊँ ?"

जैमिनि फिर उठे। और गोशाला के दरवाजे की सॉकल खटखटाते हुए बोले : "बहन ! बहन ! आप सुख से तो हैं न ? कोई तकलीफ तो नही ?"

अंदर से जवाब मिला : "महाराज आप अभी तक सोये नही ? मैं

कैसी अभागिनी हूँ, जो मेरे कारण आपकी सारी रात खराब हुई। मुझे यहाँ कोई दुःख नहीं। आप क्यों बार-बार कष्ट उठाते हैं?"

जैमिनि ने कहा : "इसमें कष्ट क्या है? अतिथि का स्वागत करना तो हम ऋषि-मुनियों का धर्म ही है। आपको कोई कष्ट हो, तो कहियेगा—शरमाइयेगा नहीं। इसे अपना ही घर समझिए।"

स्त्री ने कहा : "बहुत अच्छा।"

जैमिनि बड़े यत्न के साथ गोशाला से वापस आये, किन्तु पर्णकुटी वाली अपनी शय्या पर न पौढ़े। वे पर्णकुटी के पासवाले दालान में इधर से उधर चक्कर काटने लगे। इतने में फिर खयाल आया : "पता नहीं, बटुक ने इस स्त्री को बिछौना दिया है या नहीं? कैसा बेवकूफ है, मुझसे पूछा तक नहीं कि कौनसा बिछौना दूँ। गँवार ही जो ठहरा! क्यों न मैं खुद ही जाकर पूछ लूँ? लेकिन पूछने की जरूरत ही क्या है? निश्चय ही कोई बिछौना नहीं दिया गया है। अतएव चलूँ, अपना बिछौना उठाकर दे आऊँ।"

यह सोचकर जैमिनि ने अपनी योगशय्या को समेटकर कन्धे पर डाला और कमरे की ओर चले।

"बहन! बहन! दरवाजा खोलो। मुझसे बड़ी भूल होगई है। तनिक दरवाजा खोलो।"

"मुनि महाराज! आपकी भूल? कैसी भूल? आपसे कोई भूल नहीं हुई। आप निश्चिन्त होकर सोजाइए।" स्त्री ने कहा।

जैमिनी बोले : "सो नहीं चलेगा। आप दरवाजा खोलिए। मालूम होता है, उस पगले बटुक ने आपको जमीन पर सुलाया है। मैं बिछौना लाया हूँ। इसे ले लीजिए और किवाड़ भेड़ लीजिए।"

"महाराज !" स्त्री ने कहा. "आपके बटुक ने मुझे जो बिछौना दिया है, वह बहुत अच्छा है। मुझे दूसरे बिछौने की जरूरत नही।"

जैमिनि ने कहा : "जरूरत न हो, न सही, आप एक बार दरवाजा तो खोलिए। क्या आप हमें अतिथिधर्म से गिराना चाहती है? कृपाकर किवाड़ खोलिए।"

स्त्री ने साफ इन्कार करते हुए कहा : "महाराज ! रात का वक्त है, मैं अभी किवाड़ नहीं खोलूँगी। मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

जैमिनि सतप्त हो उठे। अतिथि का यह हठ उन्हे अधर्म प्रतीत हुआ। वे अपना बिछौना दरवाजे के पास रखकर चल दिये। मन उनका अशान्त था। वे खुद भी नहीं जानते थे कि वह क्यो अशान्त था। अब तो जैमिनि स्वयं कमरे के पास वाले एक पेड़ पर चढे, पेड़ की कुछ डालियाँ तोड़ डाली, फिर पेड़ पर से कमरे के छप्पर पर जा चढे और किसीको कानोकान खबर न हो, इस तरह गुपचुप छप्पर के खपरे हटाने लगे और खपरो के नीचे की खपच्चियो की डोरियाँ खोलने लगे। उनके सिर पर चन्द्रमा चमक रहा था नीचे कमरे मे स्त्री सोई हुई थी। ज्योही खपच्चियाँ छूटी, जैमिनि बिल्ली की तरह दबे पैरों नीचे कमरे मे उतरे। उतरकर चाँद की चादनी मे उन्होने वहाँ जो देखा, उसे देखकर वे अपनी सिट्टी भूल गये। एक पुरुष उनके सामने खड़ा था। पहाडी शरीर, स्नायुओ से पुष्ट हाथ-पैर, विशाल छाती, सफेद व लम्बी दाढ़ी और सिर पर जटा।

जैमिनि अचानक अकचकाकर बोल पड़े : "महाराज व्यासजी ! आप यहाँ कैसे ?'

व्यास ने पूछा : "बेटा ! तुम यहाँ कैसे ?"

जैमिनि नीची आँखे किये वहाँ मारे शर्म के गड़े-से रह गये। व्यासजी तुरन्त अन्तर्धान होगये।

इसी समय मुर्गे ने बांग दी और सभी ब्रह्मचारी जाग उठे। नित्य कर्म से निवृत्त होकर वेदपाठ करने लगे। जैमिनि धीमी चाल से कमरा छोड़ बाहर आये। कामधेनु खूँटे के पास खड़ी थी, उसे फिर खूँटे से बांध दिया।

६

जीवन-विद्या

प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जड़ और बुडिल, ये पाचों पडित सहस्र-सहस्र शिष्यों की शालाए चलाते थे और अपनी संस्कारिता एव ज्ञान के प्रभाव से बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे। एक बार ये सब एकत्र होकर अपने-अपने गुरुकुलो का और अपने निजी जीवन का विचार करने बैठे।

विचार-विमर्श का आरभ करते हुए प्राचीनशाल ने कहा : "हमने इन शिष्यों को एकत्र तो किया है, किन्तु जिस उच्च जीवन की बड़ी-बड़ी बातें हम इनके सामने करते हैं उस उच्च जीवन को हमने स्वय किस हद तक अनुभव किया है?"

बुडिल बोला : "भाई, मैं तो समझता ही नही कि उच्च जीवन किस चिड़िया का नाम है! जब-जब हम अपने आश्रमो मे आत्मा, आत्म-बल, उच्च जीवन आदि शब्दो का प्रयोग करते हैं, तभी तब मै तो यही सोचा करता हूँ कि यह हमारा निरा ढोंग नही तो और क्या है?"

जड़ ने कहा : "इसे ढोग कहना हो, ढोंग कह लो दुहेरा जीवन कहना हो, दुहेरा जीवन कह लो और आत्मवचना कहना हो, तो आत्म-वचना कह लो। मैं स्वय वर्षों से उच्च जीवन और जीवन की आध्यात्मिकता की बातें करता आया हूँ। लेकिन वह आत्मा क्या चीज है, और अध्यात्मवाद कौन बला है, मैं बिलकुल नहीं जानता।"

सत्ययज्ञ ने समर्थन करते हुए कहा : "बस, मेरी भी यही दशा है। अपने जीवन-ध्येय को हम स्वय नहीं जानते। इसमे सदेह नही कि हमारी

हालत ठीक उस अन्धे सी है जो दूसरे अन्धे के पीछे चल रहा था ! फिर भी मैं तो उस अन्धे की-सी धृष्टता के साथ ही सबको राह दिखाता हूँ और दिखाता रहूँगा।"

इन्द्रद्युम्न ने सबकी बातें शान्ति से सुनी और अन्त मे कहा : "लेकिन इसमे निराश होने की क्या बात है ? आइए, हम सब ऐसे किसी महाशय के पास चलें जिन्हे जीवन का और आत्मा का यथार्थ ज्ञान हो चुका है। हम उनसे प्रार्थना करेंगे कि वे हमे अपनी विद्या भलीभाति सिखा दें। बस, हमारे जीवन की यह त्रुटि भी पूरी होजायगी।"

बुडिल ने कहा ' बिल्कुल ठीक है। जबतक हम इस विषय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त नही कर लेते और अपने दैनिक जीवन मे उसे ओत-प्रोत नही बना लेते, तबतक और सब व्यर्थ है। हमे इसके लिए किसी ज्ञानी के पास अवश्य जाना चाहिए।"

जड़ बोला : "ज्ञानी के पास चलने से मैं इन्कार नही करता लेकिन ज्ञानी-ज्ञानी मे भी तो अन्तर होता है। कुछ ज्ञानी ऐसे पुराण-प्रिय और वृद्ध होते हैं कि वस्तु को जानते हुए भी उसे अपने युग की भाषा मे व्यक्त नही कर पाते। चूंकि ये ज्ञानी युगधर्म को नही पहचान पाते, अतः ये हमारे लिए निकम्मे हैं। दूसरे कुछ ऐसे ज्ञानी होते हैं, जो अपने युग को पहचानने का दावा तो करते हैं पर उनके ज्ञान की जड़ें गहरी नही होती। हमे तो किसी एसे समर्थ पुरुष के पास जाना चाहिए, जिसने इस विषय का सूक्ष्म बुद्धि से विचार किया हो और इस चीज को अपने जीवन मे ताने-बाने की तरह बुन लिया हो।"

यह सुनकर प्राचीनशाल बोल उठा : "तब तो हमे उद्दालक ऋषि के पास ही जाना चाहिए। उन्हे छोड़ दूसरा कोई ऐसा नजर नही आता। वैसे तो कई वृद्ध ज्ञानी भी हैं, पर उद्दालक ऋषि युवको से भी काम लेना

जानते हैं, इसलिए वही हमारे ज्यादा काम के होंगे। इन वयोवृद्ध ज्ञानियो का एक ही दु:ख है। इनका सबसे बड़ा दोष यह है कि इनके पास नये जमाने की सी तड़क-भड़क नहीं।"

बुड़िल ने कहा : "सच है। उद्दालक इस युग के आदमी हैं। अपने काम मे निपुण हैं। उनके पास इस युग की भाषा भी है। चलो, हम सब उन्हींके पास चले।"

फिर पॉचों पडित उद्दालक ऋषि के पास पहुचे। इन समर्थ ब्राह्मणों को अपने पास आते देखकर उद्दालक सोच मे पड़ गये। ये समर्थ कुलगुरु मुझसे जीवन के और गुरुकुलवास के अनेक अटपटे प्रश्न पूछेंगे, इनके प्रश्नो का सतोषजनक उत्तर देने की शक्ति मुझमे कहाँ ? यदि कहता हूँ : "मुझे पता है. मैं जानता हूँ, किन्तु आप लोगो से क्या कहूँ ?" तो वह भी ठीक न होगा। अतएव क्यों न चर्चा शुरू होने से पहले ही मैं इनको कोई दूसरा मार्ग सुझा दूँ ?"

यह सोचकर उद्दालक उठे और पॉचो पंडितो की अगवानी के लिए बढे। स्वागत-सत्कार के बाद बातों ही बातो मे ऋषि ने पडितो से कह दिया : "महाशयो ! केकय राजा के पुत्र अश्वपति इस जीवन-विद्या को भलीभाति जानते हैं, अतएव आइए हम सब उन्हींके पास चले। अच्छा हुआ जो आज आप इस प्रश्न को लेकर चले आये। मेरे मन मे भी कई दिनों से आश्रम की सस्कारिता और ज्ञान के बारे मे अनेक प्रश्न उठते रहे हैं।" यह कहकर उद्दालक ऋषि उन सबको अश्वपति के पास लेगये।

अश्वपति गादीपति भी थे। उन्होंने ज्ञान और विद्या मे प्रख्यात अपने इन अतिथियो की पूजा की। फिर दूसरे दिन सवेरे नित्य कर्म से निपटकर धन की एक बड़ी राशि के साथ राजा इनके डेरे पर गये और

बोले : "महाशयो ! यह निधि मैं आप ही के लिए लाया हूँ। इसे आप स्वीकारिए और मुझे उपकृत कीजिए।"

किन्तु पंडितो ने उस धनराशि की ओर आँख उठाकर भी न देखा। उन्हे तो जीवन-विद्या की जरूरत थी। घर आये हुए अतिथि धन का स्पर्श भी नहीं करते, यह देखकर अश्वपति सोच मे पड़ गये और कहने लगे : "महाशयो ! आप सब बड़े-बड़े कुलपति हैं। मैंने आपके चरणो मे यह धन चढाया है। किन्तु आप तो इसका स्पर्श भी नही कर रहे ! क्या आप मानते हैं कि मेरा धन भी दूसरे राजाओ की भाति अत्याचार और पाप द्वारा कमाया हुआ है ? महाशयो ! मैं आपकी सेवा मे यह निवेदन किया चाहता हूँ कि मेरे राज्य मे न कोई चोर है, न कोई कंजूस है, न शराबी, न नास्तिक, न निरक्षर और न कोई व्यभिचारी ही है। अतएव मेरा यह धन शुद्ध है। आप कृपापूर्वक इसका प्रतिग्रह कीजिए।"

राजा के ऐसे वचन सुनकर ये विद्वान बोले : "राजन् ! आज हम आपके पास धन की इच्छा से नहीं आये। आजतक हम सब कई बार आपके पास आये हैं और आपसे अपनी आवश्यकतानुसार धन लेगये हैं। लेकिन आज हमारे आने का हेतु कुछ और ही है।"

अश्वपति ने पूछा · "आपका वह हेतु क्या है ?"

उद्दालक ऋषि बोले : "राजन ! आज हम आपसे जीवन-विद्या सीखने आये हैं। आप इतने बड़े राज्य के स्वामी होते हुए भी इस जीवन-विद्या के सच्चे ज्ञाता हैं।"

अश्वपति ने कहा : 'महाराज ! जीवन-विद्या आपके आश्रमों और गुरुकुलों मे होगी या मेरे जैसे राजा के महल मे ?"

उत्तर मे जड़ ने कहा : "महाराज ! जीवन-विद्या तो हमारे आश्रमो मे ही होनी चाहिए। लेकिन आज हमारे आश्रम आश्रम नहीं रहे।

हमारे समान क्षुद्र लोगो ने आश्रम-जीवन के बाहरी रूप को तो बनाये रखा है, पर उसकी आन्तरिक सामग्री को हम आज खो बैठे हैं। हम जीवन-विद्या की भाषा मे बोलते अवश्य है पर उसका प्रभाव हमारी जीभ तक ही रहा है, उसके आगे नही। महाराज अश्वपति ! हम सब अनेक शास्त्रो के ज्ञाता हैं, कई कलाए जानते हैं बहुतेरी युक्ति-प्रयुक्तियो के प्रयोगकर्त्ता हैं, किन्तु जो सबसे बड़ा जीवनशास्त्र है, जो सबसे महान् जीवन कला है, और जो सबसे श्रेष्ठ जीवन-युक्ति है, वह हमारे पास नही। अतएव विशालदेह होते हुए भी हमारे आश्रम हीनप्राण हे हमारे गुरुकुल चेतना-हीन हैं, हमारी विद्या निस्तेज है, और हमारा जीवन शुष्क है। महाराज! हम इसी हेतु से आपकी सेवा मे आये है।"

महाराज अश्वपति ने इन विद्वान् ब्राह्मणो की बात शान्तिपूर्वक सुनी। फिर बोले : "महाशयो ! इस प्रश्न का उत्तर मैं कल दूँगा।" इतना कह-कर अश्वपति अपने स्थान को गये। इधर ये छहो विद्वान् जब अकेले रह गये तो इस प्रकार चर्चा करने लगे—

एक ने पूछा : "अश्वपति ने हमे जीवन-विद्या सिखाना स्वीकार क्यो न किया ?"

दूसरे ने कहा : "हमने उनका धन नही लिया, कदाचित् यह उन्हे बुरा लगा होगा।"

तीसरा बोला : "नही जी, बुरा उन्हे नही लग सकता। अगर अश्वपति इस तरह बुरा मानने बैठेंगे, तो हमे जीवन-विद्या क्या खाक सिखायेंगे ?"

अन्त मे उद्दालक बोले : "मेरे मन मे एक शंका उठी है। आप लोग बुरा न माने तो कहूँ ?'

सत्ययज्ञ ने कहा : "बुरा क्यों मानेगे ?"

बुड़िल बोले : "इसमे बुरे का कोई प्रश्न ही नही।"

जड़ ने कहा : "जो है सो साफ-साफ कह डालिए।"

उद्दालक ने सहज भाव से कहा : "मैं सोचता हूँ कि अश्वपति से जीवन विद्या सीखने का हमारा यह तरीका ही ठीक नही ! हम सब एक-एक गुरुकुल के अधिपति हैं अपने आश्रमो मे जब हम शिष्यो को विद्या-दान देते हैं तो उनसे एक निश्चित प्रकार की नम्रता और विवेक की अपेक्षा रखते हैं। मेरे विचार मे जब लौकिक विद्या के आचार्य के नाते हम इतनी आशा रखते हैं, तो महाराज अश्वपति हमसे कितने विनय की आशा रखते होंगे ? हम तो एक साहूकार की भाति यहाँ चले आये हैं, और राजा से जीवन-विद्या की वसूली करना चाहते है। इस अलौकिक विद्या के इच्छुक मे जैसी व्यग्रता और विनय होना चाहिए उसका शताश भी हममे नही। इसलिए मैं सोचता हूँ कि शायद अश्वपति हमे जीवन-विद्या सिखायेंगे ही नही। यदि सचमुच हमे यह विद्या सीखनी ही हो, तो हमको विशेष नम्रता धारण करनी चाहिए।"

जड़ ने कहा : "मुझे भी आपकी बात जॅचती है। मानव जीवन की बहुमूल्य वस्तु प्राप्त करने के लिए हमे वैसी योग्यता भी दिखानी ही चाहिए। हमको महाराज अश्वपति के पास हाथ मे समिध लेकर जाना चाहिए, और उन्हे इस बात का विश्वास करा देना चाहिए कि हम जीवन विद्या प्राप्त करने के वास्तविक अधिकारी हैं।"

बुड़िल ने कहा : "तब तो आज महाराज हमे ढूँढते हुए इधर आवे उससे पहले ही हमे उनकी शोध मे निकल पड़ना चाहिए।"

सत्ययज्ञ बोला : "बस, चलो यह रही समिध।"

इस तरह की बाते हो रही थी कि इतने मे राजा अश्वपति स्वय वहाँ आ पहुँचे और बोले : "महाशयो ! आप कहाँ जाने को तैयार हुए हैं ?"

ब्राह्मण बोले : "आप ही की सेवा में।"

अश्वपति ने कहा : "मैं तो स्वयं आपके पास आया हूँ।"

सबने निवेदन किया : "महाराज ! आप उच्चासन पर विराजिए और हमें कृपापूर्वक जीवन-विद्या का दान कीजिए, आप ही हमारे गुरु हैं।

अश्वपति बोले : "महाशयो ! अब आप जीवन-विद्या के अधिकारी हुए हैं। जो बात मेरे मन में थी, वही आपके मन में उठी, यह हमारा सौभाग्य है। अब मैं आपको जीवन-विद्या सिखाता हूँ।" यह कहकर अश्वपति ने छहों विद्वानों को जीवन-विद्या सिखाई और फिर सब अपने-अपने स्थान को चले गये।

१०

धनपति बनाम जीवनपति

प्राचीन भारत मे जनश्रुति नामक एक राजा था। जनश्रुति का सदाव्रत का काम इतना विस्तृत माना जाता था कि उसकी ड्योढ़ी से कोई भिक्षुक भूखा लौटता नही था। नगर-नगर और गॉव-गॉव मे भी लोग उसीकी रोटी खायें, इस विचार से उसने जगह-जगह आग्रहपूर्वक अन्नछत्र खोल दिये थे। ऋषि, मुनि, साधु, सन्यासी, बाबा, बैरागी, भिक्षुक, अतिथि, अभ्यागत, सभी कोई जनश्रुति का आतिथ्य पाकर सुखी होते थे और उसे अन्त:करणपूर्वक आशीर्वाद देते थे।

एक बार राजा अपनी अट्टालिका पर बैठा था कि इतने में उसने कुछ हसो को अपने सिर पर उड़ता हुआ देखा। हसो मे से एक हंस ने कहा : "अरे भल्लाक्ष! इस जनश्रुति राजा का तेज सूर्य भगवान् के तेज की भॉति सर्वव्यापी होरहा है। तू इस तेज से ठीक ठीक दूर रहकर उड़। यदि इसके तेज ने तुझे छू लिया तो तू जल मरेगा।"

भल्लाक्ष ने कहा : "भाई! मैं जानता हूँ कि जनश्रुति महान् दानवीर है। उसके अन्न का विस्तार सचमुच बहुत व्यापक है। लेकिन जहॉतक तेज का सबध है, तुम्हारी बात जनश्रुति के लिए नहीं, गाड़ीवाले संत रैकव के लिए अधिक उपयुक्त है। राजा जनश्रुति के तेज का यह वर्णन तो मुझे अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम होता है।"

भल्लाक्ष की बात सुनकर उसके साथी हंस ने पूछा : "यह गाड़ीवाले रैकव कौन हैं?"

भल्लाक्ष ने कहा : "रैकव एक महापुरुष हैं। वह ऐसे महान् ज्ञानी हैं कि समूचे मानव-समाज के सत्कार्यों का सारा पुण्य उन्हे अकेले को मिल सकता है।"

राजा जनश्रुति ने जबसे हंसो की बातचीत सुनी, उसके मन में एक प्रकार की तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न होगई। सुबह उठते ही उसने अपने सारथी को बुलाया और कहा : "सारथि ! क्या तुमने गाड़ीवाले रैकव का नाम सुना है ? मैंने उन्हे देखा तो नही, पर उनकी प्रशसा सुनी है। इसीलिए उनके दर्शनो की इच्छा प्रबल हो उठी है। तुम जल्दी जाकर उन्हे आदर सहित लिवा लाओ।"

सारथी ने कहा · "महाराज ! आपने प्रशसा चाहे सुनी हो, लेकिन मैं तो नही मानता कि दुनिया मे ऐसा भी कोई पुरुष हो सकता है जिसके दर्शनों के लिए आपको उत्सुक रहना पडे। जानते हैं, आपके दान का तेज कितना है ?"

राजा ने कहा : "सारथि, तुम नही जानते। मुझे विश्वस्त रूप से पता चला है कि इन रैकव के तेज के सम्मुख मेरा तेज तुच्छ है। जाओ, उनका पता लगाओ और उन्हे शीघ्र मेरे पास लिवा लाओ।"

सारथी ने चकित होकर पूछा : "महाराज ! क्या आपसे भी अधिक तेजस्वी कोई है ? बात गले नहीं उतरती। फिर भी आपकी आज्ञा है तो अवश्य उन्हे लाऊँगा।"

फिर तो सारथी राजा का रथ लेकर नगर-नगर घूमा राज-मार्गों पर घूमा, गली-कूचो मे घूमा महलो और मन्दिरो मे घूमा, घरो और झोपड़ो मे भी उसने रैकव का पता लगाया पर कही किसीने रैकव का पता न बताया। अतएव सारथी थका-मादा वापस आया और राजा से निवेदन किया : "महाराज ! मुझे तो रैकव कहीं दिखाई न पड़े। मैंने

सभी बड़े-बड़े नगरो को छान डाला, पर कहीं किसी जगह भी रैकव का पता न चला।"

जनश्रुति ने कहा : "सारथि ! तुम कैसे हो ? जरा अक्ल से काम लो। रैकव जैसे ब्रह्मवेत्ता शहरों की गन्दगी मे मिलते हैं क्या ? शहरो की इस दम घोटनेवाली हवा मे ऐसे लोग कभी जी नहीं सकते। वे तो एकान्त अरण्य मे ही मिल सकते हैं। तुम फिर जाओ और नागरिक जीवन की मानवी कृत्रिमता से दूर किसी एकान्त अरण्य मे उनका पता लगाओ।"

राजा की आज्ञा शिरोधार्य करके सारथी पुन: रैकव की तलाश में निकला। चलते-चलते शहरी भीड़-भाड़ से दूर एक निर्जन प्रदेश मे जो पहुँचा, तो वहा अचानक एक गाड़ी के नीचे एक पुरुष को बैठा पाया। वह पुरुष वहा बैठा अपनी खाज को खुजला रहा था। दूर से उसे देखकर सारथी उसके पास पहुँचा, पहुँचकर नम्रतापूर्वक प्रणाम किया, चरण छुए, और बोला : "महाराज ! क्या मैं मानू कि गाड़ीवाले रैकव आप स्वय ही हैं ?"

रैकव ने कहा : "हाँ !" और फिर तुरन्त ही मुँह फेरकर वह खाज खुजलाने लगा।

आखिर रैकव मिल गये, यह जानकर सारथी को बड़ी खुशी हुई। वह रथ दौड़ाता हुआ राजा के पास पहुँचा और यह शुभ सवाद उन्हें सुना दिया।

अब राजा रैकव के दर्शनों की तैयारी मे लगे। उन्होंने अपने साथ छः सौ गाये ली, कण्ठ मे पहनने का एक बहुमूल्य सोने का कण्ठा लिया, सुन्दर खच्चरों से युक्त एक रथ जुतवाया और रैकव के दर्शनो को चले।

रैकव मुनि तो उसी गाड़ी के नीचे बैठे खाज खुजला रहे थे। राजा

रैक्व के सम्मुख उपस्थित हुआ। हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोला "महाराज रैक्व! ये छः सौ गायें, यह सुवर्ण का हार और खच्चरो से जुता हुआ यह सुन्दर रथ, सब मैं आपके लिए लाया हूँ। आप इन समस्त वस्तुओ को स्वीकार कीजिए और जिस देव की उपासना आप करते हैं, उनकी उपासना का उपदेश मुझे भी दीजिए।"

रैक्व ने राजा की इन बातो को सुना। सुनकर बिना मुँह उठाये ही राजा से कहा "शूद्र! ये गायें, यह हार और यह रथ, सब तेरे हैं। तुझीको ये मुबारक रहे। मुझे इनकी कोई जरूरत नही। मेरे लिए मेरी यह टूटी-फूटी गाड़ी बहुत है।"

रैक्व के ये वचन सुनकर राजा ने सोचा : "कदाचित् मुनिवर की दृष्टि मे यह द्रव्य कम रहा होगा, इसीलिए उन्होने मेरी बात का ठीक उत्तर नही दिया।"

उस समय तो राजा वहाँसे लौट आया। किन्तु उसकी उत्कण्ठा तिल मात्र भी कम न हुई। दूसरे दिन राजा एक हजार गायें, सोने का एक हार, खच्चरो वाला एक रथ और अपनी इकलौती कन्या को लेकर रैक्व की सेवा मे उपस्थित हुआ और सब कुछ ऋषि के चरणो मे रखकर बोला : "भगवन्! यह सब मैं आपके लिए लाया हूँ। आप इसे स्वीकारिए। मेरी यह कन्या आपकी धर्मपत्नी बनकर रहेगी। जहाँ आप बैठे हैं, वह प्रदेश और उसके आस-पास के गाँव भी मैं आपही को अर्पण करता हूँ। आप इस सबको सप्रेम ग्रहण कीजिए और फिर मुझे अपना उपदेश दीजिए। मैं खाली हाथो उपदेश लेने नही आया हूँ।"

राजा की बातें सुनकर रैक्व ने सहज भाव से सामने देखा, फिर राजा की गायो, हार, रथ और कन्या की तरफ एक नजर डाली और बोले : "शूद्र! तू खाली हाथो नही, खाली हृदय से उपदेश ग्रहण करने

आया है। एक बार मैं तेरे इन उपहारो को अस्वीकार कर चुका हूँ, फिर भी तू इन्हींको लेकर आया है! जिस ईश्वरीय ज्ञान की इच्छा से तू मेरे पास आया है, क्या तू उसे खरीदना चाहता है? तेरी ये गायें, यह हार, ये खच्चर और रथ, और तेरा यह कन्या-रत्न तो क्या, सारे ससार का साम्राज्य भी तू मेरे चरणों मे लाकर छोड़ दे, तो भी इस ज्ञान के लिए उतना मूल्य पर्याप्त न होगा। यदि तेरी जगह कोई दूसरा राजा होता, तो मैं उसे शाप देकर भस्म ही कर डालता। लेकिन मैं जानता हूँ कि तू पापाशय नही है, इसलिए मैं तुझे शाप नहीं दे रहा। राजन्! जो कुछ मैं जानता हूँ वही सब तुझे भी जानना हो, तो वह इन गायों, घोड़ों और रथो के अर्पण से नही जाना जा सकेगा। उसके लिए तो मनुष्य को अपना सर्वस्व दे देना पड़ता है। अपनेआपको दाव पर लगा देना पड़ता है। जबतक तू अपनेआपको बचाकर अपनी इस मानी हुई सम्पत्ति का दान करता है, तबतक यह सम्पत्ति तेरे हृदय को रोके रहेगी। फिर जो ज्ञान चाहता है, वह उस हृदय मे उग नहीं सकेगा। जबतक मनुष्य के हृदय से अपने धन-वैभव का सूक्ष्म से सूक्ष्म अभिमान भी नष्ट नही हो जाता, तब तक वह हृदय परमात्मा के निवासयोग्य बन नही पाता। यदि तू सचमुच ज्ञान पाना चाहता है, तो पहले अपनी इन गायों को लौटा दे, इस हार, रथ और कन्या को भी वापस भेज दे और इनके स्थान पर तू स्वय अपनेआपको मेरे चरणों मे अर्पण कर। वह तेरा सच्चा समर्पण होगा। जो लोग अपनेआपको बचाकर इस ईश्वरीय ज्ञान को पाने की चेष्टा करते है, वे न अपनी जात को बचा सकते हैं और न यह ज्ञान ही प्राप्त कर पाते हैं।"

रैकव मुनि के इन वचनो को सुनकर राजा जनश्रुति उनके चरणों मे गिर पड़ा, उनका शिष्य बना और अन्त मे ज्ञान पाकर कृतार्थ हुआ।

११

मुनि महाराज

काशिराज ने कहा : "सेनापतिजी! आपका कथन यथार्थ है। लेकिन मैं तो अब इन मुनि का नाम सुनते-सुनते थक गया हूँ। जब-जब आप स्वय मुनि की और मुनि के आश्रम की बाते करते हैं, तब-तब उनमें धर्म और ब्रह्मचर्य की ऐसी ऊल-जलूल बाते होती हैं कि मुझे उनसे नफरत-सी होने लगी है। सेनापतिजो! आप नही जानते मगर मैं मानता हूँ कि ये सारे ब्रह्मचारो और धर्मात्मा ब्रह्मचर्य का अथवा धर्म का ककहरा तक नही जानते।"

सेनापति ने विनयपूर्वक कहा : "महाराज! हम ऐसा नही कह सकते। मुनि की और उनके आश्रम की कीर्त्ति देश के इस सिरे से उस सिरे तक पहुँची हुई है।"

काशिराज बोले : "मैं आपसे क्या कहूँ? मैं मानता हूँ कि उम्र में आपसे दो साल शायद छोटा होऊं लेकिन सेनापतिजी! मेरा अपना अनुभव तो यह है कि जो लोग रात-दिन धर्म-धर्म, ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य चिल्लाया करते हैं, वे ही सबसे बढकर अधर्मी और अनाचारी होते हैं। ससार मे हर आदमी की अपनी कोई कीमत होती है। जबतक आप उसे वह कीमत नहीं चुकाते तबतक वह त्यागी रहता है, ब्रह्मचारी रहता है, सत्यवादी ओर धर्मी भी बना रहता है। जब आप उसे उसकी कीमत चुका देते हैं, तो फिर आप उसको खरीद सकते हैं, उसके त्याग को खरीद सकते हैं, उसके ब्रह्मचर्य को खरीद सकते हैं, उसकी आत्मा को खरीद

सकते हैं, और उसके धर्म को भी खरीद सकते हैं। जबतक हमें पता नही चलता कि इन सब नामधारी ब्रह्मचारियो और धर्मात्माओं की कीमत क्या है, तभीतक इन लोगो का पाखण्ड हमारे लिए एक रहस्य बना रहता है।"

सेनापति ने कहा . "महाराज ! आप ऐसे अविश्वासी कैसे बन गये ? आप तो ऐसी बाते करते हैं, मानो दुनिया मे शैतान को छोड़ और कोई रहता ही नहीं।"

काशिराज बोले : "आप सच कहते हैं। शैतान ने सारी दुनिया को सर कर रक्खा है, और परमात्मा को अपने नीचे दबा रक्खा है। आप सच मानिए कि आश्रम के ये मुनिराज भी इसी शैतान के जेठे बेटे हैं। मैं मानता हूँ कि वे अविवाहित हैं। लेकिन मैं यह मानने को तैयार नही कि जो अविवाहित है वह ब्रह्मचारी भी है। अक्सर आदमी को विवाहित जीवन महँगा पड़ता है, और इसीलिए वह उससे बचना चाहता है।"

सेनापति ने हाथ जोड़कर कहा : "महाराज ! मुनिजी के संबध मे आपकी ये भ्रष्ट बाते मुझसे सही नहीं जाती। सुनी भी नहीं जाती। मुझे विश्वास है कि मुनिजी जन्म से लेकर आजतक ऊर्ध्वरेता रहे है। यदि आप निकट से उनके जीवन को देखेगे तो आप भी इसके कायल हो जायेंगे।"

राजा ने जवाब दिया : "सेनापति जी ! बुरा न मानिए, मैंने ऐसे कई मुनि देखे हैं। लेकिन उनकी दाढी और जटा की आड़ मे मैंने प्रायः पाखण्ड को ही छिपा पाया है। ऊर्ध्वरेता रहना आप जितना समझते है उतना आसान नहीं है। ऊर्ध्वरेता तो वही रह सकता है जिसने अपने जीवन मे अथ से इति तक घोर क्रान्ति कर डाली हो।"

सेनापति ने समझाते हुए कहा : "महाराज ! मालूम होता है, मुनि-

राज के बारे मे आपको भ्रम होगया है। मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप उनकी कड़ी से कड़ी कसौटी कीजिए, ताकि आपको उनके बारे मे विश्वास हो सके।"

काशिराज बोले : "सेनापतिजी ! यह करनेयोग्य काम नहीं। देह की वासनाओं को न जगाना ही अच्छा है।"

सेनापति ने कहा : "नहीं, नहीं ! आप एक बार परीक्षा करके देख ही लीजिए। अगर आपकी बात सच निकली तो मेरे जैसे बहुतो का भ्रम दूर हो जायगा, अन्यथा आपकी अश्रद्धा श्रद्धा मे बदल सकेगी। आप एक बार अवश्य ही मुनि महाराज की परीक्षा लीजिए।"

सुनते ही राजा उछल पड़ा और बोला : "परीक्षा तो आज ही होनी चाहिए। अपने नगर की उस सुन्दरी को हमने आश्रम मे भेजा नहीं कि परीक्षा हुई। आप उसे भेजवाने का प्रबन्ध कीजिए।"

"जैसी आज्ञा !" सेनापति ने कहा : "महाराज ! सुन्दरी को कुछ सूचनाएं देनी हैं क्या ?"

राजा बोले : "सुन्दरी को सूचनाएं क्या ? सूचनाओं का दूध पी-पीकर ही तो वह सुन्दरी बनी है। आप तो उससे सिर्फ यही कहिए कि "तुझे आज मुनि के आश्रम मे जाना है और मुनि को दुनियादार बनाना है।" बस, बाकी सब कुछ वह समझ जायगी और अपनेआप सम्हाल लेगी। पर सेनापतिजी ! अब भी वक्त है। मैं कहता हूँ, इस राह मे पग न बढाइए। बेचारे मुनियो को जानबूझकर प्रलोभन मे डालना और जब वे प्रलोभन मे फँस जायँ तब उन्हे बदनाम करना ठीक है क्या ? आप लोग सभी बारम्बार रट लगाये रहते हैं, इसलिए मुझे जो सूझा कह डाला है।"

सेनापति ने कहा : "महाराज ! आपकी बात साधारण मुनियो के लिए

सही हो सकती है। किन्तु मेरे विचार मे यह मुनि तो एक असाधारण पुरुष हैं। पुरुष ही क्यों, मेरे लिए तो यह साक्षात् परमेश्वर ही हैं। आज ब्रह्मचर्य के समान सद्वस्तु मे आपकी श्रद्धा नही रह गई है, इसलिए मैं आग्रहपूर्वक सुन्दरी को भेजवाना चाहता हूँ। मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि महाराज को अपने विचार बदलने होगे।"

राजा ने कहा : "तो मैं आपका बहुत आभार मानूँगा।"

× × ×

यमुना के किनारे मुनि का आश्रम था। आषाढ़ महीने की अमावस्या की घोर अँधेरी रात, आसमान मे घनघोर बादल उमडे हुए थे, और रिमझिम-रिमझिम मेह बरस रहा था। बीच-बीच मे बिजली चमक जाती और बादल गड़गड़ा उठते। मुनि महाराज पर्णकुटी के पत्थर पर बैठे थे। इतने मे उन्होने सुना : "मुनि महाराज! मुनि महाराज। फाटक खोलिए। जगल की इस घोर अँधेरी रात मे मैं रास्ता भूल गई हूँ। कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, कुछ समझ नही पड़ता। कृपा कर फाटक खोलिए।'

मुनि ने एक ब्रह्मचारी को जगाया और कहा : "बेटा! मालूम होता है, आफत की मारी कोई स्त्री पकार रही है। जाओ, फाटक खोलो और देखो कौन है।"

ब्रह्मचारी आँखे मलता हुआ उठा और फाटक पर जाकर गरजा : "आधी रात को यह कौन है? किसलिए आया है?"

सुन्दरी ने कहा : "भैया! यह तो मैं रास्ता भूल गई हूँ। अँधेरे मे कुछ सूझता नही, इसीलिए चिल्ला रही हूँ। जरा फाटक खोलो तो रात की रात मैं अन्दर रह लूँ और सुबह अपने रास्ते चल दूँ।"

ब्रह्मचारी बड़बड़ाया : "अभागिन कहीं की! ये कम्बख्त न जाने कहाँ से आ जाते हैं। हमे अपना अभ्यास भी नहा करने देते। तुम्हे कुछ

सूझता भी है या निरी अन्धी हो। यह आश्रम है। इसमें औरतों का आना मना है। जानती नहीं हो, हम यहाँ सब ब्रह्मचारी रहते हैं ?"

सुन्दरी ने कहा : "भैया, इसे आश्रम जानकर ही तो मैं यहाँ आई हूँ। यहाँ मैं अपनेको निरापद और निर्भय समझती हूँ। भाई, जरा फाटक तो खोलो !"

ब्रह्मचारी ने आँखे तरेरते हुए कहा . "फाटक इस तरह नहीं खुला करता। क्या तुम आश्रम की मर्यादा को नष्ट करना चाहती हो ?"

सुन्दरी बोली : "भाई ! मैं आश्रम की मर्यादा मिटाने नहीं बल्कि उस मर्यादा को स्वय समझने आई हूँ। भलेमानस, तुम फाटक तो खोलो ! आँखें क्या दिखाते हो ?"

ब्रह्मचारी बोला : "ठहरो, मैं गुरुजी से पूछकर आता हूँ।" और वह पूछने दौड़ गया।

मुनि ने पूछा : "क्यो बेटा ! कौन था ?"

ब्रह्मचारी बोला · "एक औरत है महाराज !"

गुरु ने पूछा : "वह क्या चाहती है ? उसे कोई कष्ट है क्या ?"

ब्रह्मचारी ने कहा : "जी नही, खासी मोटी-ताजी और बनी-ठनी है। उसे कष्ट क्या होगा !"

गुरु ने पूछा : "तो फिर चिल्लाती क्यो थी ?"

शिष्य बोला : "नदी बढी हुई है और रात मे रास्ता सूझता नही है, इसलिए वह रातभर यहाँ रहना चाहती है।"

मुनि ने कहा . "तो तुम उसके लिए फाटक खोल दो।"

ब्रह्मचारी बोला : "जी, मैंने तो उसे कह दिया है कि इस आश्रम मे औरतों का प्रवेश मना है।"

मुनि बोले : "हाँ, हमारा यह नियम है तो। लेकिन कभी कोई आफ़त

का मारा आ जाय, तो उसे आश्रय देने से क्या हम इन्कार कर सकते हैं ? जब आश्रम बनाकर बैठे हैं तो हर कोई आशावान आ सकता है।"

गुरु की बात सुनकर ब्रह्मचारी अधीर हो उठा। बोला : "महाराज ! एक दिन एक नियम, दूसरे दिन दूसरा नियम ?-आज तक यह आश्रम इसीलिए पवित्र रह पाया है कि औरतो को हमने इसमे आने नही दिया। मुझे यह अच्छा नही लगता कि आपके हाथो यह पवित्रता आज इस तरह नष्ट हो। यदि आप रात के समय इस स्त्री को आश्रम मे प्रवेश करने देगे, तो मै इस आश्रम को छोड़कर दूसरे किसी आश्रम मे चला जाऊँगा।"

मुनि ने कहा :" ठीक तो है। तुम जाकर दरवाजा खोलो, ताकि वह स्त्री अन्दर आ सके और तुम बाहर जा सको। तुम्हे अपने जाने के लिए भी तो फाटक खोलना पडेगा न ? जाओ, फौरन जाओ।"

बड़बड़ाता हुआ, मन ही मन गुरु को और आगत स्त्री को बुरा भला कहता हुआ, और मारे गुस्से के ऐंठता हुआ ब्रह्मचारी फाटक के पास गया। फाटक खोला। स्त्री अदर आई। ब्रह्मचारी फाटक खुला छोड़कर उसके साथ गुरुजी के पास आया।

सुन्दरी ने पर्णकुटी के समीप पहुँचकर महाराज को प्रणाम किया। मुनि महाराज ने कहा : "बेटा ! इन देवी को हमारी गोशालावाली जगह मे ले जाओ और वहाँ इनके सोने का प्रबन्ध कर आओ।"

ब्रह्मचारी सुन्दरी को गोशाला की ओर ले गया और दूर से अगुली का इशारा करके बोला : "जाओ, वह जगह है, वहाँ सो रहो। सुबह उठकर अपनेआप चली जाना।" यों कहकर ब्रह्मचारी अपने निवास मे जाकर सो गया।

कोई आध घण्टे बाद वह स्त्री गोशाला के बाहर आई और ब्रह्मचारी

उसे जगाने लगी : "भैया, ए भैया! जरा जागो तो। यहाँकी यह सर्द हवा मुझसे सही नहीं जाती।"

ब्रह्मचारी फिर आँखें मलता हुआ उठ बैठा और गरजकर बोला : "क्या हुआ? क्यों चिल्लाती हो?"

"भाई! बरामदे की इस सर्द हवा मे मैं काँप रही हूँ। यह मुझसे सही नहीं जाती। तुम मुझे अपने गुरुजी के कमरे मे सोने दो ताकि हवा न लगे। मेरा दुर्भाग्य कि ऐसे समय मेरे पास पूरे कपडे भी नहीं हैं।"

ब्रह्मचारी मन ही मन बड़बड़ाया : "इन औरतों का यही तो दुःख है। इनकी एक बात सुनी और दस सुनने के लिए मजबूर होओ। कभी इनसे काम पडे तो इन्हे मुँह न लगाने मे ही भलाई है। इनकी-सी करो तो ये सिर चढती हैं, ठुकराओ तो झख मारकर अकेली पड़ी रहती हैं। गुरुजी इसे अपने कमरे मे क्या बिछौने मे भी सुलायें, तो मुझे क्या? मेरे बाप का क्या बिगड़ता है?" यों बड़बड़ाता हुआ ब्रह्मचारी गुरुजी के पास पहुँचा। कुछ देर बाद आया तो बोला : "चलो बहिन, चलो! तुम्हारा सितारा तेज है। जिस कमरे मे गुरुजी अपने कुछ ब्रह्मचारियों तक को नहीं जाने देते, वहीं आज तुमको सोने की इजाजत मिली है। ओह, अब यह आश्रम रहनेयोग्य नहीं रहा। हे भगवान्! यह सब क्या हो रहा है?"

यों कह, ब्रह्मचारी उस स्त्री को गुरु के द्वार तक छोड़ वापस चला गया।

कमरे के अन्दर गुरुजी अपनी शैया पर लेटे हुए थे। सुन्दरी को आते देख वह बोले : "इस कोने में सो जाओ। यहाँ तो तुम्हें हवा नहीं लगेगी न?"

"नहीं महाराज!" कहकर सुन्दरी कोने में लेट गई। वह अभी

कहना कि देवी-देवताओ के रंगमहल हो सकते हैं, पर हनुमानजी का कोई रंगमहल नहीं होता। कामदेव ससार मे सबसे अधिक रूपवान है, किन्तु परमात्मा कामदेव से भी हजार गुना अधिक रूपवान है। जिसके हृदय मे परमात्मा का निवास है, उसके हृदय को कामदेव कभी अपनी अमगल छाया से दूषित नहीं कर सकता। जाओ, अपने काशिराज से मेरा आशीर्वाद कहना।"

इतना कहकर गुरु वेदपाठ मे तल्लीन अपने ब्रह्मचारियो की ओर चले गये और सुन्दरी अपना-सा मुँह लिये नगर की ओर चल दी।

वृषादर्भि की ये नम्रतापूर्ण बातें सुनकर ऋषियो ने कहा, "राजन्! परिस्थिति तो ऐसी है कि आप जो कुछ हमें दें, सो सब और उससे भी अधिक बहुत कुछ हम आपसे ले सकते हैं। इस भीषण अकाल मे भूख का मारा आदमी आज आदमी को खाते हिचकिचाता नही है। इसपर आपकी मीठी वाणी हमे और भी ललचाती है। किन्तु राजन्! आप तो जानते ही हैं कि राजाओ से कुछ लेना, कुछ प्रतिग्रह करना, शहद मे घुले हुए विष की तरह त्याज्य है। हम ब्राह्मण हैं। महान् परिश्रम के बाद हमने जो थोड़ा बहुत तप पाया है, उस तप का एक क्षण मे विनाश करनेवाले इस दान का आग्रह करके आप क्यो हमे गड्ढे मे उतारा चाहते हैं? आपका कल्याण हो! आपके दान का कल्याण हो! आप दूसरे अनेक भूखे प्यासो को अन्न-जल देकर कृतार्थ हूजिए। पर हमे इस प्रतिग्रह के पथ पर न चढ़ाइए। यह हमारा मार्ग नहीं। ब्राह्मण प्रतिग्रह से जितने दूर रहे उतने ही अच्छे!"

इस प्रकार राजा को जवाब देकर ऋषि राजमार्ग का त्याग करके दूर के एक जगल मे चले गये। जंगल मे गूलर के असख्य पेड़ थे। राजा ने नगर मे आकर जनता के प्रतिनिधियो को बुलाया और कहा: "हमारे राज्य की हद मे कुछ असाधारण तेजवाले ऋषि पधारे है। वे भूख और प्यास से विह्वल होकर घूम रहे हैं। मैंने उन्हे दान देना चाहा, लेकिन उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। हमारे यहाँ भयंकर अकाल है फिर भी ऐसी दशा नहीं कि आदमी पैसा खर्चे और अन्न न मिले। वे ऋषि पास के वन मे गये हैं। वे सब अप्रतिग्रही हैं, इसीलिए मैं सोचता हूँ कि वन मे जाकर वे गूलरो से अपनी भूख बुझायेगे। आप सब वहाँ जाइए और गूलरो के अन्दर कुछ सुवर्णमुद्राए रख आइए। जब वे लोग गूलरो को खाने लगेगे, उन्हे मोहरे दिखाई देगी, और अनायास प्राप्त समझ

द्रव्य-सग्रह करने की अपेक्षा हम उस तपोधर्म को ही क्यों न अपनायें, जिसमे द्रव्य के नाम पर एक पाई की जरूरत नहीं पड़ती ?"

यों कहकर और गूलरो को ज्यों का त्यो छोड़कर ऋषिगण वहाँसे चल दिये। जब प्रजाजनों ने राजा को ये समाचार सुनाये तो राजा क्रोधान्ध हो उठा। वह बोला : "इन पढे-लिखे मूर्खों को धर्माधर्म का कोई ज्ञान नहीं! कम्बख्त जिस पूँछ को पकड़ते हैं उसे किसी हालत में छोड़ते ही नहीं। मैं मानता हूँ कि ब्राह्मण को लोभ नही करना चाहिए। लेकिन यह कैसी बात है कि कोई स्वेच्छा से कुछ दे और लेनेवाला ऐसे दारुण दुर्भिक्ष मे भी उसे लेने से इन्कार करदे? अब मैं भी इन्हें देख लूँगा। नाकों चने न चबवाऊँ तो कहना। वृषादर्भि जैसा राजा और उसकी प्रजा इन्हें आग्रहपूर्वक कुछ देना चाहती है, तो ये सिवा नखरो के बात नहीं करते!"

इस प्रकार कहकर उस क्रोधित अवस्था मे ही वह अपनी अग्निशाला में होम करने बैठ गया। इस होम के फलस्वरूप अग्नि से कृत्या उत्पन्न हुई। राजा ने उसका नाम यातुधानी रक्खा। यातुधानी दोनो हाथ जोड़कर कहने लगी : "महाराज! मुझे क्या आज्ञा होती है?"

वृषादर्भि ने उसी क्रोध मे कहा : "तू इन सातो ऋषियो के पास जा और सबसे पहले इनमे से हरएक का नाम लिख ले। ब्राह्मणत्व का दम्भ करनेवाले ढोंगियों को मैं जरा पहचानूँ तो सही! फिर इन सबका नाश करके तू अपने स्थान पर वापस चली जाना। आज इन लोगों ने मेरी दान-वृत्ति पर कठोर प्रहार किया है, अतएव अब तो ये सर्वनाश के ही पात्र हैं। देखूँगा, बिना अन्न-जल के ये ब्राह्मण अपने तप को कैसे सुरक्षित रखते हैं।"

राजा की आज्ञा को सिर-माथे चढ़ाकर यातुधानी उसी वन मे जा

लिखाने को कहा गया। लेकिन उसने नाम लिखवाने में कुछ ऐसी गड़-बड़ मचाई कि यातुधानी ठीक-ठीक समझ नहीं पाई। उसने चिढ़कर कहा : "तूने अपना नाम सही-सही नहीं लिखवाया है फिर से नाम लिखा।"

इसपर सन्यासी क्रुद्ध हो उठा और बोला : "क्या हम सब तेरे बाप के नौकर हैं? मैं एक बार तुझे अपना नाम बता चुका हूँ। फिर भी तू समझी नहीं, इसलिए ले, अब दण्ड के प्रहार से तुझे समाप्त ही किये डालता हूँ।" यों कहकर सन्यासी ने दण्ड उठाया और यातुधानी के सिर पर उसका एक प्रहार किया। वह बेचारी उसी समय धराशायी होगई और जलकर खाक बन गई। फिर वह सन्यासी अपने दण्ड को पृथ्वी पर टेककर तलैया के किनारे बैठ गया।

इस बीच ऋषिदल ने तलैया में से कमलों और कमलनालों को एकत्र किया और ला-लाकर किनारे पर रक्खा। फिर तलैया में पैठकर वे खड़े-खड़े तर्पण करने लगे।

तर्पण समाप्त करके ज्यों ही सब बाहर आये, तो देखते क्या हैं कि तट पर न कमल है, न कमलनाल हैं! यह देखकर सबको अतिशय आश्चर्य हुआ। सब मन-ही-मन सोचने लगे : "हम बहुत भूखे हैं, ऐसे समय किसी निर्दय आदमी ने हमें अपने इन कमलों से वंचित किया है।"

फिर तो मारे भूख के वे आपस में एक-दूसरे को ही शंका की दृष्टि से देखने लगे। अन्त में इस तरह की शंकाओं का निवारण करने के लिए उनमें से प्रत्येक इस प्रकार की शपथ लेने लगा : "जिसने कमल चुराये हों उसे यह पाप लगे, उसकी ऐसी गति हो, वैसी गति हो, उसे यह लोक मिले, वह लोक मिले।" इस प्रकार की शपथें दसों प्राणियों ने ली। अन्त में उस मोटे सन्यासी की बारी आई। उसने भी हाथ में

१३

भामती

"देवि ! तुम कौन हो ?"

गाँव के एक छोटे-से घर के कमरे मे अरड के तेल का दीया जल रहा था। कमरे की खपरों वाली दीवारें गारे से छबी और गोबर से लिपी-पुती बहुत सुहावनी दीखती थीं। दूर के एक कोने मे मटकों की कतारें खड़ी थीं, और पास ही के दूसरे कोने मे मिट्टी के थालवाली चक्की और मचिया पड़ी थी। दीये के पास चटाई बिछाकर शास्त्रीजी बैठे कुछ लिख रहे थे। उनकी चटाई के आसपास तीन-चार पोथियाँ पड़ी थीं, और पास ही कुछ बस्ते खुले धरे थे।

लकड़ी की दीवार पर रक्खा हुआ अरण्ड का वह दीपक सारे कमरे को प्रकाशित कर रहा था। उधर शास्त्रीजी एकाग्रभाव से कुछ लिखते चले जा रहे थे। घड़ी दो घड़ी मे कभी एकाध बार वे पास में पड़ी हुई पोथियों के पन्नों को हाथ में लेकर कुछ पढते और कुछ समझते नजर आते थे, कभी घड़ीभर के लिए विचार मे डूब जाते थे, और कभी-कभी पोथी-पत्रो को एक ओर रखकर वे हृदय की किसी अगम गहराई मे प्रवेश करने की चेष्टा मे रत आँखे मूँदते नजर आते थे। और फिर कुछ देर बाद हाथ मे क़लम पकड़कर कुछ नया लिखने मे लग जाते थे।

इसी बीच दीये का तेल खतम होने आया। बत्ती पर गुल छा गया। दीपक का प्रकाश धुंधला हो चला। तभी एक स्त्री ने धीमे-से आकर दीये मे तेल पूर दिया, दीये की बत्ती को सहज उसकाया और जलते हुए

शास्त्रीजी से न रहा गया : "इतने वर्षों से तुम मेरे साथ ही रह रही हो ! सारा दिन क्या किया करती हो ? मुझे आज तक इसका पता क्यों नहीं चल सका ?"

भामती बोली : "प्राणनाथ ! जिस दिन से अपनी माँ का आँगन छोड़कर इस घर में आई हूँ, यहीं हूँ। आपने तो व्याह के दिन भी मंडप में बैठे-बैठे दाहिने हाथ से मेरा हाथ थामा था, और बायें में ये पन्ने ले रखे थे। मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है। तबसे आजतक ये पन्ने भले हैं और आप भले हैं। मैंने तो यही देखा है।"

"लेकिन तुम्हारे ये पचास-साठ वर्ष बीते कैसे ? मैं तुम्हारा पति हूँ, इसका खयाल तो तुमने मुझे आज ही होने दिया।"

"पतिदेव ! मेरे दिन आपकी सेवा में ही बीते हैं। सुबह आपके जगने से लेकर रात में सोने तक जितनी बन पाती है उतनी सेवा मैं आपकी करती हूँ। जब रात में पढते-पढते आप इस गद्दी पर सोजाते हैं, तो मैं इन सब पन्नों को जमाकर ठीक से रख देती हूँ। आपके सिरहाने एक छोटा तकिया लगा देती हूँ और आपके दुखते पैरों को दबाती हुई वहीं सो जाती हूँ। सुबह आपके जगने से पहले ही उठ बैठती हूँ। इस चक्की से जरूरत भर का आटा पीस लेती हूँ और आपके जागने पर शौच-स्नान का पानी वगैरा तैयार करके आपकी सेवा में हाजिर हो रहती हूँ।"

पुरुष ने पूछा : "क्या कहा ? शौच-स्नान का पानी भी तुम्हीं मुझे देती हो ? मैंने तो कभी तुम्हें देखा ही नहीं ?"

भामती बोली : "आप मुझे क्योंकर देखते ? आपकी दृष्टि तो मुझ-पर पड़ती थी, पर उस दृष्टि के पीछे मन आपका रहता हो तब न ? बेचारी चमड़े की आँखों की क्या ताकत जो मुझे देखे ?"

"तो फिर, हमारे खान पान का प्रबन्ध कैसे होता है ?"

बनी हूँ। अब आप अपने काम मे लग जाइए और मुझे पुन. एक बार भूल जाइए।"

"भामती ! ठहरो, सुनो एक बात।"

"आप अपने वेदान्त को भूलकर मेरे मोह मे न फँसिए। मुझे अब इस पाप मे फँसाइए।"

शास्त्री जी बोले : "भामती ! मै तुम्हे पाप मे फँसाना नही चाहता। मैं तो यही सोच रहा हूँ कि मैं स्वय पाप मे फँसा हुआ हूँ. या उससे ऊपर उठा हुआ हूँ।

भामती ने कहा : "आप तो देवता है। आप जो कुछ लिखेंगे, उससे ससार का उद्धार होगा।"

'देवि ! सच कहता हूँ, भगवान् व्यास ने वर्षों की तपस्या के बाद अपनी आर्ष दृष्टि से वेदान्त का ग्रन्थ लिखा है। मैंने इसे पढा और इस-पर विचार किया है। लेकिन भामती ! तुम यह निश्चय जानो कि मेरा सारा पठन और मनन व्यास भगवान् का यह ग्रन्थ और समूचा वेदान्त भी तुम्हारे इस जीवन की बराबरी करने मे समर्थ नही। मैंने वेदान्त पढा है व्यासजी ने वेदान्त लिखा है। पर तुमने तो वेदान्त को जी कर दिखाया है। भामती ! आज सचमुच मेरी आँखे खुल गई।" कहते-कहते शास्त्री जी भामती के चरणो मे गिर पड़े।

भामती ने पति को हाथो पर लेते हुए कहा : "आप यह क्या कह रहे है ? मैने आपकी सेवा छोड़ और किसी चीज की कभी कामना ही न की। मुझपर आपका यह कितना बड़ा उपकार है कि आपने मुझ जैसी को अपनी सेवा का इतना उत्तम अवसर प्रदान किया। आप उठिए। आजतक मैं आपके चरणो मे सोई हूँ। इसी तरह इन्ही चरणो मे सोती

१४

राज़ा ययाति

ययाति राजा ने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से विवाह किया था। देवयानी जब ससुराल आई तो साथ में दानवों के राजा की पुत्री शर्मिष्ठा को अपनी दासी बनाकर साथ लाई थी।

देवयानी शुक्राचार्य की एकलौती लड़की थी। शुक्राचार्य दानवों के गुरु, मृत दानवों को जीवित करने की विद्या जाननेवाले, इस कारण दानवों का काम बिना शुक्राचर्य की सहायता के एक क्षण भी नहीं चलता था। ऐसी अवस्था मे शुक्राचार्य कन्या की ओर ज्यादा समय नहीं दे सकते थे। अतः अकेली लड़की बचपन से ही हठीली बन गई थी। छोटी-छोटी बातों में भी उसकी इच्छा के अनुसार काम न होता तो वह झगड़ा खड़ा कर देती थी, इतनी हठीली वह होगई थी। एक बार बातों ही बातों में राजकुमारी शर्मिष्ठा से उसका झगड़ा होगया और बहुत समझाने-बुझाने पर देवयानी ने शर्मिष्ठा को दासी के रूप मे अपने साथ रखना स्वीकार किया। शुक्राचार्य की असाधारण विद्या और पुत्री के ऊपर उनकी असाधारण ममता, इन्हीं दो बातों पर देवयानी की हस्ती थी।

शर्मिष्ठा दानवों के राजा वृषपर्ण की पुत्री थी। उसमे असाधारण लावण्य था। उसके सारे अवयव गठीले थे। उसके मुख मे से एक प्रकार का सुवास निकलता था। उसकी चाल अच्छे-अच्छे संयमी पुरुषों को आकर्षित करने मे समर्थ थी। उसके सारे देह का मरोड़ मानो कामदेव

देवयानी और चिढकर बोली--"मैं जानती थी कि वह अकेली कहाँ तक रहेगी। कोई आने-जाने लगा होगा उसके पास। उसीसे उसके यह पुत्र हुआ होगा। पर मुझे यह पता नहीं था महाराज, कि वह मेरी ही सौत बन बैठी है। मुझे कुछ कुछ शक तो था। आज उसका निश्चय होगया। राजन्! मैं किसकी लड़की हूँ, यह आपको पता है? शुक्राचार्य की पुत्री इस प्रकार की सौतें सहन नहीं कर सकेगी। मैं आपके घर मे अब नही ठहरने की। आज ही मैं अपने पिता के यहाँ चली जाती हूँ, और जबतक जीऊँगी तबतक वहीं रहूँगी। मन मे तो ऐसा आता है कि उस चुड़ैल को जिन्दा की जिन्दा चबा जाऊँ। पर लाचार हूँ। आपने जो शर्मिष्ठा मे सतान पैदा की इसका दड तो मेरे माता-पिता ही आपको देंगे। अगर मुझे यह मालूम होता तो उसे मैं अपने साथ लाती ही क्यो? पर मैं ठहरी ब्राह्मण कन्या और वह राजकुमारी। इस कारण ही शायद आपने ऐसा किया। ययाति, मैं सच कहती हूँ कि मुझे छोड़कर आप दूसरी स्त्री की ओर आकर्षित हुए इसका मुझे दुःख नहीं है। पर इस शर्मिष्ठा की तरफ आकर्षित हुए यह जब ध्यान मे आता है तो मारे क्रोध के मेरे सारे रोयें खडे होजाते हैं। इसका मुझपर जबर्दस्त आघात हुआ है और मैं जड़-सी बन जाती हूँ।"

"देवी! जो हुआ सो हुआ। अब मुझे क्षमा करो।" ययाति ने कहा।

"राजन्! मैं सीता, सावित्री के समान आपकी अर्धांगिनी होती तो क्षमा कर देती। यही नहीं इसपर मेरा ध्यान भी नहीं जाता। पर मैं देवयानी हूँ। दुनिया मे किसीसे भी अपमान मैंने सहन नहीं किया। आपको मालूम है कि कच से अधिक मेरा प्रिय कोई नहीं था। कच के खातिर एक समय मैं अपने प्राण भी देने को तैयार होगई थी। पर उसी

हुए। इतने में तो ययाति भी वहाँ पहुँच गया। ययाति को देखकर शुक्राचार्य का क्रोध उबल पड़ा : "राजा! तुम मुझे अपना मुँह न दिखाओ। मैंने तुमको स्पष्ट आज्ञा की थी कि शर्मिष्ठा को केवल दासी समझना, फिर भी तुमने नहीं माना और देवयानी के दिल को चोट पहुँचाई। इस कारण मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि इसी क्षण में तुम्हारी जवानी अदृश्य होजाय और तुम्हें वृद्धावस्था प्राप्त हो। चाहे जितनी इच्छा होने पर भी तुम कामोपभोग न भोग सको, यही तुम्हारी दुष्टता की सजा तुमको है। बस, चले जाओ यहाँ से।"

शुक्राचार्य के मुँह में से ये शब्द निकले-न-निकले इतने में तो जवान राजा एकदम वृद्ध होगया। उसके बाल सफेद होगये। गाल पिचक गये। चमड़ी पर झुरियां पड़ गई और उसका शरीर काँपने लगा। उसकी आँखें कमजोर होगई, मुँह से लार गिरने लगी। अपना यह स्वरूप देखकर ययाति एकदम घबरा गया और दीन होकर आचार्य से बोला—"आचार्य, जैसे आप देवयानी के पिता हैं वैसे ही मेरे भी पिता होते हैं। यह सच है कि मैंने आपकी आज्ञा का भंग किया है, और यह भी सच है कि मैंने देवयानी का मान-भंग किया है। पर आचार्य, मैं कौन-सा ऐसा बड़ा योगी या महात्मा हूँ जो शर्मिष्ठा की ओर आकर्षित न होऊँ। आचार्य, एक बात सच-सच कहता हूँ। देवयानी का स्वभाव इतना तेज है कि उसके पास जाते हुए मुझे डर-सा लगता और जाने पर कब यहाँ से भाग छूटूँ यह मन में हुआ करता। जवानी के ऐसे प्रसंगों में मैं शर्मिष्ठा की तरफ आकर्षित हुआ, तो आचार्य, इसमें मेरी भूल तो है ही, पर इस भूल में देवयानी का भी कोई कम भाग नहीं है। यह आपको देखना चाहिए।

"आचार्य! मैं कामी आदमी हूँ। अभी मेरी काम-वासना तृप्त नहीं

जवानी मुझे देकर मेरा बुढापा ले ले तभी यह संभव है। तुम मेरे पुत्र हो। अपने पिता की रही हुई वासना को तृप्त कराकर उसके मन को शान्ति देना तुम्हारा धर्म है।"

राजा के ये वचन सुनकर देवयानी से ययाति के जो दो पुत्र थे वे सिर हिलाकर बोले—"पिताजी, आपके मांगने पर जवानी तो क्या अपना जीवन भी हम अर्पण करने को तैयार हैं, पर अपनी जवानी देकर आपकी काम-वासना को पोषण देना हमें अधर्म मालूम होता है, इसलिए हम आपका बुढापा लेने के लिए तैयार नहीं हैं।" अन्य पुत्रों ने भी ऐसा ही जवाब दिया। ययाति इससे अप्रसन्न हुए और उनको शाप दिया। पिता-पुत्रों का यह अप्रिय संवाद हो ही रहा था कि शर्मिष्ठा का सबसे छोटा पुत्र आगे आया और बोला—"पिताजी, मैं बुढापे और जवानी को कोई खास बात नहीं समझता। अलबत्ता यह समझता हूँ कि जब पिता दीन होकर कोई वस्तु पुत्र से मांगे तो मुझसे इनकार नहीं किया जा सकता। लीजिए पिताजी, यह मेरी जवानी और लाइए अपना बुढापा। आप प्रसन्न होइए।"

अपने सबसे छोटे पुत्र के ये वचन सुनकर राजा ययाति ने शुक्राचार्य का स्मरण किया और देखते ही देखते पुत्र वृद्ध होगया और राजा पहले से भी अधिक जवान।

फिर तो राजा ने काम-भोग शुरू किया। नंदनवन के समान अपने वनों में विहार होने लगे, स्त्रियों के साथ क्रीडाएं होने लगीं और पांचों इंद्रियों के विषयों का खुलकर सेवन होने लगा—गान-तान, भोग-विलास—मानो बुढापा आया ही न था और आनेवाला भी नहीं था।

× × ×

शरद् पूर्णिमा की रात्रि में एक दिन राजा महल की छत पर अकेले

कामाग्नि में भोग रूपी लकड़ी डालने से वह और भड़कती ही है। बेटा, यही मेरा अनुभव है। दुनिया के जो प्राणी यह मानते हों कि भोगों को भोगते रहने से कुछ समय बाद मन अपनेआप उनपर से हट जायगा, उन्हें मैं बताना चाहता हूँ कि यह मान्यता गलत है। भोगों को भोगने से वासना घटती नहीं बल्कि बढ़ती है। और उसके बाद मनुष्य मिटकर पशु बन जाता है। बेटा! हजार वर्षों के निचुड़ जाने के बाद मुझे यह ज्ञान हुआ, इस कारण मैं तेरा ऋणी हूँ। जा, प्रभु तेरा भला करे। यह राज्य मैं तुझे सौंपता हूँ और आज से वानप्रस्थ लेता हूँ।"

यह कहकर अपनी वृद्धावस्था वापस लेकर राजा वन में चला गया।

हैं। वरुण के घोड़े, सो उनके वेग का तो पूछना ही क्या? बिजली की चपलता और वेग भी उनके सामने पानी भरते हैं।"

इस प्रकार कहते-कहते सारथी ने बताया कि "महाराज, सामने वह आश्रम दिखाई दे रहा है।"

राजा ने कहा—"तो आश्रम की ही तरफ रथ को ले चलो।"

सारथी बोला—"महाराज न जाने क्यों मेरा मन उधर जाने को नही होता। मैं कहता हूँ कि इन्ही घोड़ों को और जोर से हाँकेंगे तो हिरण पकड़ा जायगा। अब तो वह भी थक गया होगा।"

राजा बोला—"इसमें मन के मानने न मानने की क्या बात है। तुम्हारा मन कमजोर है। मन को जरा दृढ़ करो तो वह मानने लग जायगा। मन का मानना न मानना यह तो हमारे हाथ की बात है। चलो, रथ को मोड़ो, आश्रम की तरफ हमें हिरण को यों ही नही छोड़ देना है।"

रथ आश्रम के दरवाजे पर पहुँचा। शल रथ से उतरकर आश्रम में ऋषि की कुटी पर गया। राजा को देखकर ऋषि वामदेव ने उनका स्वागत किया और आने का कारण पूछा।

राजा ने कहा : "ऋषि महाराज! अभी तो मैं जल्दी में हूँ। बैठने जितना समय नही है। मैं शिकार को निकला हूँ। मेरा हिरण भाग रहा है। मुझे किसी भी तरह उसे पकड़ना है। अगर आप कृपा करके अपने घोडे मुझे देने की कृपा करें तो अपनी मृगया में सफल होऊँ। शिष्टाचार का तो समय नही है। ज्यों-ज्यो देर होती जाती है शिकार दूर निकला जारहा है। अतः कृपया घोडे दीजिए तो मैं रवाना होऊँ।"

राजा की माँग पर ऋषि कुछ विचार मे पड़ गये। फिर बोले—

"अच्छी बात है। आपकी इच्छा है तो यही सही। पर ये घोड़े वरुणदेव के हैं। मेरे यहाँ ये धरोहर के रूप मे हैं। आप मृग को पकड़

करने की चिन्ता मुझे नहीं है। तुम्हारे जैसे नौकरों को जरा शह दी कि सिर पर चढते हैं और अपनी मर्यादा भूलते हैं। व्यर्थ की बातें न करो और रथ हाँके जाओ। अभी हमें सीधे अपने नगर को चलना है। वहाँ चलकर रानियों को, कुमारों को, मंत्रियों को, प्रजाजनों को ये घोड़े बताने भी तो हैं। फिर इतना इनसे काम लिया है तो इनकी कुछ सेवा भी हम न करे ?"

सारथी ने रथ नगर की ओर फेरा। राजधानी में पहुँचने के बाद राजा के हुक्म से घोड़ो को राजमहल मे छोड़ा और अपने घर गया।

उसके बाद तो कितने ही सूर्य उदय और अस्त हुए पर घोडे आश्रम नहीं पहुँचे। यह देखकर ऋषि ने अपने शिष्य से कहा—"आत्रेय ! तुम महाराज शल के पास जाकर वरुण के घोड़े वापस ले आओ। आज तक हमने राह देखी। घोड़े नही आये। राजा राजकार्य मे उन्हें भेजना भूल गये होगे।"

आत्रेय राजा शल के नगर मे आया और राजमहल में जाकर राजा से बोला—"महाराज ! गुरु वामदेव ने मुझे भेजा है। वरुण के घोड़े आप मुझे लौटा देने की कृपा कीजिए तो मैं वापस जाऊँ।"

राजा ने ब्रह्मचारी आत्रेय से कहा—"ब्रह्मचारी, आपको जल्दी हो तो पधारिए। ऋषि वामदेव से मेरा प्रणाम निवेदन कीजिएगा और कहिएगा कि ये घोड़े तो राजमहलो की शोभा बढ़ानेवाले हैं, आश्रमों मे शोभा नही पाते, इसलिए इनको तो मैंने रख लिया है। मेरे जो घोड़े आप वापस लाये हैं सो उनको वापस लाने की कोई अवश्यकता नहीं थी। उनको तो मैं कभी का आश्रम को अर्पण कर चुका हूँ। अतः उनको आप वापस लेजाइए। गुरुदेव से यह भी निवेदन करें कि और कभी घोड़ों की आवश्यकता पड़े तो मुझे आज्ञा करे। मैं सेवा मे उपस्थित कर दूँगा।"

राजा के ये वचन सुनकर आत्रेय क्षणभर विचार मे पड़ गया। वह जाते-जाते बोला—

"राजन्, मैं गुरुदेव का संदेश लेकर आया था और आपका उत्तर लेकर जाना पड़ रहा है। पर मैं असमंजस मे हूँ कि यह उत्तर राजा शल अपने अंतःकरण से देरहे हैं या उनके अन्दर बैठा कोई दूसरा देरहा है। राजन्! मैं आपको यह स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि आपका यह उत्तर गुरुदेव सहज मे ही स्वीकार नही करेंगे। आप फिर विचार कर लीजिए।"

राजा ने तिरस्कार से कहा—"अब चले भी जाओ ब्रह्मचारी! तुम्हे इतनी भी समझ नहीं है कि जो सारी पृथ्वी का राज्य-संचालन करते हैं वे बिना समझे कुछ बोलेंगे? किसी दूसरे के रचित वेद जो रटा करते हैं वेही जैसे-तैसे बिना विचारे बोलते हैं। तुम अब जाओ। मैंने जो कुछ कहा है उसमें मुझे कुछ भी कम नहीं करना है।"

राजा के वचन सुनकर आत्रेय आश्रय मे लौट आया और ऋषि से सारे समाचार कहे। ऋषि ने सब बाते शांति से सुनी। राजा की इस प्रकार की मनोवृत्ति के कारण दुःखी हुए। कुछ समय विचार किया। घोड़ो को प्राप्त करने के बारे मे क्या करना क्या न करना इसकी उथल-पुथल उनके मन मे होने लगी। रात को सोने गये तो वहाँ भी यही विचार चलता रहा। उन्हे नींद नहीं आई।

प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्त हो ऋषि तुरन्त ही राजा शल के पास जाने को निकल पडे। आश्रम की सीमा के पास आकर वामदेव आत्रेय से बोले—"बेटा! मैं अपनी धरोहर वापस लेने जाता हूँ। वापस कब लौटूँगा और वहाँ क्या करूँगा यह अभी नहीं सूझ पड़ता है। दूसरे की धरोहर को हड़प जाने की राजा की वृत्ति मैंने समझ ली है। इससे मेरी आत्मा बहुत उद्विग्न होगई है। इससे मेरे अंतर में एक अग्नि प्रज्वलित होरही है। मैं

ऋषि वामदेव को आते देखकर राजा ओर से स्वागत करता हुआ बोला—"पधारिए, पधारिए महाराज! आपने मुझपर बड़ा उपकार किया।" और उसने उनका यथोचित सत्कार किया और आसन दिया।

वामदेव बैठते-बैठते बोले—"राजन्! उपकार तो राजाओं का जगत पर होता है, क्योंकि वे मानव-समाज को नियम में रखकर जगत पर उपकार ही करते हैं। कहिए, राज्य में सब कुशल तो है?"

राजा बोला—"आपकी कृपा जहाँ हो वहाँ सब कुशल ही होनी चाहिए। कहिए, कैसे पधारना हुआ?"

वामदेव ने जवाब दिया—"मेरे आने का कारण तुम जानते हो। मैं अपने घोड़े वापस लेने आया हूँ। मेरे घोड़े वापस करदो तो मैं वापस आश्रम लौट जाऊँ। प्रभु तुम्हारा कल्याण करें।"

वामदेव के वचनों को सुनकर राजा हँसकर बोला—"केवल इन दो घोड़ों के लिए आपने इतना कष्ट किया? ऐसे क्षुद्र कारण से आपकी तपश्चर्या भंग हो यह उचित नहीं है।"

वामदेव से न रहा गया। बोले—"राजन्, तुम्हारे मुँह से ऐसे वचनों को सुनकर मन मे न जाने क्या होने लगता है। आत्रेय को तुमने घोडे भेज दिये होते तो मुझे न आना पड़ता। अब मुझे घोड़े दो तो मैं जाऊँ।"

ऋषि के वचन सुनकर राजा बोला—"आप इस प्रकार क्रोध करके मुझे घबराहट में नही डाल सकते। आपकी लाल-लाल आँखे देखकर घबरा जानेवाले राजा दूसरे होंगे। आप जैसे ब्राह्मणों को ऐसे घोड़ों की आवश्यकता नहीं। आपके लिए तो दो बैल या बहुत हुआ तो दो खच्चर काफी हैं। ये घोड़े मृगया करनेवाले राजाओं के योग्य हैं। फिर आप लोग तो कहते हैं कि भगवान् सूर्यनारायण अपनी किरणों द्वारा आप लोगों को दिव्यलोक मे खीच लेते हैं, तो फिर आपको ऐसे स्थूल वाहनों की क्या आवश्यकता है?"

वामदेव ने उत्तर दिया—"राजन्, सूर्य भगवान् अपने तेज से हमें ही नही सारे जगत को अपनी ओर खींचते रहते हैं। यह बात बिल्कुल ठीक है और मुझे अपने वाहन के लिए घोड़े चाहिएँ, बैल चाहिएँ या खच्चर चाहिएँ, यह मेरे देखने की बात है। ये घोड़े तो मेरे यहाँ धरोहर के रूप में थे। ये न तुम्हारे हैं न मेरे। मेरी धरोहर मुझे वापस दे दो, यही मेरी माँग है।"

राजा फिर बोला—"ऋषि महाराज! आप आज्ञा दे तो दूसरे हजार घोड़े आपकी सेवा में उपस्थित करूं। आप कहें तो उतने ही रथ भी हाजिर करदूँ। मणि माणिक भी दूँ। पर ये घोड़े वापस नहीं दूँगा। ये तो राज-भवन में ही शोभा दे सकते हैं। आश्रम में नही।"

"महाराज!" वामदेव ने कहा, "ऐसी तो बहुत-सी चीजें हैं जो आश्रम में नहीं पर राजभवन में शोभा देती हैं। पर यह शोभा का सवाल

करते हैं। याद रखो परमात्मा यह सब सहन नही करेंगे। लोगों को अगर पता लग जाय कि तुम्हारे शब्दजाल के पीछे पामर स्वार्थ है तो लोग तुम्हें तुरन्त फाड़ खायगे। पर लोग भोले हैं। लोगों को धोखा देकर दूसरे का माल हड़प करने की यह वृत्ति तुमको जलाकर भस्म कर देगी। तुम और विचार करलो। अभी भी समय है। घोड़े वापस दे दो और सुख से राज्य करो। मैं घोड़े वापस लिये बिना लौटनेवाला नहीं हूँ।" यह कहकर ऋषि आसन से उठ खड़े हुए।

राजा ने भी क्रोध से गरम होकर जवाब दिया—"ऋषिजी, मैं शांति से कहता हूँ तो आप समझते नही हैं और व्यर्थ की लाल आँखे बताते हैं। जाइए, नही देता मैं घोड़े आपको। जो आपसे बने कर लीजिए। और अब इनके बदले आपको और कुछ दूँगा भी नही। प्रतिहारी! इन ऋषि महाराज को महल से बाहर करदो।"

शल के ये वचन सुनकर वामदेव ऋषि की आँखे एकदम लाल होगई। नथुने फूल गये। ओठ फड़कने लगे। शरीर काँपने लगा। वे बोले—"राजन्! खबरदार, जो किसीने मेरे शरीर को हाथ लगाया। मैं चाहूँ तो अभी तुमको भस्म कर सकता हूँ। पर मैं व्रती हूँ, इस कारण लाचार हूँ। पर जगत का नियमन करनेवाली शक्ति जरूर न्याय करेगी, इसमें मुझे किसी प्रकार की शंका नहीं है। आज तूने इस शक्ति के विरुद्ध कार्य किया है। तुझे इसका दंड अवश्य मिलेगा।"

वामदेव के मुँह से ये वचन निकले ही थे कि उसी क्षण पृथ्वी को फाड़कर चार राक्षस निकले। उन्होंने शल को पकड़कर वहीं खत्म कर दिया। राजा के मरते ही उसके रक्षक मारे डर के भाग गये। राक्षस वामदेव को प्रणाम करके अंतर्ध्यान होगये। ऋषि वहीं खड़े रहे। राक्षसों के चले जाने के बाद राजा के सबंधी आये और उन्होंने उसका दाहसंस्कार

बोले—"वत्स ! अन्त में प्रभु ने तुझे सद्बुद्धि दी। इससे मैं प्रसन्न हुआ हूँ। तेरे भाई की और तेरी दुर्बुद्धि से तेरे कुल का विनाश हुआ। आज यह विनाश इतने पर ही अटक गया। नहीं तो तेरे सारे कुल का संहार होने पर भी नहीं अटकता। राजन् ! मैं जाता हूँ। आज तुझे जो सद्बुद्धि आई है उसका पोषण करते रहना। और दूसरे की जो सम्पत्ति तेरे पास धरोहर के रूप में है उसका उपभोग करने से बचना। तुझे मालूम है कि इस वृत्ति का सेवन करनेवाले अन्तर मन को सिद्ध करते हैं और परमपद को पाते हैं। जा सुख से राज्य कर। तेरा कल्याण हो !"

इतना कहकर ऋषि घोड़े लेकर अपने आश्रम चले गये।

१६

बलि राजा

बलि राजा ने अश्वमेध यज्ञ का आरंभ किया था। एक समय था, जब देवराज इन्द्र ने बलिराजा का संपूर्ण तेज हर लिया था। दानवराज की अवस्था बहुत दयनीय हो गई थी। उस समय शुक्राचार्य और भृगुकुल के ब्राह्मणों ने बलिराजा में प्राण-संचार किया और उससे विश्वजित यज्ञ कराया। उसके बाद तो भृगुओं के प्रभाव से बलिराजा ने अग्नि से स्वर्णरथ प्राप्त किया; इन्द्र के घोड़ों के समान तेजस्वी घोड़े प्राप्त किये, रथ पर फहराने वाली ध्वजा, धनुष, बाण, तूणीर, दिव्य कवच आदि प्राप्त किये। पितामह ने उसे कभी न कुम्हलाने वाली पुष्पमाला दी और शुक्राचार्य ने शत्रुओं का कलेजा दहलानेवाला शंख दिया।

युद्ध की इन सारी सामग्रियों और महासागर की तरंगों के समान गरजनेवाली विशाल दानव सेना को लेकर बलि ने इन्द्र पर धावा बोल दिया। बलि की विशाल सेना को देखकर इन्द्रासन मानो डोलने लगा। नन्दनवन के समान स्वर्ग के वन और उपवन; मधु चूसकर मत्त हुए भ्रमरों के गुंजारव; फल और फूल के भार से झुके हुए स्वर्ग के वृक्ष; हंस, मोर, चातक, चक्रवाक के कलशोर से मनोहर स्वर्ग के जलाशय; सारे स्वर्ग-धाम चारों ओर खाई के समान दिखाई देनेवाली आकाशगंगा; नित यौवन से मदमाती अप्सराएँ; वहाँ के नृत्य और गीत; वहाँ के आनन्द और उल्लास वाले स्वर्ग पर एक बार फिर अधिकार करने की नीयत से राजा बलि ने देवी-देवताओं के कलेजों को फाड़ डालनेवाला घोर शंख-नाद किया।

बलि का शँखनाद सुनकर सारे स्वर्ग मे खलबली मचगई। अग्नि और वरुण, वायु और अश्विनीकुमार, इंद्र और इद्राणी, मेनका और रंभा, सभी स्वर्ग के चौक मे दौड़ आये—इन्द्र के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगी। उसने उदास मुँह से गुरु बृहस्पति से पूछा—"गुरुदेव ! मुझे डर लगता है कि इस बार शायद हमारे शत्रु का प्रयास सफल हो जायगा। बलि आज इतनी प्रचंड तैयारी करके आया है कि उसका सामना करना हम लोगो के लिए कठिन है। ऐसी स्थिति मे हमारे लिए क्याा उचित है, यह आप कृपा करके बताइए।"

देवराज इद्र के इन बचनो को सुनकर गुरु बृहस्पति बोले— "देव-राज ! तुम्हारा कथन यथार्थ है। जबकि विजय की आशा जरा भी नहीं है तब मात्र बहादुरी दिखाने के लिए युद्ध मे उतरना मेरे मन सिवा मूर्खता के और कुछ नही है। आज इन दानवों का सामना करने मे कोई सार नहीं है। अगर हमे जीवित रहना है तो, और आज नही तो भविष्य मे फिर कभी फिर स्वर्ग का उपभोग करना हो तो, आज अच्छा यही है कि सब एक बार स्वर्ग को नमस्कार करके उससे बिदाले। जब फिर देव की इच्छा होगी तब इन बनों और उपवनों में आकर स्वतन्त्रता का उप-भोग करेंगे। आज बलि के उदय का जमाना है। हमारे लिए रात्रि है। जब यह रात बीतेगी तब हमारा दिन होगा। रात और दिन का यह उतार-चढाव प्राणिमात्रके लिए सिरजागया है, सो हम उससे मुक्त कैसे रह सकते हैं?"

गुरु बृहस्पति के ये वचन सुनकर इन्द्र ने स्वर्ग सारा खाली किया और देवी-देवताओं को लेकर दूसरी जगह रहने लगा।

उसके बाद बलिराजा और दानवो ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया और उन्होंने एक बार फिर त्रैलोक्य पर अपना झंडा फहरा दिया। बलि के इस सारे ऐश्वर्य के पीछे भृगुकुल का हाथ था।

कौपीन पहनाया, स्वयं ब्रह्मा ने उनको कमंडलु दिया, सप्तर्षियों ने उनको कुश दी, सरस्वती ने उनको रुद्राक्ष की माला दी, कुबेर ने उनको भिक्षा-पात्र दिया, और जगन्माता उमा ने उनको शिक्षा दी।

वामन को दूर से ही आते देख बलि राजा उठ खड़ा हुआ और भृगु लोग उस ब्राह्मण के तेज से चकाचौंध होते दीख पड़े। यज्ञशाला में वामन के पदार्पण करते ही बलिराजा बोल उठा—"पधारिए बटु महाराज! आज मेरा अहोभाग्य है।"

वामन के और पास आने पर राजा ने उनको आसन दिया और अश्वमेध के पवित्र जल से उनका पाद-प्रक्षालन किया।

वामन के पैर धोते-धोते राजा बोला—"आज मेरा भाग्योदय हुआ लगता है। आपका उज्ज्वल देह देखकर ऐसा मालूम होता है मानो ब्रह्मर्षियों का तेज ही शरीरधारण करके यहाँ अवतरित हुआ है। आज मेरा सारा कुल पवित्र होगया। मेरी इक्कीस पीढ़ियाँ तर गईं। मेरा यज्ञ सफल हुआ। यह भूमि आपके चरण-स्पर्श से कृतार्थ हुई। महाराज! आप कुछ माँगना चाहते हैं, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। आज्ञा कीजिए, आपकी क्या इच्छा है? अन्न-पानी, सोना-चाँदी, राज-पाट, ढोर-डंगर, हाथी-घोड़े, हीरे-मानिक, आपकी जो इच्छा हो मांगिए। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की इच्छा हो तो वह भी मुझे बताइए।"

दानवराज के इन आदरसूचक शब्दों को सुनकर वामन बोले—"राजन्, तुम्हारा यह कहना तुमको शोभा देता है। तुमसे इसी प्रकार की आशा थी। ये भृगुलोग जिस राजा के ऋत्विज हों उसमें इसी प्रकार की आशा होनी चाहिए। तुम प्रह्लाद के पौत्र हो; तुम्हारे सारे कुल में कोई प्राणहीन पुरुष जन्मा ही नहीं। माँगनेवाले को देने का वचन देकर फिर न देना यह तुम लोगों ने जाना ही नहीं।"

बलि राजा और वामन की इस बातचीत के समय गुरु शुक्राचार्य दानवराज के पास ही बैठे थे। वामन ने जब संकल्प की बात कही तो वह तुरंत बोल उठे, "इसमे संकल्प की क्या बात है। बड़े-बड़े महाराज्य आपने दान कर दिये हैं तब संकल्प की बात नही उठी सो जरासी साढेतीन पाँव की धरती मे संकल्प हो यह कोई बात है ? दानवराज के शब्दो का बल संकल्प से कुछ कम है ? आपको वस्तु चाहिए। संकल्प से क्या करना है ?"

वामन ने जवाब दिया—"गुरुराज ! आप भूल करते हैं। बिना संकल्प का त्याग, त्याग नही होता। उसमें त्याग की सात्विकता नहीं होती। जिस त्याग के पीछे देनेवाले का बुद्धिपूर्वक निश्चय नही वह दान पवित्र नही होता। और मेरा जैसा ब्राह्मण ऐसा दान स्वीकार नहीं कर सकता। राजन् ! तुम्हारी इच्छा हो तो मुझे मेरा बताया हुआ सकल्प-शुद्ध दान दो। नही तो रहने दो। भगवान तुम्हारा कल्याण करे !"

वामन के इन वचनो को सुनकर दानवराज ने संकल्प के लिए पानी मँगाया। यह देखकर गुरु शुक्राचार्य बलि राजा से बोले—"राजन् ! यह मामला कुछ मेरी समझ मे नही आ रहा है। इस ब्राह्मण को जबसे देखा है तबसे मैं विचार मे पड़ गया हूँ। छोटा-सा कद, इतना प्रगल्भ तेज, इतनी सुन्दर और मनोहर वाणी, और क्षुद्र-सी माँग ! मेरे मन मे इन सबका मेल नहीं बैठता। इस छोटे-से शरीर और जरा-सी माँग के पीछे मुझे तो कुछ और ही अगम्य रहस्य मालूम होता है। मेरे मन मे ऐसा भासित होता है कि दानवों के ऊपर फिर कोई न कोई आफत आने वाली है। इसलिए, राजन्, मेरी विनती है कि आप इस दान-का संकल्प न करे।"

बलि राजा तुरत बोल उठे—"गुरु महाराज, मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या किसी भी शुभ संकल्प का परिणाम अशुभ होसकता है ? अगर मेरे

इसका खूब विचार कर लिया है। मैं इन ब्राह्मण को मना नहीं कर सकता। लाइए संकल्प के लिए पानी। मुहूर्त्त निकला जाता है।"

शुक्राचार्य की इतनी सारी बातों का राजा ने कुछ भी खयाल नहीं किया तो गुरु का क्रोध बढ़ आया। वह बोले—"राजन्! तुमने हमेशा मेरी बातों का आदर के साथ पालन किया है, पर आज न जाने किस कारण से मेरी बातों की अवगणना कर रहे हो। मुझे ऐसा लगता है कि अब दानवो के पतन के दिन आगये। राजन्, याद रखना; मेरी बात मिथ्या नही हो सकती। तुम मेरी बातों की अवहेलना करने के कारण नरकगामी होओगे और दानवो का सत्यानाश होगा।"

गुरु के तथा अपने दूसरे बन्धुओं के ऐसे वचनों और अनबोले विरोध को देख-सुनकर बलि अपने संकल्प को पूरा करने मे और भी दृढ़ होगया।

संकल्प का जल राजा की हथेली से नीचे गिरा न गिरा कि वामन देवता का देह अधिकाधिक बड़ा होने लगा। एक क्षण पहले जो बित्तेभर का था वह देखते इतना बड़ा होगया कि उसके सारे अंग चारों दिशाओ मे फैल गये—बलि राजा को वामन की जगह भगवान के विराट् स्वरूप का दर्शन हुआ। पृथ्वी, आकाश, दिशाएं, गुफाएं, सागर, चन्द्र-सूर्य, पर्वत सब कुछ वामन बटुक के विराट् देह मे दिखाई देने लगे और ऐसा होगया कि बलि राजा अपने चारों ओर वामन के देह के सिवा और कुछ देख न पाता था।

इन विराट् वामन के पहले पैर से सारी पृथ्वी घिर गई। उसकी बाहुओं से सारी दिशाएं व्याप्त होगईं और पर्वत, वन, सागर, उपवन, सभी एक ही पैर मे समा गये। उसके बाद वामन ने दूसरे पैर से स्वर्ग रोक लिया और तीसरे पैर मे सारा अन्तरिक्ष आगया।

धरती देने का जो संकल्प किया था उसमें तीन पॉव में तो मैने तीन लोक—स्वर्ग, पृथ्वी और अंतरिक्ष को ले लिया। अब चौथे पॉव के लिए जगह नही है। तुमने वचन साढे तीन पॉव का दिया, पर आधे पैर के लिए तो स्थान ही नही है। यह आधे पैर पृथ्वी न दोगे तो तुम्हारे लिए नरक मे स्थान होगा और जगत मे अपकीर्ति होगी। जबतक तुम मुझे आधे पाव धरती नही दोगे तबतक तुम्हारी इस पाश से मुक्ति नही हो सकेगी।"

वामन के वचन सुनकर बलि बोला—"भगवन्! न तो मुझे नरक का डर है, न बंधन का डर है, और न लोकापवाद का भय है। मुझे अगर किसी बात का डर है तो वह इसका है कि आपकी कृपा न खो दूं। आज आपने साढ़े तीन पॉव की मॉग करके मेरे पास जो कुछ था वह सब ले लिया। यह मैं अपने ऊपर आपकी बड़ी कृपा ही समझता हूॅ। मेरे ये भाई-बंधु चाहे जो समझते हो, पर प्रभु! मैं तो अपने भाव सच-सच ही आपको बताता हूॅ। जिसपर आपकी सपूर्ण दया होती है उसीका आप सर्वस्व ले लेते हैं। आप मेरा सर्वस्व जबतक ले न लें तबतक मेरे अन्तर मे आपके लिए जगह कहॉसे होसकती है? हे अंतर्यामी! मैं अपने वचन से पीछे फिरनेवाला नही हूॅ। आप अपना चौथा पैर मेरे सिर पर रखे तो मैं अपनेको कृतार्थ समझूॅगा। आपने मेरे दिल में से तीनो लोक तो ले लिये। अब चौथा पैर मेरे सिरपर रखे ताकि वहॉ कही छिपा हुआ अभिमान पड़ा हो तो वह भी निकल जाय और मैं कृत्य-कृत्य होऊॅ।"

बलि के इस प्रकार कहने पर वामन ने बलि के सिर पर अपना पैर रखा और बोले—"राजन्, यह लो मेरा चौथा पैर।"

प्रभु के चरण को अपने सिर पर अनुभव करता बलि राजा बोला—"महाराज! जिस चरण को अपने सिर पर प्राप्त करने मे ब्रह्मादि देव कभी ही भाग्यशाली होते हो, जिस चरण को स्पर्श करने के लिए मुनि-

तुम पाताल मे रहोगे तब तक इस वामन-रूप में तुम्हारे दरवाजे पर खड़ा रहूँगा, यही समझना। तुम पाताल के राजा और मैं तुम्हारा द्वारपाल। तुम नही जानते कि मैं तो तुम जैसे त्यागी जीवो की ही खोज करता फिरता हूँ। तुम जैसों के चरणो की रज से अपनेको भी पवित्र बनाता हूँ। तो बलि राज, अब मुझे छुट्टी दो।"

इतना कहकर वामन पहले के समान ठिंगने क़द के होगये और यज्ञ मे बैठे शुक्राचार्य से बोले—"आचार्य! इस यज्ञ मे कही न्यूनाधिक दोष रह गये हों तो उन्हें पूर्ण करो जिससे यज्ञ की समाप्ति हो।"

शुक्राचार्य ने उत्तर दिया—"प्रभो! यज्ञस्वरूप आप ही जहाँ उपस्थित हो वहाँ न्यूनाधिकता कहाँसे होगी? और हो भी तो वह मानी नही जायगी। यज्ञ तो आपका अर्चन है। आपने स्वयं पधार कर यजमान को कृतार्थ किया। इसलिए यज्ञ तो पूर्ण हो ही गया। भगवन्, हम आपको पहचान नही सके इसलिए क्षमा कीजिएगा।"

यह कहकर शुक्राचार्य तथा अन्य भृगुओ ने खड़े होकर वामन भगवान को प्रणाम किया। सबको आशीर्वाद देकर वामन यज्ञभूमि से विदा हुए और बलि राजा दानवो के सहित पाताल मे निवास करने लगा।

'भन्ते ! स्थान आपने देखा था ?'

'हाँ, उपासिके ।'

'भन्ते ! क्षमा करें, वहाँ के विषय मे भिन्न-भिन्न मत भिक्षुओ ने प्रकट किये है ।'

'आयुष्मानो ने क्या विरोधी बाते कही थी ?'

'भन्ते ! किसी ने कहा, 'स्थान कँटीला है । दुर्गम है ।' किसी ने कहा, 'स्थान अत्यन्त रमणीय है ।'

'उपासिके ! ग्राम हो, वन हो, जहाँ भी, किसी अवस्था मे, अर्हत विहार करते है वह स्थान सर्वत्र रमणीय होता है ।'

× × ×

एक समय रेवत अपने ग्राम मे पहुँचे । उनकी तीन बहिने थी । उनके नाम चाला[४], उपचाला तथा शिशूपचाला थे । उनके तीन पुत्र थे । उनके नाम क्रमश चल, उपचल तथा शिशूपचल थे । उन्हे भी उसने भिक्षु बना दिया । कालान्तर मे चाला, उपचाला तथा शिशूपचाला भी प्रव्रजित हो गयी ।

× × ×

एक समय खदिर वनिय रेवत बीमार पडे । सारिपुत्र ने कनिष्ठ भ्राता की बीमारी का समाचार सुना । भ्राता को देखने चले । खदिर वनिय ने ज्येष्ठ भ्राता को दूर से आते देखा । तीनो भाजो से कहा

'ओ ! चल !! उपचल !!! शिशूपचल !!!! स्मृतिमान हो । ध्यान रखो । अपने को रक्षित रखो । जो आ रहा है । वह बाल-भेदी है ।'

तीनो भगिनो ने सारिपुत्र का स्वागत किया । नतमस्तक उनकी अभ्यर्थना की । अभिवादन किया । वन्दना की । उन्हे खदिर रेवत के पास लाये । सहोदर भ्राताओ का मिलन अपूर्व था । अतुलनीय था ।

सारिपुत्र ने भानजो से सस्नेह पूछा ·

'प्रसन्न हो ?'

४—चाला, उपचाला, शिशूपचाला इनका वर्णन थेरी गाथा क्रम सख्या ५९, ६० तथा ६१ मे किया गया है । इनके किंचित् उदानो की क्रमसंख्या १६२-१८८, १८९-१९५-१८८ तथा १९६-२०३ है ।

श्रावस्ती में विशाखा का निवास स्थान था। दोनो भिक्षु विशाखा के यहाँ यवागू ग्रहण करने गये। विशाखा ने उनका पूरा सत्कार किया। यवागू देकर जिज्ञासा की

'भन्ते ! आर्य रेवत के स्थान पर गये थे ?'

'हाँ ! भगिनी।'

स्थान कैसा था भन्ते ?'

'खदिर वन था।'

'रुचिकर था ?'

'आह ! काँटो से भरा था। दुर्गम था। उपासिके !'

× × ×

विशाखा ने अन्य भिक्षुओ को भिक्षा निमित्त आमन्त्रित किया। उसने जिज्ञासा की।

'भन्ते ! आप तथागत के साथ खदिर वनिय रेवत के विहार स्थान पर गये थे।'

'हाँ उपासिके !'

'स्थान देखा था भन्ते !'

'हाँ उपासिके !'

'स्थान कैसा था आयुष्मन् ?'

'उपासिके ! वर्णनातीत है। वह तो सुधर्मा के देव सभा तुल्य प्रतीत होता था।' विशाखा चकित हुई। एक ही स्थान के विषय में दो विपरीत बातें मालूम हुई।

× × ×

कुछ समय पश्चात् भिक्षुसघ के साथ भगवान् का विशाखा के निवास-स्थान पर आगमन हुआ। विशाखा ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। भगवान् भिक्षुसघ के साथ आसन पर बैठ गये। विशाखा एक ओर बैठ गयी। सुअवसर देखकर विशाखा ने निवेदन किया :

'भन्ते ! आपका शुभागमन आर्य रेवत के स्थान पर हुआ था ?"

'हाँ, उपासिके।'

तथा सारिपुत्र के दर्शन निमित्त आते रहते थे। एक समय वे नगर के समीप एक वन मे ठहर गये।

नगर मे एक बडी चोरी हुई थी। चोर सामान लेकर भाग रहे थे। राज कर्मचारियो को पता लगा। उन्होने चोरो का पीछा किया। चोर सामान के साथ जान बचाकर भाग नही सकते थे। अतएव खदिर वनिय, जिस वन मे ठहरे थे वही सामान फेककर भाग गये। पीछा करते हुए सैनिक वहाँ पहुँचे। चोरी का सामान पडा देखा। उन्होने रेवत से पूछा—'सामान कहाँ से आया है।' रेवत ने अनभिज्ञता प्रकट की। सैनिको को सन्देह हो गया। रेवत को बन्दी बना लिया।

× × ×

राजा ने रेवत से प्रश्न किया। खदिर वनिय रेवत ने अपने को अनेक पदो मे निर्दोष प्रमाणित करने का प्रयास किया। प्रश्नोत्तर काल मे उसने राजा को धर्म का ज्ञान करा दिया। अपने भापण के अन्तिम-काल मे वह आकाश मे पद्मासन लगाकर बैठ गया। उसके शरीर से स्वत अग्निशिखा निकली। और वह भस्म हो गया।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे चौदहवाँ स्थान प्राप्त मगध नालक ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न खदिर वनिय रेवत अरण्यको मे अग्र हुए।

आधार ग्रन्थ :

मुनि सुत्त

सम्मुजनि .

धम्मपद दाह कथा · ७-९

थेर गाथा . ४२ उदान ९९०-९९१

'भन्ते ! कृपा है।'

'किस विहार मे विहार करते हो ?'

'एक विहार मे।'

सारिपुत्र ने अपने भगिनियो को शिक्षा देते हुए कहा

'मेरे कनिष्ठ भ्राता ने तुम लोगो को धर्म सम्बन्धी छोटी बातो को समझाया है।'

भागिनेय तूष्णी हो गये। और सारिपुत्र कनिष्ठ भ्राता का कुशल-मगल पूछने लगे। वे आसन पर बैठ गये। अपने भाई का वन निवास देखकर सारिपुत्र ने कहा

'रेवत ! ग्राम मे, अथवा, वन मे, ऊँचे अथवा नीचे स्थान मे जहाँ अर्हत विहार करते हैं वह भूमि रमणीय है। रमणीय वन मे सर्वसाधारण व्यक्ति रमण नही करते। वहाँ रमण करते है वीतराग, कामभोगो की इच्छा न करने वाले।'

× × ×

खदिर वनिय को एकान्त प्रिय था। एक समय अतुल भिक्षु ने सुना। खदिर वनिय श्रावस्ती मे आये थे। वह पाँचसौ भिक्षुओ के साथ उनके पास पहुँचा। उनकी वन्दना कर निवेदन किया

"आयुष्मान् ! हमे उपदेश दे।"

"उपदेश—?"

"हाँ ! हम इसी प्रयोजन से आये है।"

' नही आवुस ! मै एकान्त प्रिय हूँ। मै उपदेश नही देता।"

× × ×

खदिर वनिय का एकान्त सेवन कभी-कभी भ्रम उत्पन्न कर देता था। उन्हे लोग आलसी मान लेते थे। भिक्षु म्मुजनि झाड़ू लगाते थे। सर्वदा देखते थे। रेवत पद्मासन लगाये बैठे रहते थे। उन्होने रेवत को आलसी समझा। रेवत ने उनके मन की बात जान ली। उनका भ्रम दूर किया।

× × ×

रेवत खदिर वन मे विहार करते थे। समय-समय पर वे भगवान्

स्वागत अन्तर्ध्यान हो गये थे। पुन प्रकट हुए। मुखियो तथा सोण के विस्मय की सीमा न रही।

वे विहार की छाया मे स्वागत के साथ चले। भगवान् का दर्शन किया। अभिवादन किया। एक ओर वैठ गये। मुखिया स्वागत के चमत्कार से प्रभावित थे। उसे ही भगवान् की अपेक्षा अधिक ध्यान देकर देखते थे। भगवान् मुखियों के मन की बात समझ गये। भगवान् ने स्वागत से कहा

'स्वागत! आगत लोगो को तुम अपनी दिव्य शक्ति से और प्रातिहार्य दिखाओ। वे उसे देखकर प्रसन्न होगे।'

'अच्छा भन्ते!'

× × ×

आयुष्मान् स्वागत आकाश मे उड गये। वहाँ वे जघा विहार करने लगे। खडे हो जाते। वैठ जाते। सो जाते।

आगत मुखिया और स्वर्ण विस्मयापन्न विस्फारित नेत्रो से आकाशगामी स्वागत का चमत्कार देखकर चकित होने लगे।

स्वागत ने और अद्भुत कार्य किये। आकाश मे उनके शरीर से धुआँ निकलने लगा। तत्पश्चात् वे जल उठे। आकाश मे प्रज्वलित अग्निशिखा दिखाई देने लगी। वह आकाश मे देखते-देखते लोप हो गये। स्वागत अचानक भगवान् के सम्मुख प्रकट हो गये। उनके चरणो पर मस्तक रख दिया। वन्दना की·

'भन्ते! आप मेरे शास्ता है। मै आपका श्रावक हूँ।'

मुखियो ने स्तम्भित होकर स्वागत को देखा। उन्हे बोध हुआ। जिसका शिष्य इतना प्रतिभाशाली ऋद्धि सम्पन्न है, वह स्वय कितने शक्तिशाली होगे। उन्होने श्रद्धा के साथ भगवान् को प्रणाम किया।

× × ×

भगवान् भद्दवतिका[२] में गये। वहाँ स्वागत भगवान् के साथ थे।

२—भद्दवतिका यह भद्दवतिका किंवा भद्दावती कसवा था। कौशाम्बी के समीप था। कौशाम्बी और इसका सम्बन्ध एक सडक से जुडता था। मायावती का पति भद्दवतिय श्रेष्ठी यहाँ का निवासी था। मायावती से कौशाम्बी नरेश उदयन ने विवाह किया था। एक मत है कि यह चेदि राज्य मे था।

सागत (स्वागत)

स्वागत भगवान् के उपस्थाक थे। आनन्द के उपस्थाक होने के पूर्व भगवान् के अनेक भिक्षुगण उपस्थाक हुए थे। उनमे नागित, उपवाण, सुनक्षत्र, चुन्द, श्रमणोद्देश, राघ, मेघिय और कभी सागत किवा स्वागत उपस्थाक का कार्य कर दिया करते थे

× × ×

आयुष्मान् स्वागत भगवान् के उन दिनो उपस्थाक थे। गृध्रकूट[1] पर्वत पर स्वागत थे। विम्बसार ने अस्सी हजार मुखियो तथा सोण कोटि विश को भगवान् के उपदेश श्रवणार्थ भेजा था। ये गृध्रकूट पर्वत पर स्वागत के पास आये। उन्होने भगवान् के दर्शन की आकाक्षा प्रकट की। स्वागत ने प्रसन्नतापूर्वक कहा .

'सौम्य ! आप लोग मुहूर्त मात्र यहाँ ठहरे।'

'क्यो ? आयुष्मान् !'

'मै भगवान् से पूछ आऊ भणे !'

स्वागत उनके सम्मुख अर्द्धचन्द्र पापाण मे लुप्त हो गये। भगवान् के सम्मुख प्रकट हुए। निवेदन किया

'भन्ते ! अस्सी हजार मुखिया भगवान् के दर्शन निमित्त आये है।' आपके दर्शनेच्छु है।'

'आवुस ! विहार की छाया मे आसन लगा दो।'

'अच्छा भन्ते।'

× × ×

१—गृध्रकूट, गृद्धकूट पर्वत · राजगृह मे एक पर्वत है । इसका शिखर गृद्ध तुल्य है। अतएव इसकी संज्ञा गृद्धकूट पर्वत पड गयी। भगवान् ने यहाँ वहुत विहार तथा उपदेश दिया है।

दया प्रदर्शित कर रहे थे। कुछ ईर्ष्यालु उसकी ईर्ष्या के कारण प्रसन्न हो रहे थे।

भगवान् ने एकत्रित भिक्षुओ को स्वागत की दर्शनीय अवस्था इगित करते हुए मद्यपान से उत्पन्न होने वाले उत्पातो की तरफ ध्यान आकर्षित किया। उन्हे चेतावनी दी। मद्यपान के कारण स्वागत जैसा ऋद्धि-सम्पन्न साधक अचेत हो सकता है। विक्षिप्त हो सकता है। सयम खो सकता है। उन्होने उस दिन यह नियम बना दिया भिक्षु श्रावक-श्राविका एव उपासक-उपासिका के लिये मद्यपान वर्जित रहेगा।

× × ×

दूसरे दिन स्वागत को होश आया। उसे सब घटना मालूम हुई। वह अत्यन्त दु खी हुआ। पश्चात्ताप करने लगा।

भगवान् के सम्मुख नत-मस्तक लज्जित आया। अपराधो का ज्ञान हुआ। भयकर भूल का ज्ञान हुआ। मद्यपान के दोष का ज्ञान हुआ।

भगवान् का उसने अभिवादन किया। वन्दना की। अपने अपराधो के लिए क्षमा याचना की। पश्चात्ताप किया। भगवान् उस पर क्रोधित नही हुए। उसे कटु वचन नही कहे। उसे आसन दिया। बैठने का सकेत किया। स्वागत एक ओर बैठ गया। उसके विमल चक्षु खुले। अन्तर्ज्ञान हुआ। कालान्तर मे अर्हत्व प्राप्त किया।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे उनतालीसवॉ स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती ब्राह्मण कुलोत्पन्न सागत तेज धातु कुशलो मे अग्र हुए।

●

आधार ग्रन्थ :

विनय पटक महावग्ग ५ १ १

सुरापान जातक

थेर गाथा मे स्वागत का उल्लेख नही मिलता। अपदान मे कुछ स्वागत द्वारा कहे गये पदो का उद्धरण मिलता है।

भद्दवतिका के समीप जटिल साधुओ का एक आश्रम था। अम्बतित्थ[२] मे था। उसमे एक महा विषधर सर्प रहता था। भगवान् को वहाँ आते लोगो ने देखा। नाग से सावधान रहने की चेतावनी दी।

स्वागत महा ऋद्धिसम्पन्न थे। नाग स्थान पर चले गये। वही निवास करने लगे। नाग क्रुद्ध हुआ। परन्तु स्वागत के ऋद्धि बल के कारण कुछ बिगाड नही सका। स्वागत नाग पर विजय प्राप्त कर अम्बतित्थ लौट आये।

× × ×

भगवान् कौशाम्बी गये। स्वागत भगवान् के साथ थे। स्वागत के ऋद्धि बल एव चमत्कार की प्रसिद्धि देश मे फैल चुकी थी। उनके आगमन की बात बिजली की तरह जनपद मे फैल गयी। उपासक, नर-नारी, समूह के समूह, उन्हे देखने आने लगे। उन्होने स्वागत से जिज्ञासा की। उनके कुछ उत्तर नही दिया। शान्त रहे। किन्तु छब्बगिय ने सुझाव दिया। स्वागत के लिए एक श्वेत कापोलिका का प्रबन्ध अविलम्ब किया जाय।

× × ×

कौशाम्बी मे दूसरे दिन स्वागत भिक्षाचार निमित्त गये। लोग उन्हे देखने निकल पडे। अनेक प्रकार से प्रसन्न करने का प्रयास किया। अनेको ने उन्हे आमन्त्रित किया। स्वागत को लोगो ने भोजन के साथ ही मादक पेय का सेवन करा दिया। वे इतना अधिक पी गये थे कि नगर के बाहर विहार के द्वार पर पहुँचते-पहुँचते शराबियो के समान लुढक गये।

मद्यपावस्था मे स्वागत को कुछ ज्ञान नही हुआ था। भिक्षुओ ने उसे देखा। उठाकर विहार मे लाये। उसका मस्तक बुद्ध के चरणो पर रखा। परन्तु वह नशे मे इतना चूर था कि भगवान् की तरफ पाव करके पड़ रहा।

भगवान् को स्वागत पर दया आयी। उन्होने एकत्रित भिक्षुओ की ओर देखा। कुछ उनमे स्वागत का उपहास कर रहे थे। कुछ उस पर

२—अम्बतित्थ : कोशाम्बी के समीप एक भद्दवती अथवा भद्दवतिका कसवा था। अम्बतित्थ स्थान भद्दवतिका मे था।

धनिय अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने देखा। एक ही रात के बुद्ध शासन और उपदेश मे एक व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर लेता था। दु ख से मुक्ति पाता था। पुनर्जन्म से छूट जाता था। उसने निश्चय किया। वह प्रव्रज्या लेगा। उसने प्रव्रज्या ली। किन्तु वह खपडा बनाता रहा।

तथागत राजगृह मे गृद्धकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। वहाँ अनेक सौम्रान्त भिक्षु ऋषि गिरि के पार्श्व मे तृणकुटी बनाकर वर्षावास करते थे।

आयुष्मान् धनिय कुम्भकार का पुत्र था। उसने भी तृणकुटी[२] बनायी। वर्षावास करने लगा। वर्षावास के पश्चात् भिक्षुओ ने कुटी उजाड दी। जनपद मे चारिका निमित्त चले गये।

धनिय वर्षा, हेमन्त तथा ग्रीष्म तीनो ऋतुओ मे उसी कुटी मे निवास करता था। वह पिण्डपात निमित्त ग्रामो मे जाता था। उसकी अनुपस्थिति

राजा ने एक चौडे स्वर्ण पत्र पर त्रिरत्न तथा अष्टाग मार्ग सति पत्थानादि खुदवा कर भेज दिया। एक शोभायात्रा के साथ स्वर्णपत्र विम्बसार की राज सीमा के बाहर तक हाथी पर पहुँचाया गया।

पुक्कुसाति ने स्वर्णपत्र पर अकित बुद्ध उपदेश पढा और राज त्याग दिया। अकेला राज्य से निकला। वह १९२ योजन की यात्रा कर श्रावस्ती पहुँचा। बिम्वसार के पत्र मे लिखा था कि भगवान् राजगृह मे थे। वह जेतवन मे जाँच भी नही किया कि भगवान् वहाँ थे या नही। राजगृह की ओर प्रस्थान किया। वह ४५ योजन और चलकर राजगृह पहुँचा। पुक्कुसाति ने कुम्भकार के घर मे आश्रय लिया। समय पर भगवान् स्वय वहाँ आये। उसे उपदेश दिया।

२—कुटी : कुटी निर्माण की एक वैज्ञानिक प्रक्रिया वहाँ दी गयी है। पक्के ईंटो की कुटी वनायी जाती है। कि वह पानी मे गल न सके। मजबूत वनी रहे। और नोना न लगे। यहाँ पर धनिय ने कच्ची मिट्टी की कुटी बनाया। कच्ची ईंट तथा मिट्टी का कच्चा बरतन जैसे आवा मे पकाया जाता है। उसी प्रकार सारी कुटी धनिय ने एक विशाल आवा बनाकर पका डाला था। इसका अनुसन्धान तथा प्रयोग करना चाहिए। यह वर्णन तर्क सम्पन्न मालूम पडता है।

धनिय

धनिय ने राजगृह मे एक कुम्भकार के घर जन्म लिया था। उसका नाम धनिय रखा गया था। वह कुम्भकार शिल्प मे पटु हो गया था।

एक समय तथागत धनिय के घर आये। वहाँ[1] पुक्कुसाति बीमार पडे थे। भगवान् ने पुक्कुसाति को धातु विभग सुत्त का उपदेश दिया। उस उपदेश को सुनकर पुक्कुसाति ने अर्हत पद प्राप्त किया। उसका निर्वाण हो गया।

१—पुक्कुसाति पुक्कुसाति युवक परिव्राजक था। राजगृह के कुम्भकार के गृह अतिथिशाला मे वह ठहरा था। भगवान् का वहाँ आगमन हुआ। भगवान् ने अतिथिशाला मे रहने के लिए कहा। पुक्कुसाति तैयार हो गया। भगवान् के साथ अतिथिशाला मे रह गया। भगवान् को वह नही जानता था। भगवान् ने उसे धातु विभग सुत्त का उपदेश दिया। उपदेश के अन्त में भगवान् को पुक्कुसाति ने पहचाना। भगवान् से न जानने के लिए क्षमा माँगी। उसने उपसम्पदा देने की प्रार्थना की। भगवान् ने उसे एक भिक्षापात्र तथा चीवर लाने के लिए कहा। मार्ग मे एक गाय ने उसे पटक दिया और वह दिवगत हुआ। भगवान् ने पूछने पर कहा कि उसे निर्वाण प्राप्त हुआ है।

बुद्धघोप ने पुक्कुसाति का एक लम्बा वर्णन किया है। वह तक्षशिला के राजा थे। विम्वसार के समकालीन थे। सम आयु थे। व्यापारियो के द्वारा दोनो राजाओ मे स्वस्थ सम्वन्ध स्थापित हो गया था। दोनो राजाओ ने एक दूसरे को नही देखा था। तथापि स्नेह हो गया था। एक समय पुक्कुसाति ने आठ अमूल्य वस्त्र राजा विम्वसार के पास भेजा। विम्वसार ने राजसभा मे पूरे सम्मान के साथ उसे स्वीकार किया।

वदले मे राजा विम्वसार ने कुछ भेजने का विचार किया। कुछ जँचा नही। अन्त मे यही निश्चय किया कि 'त्रिरत्न' पुक्कुसाति के पास भेजा जाय।

'आवुसो ! आप इसे क्यो नष्ट करते है ?'

'तथागत की आज्ञा है।'

'आवुसो ! इसे नष्ट कर दे यदि तथागत की यही इच्छा है।'

तृणकुटी नष्ट हुई। मृत्तिका कुटी नष्ट हुई। धनिय ने विचार किया। दारु कुटी बनायी जाय। उसने निश्चय किया। काष्ठ कुटी की वह रचना करेगा।

दारु गृह का राजगणक धनिय का परिचित था। उसने गणक से निवेदन किया ·

'आवुस ! मै कुटी बनाना चाहता हूँ। मुझे लकड़ी चाहिए।'

'भन्ते !' गणक ने कहा। 'यहाँ राजकीय काष्ठ हैं। मै कैसे दे सकता हूँ।'

'इनका क्या उपयोग यहाँ है ?'

'भन्ते ! नगर की मरम्मत के लिए रखे गये है।'

'कौन देगा ?'

'राजा के आदेश से मिल सकेगा।'

'आवुस !' धनिय ने कहा, 'राजा ने हमे दे दिया है।'

गणक विचारशील हो गया। 'वह धनिय को मिथ्याभाषी नही कह सकता था। उसने समझा। 'भिक्षु धर्मचारी है। समचारी है। ब्रह्मचारी है। सत्यवादी है। शीलवान है। राजा इस पर प्रसन्न है। यह अदिन्न को दिन्न नही कह सकता।' उसने धनिय से कहा :

'भन्ते ! आपकी बात का विश्वास है। ले जाइये।'

धनिय ने काष्ठ लिया। उन्हे कटवाया। गाड़ियो से ढुलाकर ले गया। उन काष्ठो से कुटी की दिवाल बनायी।

× × ×

मगध का महामात्य वर्षकार ब्राह्मण था। वह राजगृह आया। कर्मान्तो का निरीक्षण करने लगा। दारुक गृहगणक के गोदाम पर पहुँचा। उसने काष्ठ नही पाया। गणक से पूछा .

'राजकीय कार्य के लिए यहाँ काष्ठ रखे गये थे ?' वे कहाँ गये ?'

का लाभ उठाकर, तृण हारिणियाँ तथा काष्ठ हारिणियाँ ने तृणकुटी को उजाड दिया। तृण तथा काष्ठ लेकर चली गयी।

उसने पुन. तृणकुटी बनायी। उसकी भी वही दुर्दशा हुई। उसकी कुटी पुनः उजड गयी। तृण तथा काष्ठ लुप्त हो गये। तीसरी बार उसने पुन अपनी कुटी बनायी। इस बार भी उसकी वही दशा हुई।

धनिय विचार करने लगा। इस प्रकार कब तक वह कुटी बनाता रहेगा। कब तक कुटी बिगडती रहेगी। उसने निश्चय किया। अपनी शिल्प कला का परिचय कुटी निर्माण मे देगा। कर्म से कुम्भकार था। अतएव उसे मिट्टी का ज्ञान था।

उसने मिट्टी का मर्दन किया। मिट्टी की कुटी बनायी। तृण, गोबर, लकडी एकत्रित की।

सारी कुटी को आवा रूप मे परिणत कर दिया। ‹आवा मे पकते कच्चे बर्तन की तरह कुटी भी पक गयी। वह सफल कुम्भकार साबित हुआ।

कुटी पक जाने पर लाल रग को हुई। उसका रग वीरवहूटी की तरह था। मिट्टी के बर्तन ठोकने पर जैसे किकणी जैसा शब्द होता है। उसी प्रकार उस कुटी के ठोकने पर शब्द होता था।

भगवान् ने गृद्ध कूट से उतरते समय कुटी देखी। जिज्ञासा की

'भिक्षुओ! यह वीरवहूटी तुल्य क्या है?'

'भन्ते! यह धनिय भिक्षु की कुटी है।'

भगवान् पर्णकुटी के स्थान पर पक्की सुन्दर कुटी देख कर बोले

'भिक्षुओ! यह श्रमण आचरण के विरुद्ध है। अकरणीय है। उस मोघ धनिय ने सर्व प्रथम मृत्तिका मय कुटी बनायी है। उसे पकाया है। भिक्षुओ! कुटी को तोड दो। भिक्षुओ को सर्व मृत्तिकामय कुटी नही बनानी चाहिए।'

'भन्ते! आज्ञा।'

भिक्षु कुटी को नष्ट करने लगे। आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्र वाहर से आया। अपनी कुटी को नष्ट होती देखकर, भिक्षुओ को सम्बोधित किया :

'भणे ! मैने आपको राजकीय काष्ठ दिया था ?'

'किन्तु काष्ठ मैंने लिया था।'

'दिया मैने था।'

'यह कैसा अन्याय ?'

'अपराध मैंने किया। बिना राजाज्ञा के आपको दे दिया।'

'तुम्हारा अपराध नही है ! गणक मे भी चलता हूँ।'

'भन्ते ! मेरे वहाँ पहुँचने के पूर्व पहुंच जाना ?'

'समझता हूँ।'

× × ×

धनिय राजा विम्वसार के यहाँ पहुँचा। धनिय ने गणक को वन्दी वनाये जाने की वात उठाई। राजा ने गम्भीरता पूर्वक कहा .

'भन्ते ! मैने राजकीय काष्ठ आपको दिया है ?'

'हॉ राजन् !'

'सत्य ?'

'हॉ राजन्।'

राजा स्मरण करने लगा। उसे कुछ याद नही आया। उसने विनय पूर्वक कहा

'भन्ते ! राजकार्य वहुकृत्य होता है। वहुत वाते स्मरण नही रहती।'

'स्वाभाविक है राजन् !'

'भन्ते ! क्या मुझे कृपया स्मरण दिलायेगे। मैंने कव उन्हे दिया था ?'

'राजन् ! प्रथम अभिषेक के समय आपने कहा था—'श्रमण, ब्राह्मणो को तृण, जल, काष्ठ देता हूँ। वे उसका परिभोग करे।'

'भन्ते !' राजा ने मुसकरा कर कहा, 'श्रमण और ब्राह्मण। लज्जालु होते है। उन्हे किंचित् बात मे भी सन्देह उत्पन्न हो जाता है। इस दृष्टि से मैने कहा था। जगल मे जिस तृण, काष्ठ, उदक का कोई स्वामी नही है। उसका वे उपयोग करे।'

'राजन् !'

'उसे धनिय भिक्षु ले गये।'

'गणक' महामात्य ने कहा, 'वे नगर की मरम्मत के लिए रखे गये थे। आपत्ति काल के लिए रखे गये थे।'

'महामात्य! देव ने उन्हे धनिय कुम्भकार को दे दिया।'

'यह कैसे हुआ?' महामात्य वर्षकार[3] कुपित हुआ। 'कैसे राजा ने नगर निमित्त रखे काष्ठ को धनिय को दे दिया?'

'वह तो राजा जाने स्वामी?'

'वही जाता हूँ।'

महामात्य चिन्तित राजा के पास चला।

× × ×

'राजन्!' महामात्य बोला, 'आपने कृपाकर क्या नगर की मरम्मत के लिए रखी राजकीय लकड़ियाँ धनिय को दे दी है?'

'नही तो?' राजा चकित हुआ।

'दारु गृह गण ने कहा है?'

'क्या कहा है?'

'देव की आज्ञा थी। काष्ठ धनिय को दिया जाय। अतएव आपत्ति काल के लिए रखा काष्ठ गणक ने धनिय को दे दिया।'

'नही, मैने कभी आज्ञा नही दी थी।'

राजा ने ठहर कर कहा

'गणक को राजाज्ञा दो।'

'देव की आज्ञा।'

महामात्य ने दारुगृह गणक की गिरफ्तारी की आज्ञा दी।

× × ×

'गणक! यह क्या?' धनिय ने गणक को वन्दियो की तरह जाते देख कर आश्चर्य किया।

३—वर्षकार . राजा विम्वसार का अमात्य

'मोघ पुरुष ! तुमने अयोग्य, अकरणीय कार्य किया है।'

धनिय का मुख लटक गया। भिक्षुओ की दृष्टि उस पर केन्द्रस्थ हुई। भगवान् ने कहा

'मोघ पुरुष ! राजकीय अदत्त काष्ठ को तुमने कैसे लिया है ?'

धनिय लज्जित था। भिक्षुओ की आँखे चमक उठी। भगवान् ने कहा :

'मोघ पुरुष ! जो हमसे अप्रसन्न है, उन्हे प्रसन्न करने के लिए यह नही किया गया है। जो प्रसन्न है, उनकी प्रसन्नता की इससे वृद्धि नही हुई है।'

भिक्षुगण चिन्तित हो गये। सभी की अप्रतिष्ठा हुई थी। धनिय अपने आप मे गडता जा रहा था। भगवान् ने कहा

'मोघ पुरुष ! तुम्हारे इस कार्य से जो लोग हमसे अप्रसन्न है। उन्हे अप्रसन्न किया है। जो हमसे प्रसन्न है। उन्हे विपरीत किया है।'

तथागत कहकर चुप हो गये। भिक्षु सघ नीरव था। धनिय अति लज्जित था। भगवान् के पार्श्व मे एक परिव्राजक बैठा था। वह पूर्वकाल मे व्यवहार अमात्य अर्थात् न्यायाधीश का कार्य करता था। उस भिक्षु से भगवान् ने पूछा

'आवुस ! कितने अपराध के लिए तस्करो को पकडकर बन्दी बनाया जाता है। ताडित किया जाता है। देश निकाला किया जाता है।'

'पाद[४] के बराबर भूल होने पर ही दण्ड दिया जाता है।'

'उससे कम करने वाला ?'

'वह अदण्डनीय है।'

'भिक्षुओ ! जितने अदत्त दान से राजा दण्ड दे सकता है, उतने अदत्त दान के आदान से भिक्षु पाराजिक अर्थात् (साथ मे रहने योग्य) होता है।'

४—पाद उस समय राजगृह मे बीस माशा का एक कार्षापण होता था। उसके चौथे भाग को पाद कहा जाता था। कार्षापण तत्कालीन रुपया था।

'सुनो धनिय ! आपने अदिन्न काष्ठ को दिन्न मान लिया ।'

धनिय किंचित् लज्जित हुआ । उसे अपने अपराध का ज्ञान हुआ । वह कुछ बोल न सका । उसका मस्तक नत हो गया । राजा ने कहा :

'मेरे इस राज्य मे किसी श्रमण या ब्राह्मण का वध नही हो सकता । वे बन्दी नही किये जा सकते । उनका देश निकाला नही हो सकता ।'

धनिय और लज्जित हो गया । राजा ने मुसकराकर कहा :

'भन्ते ! जाइये । आप बाल-बाल बच गये । पुन ऐसा कार्य मत कीजियेगा ।'

धनिय लज्जा से गड गया ।

× × ×

नगर मे चर्चा हुई । चारो तरफ यही बात थी । धनिय ने राजा के साथ उचित व्यवहार नही किया । राजा ने क्षमा की । उदारता का परिचय दिया ।

बुद्ध धर्म विरोधी लोग कहने लगे—'ओह ! यह श्रमण इसी प्रकार के होते है । व्यर्थ वे दावा करते है कि वे शील चारी है । धर्मचारी हैं । समचारी है । ब्रह्मचारी है । सत्यसादी है । कल्याण धर्मी है ।'

लोगो ने कहा—'उनमें न तो श्रमणत्व है और न ब्राह्मणत्व । इनका ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है । श्रमणत्व नष्ट हो गया है । राजा को भी ठगते है । राजा को ठगने वाला मनुष्य दूसरो को सरलता से ठग सकता है । इसमे क्या किसी को सन्देह हो सकता है ।'

भिक्षुओ पर लोग आवाज कशी करते थे । उन्हे धिक्कारते थे । व्यग्य करते थे । उनका मार्ग चलना दूभर हो गया । मुख दिखाना कठिन हो गया । उन्हे धनिय पर क्रोध हुआ । उस पर सभी कुपित हुए । तथागत के समीप उपस्थित होकर निवेदन किया । भगवान् ने भिक्षुसघ एकत्रित किया । उनका उद्घोप करते हुए, धनिय से प्रश्न किया

'धनिय ! क्या यह सत्य है । तुमने राजा के अदत्त काष्ठ को ग्रहण किया है ।'

'सत्य हे भन्ते !'

धनिय ने अपना अपराध स्वीकार किया । भगवान् ने कहा

दारु चीरिय

सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसंहिता ।
एक गाथपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥

(यदि एक गाथा पद श्रवण द्वारा उपसम्मति प्राप्त होती है तो वह सहस्रो अनर्थ पद समन्वित गाथाओ से श्रेष्ठ है ।)

ध० ८.२ १०१

समुद्र तट पर एक सुप्पारक[1] पत्तन था । पश्चिमी भारतीय तट का अत्यन्य समृद्धिशाली बन्दरगाह था । वहाँ पर चीन, अरब, ईरान के जहाज आते थे । भारतीय जहाज माल लादकर पूर्वी अफ्रीका तथा पश्चिमी एशिया के देशो मे व्यापार के लिए जाते थे । आयात-निर्यात का प्रसिद्ध केन्द्र था । यहाँ से रोम तथा चीन तक व्यापार होता था । वर्तमान बम्बई से ३७ मील उत्तर तथा वसीन से चार मील दक्षिण स्थित था ।

१—सुप्पारक पश्चिमी समुद्र तट पर प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत का यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था । सुप्पारक पत्तन भी इसे कहा जाता था । अरब नाविको ने इसको सोपारा नाम से व्यवहृत किया है । वर्तमान सोपारा ही प्राचीन सुप्पारक बन्दरगाह था । यह बम्बई से ३७ मील उत्तर तथा थाना जिला मे वसीन स्थान से चार मील उत्तर पश्चिम है ।

उज्जैन से सोप्पारक तथा एक मार्ग प्रचलित था । श्रावस्ती तथा राजगृह, काशी तथा भारत के सभी भूमि खण्डीय प्रसिद्ध व्यापारिक-नगरो से इसका सम्बन्ध है । अत्यन्त समृद्धि शाली बन्दरगाह था । श्रावस्ती से १२० योजन दूर सोप्पारक को बताया गया है । इसका उल्लेख द्वीप वंश, महावश, उदान, धम्मपदट्ठकथा मे मिलता है । अश्वघोप भगवान् के सोप्पारक आने का उल्लेख करते है । परन्तु इसका कोई आधार नही मिलता ।

धनिय ने अपने को सुधारने का अथक प्रयास किया। उसने अपना पुराना मार्ग बदल दिया। धर्म पथ का अनुसरण किया। अर्हत हो गया। यह प्रश्न प्रथम बुद्ध सगीत मे पाराजिक के प्रसग मे उठाया गया था। धनिय ने एक समय उदान कहा था '

'सुखी एव साधु जीवन की आकाक्षा हो तो सघ के चीवर, पात्र तथा भोजन की अवहेलना नही करनी चाहिए। जिस प्रकार सर्प चूहे के विवर मे चुपचाप पडा रहता है उसी प्रकार आसक्ति रहित निवास करना चाहिए। जो कुछ प्राप्त हो जाय उस पर सन्तोष कर श्रमण धर्म का अभ्यास करना उचित है।'

आधार ग्रन्थ

विनय पिटक चुल्ल वग्ग ११ १ २

थेर गाथा १७३, उदान २२८-२३०

पाराजिका २

मज्झिम निकाय ३ . ४ . १०

धातु विभग सुत्त

'भन्ते ! मुझ पर अनुग्रह करें।'

भगवान् ने उसकी जिद पर अत्यन्त संक्षेप मे उपदेश दिया। खड़े-खडे ही उपदेश दिया। दारु चीरिय ने खडे ही खडे उपदेश ग्रहण किया। उसका चित्त मलरहित हो गया। उसके प्रज्ञा चक्षु खुल गये। विमुक्त हो गया। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की। जेत वन की ओर चला। और भगवान् पुन: द्वार-द्वार पर भिक्षाटन करने लगे।

× × ×

दारु चीरिय लौट रहा था। मार्ग मे एक गाय ने उसे आहत कर दिया। वह गिर कर मर गया।

भगवान् भिक्षाटन समाप्त कर जेतवन लौट रहे थे। उन्होने दारु चीरिय का मृत शरीर देखा।

भगवान् ने भिक्षुओं द्वारा चिता रचवायी। उसका शरीर चिता पर रखा गया। भस्म हो गया। अवशेष धातु पर स्तूप का निर्माण किया गया।

जेतवन मे भगवान् ने भिक्षु सघ की जिज्ञासा पर कहा:

'भिक्षुओ! व्यर्थ के पदों से युक्त सहस्रो गाथाओ की अपेक्षा एक गाथा का पद श्रेष्ठ है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे सताईसवाँ स्थान प्राप्त वाहिय[२] राष्ट्र उत्पन्न वाहिय दारु[३] चीरिय[४] क्षिप्रभिज्ञो मे अग्र हुआ था।

२—वाहिय. पालि मे उठाकर ले जाना, पहुँचाना, के अर्थ मे वाहि शब्द का प्रयोग किया जाता है। वाहिय एक स्थान मालूम होता है। एक मत है ये वाहिय दारु चीरिय भरुकच्छ अर्थात् भड़ौच में जन्म लिया था।

३—दारु शाब्दिक अर्थ लकडी होता है। पालि में खण्ड, करबन्ध, भण्ढ, मय तथा संघात के अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। दारु प्रतिमा अर्थात् लकडी की बनी मूर्ति के अर्थ सस्कृत मे इस शब्द का प्रयोग किया गया है। एगकोट वाट मे भगवान् भी दारु प्रतिमा मैंने बहुत वडी संख्या में सग्रहीत देखा था। जगन्नाथ जी की मूर्ति भी दारु प्रतिमा है।

वाहिय दारु चीरिय का वाहिय कुल था। अतएव उसका नाम वाहिय दारु चीरिय पडा था। उसने सात बार सिन्धु पार कर व्यापार किया था। एक समय वह स्वर्ण भूमि जहाज से जा रहा था। उसका जहाज दुर्घटना ग्रस्त हो गया। वह सुप्पारक प्रदेश के तट पर आकर लगा। उसका सब कुछ नष्ट हो गया था। वस्त्र भी नही था। उसने वल्कल वस्त्र पहन लिया। मृत्तिका पात्र लिया। भिक्षा माँगते नगर मे गया। लोगो ने उसे वल्कल वस्त्र धारण किये देखा। लोगो की दृष्टि मे वह ऊपर उठ गया था।

जनता ने उसे उत्तम वस्त्र, स्थान तथा भोजन देना चाहा। परन्तु उसने सब अस्वीकार कर दिया। उसे अपना साधारण जीवन अधिक पसन्द था। वृक्षो की छाल पहनता था। अतएव दारु अर्थात् काष्ठ के नाम पर उसे लोग दारु चीरिय कहने लगे। अर्थात् लकडी का वस्त्र पहनने वाला। उसे ध्यान आया कि उसने स्वयं अर्हत्त्व प्राप्त कर लिया था। परन्तु देवताओ ने उससे कहा उसे श्रावस्ती जाना चाहिए। वहाँ भगवान् की शरण मे जाने पर अर्हत्त्व प्राप्त होगा। वाहिय श्रावस्ती जाने का विचार करने लगा। साधु-जीवन कारण के उसका देश विदेश मे नाम हो गया था।

× × ×

वह जेतवन श्रावस्ती पहुँचा। भगवान् के विषय मे जिज्ञासा की। उसे ज्ञात हुआ। भगवान् श्रावस्ती नगर मे भिक्षाटन के लिए गए हुए थे। भिक्षुओ से भगवान् का गन्तव्य स्थान पूछा। भगवान् को खोजता नगर मे प्रवेश किया।

उसने एक गली मे देखा। भगवान् भिक्षाटन कर रहे थे। उसे आश्चर्य हुआ। जिसका नाम सुनकर आया था। वे एक साधारण भिक्षु की तरह द्वार-द्वार भिक्षा माँग रहे थे। भगवान् के सम्मुख गया। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। नम्र निवेदन किया

'भन्ते! उपदेश दे।'

'आवुस! यह समय नही है।'

'भन्ते! उपदेश दे। मै बहुत दूर से आया हूँ।'

'आवुस! यह समय नही है।'

पटाचारा

> यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं उदयब्बयं ।
> एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयब्बयं ॥

(पंच स्कन्धो के उत्पत्ति एव विनाश का मनन न करने वाले के शत वर्षों के जीवन से उत्पत्ति एवं विनाश का मनन करने वाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ।)

घ० ११३

कोसल जनपद मे श्रावस्ती नगर था। उसमे एक श्रेष्ठी कुल था। उस श्रेष्ठीकुल की कीर्ति पटाचारा थी। उसका पटाचारा नाम प्रव्रज्या के पश्चात् पडा था।

पटाचारा का विवाह माता-पिता ने निश्चित किया। परन्तु पटाचारा का स्नेह गृह के एक सेवक के साथ हो गया था। उसने कुछ सामान लिया। उसके साथ घर से नगर के मुख्य द्वार द्वारा पलायन कर गयी। दोनो एक साथ एक गाँव मे निवास करने लगे।

वह गर्भवती हुई। पितृगृह जाने की इच्छा हुई। प्रसव का प्रबन्ध नही था। पति ने उसे जाने की अनुमति नही दी। आज और कल कहता समय टालता रहा।

पति की बिना अनुमति उसने पितृगृह के लिए प्रस्थान किया। समझ गयी थी। पति उसे नही जाने देगा। पति उस समय घर मे नही था। उसने पड़ोसियो को सूचित कर दिया था। पति के आने पर उसके गमन की बात कह दे।

पति आया। उसे घटना मालूम हुई। उसे दु ख हुआ। उसके कारण पटाचारा इस दयनीय अवस्था को प्राप्त हुई थी। उसे अकेला गयी जान, पति उसके पीछे दौड़ पड़ा।

४—दारु चीरिय लकडी चीरने वाला का अर्थ होता है।

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद ८ २

अगुत्तर निकाय १ . १४

(१) यह कथा धर्म्मपद अट्ठकथा तथा अन्य स्थानो मे कुछ पाठ भेद तथा घटना भेद के साथ लिखी गयी है। किन्तु मूल विपय प्राय समान है। पुक्कुसाति की भी कथा इस कथा के सदर्भ मे देखनी चाहिए।

●

एक साथ लेकर पार उतरना कठिन था। इसने वडे लडके को तट पर बैठा दिया। सोचा था। छोटे को उस पार रखकर पुनः वडे को ले जायगी।

समझाकर बड़े शिशु को तट पर बैठा दिया। छोटे को लेकर नदी पार उतरी। कुछ पत्ते तोड़े। उस पर शिशु को सुला दिया। कपडे मे लपेट कर तट पर रख दिया। वडे बच्चे को लेने के लिए नदी पार करने चली।

एक बाज मडराता आया। उसने नवजात शिशु को मांस पिण्ड समझा। माँ पटाचारा का ध्यान दोनो शिशुओं की ओर था। दोनो की ओर देखती नदी पार कर रही थी।

उसने बाज को झपटते देखा। शोर किया। ताली बजायी। पक्षी भाग जाय। परन्तु बाज झपटा। नवजात शिशु उठा ले गया। वह हाथ उठाकर शोर करने लगी।

वडे लड़के ने समझा माँ उसे हाथ उठाकर बुला रही है। वह नदी की धारा मे उतरा। जल गहरा था। वह चिल्लाया। वह गया। पटाचारा वेग से बढी। परन्तु शिशु नदी के गर्भ मे पहुँच चुका था। वह विलाप करने लगी। कोई सुनने वाला नही था। सहायता करने वाला नही था। वह जल से निकली। श्रावस्ती की ओर बढी। मार्ग मे एक पथिक मिला। वह श्रावस्ती से आ रहा था। उसने अपने माता-पिता का कुशल समाचार पूछा।

पथिक उसके पिता को जानता था। उसकी आँखे भर आयी। पटाचारा भयभीत हुई। शोक घटना सुनने की जैसे भूमिका थी। वह काँप उठी। पथिक से कुछ पूछने का साहस नही हुआ।

पथिक ने दुःख प्रकट करते हुए स्वत कहा : 'श्रेष्ठी का मकान गिर गया। श्रेष्ठी अपनी भार्या तथा पुत्र के साथ सो रहा था। चारो दब कर मर गये। मै जब वहाँ से चला तो उन्हे मशान मे ले जा रहे थे।' उसने नगर के दक्षिण की ओर उठते धुएँ को ओर सकेत किया।—'शायद उनकी चिता का धुआँ है।'

सुनते ही पटाचारा दुःख विह्वल होकर गिर पड़ी। बेहोश हो गयी।

मार्ग मे पटाचारा से पति की भेंट हुई। दोनों साथ चले। कुछ दूर चलने पर पटाचारा को प्रसव वेदना हुई। सन्तान उत्पन्न हुआ। पति-पत्नी प्रसन्न हुए। वे पुनः घर लौट आये।

× × ×

वह पुन गर्भवती हुई। प्रसव काल समीप आया। पटाचारा मातृ-गृह जाने पर जोर देने लगी। पति ने पहले की तरह हीला हवाली की। वह घर से चल पडी। पति दौडकर साथ आया। पति के साथ पितृगृह की ओर चलने लगी।

एक जगल पडा। वे चले जा रहे थे। आँधी आयी। भयकर आँधी के पश्चात् वर्षा होने लगी। वन मे कही आश्रय स्थान नही था। उसे इसी समय प्रसव वेदना उठी। पति को सकेत किया। कुछ छाया करना आवश्यक था। वर्षा से वह शिशु की रक्षा करना चाहती थी। पति लकड़ी काटने चला गया।

जहाँ वह लकडी काट रहा था। एक झाड़ी थी। उसमे साँप था। साँप ने उसे काट लिया। उसने चीत्कार किया। कोई सुनने वाला नही था। वहीं मर गया।

× × ×

रात्रि बीती। पटाचारा एकाकी थी। प्रसव वेदना बढी। उसे सन्तान हुई। रात्रि पर्यन्त शिशुओ को दबकाये रही। आधी का झोका खाती रही। उसने पति को खोजा। उसे मरा पाया। उसके शोक की सीमा न रही। विलाप करने लगी। उसे मार्मिक वेदना हो रही थी। उसके कारण पति की मृत्यु हुई थी। वह रात भर उसी स्थिति मे पड़ी रही। उसका विलाप केवल मात्र अरण्य रोदन साबित हुआ।

प्रात.काल उसने अपने छोटे शिशु को साथ लिया। नवजात को कोख मे दबकाया। मातृगृह की ओर कलपती प्रस्थान किया। दोनो बच्चो को काख मे दबकाये वह चली जा रही थी। शिशु रो रहे थे। उसका वस्त्र भीगा था। शरीर शिथिल था। तथापि शिशुओ की रक्षा भावना ने उसमे जीवन तथा शक्ति उत्पन्न कर दी थी।

मार्ग मे नदी थी। वर्षा के कारण उफन गयी थी। दो शिशुओ को

ब्रान्धव रक्षा नही करते। जाति गण रक्षा नही कर सकते। जिस समय मृत्यु मनुष्य को स्पर्श करती है।'

पटाचारा प्रबुद्ध होने लगी। भगवान् ने पुन कहा .

'भगिनी !' बुद्धिमान इसे जानने का प्रयास करते है। शीलवान होते है। निर्वाण मार्ग की ओर गमन करते है।'

वह स्रोतापन्न हुई। उसने स्रोतापत्ति फल प्राप्त किया। प्रव्रजित होने की इच्छा प्रकट की।

पटाचारा ने भगवान् से शोकाभिभूत अश्रु पूर्ण नेत्रो से कहा ·

'भगवन्, मेरे एक पुत्र को बाज उठा ले गया। एक पानी मे डूबकर मर गया। वन मे मेरा पति मरा पडा है। मेरे माता-पिता और भाई घर गिरने से मर गये। वे एक चिता पर भस्म हो गये।'

'पटाचारा, तुम्हारी सहायता के लिए कोई आने वाला नही है। जिस प्रकार आज तुम अपनी सन्तान तथा बन्धुओ के मरने पर आँसू बहा रही हो, इससे कही अधिक अपने अगणित पूर्व जन्मो मे बहा चुकी हो। समस्त समुद्रो के जल से अधिक अब तक मनुष्य अपने सन्तानो तथा बन्धुओ की बिदाई पर आँसू वहा चुके हैं।

'भगिनी !' भगवान् ने पुन कहा चारो समुद्रो से भी अधिक लोग आँसू बहा चुके है। हाहक शोक करने वाला दु ख को आमन्त्रित करता है। शरीर कष्ट मे पडता है। अतएव अपने जीवन को शोकवशोभूत होकर क्यो नष्ट कर रही हो।'

भगवान् ने ·उसे भिक्षुणियो के पास भेज दिया। उसके ज्ञानचक्षु खुल गये थे। उसने प्रव्रज्या ली। उसका नाम प्रव्रजित होने पर पटाचारा पड़ गया।

× × ×

किसी समय पटाचारा अपना पद धो रही थी। पैर धोते समय वह मनन कर रही थी। पच स्कन्धो की किस प्रकार उत्पत्ति होती है। उनका विनाश किस प्रकार होता है। उसके पद धोये जल को एक बार फेका। वह कुछ गिरकर सूख गया। दूसरी बार फेका। वह कुछ अधिक दूर पड़ सूख गया। उसने तीसरी बार फेका। वह कुछ और दूर जाकर पड़ा सूख गया। उसने सोचा। इसी प्रकार प्राणी प्रथम, मध्यम तथा

पटाचारा स्मशान की ओर रोती चली। दुर्भाग्य एक साथ नही आता। उसका पति मर गया। दोनो पुत्र भी मर गये। माँ मर गये। पिता मर गया। उसके भाई मर गये। उन्हे एक ही चिता पर उसने जलते हुए देखा। उस भयकर दृश्य एव वेदना से वह पागल हो गयी। उसके वस्त्र गिर गये। उसे पता नही था। वह नगी थी। पागलो के तुल्य प्रलाप करती थी।—'मेरे दोनो शिशु मर गये। पति झाडी मे मरा पड़ा है। एक ही चिता पर माता-पिता और भाई जल गये।'

वह गली-गली घूमने लगी। प्रलाप करती थी। लोग उस पर ढेले फेंकते थे। चिढाते थे। उसे अपने शरीर की सुध न रही। नगी रहने के कारण उसका नाम पटाचारा पड गया।

× × ×

एक दिन वह श्रावस्ती के जेतवन मे प्रवेश करने लगी। लोगो ने उसे रोका। भगवान् ने उस प्रमत्ता नारी को देखा। लोगो को मना किया। उसे आने का सकेत किया। भगवान् के पास वह पहुँची। भगवान् के दर्शन से उसमे जैसे परिवर्तन हो गया। उसने भगवान् को सुआच्छादित देखा। भिक्षु सघ को सुआच्छादित देखा। वातावरण का उस पर विचित्र प्रभाव पडा। उसे अनुभव हुआ। जैसे वह नगी है।

उसकी चेतना लौटी। उसने अपना शरीर देखा। उसे अपनी नग्नावस्था का ज्ञान हुआ। लज्जित हुई। अपना तन छिपाने की दृष्टि से लज्जित होकर उकडूँ बैठ गयी। उसे लज्जा का बोध होता लोगो ने देखा। एक व्यक्ति ने उसे वस्त्र दे दिया। उसने वस्त्र धारण किया। भगवान् के चरण-कमल पर अपना मस्तक रख दिया। पचाग प्रणाम किया। भगवान् ने कहा .

'पुत्रादि परलोक गमन के समय सहायक नही होते। रक्षा नही करते। उनका होना और न होना उस स्थिति मे बराबर है। शील का विशोधन कर निर्वाण पथ की ओर अग्रसर होना ही बुद्धिमानो के लिए श्रेयस्कर है।'

पटाचारा के मल तिरोहित होने लगे। उसके ज्ञानचक्षु खुलने लगे। भगवान् ने पुन. कहा :

'भगिनी ! पुत्र रक्षा नही करता। पिता रक्षा नही करता। बन्धु-

आधार ग्रन्थ :

अगुत्तर निकाय १ १४

धम्मपद ८ . १२

२० १२

थेरी गाथा ४७, उदान ११२-११६

एक मत है कि वह तटीय शिशु को जब लेकर नदी की मध्य धारा में पहुँची तो दूसरे तट पर रखे शिशु पर बाज झपटा। बाज उडाने के लिए उसने दोनो हाथ उठाकर आवाज किया। शिशु कोख से गिर गया। जल में डूबकर मर गया। वह छटपटाती रह गयी।

एक पटाचारा का और वर्णन बौद्ध ग्रन्थो मे आता है। वह वैशाली निवासिनी थी। पटाचारा के आदर्श कन्याओ की शिक्षा के लिए रखने का भगवान् ने सुझाव दिया था।

अन्तिम वयस मे मरते है। शरीर अनित्य है। भगवान् अपनी कुटी मे आसनस्थ थे। पटाचारा की चित्त वृत्ति को समझ गये। उन्होने कहा

'पटाचारे ! पच स्कन्धो के उत्पत्ति एव विनाश का मनन करने वाले का एक दिन का जीवन शतवर्ष के अमनन शील से उत्तम होता है।'

× × ×

'मनुष्य हल से खेत जोतकर बीज बोते है। धन उपार्जन करते है। वे अपने कुटुम्ब का लालन-पालन करते है। मै भी क्यों न समाधि का उपार्जन करूँ ? निर्वाण प्राप्त करूँ ? मै शीलसम्पन्न हूँ। शास्ता के शासन का पालन करती हूँ। अप्रमादिनी हूँ। अचचल हूँ। विनीत हूँ। एक दिन मै पाद प्रक्षालक जल को ऊँचे से नीचे की तरफ जाते देखा। मैने उस पार विचार किया। अपने चित्त को उत्तम कोटि के अश्वो की सवारी मे शिक्षित करने के समान समाधि मे लगाया। मै एक दिन दीपक लेकर अपने विहार मे गयी। दीपक दीपस्तम्भ पर रख दिया। शयनासन पर बैठ गयी। दीप-शिखा का जलना देखने लगी। उसका ध्यान करने लगी। ज्योति मद्धिम होने लगी। प्रकाश स्थिर रखने के लिए उठी। सुई लिया। वत्ती को उकसाने चली। उसे तेल मे डुबाने के लिए ज्यो ही सुई का अग्र भाग लगाया। दीपक बुझ गया। दीप निर्वाण हो गया। मेरे चित्त का भी निर्वाण हो गया। तृष्णा शिखा का सर्वदा के लिये निर्वाण हो गया।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक श्राविकाओ तथा उपासक उपासिकाओ मे पैतालीसवा तथा भिक्षुणी श्राविकाओ मे चौथा स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती श्रेष्ठि कुलोत्पन्न पटाचारा विनयधारियो मे अग्र हुई थी।

उसके पुत्र को श्मशान उठा ले जायेंगे। उस भय से उसने पुत्र शव को गोद मे उठा लिया। उसे विश्वास नही होता था। उसका पुत्र मर गया था। वह अव भी आशा करती थी। कोई उसे जिला देगा। वह फिर वोलने लगेगा।

वह नगर मे शव लिये घूमने लगी। सवसे सजीवनी माँगती। अपने पुत्र का जोवन माँगतो। लोग देखते। उदास होते। दु खी होते। उसे पगली समझते। उसके साथ सहानुभूति दिखाते। परन्तु कोई मृत की काया मे प्राण सचारित नही कर सका।

यदि कोई उससे कहता। वालक मर चुका है। उसे श्मशान ल जा। तो वह घवराती। भाग खड़ी होती। उसकी विक्षिप्तता वढती गयी। विलाप वढता गया।

× × ×

'ओ ! किशा !' एक सहृदय व्यक्ति ने उसे देखकर पुकारा।

'आप औषधि देगे !' किशा आशा से उस व्यक्ति के पास आ गयी।

'कृशा ! वुद्ध के पास जा।'

'वहाँ क्या करूँगी ?'

'वे कारुणिक है।'

'क्या करेंगे ?'

'तुम पर करुणा करेंगे। तुम्हारा शिशु जो जायगा।'

'वे कहाँ मिलेंगे ?'

'चली जा, जेतवन मे।'

किशा गौतमी वेग से जेतवन की ओर झपटी।

× × ×

भगवान् के समीप पहुँचते ही गौतमी का विलाप बढ गया। भगवान् ने अभय मुद्रा में कहा

'देवी ! पुत्र मर गया है।'

'भगवन् ! मर गया—जिला दीजिये।'

'जिसने जन्म लिया है। वह मरेगा किशा।'

किशा गौतमी (कृशा गौतमी)

तं पुत्तपसु सम्मतं व्यासत्तमनस नरं ।
सुत्तं गाम महोघो व मच्चु आदाय गच्छति ॥

'पुत्र और पशु मे लिप्त आसक्त जनो को मृत्यु उसी प्रकार ले जाती है जैसे सोये ग्राम को बाढ बहा ले जाती है ।'

ध० २८

कृशा गौतमी श्रावस्ती के अतिनिर्धन कुल मे जन्म ली थी। उसका मूल नाम गौतमी था। वह अत्यन्त कृश थी। उसकी कृशता के कारण लोग उसे कृशा गौतमी कहने लगे थे।

उसका कुल नष्टप्राय था। दुर्गति प्राप्त हो चुका था। दरिद्रता देवी की कुल पर असीम कृपा थी। तथापि वह सुन्दर थी। युवती हुई। उसका विवाह एक सम्पन्न कुल मे हो गया।

निर्धन एव दरिद्र कुटुम्ब की समझ कर उसका ससुराल मे निरादर होता था। तिरस्कार होता था। वह चुपचाप सुनती थी। कोई और चारा नही था।

समय लौटता है। समय लौटा। वह गर्भवती हुई। ससुराल मे आदर का अकुर अकुरित हुआ। उसे पुत्र रत्न हुआ। उसका मान बढा। सबकी प्रिय हो गयी।

उसका पुत्र कोमलाग था। सुन्दर था। सुख में उसका लालन-पालन होने लगा। वह बढने लगा। सबका प्रिय हो गया। गौतमी का वह सर्वस्व था। भविष्य था। प्राण था।

अकस्मात् वह बीमार हुआ। काल के शीतल स्पर्श से वच न सका। उसके अन्तिम स्वास के टूटते ही गौतमी का भौतिक भविष्य जैसे घनघोर अँधियारी लुप्त हो गया। वह विक्षिप्त हो गयी।

किशा गौतमी स्रोतापन्न हुई। उसके ज्ञानचक्षु खुले। उसने समझ लिया। जगत् मे सब मरेंगे। उसका शिशु भी मर गया। यह कोई नई बात नही थी।

उसे मृत शव से विराग हो गया। उस शव को उसने अरण्य मे छोड दिया। उसे अपने शिशु के शव के प्रति स्नेह नही रह गया था। वह जेतवन की ओर चली। इस बार वह शान्त थी। गम्भीर थी। मनन-शील मुद्रा मे थी।

× × ×

तथागत ने गौतमी को आते देखा। वे स्थिर होकर बैठ गये। गौतमी ने पहुँचकर भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। भगवान् ने मृदु स्वर मे पूछा ·

'किशा! सरसो कही मिली।'

'नही भन्ते।'

देवी!' भगवान् ने कहा कुल का धर्म, ग्राम का धर्म, जनपद का धर्म, देश का धर्म, देवो सहित समस्त लोक का धर्म एक ही है—वह है अनित्यता।'

'शास्ता, समझ गयी! समझ गयी।' गौतमी ने भगवान् के चरणो पर मस्तक रख दिया।

'किशा!' भगवान् ने कहा .' हानि और लाभ का जो ज्ञान रखता हुआ, एक सौ वर्ष जीवित रहता है, उससे हानि और लाभ समझकर, जीने वाले का एक दिन उत्तम है।'

'भन्ते! समझ गयी। भ्रम दूर हो गया। मुझे प्रव्रज्या मिले। उपसम्पदा मिले।'

किशा ने प्रव्रज्या ली। भिक्षुणी बन गयी। थोड़े ही काल मे उसने अर्हत् पद प्राप्त लिया।

× × ×

किशा गौतमी ने धर्म की विकसित अवस्था मे उदान कहा :

'मूर्ख सदाचारी मित्रो के संसर्ग से पण्डित होता है। भगवान् ने

'नही-नही इसे जिला दीजिये।'

'गौतमी—!'

'आप भगवान् है। लोग कहते है। आप जिला देगे।' किशा ने विश्वास के साथ कहा। मृत बालक का शव और जोर से हृदय मे चपका लिया।

'गौतमी!' भगवान् ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

'कहिये क्या करू ।' उसके स्वर मे आशा थी।

'कुछ सरसो के दाने लाओगी।'

'हॉ। यह क्या कठिन है।'

'लेकिन, उस घर से लाना जहाँ कोई मरा न हो।'

'अच्छा लाऊँगी।'

किशा बालक का शव लिये नगर की ओर दौडी।

× × ×

किशा गौतमी शव के साथ द्वार-द्वार जाती थी। पीली सरसो मॉगती थी। कहती थी 'एक मुट्ठी सरसो दे दो।'

'क्या करोगी?' नागरिक पूछते।

'मेरा लाल जी जायेगा।

'यह क्या कठिन है। ला दूँ।'

'लेकिन—।'

'लेकिन क्या?'

'आपके घर कोई कभी मरा तो नही है।'

'अरे! तुम यह क्या कहती हो? कोन घर ऐसा हे जिसमे कभी कोई मरा न हो।'

'नही-नही, तव नही चाहिए।'

वह विकल एक घर से दूसरे घर, एक द्वार से दूसरे द्वार जाती। उसे श्रावस्ती मे भी एक ऐसा घर नही मिला। जहा कोई मरा नही था। उसे सिद्धार्थक अर्थात् पीली सरसो नही मिल सकी।

× × ×

श्रावस्ती निवासी वैश्य कुलोत्पन्न किशा गौतमी रुक्ष चीवरधारियो में अग्र हुई।

●

आधार ग्रन्थ
धम्मपद अ० ८ · १३, २० ११
थेरी गाथा ६३, उदान २१३-२२३
संयुक्त निकाय ३ ५ . ३, ५ . २
थेरी अपदान

कल्याणकारी मित्रता की प्रशसा की है। ज्ञान की वृद्धि सत्पुरुषो के पथा-नुगमन द्वारा होती है। उनकी सेवा द्वारा दु खो से मुक्ति मिलती है। दु ख से समुदय और सत्सग द्वारा दु ख का ज्ञान होता है। उनके ससर्ग द्वारा दु ख निरोध एव दु.ख निवृत्ति की दिशा की ओर प्रेरित करने वाले आर्य अष्टागिक मार्ग का भी ज्ञान होता है।

'स्त्री, जन्म ! भगवान् ने कहा था।दु ख है। पत्नी सहवास दु ख है। प्रसव दु ख है। चाहे कोई कामिनी अपने कण्ठ का छेदन करे, चाहे कोई ललितागी तरुणी विषपान करे, परन्तु प्राण नाशी भ्रूण मातृ गर्भ मे दोनो के नाश का हेतु होता है।

'ओह ! मेरा प्रसव काल आया। मै अपने घर जा रही थी। मार्ग मे मृत पति को देखा। घर पहुँचने मे असमर्थ हो गयी। मेरे दो पुत्र दिव-गत हो चुके थे। मार्ग मे पति का शव मुझ हतभाग्या ने देखा।

'हत भाग्ये ! तूने अनन्त जीवन-मरण की परम्परा मे असीमित दु ख भोगा है। सहस्रो जन्मो की शृ खला मे अश्रुधारा तुम्हारे नेत्रो से बह चुकी है। श्मशान भूमि मे वन्य जन्तुओ द्वारा अपने पुत्रो का अनेक बार मास नोच-नोचकर खाते हुए देखा है।

'ओह ! मुझे पति ने त्याग दिया। पुत्रो ने त्याग दिया। सब चले गये। मेरा सर्वस्व लुट गया। आश्चर्य ! इस अवस्था मे भी मै जीवित हूँ।

'किन्तु मैने अमृत प्राप्त किया है। अमरत्व की ओर ले जाने वाले आर्य अष्टागिक मार्ग का चरण किया है। निर्वाण का साक्षात्कार किया है। धर्म के निर्मल दर्पण मे दर्शन किया है। वेदनाओ से आज मुक्त हूँ। मैने सब सासारिक बोधो को उतार कर फेंक दिया है। मेरे कर-णीय समाप्त हो चुके है। मै बन्धनो से मुक्त हो चुकी हूँ। मै किशा गौतमी यही कहती हूँ।'

× × ×

—और भगवान् की वाणी मे भिक्षु श्रावक एव श्राविका की तालिका मे तिरपनवाँ तथा भिक्षुणी श्राविकाओ मे बारहवाँ स्थान प्राप्त, कोसल

'आर्यो ! मै वह सब करूँगी जिससे जाति का उपकार हो। कहिए मै क्या करूँ।'

'बहिन ! जेतवन नित्य जाया करो।'

'आर्यो ! यह कौन सी बडी बात है। मै नियमित रूप से नित्य जाऊँगी।'

'साधु बहिन ! साधु !'

× × ×

सुन्दरी जेतवन जाने लगी। जनता उसे नित्य निश्चित समय पर माल्य, ग्रन्थ, फल सहित जेतवन जाना देखने लगी।

तैर्थिको ने उसे एक दिन जान से मार डाला। जेतवन में गन्ध कुटी के समीपस्थ खाई मे गड्ढा खोदा। उसे गाड दिया। निर्दोप महिला का जीवन हरण किया। वे अपने षडयन्त्र की पूर्ति से प्रसन्न हो गये।

× × ×

'महाराज !' तैर्थिक ने कोसल राजा प्रसेनजित से निवेदन किये.

'क्या कष्ट हुआ है भणे ?'

'राजन् ! सुन्दरी परिव्राजिका लोप हो गयी है।'

'कहाँ ?'

'वह नित्य नियमित रूप से जेतवन जाती थी।'

'आप लोगो का सन्देह किसी पर है ?'

'हाँ, राजन् !'

'किस पर ?'

'जेतवन।'

'जेतवन ! ऐसा न होगा।'

'नही राजन् ! हमे उन्ही पर सन्देह है।'

'अच्छा ! जेतवन मे जाकर खोजो।'

तैर्थिक प्रसन्न होकर जेतवन चले।

× × ×

सुन्दरी[1]

अभूतवादी निरयं उपेति यो चापि कत्वा 'न करोमीति' चाह।
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति निहीनकम्पा मनुजा परत्थ ॥

(असत्यवादी नरकगामी होता है। वह भी नरकगामी होता है, जो काम करके अस्वीकार करता है। दोनो प्रकार के नीच कर्मी मरकर एक तरह की गति पाते है।)

—ध० ३०६

भगवान् श्रावस्ती मे थे। अनाथ पिण्डिक के जेतवन मे विहार कर रहे थे। वे लोगो द्वारा सत्कृत थे। पूजित थे। मानित थे। गुरुकृत थे। आपचित थे। चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान प्रत्यय भेषज्य के पाने वाले थे। इसी प्रकार पूजित भिक्षुसघ था।

[2]तैर्थिक भगवान् के परम शत्रु थे। वे सघ तथा भगवान् मे दोष खोजा करते थे। मिथ्या प्रचार करते थे। उनके विनाश के लिए कटि-बद्ध थे।

श्रावस्ती मे एक परिव्राजिका थी। उसका नाम सुन्दरी था। उन्होने एक षडयन्त्र रचा। सुन्दरी से जाकर सप्रेम, कपटपूर्ण निवेदन किया

'बहिन ! क्या अपनी जाति का कुछ उपकार कर सकोगी ?'

'आर्यो ! जाति के लिए हमारा जीवन है।'

'साधु बहिन ! साधु !' वे कृतकृत्य हो गये।

---

(१) सुन्दरी सुन्दरी थेरो, कलिंग राजपुत्री सुन्दरी, सुन्दरी नन्दा, तथा थुल्ल नन्दा की कनिष्ठ बहन सुन्दरी नन्दा सभी भिन्न है। यह सुन्दरी परिव्राजिका थी।

(२) तैर्थिक . इस शब्द का शाब्दिक अर्थ सन्यासी किंवा साधु होता है।

'भिक्षुओ ! यह प्रचार बहुत दिनो तक ठहरेगा नही । सत्य प्रकट होगा । एक सप्ताह के पश्चात् लोप हो जायगा ।'

'हम लोग क्या करे ?'

उन्हे उत्तर दो—अयथार्थवादी नरकगामी होते है । वह तो विशेप तौर पर नरक जाता है, जो काम करेक अस्वीकार करता है ।'

विरोधी प्रचार का उत्तर मिलने लगा । लोगों मे विश्वास पुन लौटने लगा । इन श्रमणो ने यह कार्य शायद नही किया था ।

× × ×

तैर्थिको ने हत्यारो को धन देकर हत्या के लिए तैयार किया था । उन्हे कार्षापण दिया था । राजा ने गुप्तचरो को नियुक्त किया । सुन्दरी के हत्यारे का पता लगाया जाय ।

'हत्यारे एक मदशाला मे गये । मद पीने लगे । मद चढा । वे परस्पर वाद-विवाद करने लगे । एक ने अपनी बहादुरी दिखाने के लिए कहा—'मैने ऐसा मारा कि एक ही प्रहार मे सुन्दरी मर गयी । उसे नाला के कूडे मे भीतर फेक दिया ।'

बात फैली । राजप्रतिहारियो ने उन्हे पकड लिया । वे राजा के सम्मुख उपस्थित किये गये । राजा ने पूछा

'तुम लोगो ने मारा ?'

'हाँ देव !' उनमे से एक बोल उठा ।

'किसने यह षडयन्त्र किया था ।'

'देव ! हमने नही' तैर्थिको ने यह सब किया था ।'

'अच्छा इन्हे बन्द रखो ।'

राजा ने कहा . 'तैर्थिको को उपस्थित करो ।'

× × ×

तैर्थिक पकडे गये । उन्होने देखा' । हत्यारे बन्दी थे । रहस्य खुल गया था । राजा ने क्रूर स्वर मे पूछा .

'तुम लोगो ने यह कुकर्म करवाया है ?'

'राजन् ! क्षमा करे ' ।

तैर्थिक जेतवन मे अन्वेषण करने लगे। वहाँ से शव निकाला। उसे चारपाई पर रखा। शव उनके प्रचार का साधन बन गया। वे शव को चारपाई पर लेकर श्रावस्ती की प्रत्येक सडक, वीथी, तथा विशिखा पर घूम-घूमकर प्रचार करने लगे

'श्रमण धूर्त होते है। निर्लज्ज होते है। दु शील होते है। मिथ्यावादी होते है। ब्रह्मचर्य से उनसे क्या मतलब ? देखो ! अपनी आँखो से देखो ! शाक्य पुत्रीय श्रमणो का भयकर पापमय क्रूर कर्म !'

'और सुनो वे श्रमण दावा करते है। सत्यवादी है। धर्मचारी है। समचारी है। ब्रह्मचारी है। शीलवान है। पुण्यात्मा है। और उसका प्रमाण इस सुन्दरी का यह शव है।'

'पुरजनो ! यह न तो श्रमण है। न तो ब्राह्मण है। कहाँ से इन्होने श्रमण धर्म प्राप्त किया है। कहाँ से इन्हे ब्राह्मणत्व मिला है। वे श्रमण धर्म से पतित है। ब्राह्मण धर्म से पतित है। उन्हे लज्जा नही आयी। कुकर्म करके इस निर्दोष सुन्दरी नारी की हत्या कर दी। अपना कुकृत्य छिपाने के लिऐ जेतवन मे गाड दिया।'

श्रावस्ती की जनता भिक्षुओ के विरुद्ध हो गयी। उन्हे पीडित करने लगी। उन्हे असभ्य कहने लगी। उनको धिक्कारने लगी। घृणा से देखने लगी। उन पर कुपित हुई। फटकारने लगी। उन्हे पीडा पहुँचाने लगी। जहाँ श्रमण जाते यह ध्वनि उठती

'शाक्यपुत्रीय श्रमण ! ओह कितने निर्लज्ज है। कितने पतित है।

कहा गया है। भगवान् स्वय सात दिन तक नगर मे भिक्षाचार के लिए नही गये। जनमत भिक्षुओ के विरुद्ध इतना प्रबल हो गया कि आनन्द ने भगवान् से कहा। नगर त्यागकर दूसरे नगर मे चलना चाहिए। भगवान् ने इस मिथ्या अपवाद के कारण स्थान त्यागना उचित नही समझा।

श्रावस्ती मे भिक्षु पिण्डपात से लौटे। भगवान् के समीप गये। अभिवादन और वन्दना कर एक ओर बैठ गये। भगवान् से बोले

'भन्ते ! हमारी श्रावस्ती मे दुर्दशा हो रही है। हम घृणित समझे जाते है। पीडित किये जाते है। असभ्य कहे जाते है। धिक्कारे जाते है।'

महाकप्पिन

धम्मपीती सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा ।
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो ।।

(धर्मरस पान करने वाला ज्ञानी चित्त सुखपूर्वक सोता है । उत्तम धर्म मे पण्डित सर्वदा रमण करता है ।)

—ध० ७९

महाकप्पिन कुक्कुट[1] देश मे निवास करते थे। राजवंशीय थे। उन दिनो भगवान् श्रावस्ती मे विहार करते थे। भगवान् से आयु मे अधिक थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् राजा हुए। उनका नाम महाकप्पिन पडा। कप्पिन कुछ ओदात अर्थात् कुछ पाण्डु वर्ण थे। उनकी नाक उभडी थी। उनकी अग्रमहिषी का नाम अनोजा था। वह मद्र देशान्तर्गत साकल (स्यालकोट) का निवासी था। रानी राजा के सभी शुभ कर्मो मे सहायक एव भागी था।

---

(१) कुक्कुटीवती नगर चिनाव नदी के उस पार हिमवा अर्थात् हिमालय, हिमवान के समीप एक प्रत्यन्त नगर था। श्री डा० मलल सेकर का मत है कि कुक्कट एक देश था। उसकी राजधानी कुक्कुटवती नगरी थी। उसे राज्य का विस्तार लगभग तीन सौ योजन वताया गया है। श्रावस्ती से यह नगर व्यापारिक'मार्ग से सम्वन्धित था। महाभारत सभा पर्व ४४ मे 'कुक्कुटा' लोगो का उल्लेख मिलता है। कुक्कुट देश को उससे जोडने का प्रयास कुछ लेखको ने किया है। महाकप्पिन के इस रूप से कि वह गोरा है। उसकी नासिका पतली है। ऊँची है। पतला शरीर है। उसे उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रदेश के समीप भू भाग से जोडने का प्रयास भी किया गया है।

(२) अनोजा : महाकप्पिन की भार्या थी। उसका वर्ण अनोजा पुष्प के समान

'तुम्हे लज्जा नही आयी ।'

'राजन् ! अपराध हो गया ।'

'सुनो ! तुम लोग श्रावस्ती की गलियो मे, सडको पर चौराहो पर, वाजार मे जाकर कहो—'श्रमण गौतम के अपवाद के लिए सुन्दरी का वध हम लोगो ने करवाया था। गौतम या श्रमणो का इसमे कोई दोप नही है। हत्या का दोप हम पर है।'

दूसरे दिन जीवन के भय के कारण राजाज्ञा के कारण तैर्थिक घूम-घूमकर यथार्थ बात कहने लगे। जनता ने सच्चाई देखी। वह तैर्थिको के विरुद्ध हो गयी। श्रमणो के प्रति उसका क्रोध जाता रहा।

× × ×

श्रमणो के प्रति दूपित प्रचार तथा बुराभाव सप्ताह भर मे समाप्त हो गया। उनका पुन नगर मे आदर सम्मान होने लगा। उनके लिए लोगो मे पुन सहानुभूति लौट आयी। अपने कार्य पर जनता पछताने लगी। भिक्षुओं ने भगवान् से कहा

'भन्ते ! आश्चर्य हो गया। अद्‌भुत वात हो गयी। तथागत का सुभापित ठीक हुआ। मिथ्या प्रचार अन्तर्धान हो गया।'

'भिक्षुओ ! तथागत ने कहा, 'वचनो द्वारा असयमी लोग आक्रमण करते है। वचनो से उसी प्रकार बँधते है। जैसे युद्धो मे शत्रुओ द्वारा कुजर बाँधा जाता है। कटु शब्द भी सुनकर अदुष्ट चित्त भिक्षुओ को उस पर ध्यान नही देना चाहिए।'

●

आधार ग्रन्थ .

धम्मपद २१ १

उदान ४ · ८

बुद्ध चर्या ३६१-३६३

'बुद्ध !' राजा शब्द उच्चारण करते ही प्रकम्पित हो गये।

'क्या कहा ?'

'बुद्ध !'

'हाँ बुद्ध।'

व्यापारियो ने पुन: बुद्ध शब्द का घोष किया। राजा ने व्यापारियो को यथोचित उपहार दिया। राजा ने पूछा :

'बुद्ध का धर्म और शासन कैसा है ?'

व्यापारियो ने भरी सभा मे धर्म शासन तथा सघ पर प्रकाश डाला। राजा अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने व्यापारियो को एक लाख मुद्रा देकर उनका सत्कार किया। उसने निश्चय कर लिया। वह धर्म ग्रहण करेगा। ससार का त्याग करेगा।

× × ×

राजा अपने साथियो के साथ तथागत के अन्वेपण मे प्रस्थान किया। वे गगा तट पर आये। वहाँ चमत्कार परीक्षा तथा शक्ति की दृष्टि से बोले 'यदि यह शास्ता बुद्ध है तो अश्वो का पद बिना स्पर्श किये नदी पार कर जाय।'

लोगो के आश्चर्य की सीमा न रही। नदी के स्तर पर से अश्व पार हो गये। एक अश्व का पॉव जल मे नही भीगा। उन्होने मार्गमे अर्वच्छा,[3] नील वाहक[4] और चन्द्रभागा[5] नदी पार की।

× × ×

भगवान् उपाकाल मे उठे। कारुणिक भगवान् का ज्ञान हो गया।

---

(३) अर्वच्छा · झेलम तथा चिनाव के मध्य यह नदी होनी चाहिए। एक मत है कि अफगानिस्तान तथा चिनाव की मध्यवर्ती वह नदी थी।

(४) नील वाहक झेलम तथा चिनाव के मध्य यह नदी होनी चाहिए। एक मत है कि अफगानिस्तान तथा चिनाव के मध्य वह नदी बहती थी।

(५) चन्द्रभागा : यह पजाब की चिनाव नदी है। जातको मे श्रावस्ती से चिनाव जहाँ भगवान् बुद्ध ने आसन लगाया था। १२० योजन दूरी बतायी गयी है।

महाकप्पिन का आदेश था। नगर के चारो दिशावर्ती द्वारों के सम्मुख पथ से जाने वाले किसी भी गुणी तथा बुद्धिमान को रोक लिया जाय। सूचना राजा के पास भेजा जाय।

राजा के पास पाँच अश्व थे। उनका नाम वाल, पुप्फ, वाल वाहन, पुष्प वाहन और सुयत था। राजा केवल सुयन्त पर आरोहण करते थे। शेष अश्व उसके सन्देश वाहको के काम आते थे। श्रावस्ती के व्यवसायी व्यापार का सामान लेकर कुक्कुट नगर में आये।

× × ×

व्यवसायियो ने विचार किया। कुक्कुट के राजा का दर्शन करना चाहिए। वे परस्पर मिले। निश्चय किया। कुछ भेट राजा को देना उचित होगा।

राजसभा एकत्रित थी। व्यापारियो को सभा प्रवेश की अनुमति प्राप्त हो गयी। वे भेट लेकर उपस्थित हुए।

राजा ने सादर उनका भेट ग्रहण किया। औपचारिक ढग से कुशल मगल पूछा। अन्त मे प्रश्न किया

'व्यापारियो ! आप लोग कहाँ से आ रहे है?'

'राजन् ! हम श्रावस्ती से आ रहे है।'

'वहाँ का राजा कौन है? किस प्रकार का 'देश है। किस शासन के अनुयायी है?'

'राजन् ! हम इस समय उत्तर देने मे असमर्थ हैं।'

'क्यो—?'

'बिना मुख-हाथ धोये धर्म के विपय मे कैसे बात कर सकते है?'

राजा ने अविलम्ब स्वर्ण झारी मे जल लाने का आदेश दिया।

परिचारक जल लाये। व्यापारियों ने हाथ-मुख धोया। वे बोले :

'राजन् ! हमारे देश में बुद्ध का उदय हुआ है।'

था। अतएव उसका नाम अनोजा पड गया था। वह कापिन के चले जाने पर रथो पर उनके पोछे साथि नियो महित चली। सच्च क्रिया द्वारा नदी पार किया और वोली—भगवान् वुद्ध ने केवल पुरुपो के लिये नही जन्म लिया है। स्त्रियो के लिए भी जन्म लिया है उत्पलवर्णने उसे प्रव्रजित किया था।

भगवान् ने उनको 'शका निर्मूल ठहरायी ।

× × ×

भगवान् ने लक्ष्य किया । कप्पिन चुपचाप वैठे रहते थे । वे जैसे निष्क्रिय हो गये थे । केवल अपने ध्यान मे सुख का आनन्द लेते थे । वह किसी को उपदेश नही देते थे ।

भगवान् ने उन्हे एक दिन बुलाया । आने पर आदेश दिया :

'आयुष्मान् ! तुम अपने सहयोगियो को धर्म का उपदेश करो ।'

'आज्ञा भन्ते !'

भिक्षु सघ आमन्त्रित किया गया । अन्य उपस्थित लोग एकत्रित हुए । कप्पिन ने धर्मोपदेश किया । उनके उपदेश का इतना प्रभाव पडा कि एक सहस्र सुनने वाले उपासक अर्हत पद प्राप्त हो गये ।

श्रावस्ती था । जेतवन था । भगवान् के समीप महाकप्पिन का आसन था । वे शरीर सीधा किये वैठे थे । सावधान थे । भगवान् ने देखा । महाकप्पिन का मेरुदण्ड सीधा था । वह योगियो तुल्य लगते थे ।

भगवान् ने भिक्षु सघ आमन्त्रित किया । उनसे कहा

'भिक्षुओ ! महाकप्पिन के शरीर को देखते हो ?'

'हॉ भन्ते ।'

'इनका शरीर चचल नही है । हिलता नही है । डोलता नही है ।'

'हॉ भन्ते ! एकान्त मे, सघ मे, सर्वत्र उन्हे इसी रूप मे देखते है ।'

'भिक्षुओ ! जिस समाधि के भावित तथा अभ्यस्त होने के कारण अचचलता प्राप्त होती है उसे उन्होने प्राप्त कर लिया है ।'

'वह कौन सी समाधि है भन्ते ।'

'भिक्षुओ ! अनायास समाधि के भावित एव अभ्यस्त होने पर मन की चचलता तिरोहित होती है ।'

'भन्ते ! वह कैसा होगा ।'

'आवुसो ! किसी वन मे, किसी वृक्ष के तले, शून्य गृह मे, शरीर को सीधा कर, आसन लगा लेना चाहिए । सावधान होकर बैठना चाहिए ।

महाकप्पिन ने राज्य त्याग किया था। अपने अनुयायियों के साथ आ रहे थे।

उनसे मिलने का निश्चय किया। पूर्वाह्ण काल मे श्रावस्ती नगर में भिक्षाचार किया। तत्पश्चात् चन्द्रभागा के तट पर पहुँचे।

भगवान् एक वट वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गये। उनके शरीर की प्रतिभा चतुर्दिक् फैलने लगी। कप्पिन ने प्रतिभा देखी। उसने समझ लिया। भगवान् का आगमन हुआ है।

भगवान् के समीप आये। भगवान् का अभिवादन किये। वन्दना किये। भगवान् ने उन्हे उपदेश दिया। उनके विमल चक्षु खुले। उन लोगो ने प्रव्रज्या ली। उनकी प्रव्रज्या का नाम 'एहि भिक्षु' हुआ। भगवान् के साथ वे श्रावस्ती आये।

× × ×

रानी अनोजा ने सुना। उसके पति तथा उनके साथी भिक्षु हो गये। उसने निश्चय किया अपने पति का अनुसरण करने का। उसका निश्चय उन अमात्यो आदि की पत्नियो ने सुना जो राजा के साथ भिक्षु हो गये थे। उन्होने ने भी रानी के साथ चलने का निश्चय किया।

वे उसी मार्ग से चली जिससे उनके पति गए थे। उन्होने नदियों को उसी प्रकार पार किया जिस प्रकार उनके पति किए थे। चन्द्रभागा तट पर उन्हे भगवान् का दर्शन हुआ। भगवान् वट वृक्ष की छाया मे बैठे थे।

भगवान् के कारण पति तथा पत्नी एक दूसरे को देख नही सके। भगवान् ने उत्पल वर्णा को उन्हे भिक्षुणी बनाने का आदेश दिया। भगवान् भिक्षुओ के साथ श्रावस्ती पहुँचे।

× × ×

महाकप्पिन अपना समय ध्यान अभ्यास में व्यतीत करने लगे। उन्हे इसमें इतना सुख मिलता था कि वह कहा करते थे—'अहो सुख' अहो सुख।'

भिक्षुओ को शका उत्पन्न हो गयी। कप्पिन अपने राज-सुख का स्मरण कर इस प्रकार कहा करते थे। भगवान् को बात मालूम हुई।

भगवान् महाकप्पिन के सम्मुख आ गये। उन्होने मुसकुरा कर कहा .

'उपसोथ और सघ मे नही जाने का विचार करते है ?'

'हाँ भन्ते !

'क्यो ?'

'भन्ते ! लाभ—?'

'शावुस ! यदि तुम्हारे जैसा ब्राह्मण उपसोथ नही करेंगे। मान नही करेंगे। तो और कौन करेगा ?'

'तो मै क्या करूँ भन्ते।'

'आवुस ! तुम्हे उपसोथ मे जाना चाहिए। संघ कर्म मे जाना चाहिए।'

'भन्ते ! जैसा आदेश।'

भगवान् ने धार्मिक कथा द्वारा महाकप्पिन को समुत्तेजित किया। महाकप्पिन ने उपसोथ तथा सघ मे जाने का निश्चय किया।

× × ×

महाकप्पिन ने धर्म पथ पर अभूत पूर्व सफलता प्राप्त की। उन्होंने एक दिन उदान कहा

'सुनो ! अनागत हित एव अनहित का विचार जो पूर्व काल मे ही कर लेता है। उन्हे परिलक्षित कर लेता है। उसे छिद्र विरोधी और हितैषी दोनो ही खोजने पर भी नही पाते। अनापान स्मृति जिसकी पूर्ण है, जो उसमे पूर्णरूपेण अभ्यस्त हैं, भगवान् के उपदेशो द्वारा उत्तरोत्तर सेवित है, जगत् को मेघो से युक्त शशि के समान आलोकित करते है। मेरा चित्त परिशुद्ध है। अभित है। सर्वांगीण अभ्यस्त है ! सुविदित है। दृढ है। वह समस्त दिशाओ को प्रकाशित करता है।

'ओह ! धनी मर जाता है। निर्धन होने पर भी प्राज्ञ जीवित रहता है। प्रज्ञाहीन धनवान कैसे जीवित रह सकेगा ? ज्ञान का निर्णय प्रज्ञा द्वारा होता है। कीर्ति एव प्रशसा की प्रज्ञा वृद्धि करती है। प्रज्ञावान दु:ख मे भी शुभ का अनुभव करता है। इसमे कोई आश्चर्य नही है। यह

श्वास प्रश्वास पर ध्यान लगाना चाहिए। लम्बा श्वास लेने पर उसे ध्यान रहता है। वह लम्बा साँस ले रहा है। श्वास छोडते समय उसे ज्ञान होता है। वन श्वास का त्याग कर रहा है। इसी प्रकार लघु श्वास लेता और छोडता हुआ उसे ज्ञान रहता है। समस्त शरीर का ध्यान करता हुआ साँस लेता है। इनका अभ्यास करता है। पूर्ण शरीर का ध्यान करता हुआ श्वास लेता है। इसका अभ्यास करता है। काय सस्कार अर्थात् श्वास-प्रश्वासकी क्रिया को शान्त करता हुआ श्वास लूँगा। काय सस्कार को शान्त करते हुए साँस छोडूँगा। अभ्यास करता हूँ। प्रीति का अनुभव करते हुए श्वास को लने और छोडने का अभ्यास करता है। सुख का अनुभव करते हुए श्वास लूँगा। सुख का अनुभव करते हुए श्वास का परित्याग करूँगा। इसका अभ्यास करता हूँ। चित्त सस्कार का अनुभव करते हुए सास लेता और छोडता हूँ। चित्त का अनुभव करते हुए श्वास को लेता और छोडता है। चित्त को प्रमुदित करते हुए श्वास लेता और छोडता है। चित्त को समाहित करते हुए श्वास को लेता और छोडता है। चित्त को विमुक्त करते हुए श्वास लेता और छोडता है। अनित्यता का चिन्तन करते हुए श्वास लेता और छोडता है। विराग का चिन्तन करते हुए श्वास को लेता और छोडता है। त्याग का चिन्तन करते हुए श्वास लेता और छोडता है। निरोध का चिन्तन करते हुए श्वास लेता और छोडता है।'

भिक्षु सघ भगवान् की योग सम्बन्धी गाथा सुन रहा था। भगवान् ने पुन कहा

'भिक्षुओ! अनापान स्मृति के भावित तथा अभ्यस्त हो जाने पर उसका उत्तम फल प्राप्त होता है। इसके अभ्यस्त होने पर शरीरमे चचलता नही रह जाती। शरीर हिलता नही। डोलता नही।

एक समय आयुष्मान् महाकप्पिन राजगृह के मद्दकुच्छि सर्थात् मद्रकुक्षि मृगदाव मे विहार करते थे। एकान्त मे थे। एकाकी थे। मन मे विचार उत्पन्न हुआ। उपसोथ मे वे जॉय या नही। सघ मे जॉय या नही। वहॉ जाकर क्या होगा। वे कथा स्वय अत्यन्त विशुद्ध नही थे?

× × ×

संयुक्त निकाय ६ १ ५

५२ १ ७

विनय पटक वग्ग २ ४ ५

विनय पिटक चुल्ल वग्ग १ ४ १

मज्झिम निकाय ३ २ ८

आनायानसति सुत्त

थेर गाथा २३५, उदान ५४८-५५७

भगवान् की यह योग पद्धति साम्भवी मुद्रा तथा अपजा जप से मिलती है। यह लप योग की क्रिया है।

यह कथा धम्मपद अट्ठकथा मे और तरह से दी गयी है।

एक मत है। कप्पिन अस्सजी के उपाध्याय थे। कम्पिन का अधिकतया उल्लेख सारिपुत्र के साथ आता है।

कोई नयी बात नही है। यह कोई अद्भुत बात नही है। इसमे क्या आश्चर्य की बात है ? जहाँ लोग जन्म लेते है वहाँ मरते है यही प्राणियो की प्रकृति है। जीवित लोगो को जो कुछ लाभप्रद होता है वह मृतकों को नही होता। अतएव मृत्यु पर रोने, दु ख करने से क्या लाभ होगा ? उससे यश नही बढने वाला है। उससे शुद्धि नही होती है। उसकी ब्राह्मण तथा श्रमण प्रशसा भी नही करते।

'ओह ! रोने से क्या होता है ? आँखो को पीड़ा पहुँचती है। शरीर व्यथित होता है। वर्ण हीन होता है। बुद्धि मलिन होती है। शक्ति क्षीण होती है। शत्रुओ को केवल उससे प्रसन्नता होती है। तथापि हितचिन्तक सुखी भी नही होते।

'ओ ! गृहस्थो ! ! मेधावियो की कामना करो। बहुश्रुती की कामना करो। वे प्रज्ञा एव कृत्य से बोझिल नाव के पार करने तुल्य पार करते है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे अड़तीसवाँ स्थान प्राप्त सोमान्त देश कुक्कुटवती नगर राजवशोय महाकप्पिन उपदेशको मे अग्र हुए थे।

आधार ग्रन्थ :

अगुत्तर निकाय १ . १४

६ . १ २ ७

धम्मपद ६ ४

पिलिन्द की सुखन तकिया थी। बात-बात मे भिक्षुओ को वृषल[४] कह देता था। भिक्षुओं को बुरा लगा। उन लोगो ने भगवान् से शिकायत की। भगवान् ने उत्तर दिया

'भिक्षुओ ! इसमे आश्चर्य नही।'

'क्यो भन्ते ?'

'आवुसो ! अपने पूर्व के एक शत जन्मो मे वह वृषल वादी ब्राह्मण कुल मे जन्म लेता रहा है। यह उसी का प्रभाव है।'

× × ×

एक दिन पिलिन्द वत्स ने राजगृह मे प्रवेश किया। एक आदमी एक पात्र मे पिप्पली (पीपर) लिये चला जा रहा था। पिलिन्द ने उससे पूछा .

'भणे ! पात्र मे क्या है।'

'मूस की लेंडी है।' पात्र वाहक ने क्रोध से कहा। उसे भ्रम हो गया था। पिलिन्द भिक्षु शायद उससे माँग न ले।

'अच्छा—!' पिलिन्द ने विस्मय प्रदर्शित करते हुए कहो।

'ठीक है। ऐसा ही होगा आयुष्मान्।'

पिलिन्द हँस उठा। पात्र वाहकने परिहास देखकर अपना पात्र देखा। सचमुच सब कुछ मूस की लेंडी हो गया था।

प्रकार की ऋद्धि शक्ति थी जिसके कारण व्यक्ति अदृश्य हो जाता था। अनेक रूप धारण कर सकता था। चाहे वह भूमि, आकाश, जल क्यो न हो। दो प्रकार की ऋद्धियो का वर्णन थेर गाथा मे आता है। एक महा तथा दूसरी छोटी थी। पिलिन्द को महा ऋद्धि प्राप्त थी। इसके कारण वह आकाश मे उड जाता था। दूसरो के मनोगत विचारो को जान सकता था।

(४) वृषल . मुद्रा राक्षस नाटक मे शूद्रक ने इसे सखुन तकिया का प्रयोग किया है। चाणक्य प्राय परिहास के कारण 'वृषल' मुँह लगे लोगो को कह दिया करते थे।

पिलिन्द वत्स

अकक्कस विञ्ञापनिं गिर सच्च उदीरये ।
याय नाभिसजे किंचि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

(अकर्कश, सार्थक, सत्यवादी जिससे किसी प्रकार की पीडा नही होती, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।)

—ध० ४०८

श्रावस्ती मे एक ब्राह्मण कुल था । उसका गोत्र वत्स[1] था । पिलिन्द[2] उसी कुल मे उत्पन्न हुए थे । गोत्र पर उसका नाम पिलिन्द वत्स हुआ था । वह भगवान् के बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व जन्म ग्रहण कर चुके थे ।

उसने एक सिद्धि प्राप्त की थी । उसे चुल्ल गन्धार विज्जा कहते थे । इसके कारण प्रसिद्धि पाया था । परन्तु जब भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्त कर लिया तो उसकी सिद्धि समाप्त हो गयी ।

उसे मालूम हुआ । भगवान् ने महा गान्धार[3] ऋद्धि प्राप्त की है । उसके कारण चुल्ल गान्धार ऋद्धि का महत्त्व लोप हो गया है । उसे इस विद्या को जानने की तीव्र आकाक्षा हुई । प्रव्रज्या ग्रहण की । सघ मे सम्मिलित हुआ । भगवान् ने उसे कहा था । शासन मे सम्मिलित होने पर विद्या प्राप्त हो सकेगी ।

× × ×

---

(१) वत्स एक देश जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी । वत्स गोत्र का नाम है । वत्स का अर्थ पुत्र भी होता हे ।

(२) पिलिन्द यह पिलिन्द वत्स का व्यक्तिगत नाम था । वत्स गोत्र का था अतएव उसे पिलिन्द वत्स कहते थे ।

(३) गान्धार ऋद्धि : इसे गान्धार किंवा गान्धार विज्ञा कहते हैं । यह एक

'आरामिक की अनुमति देता हूँ।'

दूत ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की । प्रदक्षिणा की। लौट आया।

× × ×

'भन्ते !—विम्वसार ने पिलिन्द के समीप आकर अभिवादन किया।

'राजन्—!'

'भगवान् ने आरामिक की अनुमति दी है ?'

'हाँ।'

'भन्ते ! आपको आरामिक भेजता हूँ।'

'अच्छा महाराज।'

× × ×

विम्वसार राज-कार्य मे व्यस्त हो गया। राजा आरामिक भेजना भूल गया। आयुष्मान् पिलिन्द ने आरामिक माँगा भी नही। राजा को किसीने स्मरण नही कराया। उसे अकस्मात् वात स्मरण आयी। चिन्तित हुआ। सर्वार्थिक महामात्य से पूछा

'आयुष्मान् पिलिन्द के यहाँ आरामिक भेजने के लिए मैने कहा था भणे ?'

'हाँ महाराज !'

'भणे ! भेजा गया या नही।'

'नही महाराज।'

'ओह ! कितना समय व्यतीत हो गया भणे ?'

'देव ! पाँच सौ रात्रियाँ बीत गयी।'

'भणे ! पाँच सौ ?

'हाँ महाराज।'

'तो—?'

'राजन् ! जैसी आज्ञा ?'

'भणे ! अविलम्व आरामिक भेजो।'

पिलिन्द का चमत्कार देखकर वह घवडाया। हाथ जोडकर क्षमा याचना की। पिलिन्द ने कहा·

'चला जा। फिर ऐसा मत करना।'

पात्र का सामान पूर्ववत् हो गया।

× × ×

वाराणसी का एक कुटुम्ब था। उसने पिलिन्द का उचित सत्कार नही किया। परिणाम तत्काल हुआ। कुटुन्ब मे डाका पडा। दो लडकियॉ डाकू उठा ले गये। पिलिन्द ने अपनी ऋद्धि शक्ति से लड़कियो को घर मे लाकर उपस्थित कर दिया।

भिक्षुओ ने भगवान् से इस बात की शिकायत की। भगवान् ने कहा .

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द वत्स एक समय राजगृह मे थे। पर्वत पर गुफा निर्माण का कार्य आरम्भ किया था। मगधराज सेनिय विम्वसार पिलिन्द के पास आया। अभिवादन किया। एक ओर वैठ गया। उसने सुअवसर देखकर पूछा

'भन्ते! किस कार्य मे लगे है?'

'महाराज! गुफा निर्माण निमित्त पर्वत साफ करा रहा हूँ।'

'आराभिक की आवश्यकता है।'

'भगवान् ने आरामिक रखने की अनुमति नही दी है।'

'आरामिक रखने मे क्या आपत्ति हो सकती है?' भगवान् से पूछ लीजिए।

'अच्छा।'

विम्बसार ने पिलिन्द की प्रदक्षिणा की। अभिवादन किया। प्रस्थान किया।

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द ने सन्देश दूत भगवान् के पास भेजा। दूत ने भगवान् से घटना का वर्णन किया। भगवान् ने भिक्षुओ को सम्वोधित किया :

'सुनो ! इस तृण को बालिका के मूर्धा पर रख दो।' आयुष्मान् पिलिन्द ने कहा।

उन्होने भूमि से एक तृण उठाया। गृहपत्नी को दे दिया।

गृह-पत्नी से तृण बालिका के मूर्धा पर रख दिया। बालिका सुवर्ण माला युक्त अभिरूपा हो गयी। दर्शनीय हो गयी। प्रासादिक हो गयी।

गृह-पत्नी ने बालिका का मुख चूम यिा। आँसू पोछ लिया। बालिका उछलने लगी। उँगलियो से माला लपेटती प्रसन्न होने लगी। गृह-पत्नी ने पिलिन्द के चरणो पर मस्तक रख दिया। उसके काले रूखे केशो से पिलिन्द के चरण कमल काले बादलो मे ढके शशि की तरह लगने लगे।

लोगो ने सुसज्जित बालिका को देखा। ईर्ष्या हुई। द्वेष हुआ। अन्त - पुर मे ऐसी सुन्दर माला नही थी। एक दरिद्र को कैसे प्राप्त हुई ? चर्चा का विषय बन गया।

बात राजा तक पहुँची।

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द दूसरे दिन पिलिन्द ग्राम मे भिक्षाचार करने आये। बालिका के घर पहुँचे। वहाँ कोई नही था। पडोसियो से पूछा :

'आरामिक कहाँ चला गया।'

'राजा ने बन्दी बना लिया।'

'सबको ?'

'हाँ भन्ते !'

'बालिका सहित ?'

'हाँ भन्ते।'

'क्यो ?'

'बालिका के सुवर्ण माला के कारण।'

'क्यो ?'

'राजा ने कहा—इस दरिद्रा के पास इतने अमूल्य अलकार कहाँ से आयेगे। अन्त पुर मे भी वैसे अलाकर नही थे।'

'देव ! अच्छा ।'

महामात्य ने पाँच सौ आरामिक आयुष्मान् पिलिन्द के पास भेज दिया । उनसे एक ग्राम आबाद हो गया । उसे आरामिक ग्राम[५] कहते थे । पिलिन्द ग्राम[६] भी कहते थे ।

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द उस आरामिक ग्राम के भिक्षाटक थे । अर्थात् कुलूपग थे ।

एक समय पूर्वाह्ण मे पिलिन्द सुआच्छादित हुए । पात्र लिया । चीवर लिया । पिलिन्द ने ग्राम मे भिक्षा निमित्त प्रवेश किया ।

ग्राम मे उत्सव था । बालको को माताओ और बहिनो ने अलकृत किया था । वे खेल रहे थे । आयुष्मान् पिलिन्द ग्राम में ठहरे नही । भिक्षाचार करते रहे । एक आरामिक के घर पहुँचे ।

आयुष्मान् पिलिन्द ने आसन ग्रहण किया । पिलिन्द ने एक बालिका का रोना सुना । वह रो रही थी—'मुझे अलकार दो। मुझे माला दो ।' पिलिन्द ने आरामिक की गृहपत्नी से पूछा

'बालिका क्यो रो रही है ?'

'दूसरे बालक और बालिकाओ को मालाकृत देखकर रो रही है ।'

'तो—?'

'हम दरिद्र है भन्ते ।'

पिलिन्द चुप हो गये ।

'हम कहाँ पायेगे ?' कहती-कहती गृह-पत्नी ने आँसू पोंछ लिये । वह लौटने लगी ।

---

(५) आरामिक ग्राम आरामिक ग्राम का नाम आरामिको के रहने के कारण पडा है जैसे आजकल मजदूर वस्ती आदि किसी वर्ग विशेप के रहने के कारण पड जाता है ।

(६) पिलिन्द ग्राम : आरामिक ग्राम का दूसरा नाम था । पिलिन्द के कारण ग्राम वसा था अतएव उनके स्मृति मे गाँव का नाम रख दिया गया । आजकल भी इस प्रकार विशेष पुरुषो के नाम पर गाम रखने की प्रथा है ।

अनन्तर जल-पात्रो तथा थैलियो में भर कर वन मे टाँगे जाने लगे। विहार भूमि मे अस्त-व्यस्त पडे रहते थे। लोग विहार मे आते थे। उन्हे भिक्षुओ का सग्रह रुचता नही था। लोग चकित हुए। किस प्रकार आयुष्मान् पिलिन्द की परिषद् सग्रही हो गयी थी। असंग्रह धर्म त्याग दिया था।

× × ×

भगवान् को मालूम हुआ। उन्होने भिक्षु सघ को और सग्रहीताओं को फटकारा। भिक्षुओ को सम्बोधित किया

'बीमारों को भी चर्या योग्य भेषज्य पदार्थ एक सप्ताह से अधिक नही रखना चाहिए। इसका अतिक्रमण करने पर धर्मानुसार दण्ड दिया जाय।'

पिलिन्द के कारण भिक्षुसघ मे एक नियम बना।

× × ×

पिलिन्द वत्स ने अपने जीवन का सिंहावलोकन करते हुए उदान कहा था।

'विभिन्न धर्मो मे जो श्रेष्ठ धर्म था उसे मैने प्राप्त किया है। मेरा लाभ हुआ है। अनिष्ट नही हुआ है। मैने जो उपदेश, जो निर्देश प्राप्त किया था, वह मेरे लिये कल्याणकारी सिद्ध हुआ है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावकों मे छब्बीसवाँ स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती ब्राह्मण कुलोत्पन्न पिलिन्द वत्स देवताओं के प्रियो मे अग्र हुए।

●

आधार ग्रन्थ

अगुत्तर निकाय १ १४

'तो—?'

'सन्देह हो गया—वे चोरी के थे।'

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द का आगमन राजा सेनिय बिम्बसार के यहाँ हुआ। पवित्र आसन ग्रहण किया। राजा ने सुना। श्रद्धापूर्वक आया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। आयुष्मान् पिलिन्द ने पूछा :

'महाराज! आपने आरामिक कुल को बन्दी किया है?'

'हाँ भन्ते।'

'कारण—?'

'सुवर्णमाला अमूल्य थी। अन्त पुर मे भी मिल नही सकती थी।'

'तो—?।

'निस्सन्देह चोरी की होगी।'

'ओह!—?'

आयुष्मान् पिलिन्द ने विचार किया। राजा के भवन की ओर देखा। भवन सुर्वण का हो गया। राजा विस्मित हुआ। आयुष्मान् पिलिन्द ने मृदु स्वर मे पूछा :

'राजा इतना सुवर्ण कहाँ से आ गया?'

'भन्ते! भन्ते—!'

राजा पिलिन्द के चरण-कमलो पर गिर पडा। 'भन्ते! क्षमा करें। वे मुक्त किये जाते है।'

आयुष्मान् पिलिन्द आसन त्यागकर उठ गये।

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द का ऋद्धि प्रतिहार्य राजा ने देखा। राज परिषद ने देखा। ख्याति चारो ओर फैल गयी। आयुष्मान् पिलिन्द के पास मक्खन, घी, तेल, मधु, खाड पाँचो भेपज आने लगे। वे परिपद को दे देते थे। आयुष्मान् पिलिन्द की परिपद सग्रही हो गयी। भेषजो से कुण्डे भर गये थे। वे रखे जाने लगे। विहार चूहो से भर गया।

सुप्रिया[1]

भगवान् ने राजगृह से प्रस्थान किया। चारिका करते हुए वाराणसी पहुँचे। ऋषि पत्तन मृगदाव मे विहार करने लगे। सुप्रिय तथा सुप्रिया दो उपासक और उपासिकाएँ थी। वे श्रद्धालु थे। सघ सेवक थे। वाराणसी निवासी थे।

सुप्रिया रोगी की सेवा मे तत्पर रहती थी। एक दिन की बात है। वह एक विहार से दूसरे विहार मे जाती थी। वह एक परिवेण से दूसरे परिवेण मे जाती थी। भिक्षुओ को देखती थी। किसी को सुश्रुषा की आवश्यकता थी या नही।

सुप्रिया ने एक भिक्षु देखा। वह लेटा था। कृश मालूम होता था। सुप्रिया उसके पास गयी। उसने जिज्ञासा किया।

'भन्ते! आपकी तबीयत कैसी है?'

'मैने रेचक औषधि लिया है।'

'आपको किसी वस्तु की आवश्यकता है?'

'हाँ है, भगिनी!'

'क्या लाऊँ?'

'पथ्य भगिनी!'

'किस चीज का।'

---

(१) बौद्ध साहित्य मे एक और सुप्पिया का उल्लेख मिलता है। वह त्रितीय इक्षाकु और भट्ट की पाँच कन्याओ मे एक थी।

धम्मपद २६ · २५

विनय पिटक महावग्ग ६ ३ १–३

थेर गाथा ९

उदान ९

दो पिलिन्द वत्स भिक्षुओ का उल्लेख मिलता है। एक मत है। राजगृह के पिलिन्द वत्स श्रावस्ती के पिलिन्द वत्स से भिन्न थे।

यह कथा धम्मपद में अत्यन्त सक्षिप्त दूसरी तरह से ही दी गयी है।

'आर्ये !—यह क्या ? आप अपना शरीर काटेगी !'

'ऊँह ! चिन्ता क्या ?'

'आर्ये—!'

'मै अपना मास काटूँगी। दूसरे का वध नही कर रही हूँ। इसमे क्या दोष ?'

'आर्ये !'

'हन्त ! एक दिन यह शरीर नष्ट होगा। आज किसी काम आ जायेगा।'

सुप्रिया ने अपना मास काटा। दासी को बनाने के लिये दिया। घाव धोया। कपडा बाँधा। चादर ओढकर सो गयी।

× × ×

उपासक सुप्रिय आया। उसने सुप्रिया को नही देखा। उसने इधर-उधर देखते हुए बुलाया।

'सुप्रिया ! सुप्रिया !! सुप्रिया !! सुप्रिया !!!

'आर्ये ! वह कोठरी मे सोयी है।' एक दासी ने कहा.

'क्यो ?'

'अस्वस्थ है।'

'क्यो सोयी हो ?' सुप्रिय कोठरी मे गया। उसने स्नेह से पूछा·

'बीमार हूँ।'

'क्या व्याधि है ?'

सुप्रिया ने सब घटना सुप्रिय से बता दी।

'आश्चर्य ! सुप्रिया आश्चर्य !!

'ऊँह ! सुप्रिया ने करवट बदल लिया।

'तुम्हारे लिए और क्या अदेय हो सकता है सुप्रिया ?'

सुप्रिया को अपनी प्रशंसा अच्छी नही लगी। उसने मुँह फेर लिया।

× × ×

'भन्ते ! भन्ते ! भन्ते ! भगवान्—?'

'प्रतिच्छादनीय—भगिनी !'

'भन्ते !' सुप्रिया कुछ विस्मित हुई। पुन बोली 'आप आराम कीजिए। प्रबन्ध हो जायेगा।'

गम्भीर मुद्रा सुप्रिया बाहर निकली।

× × ×

'भणे ! मास लाओ।' सुप्रिया घर आयी। सेवक से बोली :

'आर्ये !—आज्ञा'

सेवक ने सम्पूर्ण वाराणसी ढूँढ डाला। उसे कही मास नही मिला। वह मास पशु मरवा कर ला नही सकता था। विनय के अनुसार खाने के लिए पशु हत्या करना वर्जित था। दूसरे का मारा हुआ मास भिक्षु ग्रहण कर लेते थे। सेवक उदास लौट आया

'आर्ये !' सेवक ने उदासीन स्वर मे कहा।

'भणे ! मास मिला।'

'नही आर्ये ! वाराणसी मे आज पशु वध नही किया गया है।'

सुप्रिया विचार मग्न हो गयी। भिक्षु को मास पथ्य न देना, वचन तोडना होगा। पथ्य के अभाव मे रोग की वृद्धि हो सकती थी। वह मर भी सकता था। सुप्रिया चिन्ताशील हो गयी।

× × ×

'दासी !' सुप्रिया ने दासी को बुलाया।

'आर्ये !' दासी आयी। विनयपूर्वक खडी हो गयी।

'हन्त ! पोत्थ निकाल लाओ।'

'आप क्या करेगी आर्ये !' दासी चकित हुई।

'मास काटूँगी—जा ला।'

कुछ पूछने का साहस दासी नही कर सकी। पोत्थनिका लेकर आयी। सुप्रिया ने अपनी जाँघ खोला। दासी से बोली

'हन्त ! मेरे इस मास को बनाना। विहार मे ले जाना। बीमार भिक्षु को देना।'

'किसने सुप्रिया उपासिका से मास माँगा था ?,

'भन्ते मैने !' बीमार भिक्षु ने कहा।

'मास आया ?'

'हाँ भन्ते।'

'ग्रहण किया ?'

'हाँ भन्ते।'

'किसका मास था ? यह जाना ?'

'नही भन्ते।'

'क्यो ?'

भिक्षु नीरव हो गया। भगवान् ने उसे फटकारते हुए कहा

'मोघ पुरुष। बिना जाने तुमने मास ग्रहण किया। तुमने मनुष्य मास भक्षण किया है।'

'ओह—!' भिक्षु सघ कम्पित हो गया। बीमार भिक्षु भूमि पर बैठ गया।

'सुप्रिया ने अपना मास इसे दिया।'

'और—?' किसी ने प्रश्न किया।

'इसने खा लिया।'

सबकी घृणा दृष्टि भिक्षु पर केन्द्रित हो गयी। सबका मन विषाद-पूर्ण हो गया। यह कार्य सबको घिनौना लगा। भगवान् ने कहा .

'भिक्षुओ। जगत् मे श्रद्धालु है। प्रसन्न मनुष्य हैं। अपने मास तक को दे देते है।'

'भिक्षुओ। मनुष्य का मास नही खाना चाहिए।' भिक्षुओ का मस्तक नत था। भगवान् ने पुन कहा

भिक्षुओ ने भगवान् को तरफ देखा। भगवान् ने गम्भीरता पूर्वक कहा .

'भिक्षुओ ! हाथी, अश्व, स्वान, सर्प, सिह, बाघ, चीता अर्थात् द्वीपी, भाल, तरक्ष अर्थात् लकड बग्घा का मास नही खाना चाहिए।'

'खाने वालो को क्या होगा ?'

सुप्रिय ने भगवान् के चरणो की वन्दना की। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। उसे अत्यन्त उद्विग्न देखकर भगवान् ने पूछा .

'आवुस! क्या है ?'

'भगवान्! कल का मेरा भोजन स्वीकार कीजिए।'

भगवान् ने मौन रहकर स्वीकार किया।

+ × ×

समय पर पात्र चीवर धारी भगवान् सुप्रिय के निवास स्थान पर पहुँचे। आसन ग्रहण किया। वन्दना, अभिवादन और प्रदक्षिणा कर सुप्रिय एक ओर खडा हो गया। भगवान् ने चारो तरफ देखा। वह किसी के देखने की आकाक्षा कर रहे थे भगवान् ने जिज्ञासा की

'सुप्रिया कहाँ है ?'

'बीमार है।'

'बुलाओ।'

'असक्त है।'

'पकडकर लाओ सुप्रिय!'

'भन्ते! आज्ञा!'

× × ×

सुप्रिय पकडकर सुप्रिया को लाया। वह लगडा रही थी। भगवान् का दर्शन मिला। खडी हो गयी। अच्छी हो गयी। घाव भर गया। मास पूज गया। उस पर रोम निकल आये। आश्चर्य चकित रह गयी। भगवान् के पवित्र चरण-कमलो पर शिरसा प्रणाम किया। उपस्थित लोगोने चमत्कार देख स्तब्ध हो गये।

'सुप्रिया उद्विग्न हो उठी। उसने उत्तम व्यजन भगवान् को अपने हाथो परोसा। भोजनोपरान्त भगवान् ने धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित किया। सम्प्रहर्षित किया। तत्पश्चात् आसन त्यागकर चले। सबकी बद्ध अजलियाँ वन्दना मे मस्तक से लग गयी।

× × ×

भगवान् ने भिक्षुसघ को आमन्त्रित किया। तथागत ने पूछा

महाकोष्ठित

महाकोष्ठित श्रावस्ती मे सम्पन्न ब्राह्मण कुल मे जन्म लिया था। उनके पिता का नाम अश्वलायन तथा माता का नाम चन्दावती था। वय-प्राप्त करने पर वे तीनो वेद मे पारगत हो गये। ब्राह्मण के लिए जिन गुणो की आवश्यकता होती थी। सब उनमे था।

महाकोष्ठित ने भगवान् का उपदेश एक बार सुना। वे अत्यन्त प्रभावित हुए। घर त्याग दिया। प्रव्रज्या ली। उपसम्पदा ली। थोडे मे ही समय उन्होने बुद्धधर्म तथा शासन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। चारो अभिज्ञाओ को प्राप्त किया।

× × ×

कोष्ठित तथा तत्कालीन प्रसिद्ध भिक्षुओ के मध्य हुए शास्त्रार्थ तथा धर्म चर्चा का बहुत बडा उल्लेख मिलता है। एक बार कोष्ठित तथा चित्त हत्थिसारपुत्र[1] के मध्य हुए विवाद का उल्लेख किया गया है।

ऋषि पत्तन मे भिक्षुगण एकत्रित थे। अभिधम्म पर चर्चा हो रही थी। हत्थि सारिपुत्र निरन्तर चर्चा मे हस्तक्षेप करता था। कोष्ठित हस्तक्षेप से विरत और समय पर बोलने के लिए कहा। चित्त के साथियो ने

---

(१) हत्थि सारपुत्र यह एक शीलवान का पुत्र था। उसने बुद्ध शासन स्वीकार किया था। छह बार वह बुद्ध शासन मे प्रवेश किया था और छह वार छोडा था। अन्तिम वह महाकोष्ठित से झगड गया था। वह सावित्री के अच्छे कुल का युवक था। एक दिन वह हल जोतकर वापस आ रहा था। एक प्रव्रजित के भिक्षा पात्र से उसने स्वादिष्ट भोजन पाया। उसे प्रव्रजित होने पर स्वादिष्ट भोजन मिलेगा अतएव उसने प्रव्रज्या ले लिया। परन्तु गृहविहीन जीवन उसे अच्छा नही लगा अतएव पुन प्रवज्या त्याग दिया। उसे चित्त तथा चित्त हस्त भी कहा जाता है।

'उन्हे कुक्कट (दुष्कृति) दोष लगेगा।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक श्राविकाओं तथा उपासक उपासिकाओ की तालिका मे बहत्तरवाँ तथा श्रावक उपासिकाओ मे सातवाँ स्थान प्राप्त काशी देश, वाराणसी, कुलगृहोत्पन्न सुप्रिया उपासिका रोगी सुश्रूषिकियो मे अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ

अंगुत्तर निकाय १ · १४

विनय पिटक महावग्ग ६ : ४ · १

'आवुस ! दो नरकट के बण्डल एक दूसरे का आश्रय लेकर खडे रहते है। उसी प्रकार नामरूप और विज्ञान की स्थिति है। दोनो एक दूसरे के अवलम्ब से खडे हैं। उनके कारण दु:ख समूह उत्पन्न होता है।'

'आवुस—।'

'सुनो कोट्ठित।' सारिपुत्र ने कहा। 'एक बण्डल को हटा लो। क्या होगा ?'

'आवुस ! दोनो गिर जायेंगे।'

आवुस !' सारिपुत्र ने कहा। 'नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है। विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध होता है। नामरूप के निरोध से षडायतन का निरोध होता है। षडायतन के निरोध द्वारा स्पर्श का निरोध होता है। इस प्रकार समस्त दुःखो का निरोध हो जाता है।'

'अद्‌भुत भन्ते !'

× × ×

सारिपुत्र और महाकोट्ठित ऋषिपत्तन, मृगदाव वाराणसी मे विहार कर रहे थे। महाकोट्ठित ने सारिपुत्र से सायकाल ध्यान से उठकर निवेदन किया

'आवुस ! शीलवान भिक्षु को किन धर्मों का पालन करना चाहिए ?'

'आवुस ! पाँच उपादान स्कन्ध अनित्य है।'

'वे क्या है, आवुस ?'

'दु:ख, व्याधि, दुर्गन्ध, घाव, पीडा, पराया, असत्य, शून्य और अनात्म है। उनके मनन से भिक्षु स्रोतापत्ति फल प्राप्त करता है।'

'आवुस ! स्रोतापन्न भिक्षु किस धर्म का मनन करे ?'

'आवुस ! उसे मनन करना चाहिए। पाँच उपादान स्कन्ध अनित्य है। वह सकृदगामी, अनागामी का मनन कर अर्हत् फल का साक्षात्कार कर लेगा।'

'अर्हत् पद प्राप्ति निमित्त किन धर्मो का मनन करना चाहिए ?'

'आवुस ! उसे भी यही मनन करना चाहिए। पाँच उपादान, स्कन्ध, दु:ख, व्याधि, दुर्गन्ध, घाव, पीड़ा, पराया, असत्य शून्य और अनात्म

इसका विरोध किया। चर्चा मे वह भाग लेने योग्य था। यह बात जोरो से कही गयी। कोष्ठित ने कहा—'चित्त से गुण बहुत दूर है। वह शीघ्र ही बुद्ध शासन त्याग देगा।' बात सत्य हुई। चित्त हत्थि सारिपुत्र बुद्ध शासन के अलग हो गया। महाकोष्ठित के प्रति सारिपुत्र बहुत आदर प्रकट करते थे।

× × ×

सारिपुत्र तथा महाकोष्ठित एक समय ऋषिपत्तन मृगदाव मे विहार कर रहे थे। सायकाल महाकोष्ठित ध्यान से उठे। सारिपुत्र के समीप गये। कुशल क्षेम पूछा। एक ओर बैठ गये। सुअवसर देखकर महाकोष्ठित ने निवेदन किया

'आवुस ! जरा मरण कैसे होता है ? क्या मनुष्य द्वारा स्वय उत्पन्न होता है ? अथवा अन्य द्वारा उत्पन्न किया जाता है। या स्वय एव अन्य दोनो के द्वारा उत्पन्न होता है ? अथवा न तो स्वय या अन्य इसे कोई उत्पन्न करता है ? अथवा अकस्मात् उत्पन्न हो जाता है ?'

'आवुस ! आपको बातो मे एक भी सत्य नही है।'

'आवुस ! क्या जन्म, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, पडायतन, नामरूप स्वय की रचनाएँ है ? अथवा अकारण, हठात् उत्पन्न हो जाते है ?'

'आवुस ! इनमे एक भी ठीक नही है।'

'और विज्ञान ? आवुस !'

'वह भी—'

'तो—?'

'नाम रूप के प्रत्यय से विज्ञान उत्पन्न होता है।'

'आपके कहने का तात्पर्य है। नाम रूप तथा विज्ञान न तो अपना और न दूसरे का कृतत्व है। और न हठात् उत्पन्न होता है। परन्तु नाम-रूप होता है।'

'कोष्ठित ! मै एक उपमा देता हूँ।'

'आवुस ! अवश्य दे।'

'किन कारणो से वेदना कही जाती है।'

'आवुस ! वेदन अर्थात् अनुभव किया जाता है। अतएव उसका नाम वेदना है।'

'क्या वेदना करती है ?'

'सुख और दु ख, न सुख और न दु ख दोनो का वेदन करती है। अतएव वेदना कही जाती है।'

सज्ञा का क्या अर्थ है ?

'सजानन करती है। अतएव सज्ञा कहते है।'

'क्या सजानन करती है ?'

'नील, पीत आदि वर्ण का सजानन करती है।'

'आवुस ! सज्ञा, वेदना, विज्ञान विभिन्न है। अथवा एक ही है ?'

'यह तीनो मिले-जुले है।'

'तीनो मे क्या भेद है ?'

जिसको वेदन अर्थात् अनुभव किया जाता है। उसीका सजानन किया जाता है। उसी का विजानन किया जाता है अतएव तीनो मिले-जुले है। उन्हे एक दूसरे से अलग नही किया जा सकता। उनका भेद नही बताया जा सकता।'

'शुद्ध मनोविज्ञान द्वारा क्या विज्ञेय है ?'

'आवुस ! आकाश अनन्त है। यह आकाश आनन्त्य आयतन विज्ञेय है। विज्ञान अनन्त है। यह विज्ञान आनन्त्य आयतन विज्ञेय है। अकिंचित् है। यह अकिचन आयतन विज्ञेय है।'

'आवुस ! विज्ञेय धर्मो को किसके द्वारा पूर्णरूपेण जाना जा सकता है ?'

'आवुस ! विज्ञेय धर्म को प्रज्ञा चक्षु द्वारा जाना जाता है।'

'प्रज्ञा का क्या प्रयोजन है ?'

'आवुस ! प्रज्ञा अभिज्ञा निमित्त है। प्रहाण निमित्त है।'

'आवुस ! सम्यक् दृष्टि ग्रहण करने के प्रत्यय क्या है ?'

अनित्य है। अर्हत् को और कुछ करना शेष नही रह जाता। किये हुए का नाश नही करना होता है। इन धर्मो की भावना का अभ्यास सुख-पूर्वक विहार करने, स्मृतिमान और सप्रज्ञ निमित्त होता है।

'साधु ! सारिपुत्र !'

× × ×

श्रावस्ती मे अनाथ पिण्डक का जेतवन था। सायकाल महाकोष्ठित प्रलिसल्लयन से उठे। सारिपुत्र के समीप पहुँचे। समोदन किया। एक ओर बैठ गये।

'आवुस ! महाकोष्ठित ने सारिपुत्र से पूछा, 'दुष्प्रज्ञ क्या है ?'

'नही समझ मे आता इसलिए दुष्प्रज्ञ कहा जाता है।'

'जैसे—?'

'दु ख है। दुःख समुदाय है। दु ख निरोध है। दु ख निरोधगामिनी प्रतिपद को जो नही समझता उसे दुष्प्रज्ञ कहा जाता है।'

'प्रज्ञावान—?'

'समझने वाले को प्रज्ञावान कहते हैं।'

'वह क्या समझता है ?'

'दु ख दु ख निरोध गामिनी प्रतिपद आदि समझता है। अतएव प्रज्ञा-वान कहा जाता है।'

'विज्ञान—?'

'आवुस ! वह जानता है। (विजानीति) अतएव विज्ञान कहा जाता है।'

'जैसे ?'

'सुख है। दु ख है। जानता है। सुख नही है। दु ख नही है। यह भी जानता है। अतएव विज्ञान कहा जाता है।'

'आवुस ! विज्ञान और प्रज्ञा दोनो भिन्न हैं अथवा एक ही है ?'

'दोनो मिले-जुले है।'

'किन्तु उसमे अन्तर क्या है ?'

'प्रज्ञा मनोयोग करने योग्य है। विज्ञान है परिज्ञेय।

'पाँच अगो से विहीन होता है। पाँच अगों से युक्त होता है।'

'वे क्या है ?'

'प्रथम ध्यान प्राप्त भिक्षु का विषयानुराग समाप्त हो जाता है। द्रोह समाप्त हो जाता है। आलस्य समाप्त हो जाता है। व्यापाद, और औद्ध-त्य का कृत्य समाप्त हो जाता है। विचिकित्सा समाप्त हो जाती है।'

'और शेष क्या रहता है ?'

'आवुस ! वितर्क, विचार, प्रीति, चित्त एकाग्रता रहती है।'

'आवुस ! पाँच इन्द्रियाँ है। वे अपना-अपना काम करती है। नाक सुन नही सकता। आँख खोल नही सकती। इनका अनुभव कौन करता है ? इनका आश्रय कहाँ है ?।

'आवुस !' सारिपुत्र ने कहा, 'इनका आश्रय मन है।'

'इन्द्रियाँ किसके आश्रय मे स्थित रहती है।'

'आयु के आश्रय स्थित हैं।'

'आयु किसके आश्रय है ?'

'जब तक शरीर मे उष्णता है।'

'यह उष्मा किसके आश्रय स्थित है ?'

'आयु के अ।श्रय।'

'आवुस ! आयु की व्याख्या कीजिएगा ?'

'आवुस ! उपमा देता हूँ। ज्ञानी भाषण का अर्थ समझ जाता है। दीप जलता है। लौ के कारण प्रकाश दिखाई देता है। और प्रकाश के कारण लौ दिखाई देती है।'

'तो—?'

'इसी प्रकार आयु उष्मा के अवलम्ब से स्थित है। उष्मा आयु के आलम्ब से स्थित है।'

'आयु संस्कार और वेदनीय धर्म दोनो भिन्न है या एक ?'

'वे दोनो एक नही हैं।' सारिपुत्र ने उत्तर दिया।

'यह शरीर जव अचेतन हो जाता है तो कितने धर्म इसका साथ छोड़ देते है ?'

'दो कारण होते है। प्रथम है उपदेश श्रवण तथा योनिश मनस्कार अर्थात् मूल पर विचार करना।'

'आवुस ! किन अगो से युक्त होने पर सम्यक्दृष्टि चेतोविमुक्ति फल वाली होती है। फल के माहात्म्य वाली होती है। प्रज्ञा विमुक्ति फलवाली होती है। फल के माहात्म्य वाली होती है।'

'आवुस ! पॉच अगो के युक्त होने पर होती है।'

'वे अग क्या है ?'

'शील, श्रुत, साक्षात्कार, समथ (समाधि) तथा विपश्यना (चिन्तन) है।'

'आवुस ! भवो की सख्या क्या है ?'

'काम, रूप तथा अरूप भव तीन है।'

'आवुस ! पुनर्जन्म किस प्रकार होता है ?'

'आवुस ! अविद्या नीवरणो, तृष्णा, सयोजनो वाले प्राणियो की जहॉ अभिनन्दना होती है, उसी के अनुसार भविष्य मे वे जन्म ग्रहण करते है।'

'आवुस ! प्रथम ध्यान क्या है ?'

'उस ध्यानावस्था मे मनुष्य कामनाओ से रहित हो जाता है। वितर्क विचार रहित हो जाता है। दोषो रहित हो जाता है।'

'करता क्या है ?'

'आवुस ! विवेक द्वारा उत्पन्न प्रथम ध्यान प्राप्त करता है। उसमे विहार करता है।'

'प्रथम ध्यान का अग क्या है ?'

'प्रथम ध्यान के पॉच अग होते है।'

'उनकी व्याख्या कीजियेगा।'

'प्रथम ध्यान प्राप्त भिक्षु को वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और चित्त की एकाग्रता रहती है।'

'प्रथम ध्यान किन अगों से विहीन तथा किन अगो से युक्त होता है ?'

'दो प्रत्यय हैं।'

'कौन से ?'

'निमित्त का मन मे स्थान न देना और अनिमित्त धातु का भी मन मे उदय न होना।'

'आवुस! अप्रमाण चेतोविमुक्ति, आकिंचन्या चेतोविमुक्ति, शून्यता चेतोविमुक्ति, अनिमित्त चेतोविमुक्ति धर्म नाना अर्थ वाले है। नाना व्यजन वाले है। या एक अर्थ वाले है। एक व्यजन वाले हैं।'

'दोनो है।'

'चेतोविमुक्ति क्या है ?'

'मैत्री युक्त, करुणा युक्त, मुदिता युक्त, उपेक्षा युक्त चेतोविमुक्ति है।'

'आकिचन्या चेतोविमुक्ति क्या है ?'

'आवुस! जिस समय भिक्षु विज्ञान आयतन का अतिक्रमण कर लेता है उस समय अकिचन आयतन प्राप्त करता है उसमे विहार करता है। इसे आकिचन्या चेतोविमुक्ति कहते है।'

'आवुस! शून्यता चेतोविमुक्ति क्या है ?'

'जिस समय एकान्त मे, एकाकी, अरण्य, वृक्ष छाया अथवा शून्य आगार मे यह चिन्तन किया जाता है—'यह जगत् आत्मा किंवा आत्मोयता से शून्य है—तो उसे शून्यता चेतोविमुक्ति कहते है।'

'अनिमित्त चेतोविमुक्ति क्या है आवुस ?'

'किसी भी निमित्त का मन मे जब धारण नही किया जाता है, तो अनिमित्त चित्त समाधि प्राप्त की जाती है।'

'आवुस! क्या तात्पर्य है ? जिसके कारण धर्म एक अर्थ वाले है। परन्तु व्यजन उनके नाना अर्थ वाले हो जाते है ?'

'आवुस! राग, द्वेष, मोह प्रमाण उपस्थित करते है। किन्तु क्षीणास्रव भिक्षु के वे क्षीण हो जाते है। मूल से उच्छिन्न हो जाते है। ताड वृक्ष के कटे सिर की तरह हो जाते है। अभाव प्राप्त हो जाते हैं। भविष्य मे उत्पन्न होने योग्य नही रह जाते।'

'आवुस ! इस काया को आयु, उष्मा और विज्ञान, त्याग करते है। उनके त्याग के पश्चात् शरीर काष्ठवत् हो जाता है।'

'आवुस ! मृत तथा सज्ञा वेदित निरोध की अवस्थाओ मे क्या भेद है ?'

'आवुस ! मृत के काय सस्कार निरुद्ध हो जाते है। शान्त हो जाते है। समाधिस्थ की उष्मा समाप्त नही होती। आयु शान्त नही होती। इन्द्रियाँ निर्मल होती हैं। और मृत के समस्त काय सस्कार शान्त हो जाते है। यही दोनो अवस्थाओ मे भेद है।'

'आवुस ! सुख-दु ख रहित विमुक्ति के प्राप्ति निमित्त कितने प्रत्यय है।'

'चार है।'

'वे क्या है ?'

'सुख-दु ख परित्याग, चित्तोल्लास, दौर्मनस्य तथा सुख-दु ख रहित उपेक्षा के कारण स्मृति की परिशुद्धि वाली चतुर्थ ध्यान प्राप्त होता है। इसमे साधक विहार करता है।'

'आवुस ! अनिमित चेतोविमुक्ति की समापत्ति के कितने प्रत्यय है ?'

'दो प्रत्यय है।'

'कौन से हैं ?'

'आवुस !' सारिपुत्र ने कहा। 'निमित्तो को मन से तिरोहित और अनिमित्त धातु का मन मे आश्रय देना।'

'आवुस चेतोविमुक्ति की स्थिति के कितने प्रत्यय अर्थात् आश्रय है ?'

'तीन प्रत्यय है।'

'उनका नाम आवुस !'

'किसी प्रकार के निमित्तो को मन मे स्थान न देना, और अनिमित्त धातु का मन मे आश्रय देना। और पूर्व का अभिसस्कार यही तीन प्रत्यय है।'

'आवुस ! अनिमित्त चेतोविमुक्ति के उत्थान के कितने आश्रय है।'

मज्झिम निकाय १ ५ ३
३ : २ ८

थेर गाथा २

उदान २

विनय पिटक चुल्लवग्ग १ ४ १

विनय पिटक महावग्ग १० २ २

'और—?'

'सुनो आवुस! अप्रमाण चेतोविमुक्तियो में अकोप्या चेतोविमुक्ति श्रेष्ठ है। अकोप्या चेतोविमुक्ति राग, द्वेष, मोह से शून्य है। द्वेप किंचन है। मोह किंचन है। क्षीणश्राव भिक्षु के वे क्षीण हो जाते है।

'आवुस! आकिंचन्या चेतोविमुक्तियो मे अकोप्या चेतोविमुक्ति श्रेष्ठ है। राग निमित्त कारण है। द्वेष निमित्त कारण है। मोह निमित्त कारण है।'

'आवुस! अनिमित्त चेतोविमुक्तियो मे अकोप्या चेतोविमुक्ति श्रेष्ठ है। वह राग, द्वेप, मोह से शून्य है।'

'आवुस! यह पर्याय है। जिस पर्याय से धर्म एक अर्थ है। परन्तु व्यजन नानार्थक है।'

× × ×

महाकोष्ठित धर्म पथ पर आरूढ थे। उनका निरन्तर विकास होता गया। एक समय उन्होने उदान कहा.

'वायु जिस प्रकार वृक्ष के सूखे पत्ते को हिला कर गिरा देती है। उसी प्रकार उपशान्त, पाप विहीन, गर्व रहित, ज्ञान वार्ता वाला पाप धर्मो को हिला देता है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे उनतीसवाँ स्थान प्राप्त, कोसल श्रावस्ती, ब्राह्मण कुलोत्पन्न, महाकोष्ठित प्रतिसम्भिदा ज्ञान प्राप्तो अग्र हुए।

आधार ग्रन्थ.

अगुत्तर निकाय १ १४

संयुत्त निकाय १२ ७ ७

२१ ३ : २ १०

भगवान् के विहार की तरफ उग्ग गणिका, नर्तकी, गायिकाओ के साथ सवेग चला। लोगो ने देखा। अमद्यप भिक्षु सघ की ओर जाती, मार सेना तुल्य, उग्ग गृहपति का मद्यप समूह। लोग मद्यपो के इस अभियान पर हँसे। बोले—'अन्तोगत्वा है तो मद्यप ही।'

भगवान् के सम्मुख उग्ग लडखडाती अवस्था मे पहुँचा था। उसे अपने कर्म पर लज्जा मालूम हुई। उसका नशा उखड गया। भगवान् ने उसे सप्रेम समीप बैठाया। उसकी मद्यपावस्था पर रोष नही प्रकट किया। उसे कुछ कहा नही। मदपान की उस समय बुराई नहा की। भगवान् ने उपदेश दिया। उग्ग अनागामी होगा।

वह मदमत्त साथियो, नर्तकियो, गायिकाओ आदि के पास आया। उन्हे नमस्कार किया। क्षमा याचना करते हुए उन्हे छुट्टी दे दी। मद्यप सेना नगर की ओर झूमती चली। उग्ग रह गया सघ मे। रात दिन सघ की सेवा मे रत हो गया।

× × ×

देवताओ का एक दिन रात्रि मे उग्ग के पास आगमन हुआ। अनेक भिक्षु, जिन्होने सफलता प्राप्त की थी, उनका उल्लेख किया। उग्ग से बोले.

'तुम सबको एक जैसा दान देते हो।'

'हाँ देता हूँ।'

'दुनिया मे सब एक जैसे नही होते।'

'लेकिन मनुष्य का आकार एक जैसा है। पशुओ-पक्षियो के आकार मे विभिन्नता है।'

'केवल प्रसिद्ध और नामी भिक्षुओ को दान किया करो।'

'देव! मानवो के आकार मे भिन्नता होते हुए भी समानता है। दान मे भी क्यो न यह साम्य रहे?'

'उग्ग! गुण, धर्म, अध्यास, ज्ञान मानवो मे भेद उत्पन्न करता है। उनमे स्पष्ट भेद प्रतीत होता है।'

'देव! तो मै क्या करूँ। फिर भी मानव है, मानव।'

'उग्ग! दान देते समय तुम भिक्षुओ का चयन किया करो। उनमे जो

[1]उग्ग गृहपति

वज्जियो के देश मे हस्ति ग्राम एक स्थान था। उग्ग गृहपति की जन्म-भूमि थी। पिता की मृत्यु हुई। पिता के स्थान पर नगर श्रेष्ठी नियुक्त किया गया।

भगवान् वज्जि प्रदेश मे पहुँचे। हस्ति ग्राम मे विहार किया। वे नाग वेणु वन मे थे। वहाँ सात दिनो तक मदपान उत्सव पूर्ण गरिमा, उल्लास, उमग, कोलाहल के साथ चलता रहा। नर्तकियो, गायिकाओ, नट-नटी, वादक, ऐन्द्रजालिक आदि से उत्सव पूर्ण था।

उग्ग उमगित था। खूब मदपान किये था। प्रमत्त था। मदपान रहित भगवान् तथा भिक्षुओ का प्रसग उठा। उल्लास मे वह कह उठा—'चलो देखे वहाँ क्या होता है।' सभी मदमस्त थे। उमग मे कह उठे—'हाँ-हाँ चला जाय।'

---

(१) उग्ग का उल्लेख उग्गृह, उग्गत, उद्गत तथा उग्ग रूप मे किया गया है। उग्ग नामक अनेक लोगो का उल्लेख बुद्ध साहित्य मे मिलता है। एक उग्ग काण ग्राम के श्रेष्ठी थे। उसने जेतवन से डेढ मील दूर पर एक विहार भगवान् के लिए निर्माण कराया था। वह भगवान् का उपासक था। दूसरा उग्ग प्रसेनजित कोसलराज का अमात्य था। तीसरा उग्ग उछक रामयुत्त का अनुयायी था। चौथा उग्ग एक थेरा था। वह कोसल निवासी था। मघाराम मे भगवान् जब उपदेश दे रहे थे उसी समय उपदेश सुनकर भिक्षु बन गया था। पाँचवाँ उग्ग श्रावस्ती के गृहपति अनाथपिण्डक का मित्र था। एक मत है कि अनाथपिण्डक की कन्या चूल सुभछा का विवाह इसके साथ हुआ था। वह निर्गन्थ मत का अनुयायी था। सुभछा के कारण भगवान् की शरण मे आया था। छठवें उग्गह माण का उल्लेख मज्झिम निकाय मे है। वह समण मण्डिका का पुत्र था।
उग्ग कोसल मे एक नगर था।

'भगवान् ने देखा। मेरी बुद्धि ठीक है। उन्होने उपदेश दिया। चार अर्य सत्यो को बताया। मैने उसे समझा। अनुभव किया।'

'तीसरा गुण क्या था आयुष्मान् ?'

'मेरी चार पत्नियाँ थी। भगवान् के उपदेशो से प्रभावित हुआ। मनन किया। ध्यान किया। बुद्ध शासन मे रहना स्वीकार किया। घर आया। सब पत्नियो के जीवनयापन निमित्त उचित व्यवस्था कर दी। उनके सुखमय जीवन निर्वाह की योजना बना दी।'

'और क्या किया आयुष्मान्।'

'मेरी चौथी पत्नी ने कहा। वह दूसरा विवाह करना चाहती थी। मुझे विषाद नही हुआ। बिना पति उसे रहना कठिन प्रतीत हुआ। बिना किसी द्वेष-भाव के, बिना किसी ईर्षा के, उसके लिए पति ढूँढ दिया। उसका विवाह कर दिया। इसमे मुझे किचित् मात्र दुख, शोक, मात्सर्य एव ईर्ष्या नही उत्पन्न हुई। एक प्रकार की प्रसन्नता का बोध किया।'

'चौथा गुण आयुष्मान् ?'

'आवुस! मैने अपनी सम्पत्ति गुणी तथा प्रियजनो मे विभाजित कर दिया।'

'पाँचवाँ गुण आवुस ?'

'मै जब किसी भिक्षु के समीप जाता हूँ, तो पूर्ण श्रद्धा के साथ जाता हूँ। भिक्षु का उपदेश ध्यान से सुनता हूँ। यदि भिक्षु उपदेश नही देते, तो मै स्वय धर्म सिद्धान्त बताता हूँ।'

'छठा गुण आयुष्मान् ?'

'आवुस! देवताओ से विभिन्न भिक्षुओ के गुणादि के विषय मे वार्तालाप हुआ। परन्तु दान मे मैने किसी गुणी-अवगुणी, सामान्य किंवा बडे, वृद्ध तथा युवक में कभी भेद नही किया। समान रूप से सबको दान देता हूँ।'

'सातवाँ आवुस ?'

'मैने कभी गर्व नही किया। आत्मश्लाघा नही की। देवताओ से मैने वार्तालाप किया है। अपनी महत्ता बताने के लिये किसी से स्पृहा नही की।'

तुम्हे अच्छे लगे उन्हे दान सहर्ष दो।'

'नही देव! मै मनुष्य और मनुष्य मे कैसे दान के लिए भेद कर सकूँगा ?'

'उग्ग—!'

'देव! क्षमा करे। आपको मेरा प्राजलिभूत नमस्कार है।'

देवता चले गये। उग्ग सर्वदा की तरह छोटे-बडे, ऊँच-नीच का बिना विचार किये दान देता रहा।

× × ×

एक समय भगवान् भिक्षु सघ मे बैठे थे। चर्चा के बीच भगवान् ने कहा

'उग्ग मे आठ गुण है।'

एक भिक्षु उग्ग के पास पहुँचा। संघ मे हुई घटना के सन्दर्भ मे पूछा .

'आयुष्मान्! आप मे आठ गुण क्या है ?'

'आवुस! मै कैसे बता सकता हूँ ?'

'क्यो।'

'भगवान् के मन की बात क्या जानूँ ?'

'भगवान् ने क्यो कहा ?'

'वे जाने ?'

'उनका अष्ट गुणो से क्या तात्पर्य था ?'

'मै कैसे बता सकता हूँ ?'

'आयुष्मान्! आप स्वय जो समझते है, वही बताने की कृपा करे।'

'सुनो!' उग्ग ने कहा। 'मै ज्यो ही भगवान् के सम्मुख पहुँचा मेरा नशा उतर गया।'

उसने भगवान् की वन्दना की। भगवान् ने उससे नाना विषयो पर चर्चा की।

'वह क्या विपय था!'

'वह विपय दान और शील था।'

'आयुष्मान्! दूसरा गुण क्या है ?'

आधार ग्रन्थ

सयुक्त निकाय ३४ ३ २ ५ (सक्क सुत्त)
३४ ३ . २ २ (वज्जि सुत्त)

अगुत्तर निकाय १ १४

A IV 292-296

S IV : 109

A A I 214

'आठवाँ गुण आयुष्मान् ?'

'मै मृत्यु के विषय मे कभी चिन्ता नही करता।'

'क्यो आयुष्मान् ?'

'भगवान् ने मुझे विश्वास दिलाया है। मेरा अब जन्म नही होगा। मै आवागमन से, बन्धनो से, मुक्त हो जाऊँगा।'

+ × ×

भिक्षु भगवान् के पास गया। भगवान् से उसने उग्ग द्वारा वर्णित गुणो की चर्चा की। भगवान् ने कहा

'आयुष्मान्! मैंने जब उग्ग की प्रशसा की थी तो यही गुण मेरे मष्तिष्क मे थे।'

× × ×

उग्ग एक दिन हस्ति ग्राम मे भगवान् के दर्शन निमित्त गया। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् के सकेत पर पूछा .

'भन्ते! क्या कारण है। कुछ लोग इसी जीवन मे मुक्त हो जाते है। दूसरे नही हो पाते।'

'आयुष्मान्!' भगवान् ने उत्तर दिया। 'उसका कारण बन्धन है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भगवान् के भिक्षु श्रावक, श्राविका तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे बासठवॉ तथा श्रावक उपासको मे आठवॉ स्थान प्राप्त बज्जी देश, हस्ति ग्राम, निवासी श्रेष्ठी कुलोत्पन्न उग्ग गृहपति, सघ सेवको मे अग्र हुआ था।

●

'मै क्या करूँगी ।'

'आर्ये ! तुम यह सब सम्पत्ति ले लो ।'

'क्यो ?' धम्मदिन्ना पति के इस त्याग-भावना से चकित हुई ।

'मै गृह-त्याग करूँगा । तुम अपने घर सब सम्पत्ति लेकर चलो जाओ ।'

'जी नही । मै आपके यहाँ से नही जाऊँगी ।'

'फिर क्या करोगी ?'

'आप मेरा एक उपकार करेंगे ।'

'ओह ! निश्चय आर्ये !'

'सत्य ?'

'हाँ ।'

'मै भी क्यो न आपकी तरह प्रव्रजित हो जाऊँ ?'

'वाह—इससे अच्छा और क्या होगा ।' विशाख प्रसन्न हो गया ।

'तो—।'

'चलो चले ।'

'चलो ।' धर्मदिन्ना ने प्रसन्नतापूर्वक कहा ।

× × ×

विशाख ने उत्सव का आयोजन किया । सुसज्जित शिविका आयी । धम्मदिना को हर्ष, उल्लास तथा उत्साह के साथ भिक्षुणी सघ मे लाया । वहाँ धम्मदिन्ना प्रव्रजित हुई । उद्योग करती हुई धर्म पथ पर अग्रसर होने लगी ।

धम्मदिन्ना ने भगवान् का उपदेश सुना । वह अनागामी हुई । भिक्षुणी सघ के साथ विहार मे निवास करने लगी । ज्ञान प्राप्त करने लगी । उसे नगर का जीवन रुचिकर नही लगता था । सघ की आज्ञा से उसने नगर के बाहर एकान्त सेवन पसन्द किया । भिक्षुणियों ने उसके निवास का प्रबन्ध नगर के बाहर कर दिया । उसने शीघ्र अर्हत्व प्राप्त कर लिया । उसे धर्म का विमल ज्ञान हो गया ।

धर्मदत्ता) धम्मदिन्ना)

"वह ऊर्ध्व स्रोत है जो सम्पूर्ण अन्त करण की वृत्तियो द्वारा परम शान्ति की कामना करता है एव भोग और तृष्णा के आकर्पण से प्रलुब्ध नही होता ।"
थेरी गाथा १२

भगवान् राजगृह मे वेणु वन मे विहार कर रहे थे । भगवान् का उपदेश एक दिन विशाख ने सुना । उपदेश का उस पर प्रभाव पडा । वह अनागामी हुआ । घर आया । पत्नी ने उसमे परिवर्तन देखा । कोठे पर विशाख आया । परन्तु पत्नी से भाषण नही किया । गम्भीर था ।

धम्मदिन्ना उदास होकर कोठे से उतर आयी । भोजन का समय हुआ । उसको सस्नेह भोजन परोसा । विशाख ने चुपचाप भोजन ग्रहण किया । परन्तु कुछ बोला नही ।

धम्मदिन्ना चकित हुई । उसे पति का यह व्यवहार विचित्र लगा । उसने साहस कर पूछा

'आप बोलते नही है । क्या मैने कोई दोष किया है ?'

'नही ! धम्मदिन्ने ! तुम्हारा कोई दोष नही है ।'

'तो—?'

'मैने बुद्ध शासन ग्रहण किया है ।'

'फिर—?'

'मै स्त्री का स्पर्श नही करूँगा ।'

धम्मदिन्ना हतप्रभ हो गयी । विशाख ने थाली हटाते हुए कहा

'मै भोजन घर का नही कर सकूँगा ।'

'तो—?'

'भिक्षा माँगूँगा ।'

'अष्टागिक मार्ग क्या है आर्ये ?'

'सम्यक् दृष्टि, संकल्प, वचन, कर्मात्त, आजीव, व्यायाम, स्मृति तथा समाधि अष्टागिक मार्ग है आवुस !'

'उपादान या उपादान स्कन्ध एक ही है या भिन्न ?'

'आवुस ! उपादान एक नही है। पाँच उपादान स्कन्ध एक नही है। उपादान पाँच उपादान स्कन्धों से भिन्न नही है। पाँचो उपादान स्कन्धो में जो राग है वही उपादान है।'

'आर्ये ! सत्काय दृष्टि क्या है ?'

'आवुस ! आर्यों के दर्शन से वंचित, आर्यधर्म से अपरिचित, अविनीत, सत्पुरुषो के दर्शन से वचित, सत्पुरुप धर्म से अविनीत, अज्ञ, पृथक्जन, पुरुप रूप को आत्मा देखता है। रूपवान को आत्मा देखता है। आत्मा मे रूप देखता है। रूप मे आत्मा देखता है। वेदना को आत्मा देखता है। सज्ञा को आत्मा देखता है। सस्कार को आत्मा देखता है। विज्ञान को आत्मा देखता है।'

'आर्ये ! आर्य अष्टागिक मार्ग संस्कृत है या असस्कृत ?'

'सस्कृत है—विशाख !'

'आर्ये ! तीनो स्कन्ध आर्य अष्टागिक मार्ग मे सग्रहीत नही है। अपितु तीनो स्कन्धो मे आर्य अष्टागिक मार्ग सग्रहीत है।'

'आर्ये ! समाधि, समाधि निमित्त, समाधि परिष्कार और समाधि भावना क्या है ?'

'आवुस ! चित्त की एकाग्रता समाधि है। चार स्मृति प्रस्थान समाधि के चिह्न है। चार सम्यक् प्रधान समाधि के परिष्कार है। उन्ही धर्मो का सेवन तथा भावना और वृद्धि करना समाधि सस्कार है।'

'आर्ये ! सस्कारो की सख्या कितनी है ?'

'आवुस ! काय, वचन तथा चित्त तीन सस्कार हैं।'

'काय सस्कार क्या है आर्ये ?'

'श्वास प्रश्वास काय सस्कार है।'

'वचन सस्कार क्या है ?'

'वितर्क और विचार वाक् सस्कार है।'

उसने निश्चय किया। श्रावस्ती मे बँधे पडे रहने से क्या लाभ ? भगवान् राजगृह मे थे। उसने राजगृह के लिए प्रस्थान किया। वह राजगृह पहुँची। भगवान् के सान्निध्य मे उसे धर्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। उसके पति विशाख ने विचार किया। धम्मदिन्ना की बात सुननी चाहिए।

× × ×

भिक्षुणी विशाख की भार्या थी। राजगृह के वेणु वन कलन्दक निवाप मे भगवान् विहार कर रहे थे। धम्मदिन्ना भी वहाँ विहार करती थी।

विशाख भिक्षुणी धम्मदिन्ना के समीप पहुँचा। अपनी पूर्व पत्नी को अभिवादन किया और एक ओर बैठ गया। उसने सुअवसर देखकर पूछा—

'आर्ये ! सत्काय क्या है ?'

पूर्व पति विशाख का सम्बोधन सुनकर धम्मदिन्ना किञ्चित् मुसकुराई। विशाख नील गगन की गम्भीरता की ओर देखने लगा।

'रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान उपादान स्कन्ध है। इनको भगवान् ने सत्काय कहा है आवुस ! विशाख !'

धम्मदिन्ना का सम्बोधन सुनकर विशाख विस्मित हुआ। उनके बीच जैसे पूर्व संबध किसी प्रकार का रह नही गया था। पूर्व मर चुका था।

'आर्ये ! सत्काय समुदाय क्या है ?'

'सुखेच्छा समन्वित विषयो का स्वागत करने वाली, आवागमन की तृष्णा वाली उसी प्रकार है जैसे—काम, भव, विभव, तृष्णादि।

'इनका फल क्या होता है !'

'यह है आत्मवाद के कारण आवुस !'

'सत्काय निरोध क्या आत्मा की भावना के नाश का नाम है ?'

'आवुस ! तृष्णा का सम्पूर्णतया निरोध अर्थात् नाश, त्याग, प्रतिनिस्सर्ग और अनासक्ति सत्काय निरोध है।'

'आर्ये ! सत्काय निरोधगामिनी प्रतिपद क्या है ?'

'आवुस ! यह है अष्टागिक मार्ग।'

'आवुस ! उन्हे शून्यता स्पर्श, अनिमित्त स्पर्श और अप्रणहित स्पर्श तीनो स्पर्श करते है ।'

'आर्ये ! उस साधक भिक्षु का किस ओर निम्न, प्रवण तथा प्राग्भार होता है ?'

आवुस ! उसका चित्त विवेक की ओर निम्न होता है। विवेक प्रवण तथा विवेक प्राग्भार होता है ।'

'आर्ये ! वेदनाओ की सख्या कितनी है ?'

'आवुस ! वेदनाएँ तीन है ।'

'कौन-कौन ?'

'दु ख वेदना, सुख वेदना और अदुख-असुख वेदना ।'

'आर्ये ! सुख मे वेदना ? आश्चर्य ! आर्ये, सुख वेदना क्या है ?'

'कायिक, मानसिक अनुभव, जब अनुकूल प्रणीत होता है, तो उसे सुख वेदना कहते है ।'

दु.ख वेदना ?'

'कायिक और मानसिक अनुभव प्रतिकूल प्रतीत होता है, तो वह दु.ख वेदना है ।'

'आवुस ! अदुःख वेदना क्या है ?'

'कायिक और मानसिक अनुभव जब अनुकूल तथा प्रतिकूल नही प्रतीत होते, तो उसे असुख-अदु.ख वेदना कहते हैं ।'

'आर्ये ! सुखा वेदना क्या है ? सुखा और दु खा वेदना क्या है ?"

'कहती हूँ ।'

सुखा वेदना क्या है ?'

'आवुस ! सुखा अर्थात् सुखमय वेदना की स्थिति सुखा अर्थात् सुखमय वेदना है । किन्तु उसका परिणाम दु ख होता है ।'

'दु खा वेदना क्या है ?'

'दु.ख वेदना की स्थिति दु खा है। किन्तु उसका परिणाम सुखा होता है ।'

'और अदु'ख-असुखा वेदना क्या है ?'

'चित्त सस्कार क्या है ?'

'वे इस प्रकार क्यो है, आर्ये ?'

'आवुस ! आश्वास प्रश्वास काया से सम्बन्धित काया के धर्म किवा क्रियाएँ है। पहले वितर्क किया जाता है। पुन. विचार किया जाता है। तत्पश्चात् वाणी किवा वचन या वाक् प्रस्फुटित होती है। सज्ञा तथा वेदना चित्त के कर्म है। धर्म है।'

'आर्ये ! किस प्रकार सज्ञा वेदित निरोध समाप्त होता है।'

'आवुस ! सज्ञा वेदित निरोध को प्राप्त भिक्षु यह नही विचार करता कि वह सज्ञा वेदित निरोध को समापन्न होगा। समापन्न हो रहा है। यह भी नही विचार करता। वह समापन्न हुआ। यह भी विचार नही करता। वह इस प्रकार अभ्यस्त हो जाता है कि स्वय उस स्थिति को प्राप्त कर लेता है।'

'आर्ये ! जिसका सज्ञा वेदित निरोध समापन्न होता है, उसके कौन-कौन से कर्म किवा धर्म निरुद्ध हो जाते है ?'

'उसका सर्वप्रथम वचन, उसके पश्चात् काय और अन्त मे चित्त सस्कार निरुद्ध हो जाता है।'

'सज्ञा वेदित निरोध की समापत्ति का उत्थान कैसे होता है ?'

'आवुस ! उत्थानशील भिक्षु को मै उठूगा, मै उठ रहा हूँ, मै उठ गया। इस प्रकार की भावना नही होती। उसका चित्त पूर्व से ही, इस प्रकार भावित रहता है कि उस स्थिति को प्राप्त कर लेता है।'

'आर्ये ! सज्ञा वेदित निरोध समापत्ति से उठते भिक्षु को कौन-कौन धर्म पहले उत्पन्न होते है ?'

'आवुस ! उसे पहले चित्त सस्कार, पुन काय सस्कार, अन्त मे वचन सस्कार उत्पन्न होता है।'

'आर्ये ! सज्ञा वेदित निरोध समापत्ति से उठते भिक्षु को कौन-कौन स्पर्श उसे स्पर्श करते है।'

'आवुस ! तीन स्पर्श उसे स्पर्श करते है।'

'आर्ये ! उनका नाम ?'

करेगा जिस आयतन को प्राप्त कर आर्य इस समय विहार करते है। उत्तम विमोक्षो मे इस प्रकार स्पृहा उपस्थित करने पर, स्पृहा के कारण दौर्मनस्य उत्पन्न होता है। अतएव वह प्रतिघ का त्याग करता है। प्रतिघ अनुशय उसे स्पर्श नही करता। सुख और दु ख के परित्याग द्वारा सौमनस्य तथा दौर्मनस्य का अन्त हो जाता है। सुख-दु.ख विरहित होता है। उपेक्षा द्वारा स्मृति की परिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त होता है। उसमे विहरता है। अविद्या का त्याग करता है। अविद्या अनुशय उसे स्पर्श नही करती।'

'आर्ये! सुखा वेदना की प्रतिभाग क्या है?'

'दु ख वेदना।'

'दु ख वेदना का प्रतिभाग अर्थात् विरोधी क्या है?'

'सुखा वेदना।'

'अदु ख असुख वेदना का क्या प्रतिभाग है?'

'अविद्या।'

'अविद्या का प्रतिभाग क्या है?'

'विद्या।'

'विद्या का प्रतिभाग क्या है?'

'विमुक्ति।'

'विमुक्ति का प्रतिभाग क्या है?'

'निर्वाण।'

'निर्वाण का प्रतिभाग क्या है?'

'विशाख! प्रश्न की सीमा पार कर गये। आवुस! ब्रह्मचर्य निर्वाण तक है। निर्वाण पर्यवसान है। इच्छा हो तो भगवान् से प्रश्न कर लो।'

विशाख अपनी पूर्व पत्नी और अब की भिक्षुणी के भाषण का अभिवादन किया। अनुमोदन किया। आसन से उठा। प्रदक्षिणा की भावना के समीप पहुँचा।

सुअवसर प्राप्त होने पर, विशाख ने पूरा सलाप भगवान् से कहा। भगवान् ने कहा—

'विशाख! धम्मदिन्ना भिक्षुणी है। पण्डिता है। महाप्रज्ञा है। यदि मुझसे प्रश्न करते तो मै भी यही सब उत्तर देता।'

'अदु:ख-असुख वेदना सुखा है, ज्ञान मे। अदु खा है अज्ञान मे।'

'सुखा वेदना के समय कौन अनुशय अर्थात् मल लगा रहता है!'

'सुखा वेदना मे राग अनुशय स्पर्श करता है।'

'दु:खा वेदना मे—?'

'प्रतिघ अर्थात् प्रतिहिसा अनुशय स्पर्श करता है। चिपटता है।'

'अदु:ख और असुख मे—?'

'उस वेदना मे अविद्या अनुशय चिपटता है।'

'आर्ये। क्या राग प्रतिघ तथा अविद्या अनुशय क्रमश: वेदनाओ में लप्त होते है? चिपटते है?'

'नही।'

'आर्ये। सुखा वेदना मे क्या प्रहातव्य है?'

'अविद्या अनुशय त्याज्य है।'

'दु:खा मे?'

'प्रतिघ अनुशय त्याज्य है।'

'और अदु ख-असुख मे क्या त्याज्य है?'

'अविद्या अनुशय प्रहातव्य है।'

'आर्ये। क्या सब सुखा वेदनाओ मे राग अनुशय प्रहातव्य है?'

'नही।'

'क्या सभी दु खा वेदनाओ से प्रतिघ अनुशय, प्रहातव्य है?'

'नही।'

'क्या सभी अदु:ख असुखा वेदना मे अविद्या अनुशय प्रहातव्य है?'

'नही।'

'आर्ये।'

'विशाख। भिक्षु कामना और बुराई रहित, विवेक द्वारा उत्पन्न, वितर्क विचार युक्त, प्रीति एव सुखवाले प्रथम ध्यान को प्राप्त होता है। उसमे विहरता है। वह राग का त्याग करता है। उसे राग अनुशय नही स्पर्श करते। वह विचार करता है। कैसे वह उस आयतन को प्राप्त

चिंचा[1]

एकं धम्म अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो।
वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं॥

—ध० १७६

(एक धर्म सत्य का परित्याग कर, जो असत्य भाषण करता है, उस परलोक चिन्ता शून्य मनुष्य से ऐसा कोई पाप बाकी नही रहता जिसे वह न कर सके।)

भिक्षुओ के आचरण, उनके रहन-सहन तथा व्यवहार के कारण सघ की ख्याति बढने लगी। तैर्थिको का मान-सम्मान कम होने लगा। सम्मान कम होते देख वे चिन्तित हुए। उनका लाभ भी कम हो गया। अतएव घनाभाव उनके चिन्ता का विषय हो गया। उनकी वही दशा हुई जैसे सूर्योदय के कारण जुगनू प्रभाहीन हो जाता है। लोप हो जाता है। उस पर किसी का ध्यान नही जाता। तैर्थिको का आदर-सत्कार समाप्तप्राय हो गया।

वे एकान्त मे एकत्रित हुए। चर्चा चली। बुद्ध तथा उनके सघ की किस प्रकार अपकीर्ति की जाय। उनकी धाक जनता पर से उठ जाय। सघ का किस प्रकार नाश किया जाय।

श्रावस्ती मे चिन्ता माणविका नामक एक परिव्राजिका थी। रूपवती थी। युवती थी। अप्सरा तुल्य थी। सौभाग्य प्राप्त थी। उसके तरुण शरीर से कान्ति प्रस्फुटित होती थी।

एक तैर्थिक के दिमाग मे उपज आई। चिन्ता से बुद्ध की अपकीर्ति कराई जाय। तैर्थिको के मन मे यह बात बैठ गयी।

---

(१) चिंचा का पालि मे शाब्दिक अर्थ इमली होता है।

कालान्तर मे सुख की उपदेशिका हुई।

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओ की तालिका मे छियालीसवाँ और भिक्षुणी श्राविकाओ मे पाँचवाँ स्थान प्राप्त मगध राजगृह विशाख श्रेष्ठी की भार्या धम्मदिन्ना धर्म कथिकाओ मे अग्र हुई थी।

आधार ग्रन्थ

अंगुत्तर निकाय १ १४
मज्झिम निकाय १ ५४
धम्मपद अ० क० २६ ३८
थेरी गाथा १२ उदान १२
Thig. v . 12
M i 299
Thig A P 15
P v A P 21
Ap ii 567
A A . i 196
M A · i 515
DhA iv 229
Thig A . 58

लेती थी। माला हाथ मे लेती थी। जेतवन की ओर से लौटते लोगो को उन्हे दिखाती थी।

लोगो को आश्चर्य होता था। सब लोग लौटते थे उस समय जेतवन क्यो जाती थी। लोगो ने उससे पूछा .

'यह तुम्हारा उलटा गमन कैसे चिन्ता ?'

'तुमसे मतलब ?'

'यो ही पूछा था।'

'मै कहाँ रहती हूँ। कहाँ जाती हूँ। कहाँ मेरा निवास होता है। यह मेरा काम है।''

वह लोगो को कठोर शब्दो मे उत्तर देती। लोग चुप हो जाते थे।

इसी प्रकार प्रात काल जब लोग जेतवन की ओर जाते तो वह विगलित शरीर, टूटी माला, बिगडे श्रृगार, अस्त-व्यस्त वस्त्रोयुक्त जैसा रूप बनाकर लौटती।

लोगो को आश्चर्य होता। चिचा रात्रि में कहाँ रहकर लौटती थी–जेतवन जिस समय लोग जाते थे। वह लौटती थी। यह विरोधी कार्य देखकर लोगो का कौतूहल बढा। लोगो ने पूछा ·

'चिचा! इस समय कहा से आगमन हो रहा है।'

'तुमसे मतलब ?' चिचा बिगड कर उत्तर देती।

'कौतूहलवश पूछा था।'

'मै रात को कहाँ रहती हूँ। यह प्रश्न क्या स्त्रियो से पूछने योग्य है। जाओ अपना काम करो।'

लोगो के मन मे शका स्थान करने लगी। वे नित्य ही लौटते और जाते उसी मार्ग मे आती और जाती चिचा को देखते थे।

लोगो मे कानाफूसी होने लगी। किसी ने पुनः जिज्ञासा की। उसने उचित अवसर जान कर कहा 'जेतवन मे रहती हूँ।'

'वहाँ क्या कथा सुनती हो ?'

'नही! तथागत के साथ एक ही गन्धकुटी मे विहार करती हूँ।' वह गर्व से आँख चमकाकर बोलती।

तैर्थिको के आराम में माणविका आती थी। उसने वन्दना की। एक ओर खडी हो गयी। उससे किसी ने बात नही की। उपेक्षा दिखायी। उसने सोचा। उससे कोई अपराध हो गया।

उसने निवेदन किया। यदि उसका कोई अपराध हो तो उसे बताया जाय। चिन्ता से लोगो ने कहा :

'बहिन! बुद्ध का लाभ सत्कार यहाँ हो रहा है।'

'यह तो देख रही हूँ।'

'क्या तुम इसे नित्य नही देख रही हो?'

'देखती हूँ।'

'हमारा तो विनाश हो रहा है।'

'हूँ—।'

'चिन्ता—।'

'आर्यो! कहिए। हम क्या करे?'

'बहिन! सचमुच तुम हमारा सुख चाहती हो तो श्रमण गौतम की अपकीर्ति करा सकती हो।'

माणविका सोचने लगी।

'बहिन!' तैर्थिक उसकी रुचि देखकर बोले। 'श्रमण गौतम के लाभ सत्कार का विनाश होना आवश्यक है।'

'आर्यो! मै आप का कार्य करूँगी।'

'सचमुच!'

'हाँ—आप चिन्ता न करे।'

× × ×

माणविका त्रिया चरित्र मे निपुण थी। मायावी थी। उसने भगवान् को बदनाम करने का मार्ग निकाल लिया।

जिस समय श्रावस्ती निवासी धर्म कथा सुनकर समूह मे जेत वन से निकलते थे। उस समय वह जेत वन की ओर चलती थी। खूब शृंगार करती थी। वीरबहूटी की तरह वस्त्र धारण करती थी। गन्ध हाथ मे

चिचा की ओर आकर्षित हो गये। चिचा क्रोध प्रदर्शित करती हुई बोली-'यदि आपसे नही हो सकता तो कोशल राज, 'अनाथ' पिण्डक अथवा अपनी महाउपासिका विशाखा से ही मेरा प्रबन्ध करवा दीजिए।'

'अभिरमण जानते हो।' उसने तिरस्कार करते हुए कहा 'रमण सुख जानते हो। गर्भ उपचार नही जानते। उसका ख्याल नही है। जो मेरे पेट मे तुम्हारा बीज पनप रहा है।'

लोगो की शकित दृष्टि तथागत पर केन्द्रित होने लगी। तथागत ने शान्त सयत स्वर मे कहा

'बहिन ?'

'ओह ?—मुझे बहिन कहते हो !'

चिचा ने आँख, मुख, नाक, कान, भी सिकोडते और नचाते हुए हाथ चमकाकर व्यंग्य किया।

'बहिन !' तथागत की गम्भीर सिंह तुल्य वाणी गूजी। 'इस सत्य या असत्य को हम और तुम जानते है।'

'ठीक कहा महाश्रमण ! इसे दूसरा और कौन जान सकेगा। यह तो हमारे आपके बीच की बात है।'

अचानक उसके पेट पर बँधी दारु मण्डलिका[१] खिसकी। उसने उसे भय से सम्हाला। भेद खुलने पर अनर्थ हो सकता था। वह काँप उठी। इसी समय हवा बहने लगी। उसकी धोती फरफराने लगी। उसने अपना वस्त्र सम्हाला। हाथ हटते ही काष्ठ मण्डलिका उसके पैर के पास गिर पडी। गर्भ जैसा फूला पेट पचक गया। उसके पजे आहत हो गये।

---

(२) दारु मण्डलिका . इसे कठौती कहते है। काठ अर्थात् लकडी खोद कर इसे छोटे वडे कटोरे के रूप मे वना लिया जाता है। यह पूर्वीय उत्तर प्रदेश तथा विहार मे आटा सानने के काम मे आती है। छोटी कठौती मे रोटी तरकारी दही तथा खट्टी बनी चीज रखी जाती है। पत्थर की वनी पथरी से यह हलकी तथा टूटती नही अतएव इसका व्यवहार अव भी व्यापक रूप से होता है। मेरे घर इतने वडे कठौते थे कि उनमें एक मन आटा आसानी से साना जाता था। वे दो सौ वर्ष के पुराने थे।

लोगो मे सशय घर करने लगा।

× × ×

तीन मास बीता। चिचा का पेट कुछ फूला। लोगो ने देखा। चिचा पेट पर कपडा बाँध लेती। ऊपर से लाल कपडा पहनती थी। लोगो ने समझा। वह गर्भवती थी।

जिस प्रकार मास बीतता जाता था उसी प्रकार उसका पेट फूलता जाता था। पेट पर अधिक वस्त्र बाँधकर उसे फूला हुआ बनाती। उसका प्रदर्शन करती। शिथिल इन्द्रिय होने लगी। उसने सब पर प्रकट किया। वह पूर्ण गर्भवती है। लगभग आठ-नव मास तक उसने यही क्रिया जारी रखी। जेतवन मे आने-जाने वाले उसे निरन्तर देखते थे। उनकी शंका दिन प्रतिदिन बढती गयी।

× × ×

एक दिन भगवान् उपदेश दे रहे थे। जनसमूह उमडा था। श्रावस्ती तथा बाहर से बहुत लोग आये थे। चिंचा ने तैर्थिको की सलाह से यह उपयुक्त समय कलक अपवाद प्रकट करने का समझा।

सायकाल था। भगवान् धर्मासन पर बैठे थे। धर्म सभा एकत्रित थी। उनका उपदेश प्रवचन चल रहा था।

अकस्मात् भगवान् के सम्मुख शिथिल वेदना चिचा खडी हो गयी। लोगो ने उपदेश के बीच इस प्रकार विघ्न पडते देखा। कौतूहल से चिचा और भगवान् दोनो को देखने लगे। चिचा क्रुद्ध होकर बोली

'आप यहाँ धर्मोपदेश देते है। मधुर-मधुर शब्दो के भाषण देते हैं। लोगो को शब्द जाल से मुग्ध करते है।'

चिचा हाँफने लगी। भिक्षु सघ चकित हुआ। सभा चकित हुई। भगवान् शान्त बैठे रहे। चिंचा ने अपने गर्भ की ओर सकेत करते हुए कहा :

'यह गर्भ तुम्हारा है। मेरा गर्भ पूरा हो गया है। मेरे प्रसूति गृह का क्या प्रबन्ध किया। घृत-तैल आदि कहाँ से आयेगा ?'

लोगो की दृष्टि मे अन्तर पड़ने लगा। सब लोग प्रगल्भा लज्जाहीन

सुश्रूषक भगवान्

एक भिक्षु उदर व्याधि से ग्रस्त था। किसी की जीवन मे सेवा नही की थी। किसी भिक्षु के काम नही आया था। एकाकी था। उसकी भी किसी ने चिन्ता नही की। वह एकाकी, मल-मूत्र मे पड़ा, भयकर कष्ट पा रहा था।

आयुष्मान् आनन्द के साथ भगवान् चारिका कर रहे थे। उस भिक्षु के निवास-स्थान पर पहुँचे। भिक्षु अपने विहार मे पड़ा था।

'आवुस ! क्या व्याधि है ?' भगवान् ने उसके समीप जाकर पूछा।

'भन्ते ! उदर व्याधि से ग्रसित हूँ।'

'यहाँ कोई परिचायक नही है।'

'नही है भन्ते !'

'क्या आपकी कोई परिचर्या नही करता ?'

'नही।'

'क्यो ?

'मैने भिक्षुओ की कुछ सेवा नही की है। अतएव मेरी कोई क्यो करेगा ?'

'आनन्द ! जल लाओ।' तथागत गम्भीर हो गये। आनन्द से बोले।

'भन्ते ! जल क्या करोगे ?' रोगी बोला।

'आवुस ! तुम्हारा मल-मूत्र साफ करूँगा।'

'भन्ते ! भिक्षु की आँखे भर आयी।

× × ×

आनन्द जल लाये। भगवान् ने भिक्षु को उठाया। उस पर पानी डालने लगे। आनन्द से बोले।

जनता बिगडी। झूठी थी। भगवान् पर मिथ्या आरोप लगाया था। उस पर लोग थूकने लगे। उस पर पथराव होने लगा।

वह प्राण भय से भागी। भीड पीछे लगी। भयकर कोलाहल हुआ। भगवान् की दृष्टि से ओझल होते ही वह भूमि पर गिर पडी। उसके प्राण पखेरू उड गये। जिस भूमि पर दौड रही थी। भाग रही थी। उसने उसे आश्रय दिया।

●

आधार ग्रन्थ

धम्मपद अट्ठ कथा · १३

बुद्ध चर्या : ३३६

हस्तक आलवक[1]

आलवी के राजा का हस्तक आवलक पुत्र था। यक्ष आवलक उसे खा जाना चाहता था। भगवान् ने उसकी रक्षा की थी। उसका नाम हस्तक इसलिए पड़ा था, यक्ष ने उसे हाथों से उठाकर, भगवान् को दिया था। भगवान् ने उसे पुन हाथो से उठाकर, राजा के दूतो को दिया था। इस प्रकार शिशु दो बार हाथों से उठाकर, एक दूसरे को दिया गया था। (हस्थतो हत्थ गतत्ता)।

हस्तक बड़ा हुआ। उसने भगवान् का नाम सुन रखा था। यह भी सुना था। भगवान् ने उसकी जीवन-रक्षा की थो। हस्तक ने एक बार भगवान् का उपदेश सुना। अनागामी हो गया। उसका अनुसरण सर्वदा पाँच सौ उपासक करते थे।

× × ×

आलवी स्थान था। पचाल देश था। गो-मार्ग था। सिरस वन था। तथागत पर्णासन पर विहार कर रहे थे।

हस्तक आलवक जघा विहार करता वहाँ आया। तथागत को पर्ण सस्तर पर आसीन देखा। भगवान् के समीप गया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया।

उसने भगवान् के पत्तो का बिछौना देखा। उसे आश्चर्य हुआ। पत्तो के बिछौने पर तथागत को निद्रा कैसे आती होगी! उसने विनयपूर्वक पूछा .

'भन्ते ! सुखपूर्वक निद्रा आयी थी ?'

'हाँ कुमार !' तथागत ने कुमार की चकित मुद्रा को लक्ष्य करते हुए उत्तर दिया।

---

(१) हत्थक एक शाक्य भिक्षु का और वर्णन बौद्ध साहित्य मे मिलता है।

'आनन्द ! तुम मल धोओ ।'

उसने पूरा का पूरा स्थान साफ किया। स्नान कराया। रोगी निर्मल हो गया।

भगवान् ने उसका सर पकड़ा। आनन्द ने पैर पकडा। उसे स्वच्छ चारपाई पर लिटा दिया।

भगवान् उसकी सेवा निरन्तर करते रहे। भिक्षु सघ को बुलाकर तथागत ने कहा 'भिक्षुओ ! आपके यहाँ माता नही है। पिता नही है। बन्धु-बान्धव नही है। सम्बन्धी नही है। आप लोगो की परिचर्या करने वाला यहाँ कोई नही है।'

'हाँ, भन्ते !'

'यदि' तथागत ने कहा 'आप लोग परस्पर सेवा, उपचार नही करेंगे, तो यहाँ कौन आपकी सेवा उपचार के लिए आयेगा ?'

'भिक्षुओ ? जो रोगी को सेवा करता है। वह मेरी सेवा करता है। जो रोगी का उपचार करता है। वह मेरा उपचार करता है। यदि उपाध्याय है तो उसे आजन्म उपस्थान करना चाहिए। यदि आचार्य है, तो उसे करना चाहिए। यदि शिष्य है, तो उसे करना चाहिए। यदि गुरु है, तो उसे सेवा करनी चाहिए। यदि कोई नही है, तो सघ को सेवा करनी चाहिए।'

●

आधार ग्रन्थ :

बुद्धचर्या ३३८

के दोनो छोरो पर कोमल तकिया लगी हो। शय्या के ऊपर वितान छाया हो। सुगन्धित तेल प्रदीप प्रज्वलित हो। लावण्यमयी भार्या हो। कुमार! क्या वहाँ कोई सुख से सोएगा ?'

'भन्ते! निश्चय सुख से सोयेगा। इस लोक मे सुख से सोने वालो मे वह एक होगा।'

'अच्छा कुमार! एक बात और बताओ।'

'आज्ञा भन्ते।'

'यदि उस गृहपति किवा उसके पुत्र को राग द्वारा उत्पन्न होने वाले कायिक, मानसिक, परिदाह हो, तो क्या उस राग परिदाह के होते, वह दु खी सोयेगा या नही ?'

'दु:खी सोयेगा भन्ते।'

'कुमार! राग परिदाह से दग्ध व्यक्ति की तरह तथागत नही होते। मै राग से दूर हूँ। इसलिए सुख निद्रा आती है।'

'भन्ते—!'

'सुनो कुमार!' तथागत ने पुन: कहा : 'यदि द्वेष से उत्पन्न परिदाह हो। यदि मोह से उत्पन्न परिदाह हो यदि कायिक उत्पन्न परिदाह हो। यदि मानसिक परिदाह हो तो वह दु:ख । से सोयेगा।'

'हाँ भन्ते।'

'कुमार! मै उनसे परिनिर्वृत्त हूँ। अतएव सुख से सोता हूँ।'

'भन्ते! अद्‌भुत ।! आश्चर्य !!!'

'कुमार! मुक्त ब्राह्मण सर्वदा सुख से सोता है। रागादि रहित सुख से सोता है। आसक्तियो को छिन्न कर जिसका आन्तरिक भय तिरोहित हो चुका है। जिसके मन मे शान्ति है। जो उपशान्त है। वह सुख से सोता है। आपत्तियो के बन्धनो को छिन्न कर निर्भय सुख से सोता है। उपशान्त सुख से सोता है।'

भगवान् ने हस्तक के प्रस्थान करने पर उसकी प्रशसा की। भिक्षुओ ने जिज्ञासा की :

'भन्ते ! हस्तक की प्रशसा का क्या कारण है ?'

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओ, तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे उनसठवा तथा उपासक श्रावको मे पाचवाँ स्थान प्राप्त पचाल देश, आलवी राजकुमार हस्तक आलवक चार सग्रह वस्तुओ से परिपद् को मिलाकर रखने वालो मे अग्र हुआ।

आधार ग्रन्थ :

अगुत्तर निकाय १ १४

३ ४ ५

आलवक सुत्त

बुद्ध चर्या ३५०

A i ,25 88, ii 164 iii 451 iv 216

A A i 2 2

S. N A i 240

S A iii 136 iv 218

S ii 235

'भिक्षुओ ! उसमे आठो गुण विद्यमान है ।'

× × ×

चित्र गृहपति के समान हत्थक को भी अनुकरणीय आदर्श माना गया है। उन्हे बुद्ध वश मे भगवान् गौतम बुद्ध का अग्गुपट्ठाक (अग्र उपस्थापक, माना गया है ।

× × ×

हस्तक की मृत्यु हो गयी । उसने अविहा (ब्रह्मलोक) मे पुनर्जन्म लिया । वहाँ से भगवान् के दर्शन निमित्त आया । भगवान् के सम्मुख खडा नही रह सका । गिर पड़ा । उसने भगवान् की ओर करुण नेत्रो से देखा । भगवान् ने कहा

'आवुस ! तुम कुश का शरीर बनाओ ।'

उसने तृण की काया बनायी । तत्पश्चात् वह खडा हो गया । उसने भगवान् से निवेदन किया

'भन्ते ! देवगण मुझे सर्वदा घेरे रहते थे ।'

'क्यो आयुष्मान् ?'

'वे मुझसे आपका धर्म सुनना चाहते थे ।'

'तुम्हारी मृत्यु तो सुख पूर्वक हुई थी ।'

'नही भगवन् ! मुझे दु ख ही रहा ।'

'क्या हेतु था ?'

'भन्ते ! मुझे तीन बात की कामना रह गयी थी ।'

'वे क्या थी आवुस !'

'मैने आपका मन भर दर्शन नही किया था ।'

'दूसरी क्या थी आवुस ?'

'मन भर धर्मोपदेश नही सुन पाया ।'

'और—?'

'सघ की मन भर सेवा नही किया ।'

× × ×

भीड़ एकत्रित हो जाती थी। इस प्रकार वगीश तीन वर्ष तक भ्रमण करते रहे।

× × ×

'चलो—चलो! वगीश आये हैं। वगीश आये हैं।'

वगीश के साथियो ने नगर मे प्रचार किया :

'अपना पूर्व जन्म जान सकोगे। मृत का पूर्व जन्म जान सकोगे। वह महान् आत्मा है। सर्वज्ञ है। सब कुछ बता देंगे।'

श्रावस्ती की जनता ने सुना। चमत्कार की बात सुनी। किन्तु प्रभावित नही हो सकी। भगवान् के उपदेश का उस पर प्रभाव था। वह अनेक चमत्कारो को देख चुकी थी।

× × ×

'लोग झुण्ड के झुण्ड कहाँ जा रहे हैं ?' वगीश ने साथियो से पूछा।

'शास्ता के पास जा रहे हैं।' एक साथी ने मुँह बिचकाकर कहा।

'क्यो ?'

'उपदेश सुनने।' दूसरे साथी ने व्यग्य किया।

'यहाँ कोई नही आ रहा है।'

'क्या करे! सब पागल हो गये हैं। हमारी बात सुनते ही नही।' तीसरे साथी ने कहा।

'मालूम होता है तथागत कुछ चमत्कार जानते है।'

'और नही तो क्यो जाते ?'

'अच्छा!' वगीश ने साश्चर्य कहा।

'हाँ।'

'कुछ बात है—।'

वगीश गम्भीर हो गया। सब चुप थे।

'साथियो—मै भी चलूँगा।' वगीश ने दीर्घ श्वास लेते हुए कहा।

'क्यो ?'

वंगीश

चुति यो वेदि सत्तान उपपत्तिञ्च सब्बसो ।
असत्त सुगत बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

(मै उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो प्राणियो की मृत्यु एव उपपत्ति को सब तरह से जानता है । आसक्ति रहित है । सुगत है । ज्ञानी है ।)

—ध० ४२०

वगीश श्रावस्ती ब्राह्मण कुल मे जन्म ग्रहण किया था । उन्होने तीनो वेदो का ज्ञान प्राप्त किया था । विद्वान् थे । उन्होने मृत व्यक्तियो की खोपडी देखकर, भूतकाल की घटनाओ जो बता देने मे, निपुणता प्राप्त कर ली थी । ब्राह्मण मण्डली के साथ भ्रमण करते थे । उन्हे इससे खूब आय होती थी । इस प्रकार वे तीन वर्षो तक घूमते रहे । कथा है । उसका जन्म वग मे हुआ था । इसलिए वगीश कहा जाता था । दूसरी कथा है । वचन मे उसने श्रेष्ठता प्राप्त की थी । इसलिए भी उसे वगीश कहते थे ।

वगीश मृत व्यक्तियो की कपाल खोपडी देखते थे । मृत व्यक्ति के सिर को ठोकते थे । इस प्रकार मृत के जन्म-स्थानादि के विषय मे बाते बताते थे । जन-साधारण को इस विद्या पर बडा आश्चर्य होता था । वगीश के साथियो का खूब सत्कार होता था । लाभ भी अत्यधिक होता था । प्रति खोपडी की बात बताने का एक शत से एक सहस्र कहापण, फीस लेते थे ।

वगीश के साथियो का पेशा था । नगर-नगर घूमते थे । लोगो को वगीश के चमत्कार की बाते बताते थे । भीड एकत्रित करते थे । लोग वगीश को पहुँचा हुआ मानते थे । उनके पहुँचते ही पूर्व प्रचार के कारण

'देखूँगा।'

"क्या ?'

'किस कारण लोग आकर्षित हो रहे है ?'

साथी चुप थे। उनका मस्तक नत हो गया। उदास हो गया।

× × ×

वगीश ब्राह्मण साथियो के साथ भगवान् के पास गये। भगवान् ने जान लिया था। वगीश अपने साथिया के साथ आ रहे थे। भगवान् ने चार मनुष्यो के कपाल के साथ एक अर्हत का भी कपाल मंगाया।

वगीश आया। उसने भिक्षु सघ को एकत्रित देखा। भगवान् के सम्मुख रखी खोपडियाँ देखी। वह प्रसन्न हो गया। उसके साथी प्रसन्न हो गये। वगीश अपनी विद्या दिखायेगा। लोग अद्‌भुत चमत्कार देखेंगे। उनका व्यवसाय पुनः चमक उठेगा।

'वगीश !' क्या इन खोपडियो का जन्म-स्थान बता सकते हो। वे पूर्व जन्म मे कहाँ उत्पन्न हुए थे ?' भगवान् ने उसे देखकर कहा।

'अवश्य।' वगीश ने गर्व से कहा।

वगीश अभिमान से आगे बढा। उसके साथी प्रसन्न मुद्रा मे चारो ओर गर्व से देखने लगे। वगीश ने खोपडियाँ उठायी। उलट-पुलट, ठोक कर उनका जन्म-स्थान बता दिया।

वगीश के साथी प्रसन्नता से ताली बजाने लगे। 'साधु वाद' करने लगे। उपस्थित जन-समूह चकित हो गया। भगवान् केवल मुसकराये।

वगीश ने पाँचवी खोपडी उठायी। उसे उलटा। उसे पलटा। उसे ठोका। उसने दो-तीन बार यह प्रक्रिया की। कुछ बोल नही सका। साथी उसके विलम्ब पर गुस्सा करने लगे। उनका उत्साह तिरोहित होने लगा। उन्होने समझ रखा था। वगीश तुरन्त चार खोपडियो के समान इसका भी जन्म-स्थानादि बता देगे।

'वंगीश।' भगवान् ने मृदु स्वर मे सम्बोधन किया।

वगीश चुप था। उसके साथी उस पर जल उठे। उन्हे गुस्सा आ रहा

एक समय वगीश के मन मे काम वितर्क उत्पन्न हुआ । वगीश कवि थे । उनके समीप आनन्द थे । उनसे बोले :

'आनन्द ! मै काम राग से भस्म हो रहा हूँ । मेरा चित्त भस्म हो रहा है । आनन्द ! उसे कैसे शान्त करूँ ?'

'वगीश !' आनन्द ने कहा, 'मन विचारो के दूपित होने के कारण तुम्हारा चित्त भस्म हो रहा है । मोहक राग का त्याग करो । निरात्मीय एव दु ख रूप मे, सस्कारो को देखो । उसे आत्म रूप मे देखने का प्रयास मत करो । महाराग इस अवस्था मे शान्त होगा । पुनरपि तुम्हे बारबार भस्म होने की आवश्यकता नही पडेगी । एकाग्र चित्त, सुसमाहित हो । इस शरीर के विपय मे स्मृतिमान बनो । विरक्त बहुल होना श्रेयस्कर है। अभिमान का आमूल त्याग कर अनिमित्त समाधि का अभ्यास करना चाहिए । तुम्हारा अभिमान शान्त होगा । उपशान्ति प्राप्ति कर, विचरणशील होगे ।'

× × ×

वगीश के उपाध्याय निग्रोध कल्प थे । आलवी[1] के अग्गालव चैत्य[2]

(१) आलवी पचाल देश मे था । भगवान् ने सोलहवाँ वर्षावास यहाँ किया था । इस स्थान के विषय मे दो मत हैं । एक मत है अर्वल जिला कानपुर किंवा नवल अथवा नेवल जिला उन्नाव उत्तर प्रदेश का यह स्थान था। तीसरा मत है कि इटावा से २७ मील उत्तर पूर्व अवीव ग्राम से मिलाया है । भगवान् ने अन्तराष्टक मे आलवी के समीप शिशयावन (शीशम या सीसो की बारी) का वन विहार किया था । पचाल मे भगवान् से सम्बन्धित अग्गाल चैत्य, कण्ण कु ज, सौरेय्य (सोरो), शिशया वन, किम्पिला तथा आलवी का उल्लेख मिलता है । आलवी सम्भवत गगा नदी के समीप था । इसे एक मत आलम्भिका पुरी मानता है । इसे कानपुर तथा कन्नौज के बीच मे भी होना कहा जाता है । यहाँ की यात्रा फाहियान तथा यूआनचुआङ् ने की थी ।

(२) अग्गालव चैत्य इसे अग्गालव चेतिय भी कहते है । बुद्धघोष ने यहाँ यक्षो का निवास बताया है । यक्ष एक जाति थी । यक्षो से वार्तालाप का वर्णन मिलता है ।

चीवर पहने देखा। उसकी मुद्रा शान्त देखी। उसकी दृष्टि मे विवेक देखा। वे प्रसन्नता से बोले

'वगीश ! मन्त्र सीख लिया ? चलो चले।'

'नही बन्धुओ।'

'क्यो ?'

'मै जो जानता था उससे भी अधिक जान गया हूँ।'

'क्या जान गये ?'

'मै मृत्यु एव जीवन का रहस्य समझ गया हूँ।'

'तो—नही चलोगे ?'

'मित्रो ! मुझे अकेला छोड दो।'

साथी उदास हो गये। उनका चलता व्यवसाय अनजाने नष्ट हो गया। उन्हे भगवान् पर क्रोध आया। वे बोले

'अब तुम्हारे साथ रहने से क्या लाभ ?'

'धन्यवाद मित्रो !'

× × ×

वगीश भगवान् की वन्दना मे सहस्रो पद बनाने लगा। उसके छन्द उत्तम थे। सरस थे। मधुर थे। उनकी अन्तर्दृष्टि दिन प्रतिदिन उन्मीलित होने लगी। उसने अर्हत पद प्राप्त कर लिया।

वगीश मे वितर्क उत्पन्न हुआ। उस वितर्क के समय उन्होने उदान कहा

'मैने गृह त्याग कर प्रव्रज्या ली है। तथापि पाप वितर्क का उदय होता है। चाहे सग्राम के शिक्षित, निपुण, दृढ स्वभाव वाले, अपलायनशील योद्धाओ के सहस्रो वाणमयी वर्षा तुल्य अगणित स्त्रियाँ आये, तथापि वे मुझ धर्म मे प्रतिष्ठित मार्ग की बाधक नही हो सकती। मैने भगवान् से उपदेश सुना है। मेरा मन उसी मे रत है। मार ! तुम मेरे समीप आने का प्रयास मत कर। ओ मृत्यु ! मै उस मार्ग से गमन करूँगा जिसका तुम्हे ज्ञान भी नही है।'

× × ×

किन्तु भिक्षु शोकरहित है। अभिमान को, मान को, नष्ट कर, हे मन शान्ति प्राप्त करे।'

वगीश का अभिमान शान्त हुआ। उस समय वगीश ने उदा कहा

'हे गौतम शिष्य ! अभिमान तथा नि.शेष अभिमान पथ त्याग दे अभिमान द्वारा आहत नरक मे पतित होता है। नरक मे उत्पन्न व्यक्ति अनन्त काल तक पश्चात्ताप करता है। सन्मार्ग गामी, धर्म पथ विजयी कभी पश्चात्ताप नही करता। कीर्ति का अनुभव करता है। सुख का अनुभव करता है। वस्तुत धर्मदर्शी होता है। बाधाओ को तिरोहित कर उद्योगी और आवरणो को त्याग कर, विशुद्ध बनकर, त्रिविद्या द्वारा आवागमन का अन्त कर शान्त होना चाहिए।'

वगीश कविता करते थे। कविता सुनाते थे। वे आशुकवि थे। ग्राम ग्राम, नगर-नगर, जनपद-जनपद विचरण करते थे। खोपडियो का जीवन रहस्य बताते थे। उन्हे आर्थिक लाभ होता था।और अब—?

भगवान् के धर्मोपदेश के कारण स्कन्ध, आयतन एव धातुओ के विषय मे ज्ञान हुआ। भगवान् मे दृढ श्रद्धा उत्पन्न हुई। गृह त्याग किया। प्रव्रजित हुए। बुद्ध अनुशासन का स्वागत किया। तीनो विद्याएँ प्राप्त की। अपने पूर्व जन्म की बात जान गये। चक्षु विशुद्ध हो गया। वह त्रैविद्य हुआ। ऋद्धिमान् हो गया।

× × ×

भगवान् आलवी मे थे। अग्गालव चैत्य मे विहार कर रहे थे। आयुष्मान् वगीश के उपाध्याय निग्रोध कल्प स्थविर थे। वे अग्गालव चैत्य मे निवास करते थे। उनका निर्वाण होते ही, अविलम्ब वगीश के मन मे वितर्क उठने लगा। उसके उपाध्याय को वास्तव मे निर्वाण प्राप्त हुआ था या नही।

वगीश अपनी शका समाधान स्वय नही कर सके। सायकाल ध्यान से उठे। भगवान् के समीप गये। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। अनुकूल अवसर पाया। वगीश ने भगवान् से निवेदन किया .

मे विहार कर रहे थे। वगीश ने हाल ही मे प्रव्रज्या ली थी। अपने उपाध्याय के नियन्त्रण मे रहते थे।

एक दिन कुछ स्त्रियाँ सुअलंकृत विहार देखने के लिए आयी। वगीश का मन उनके अनुपम रूप की ओर आकर्षित हो गया। राग से मत्त प्रमत्त हो गया।

उन्हे अपनी प्रव्रज्या का ध्यान आया। पश्चाताप होने लगा। उन्होने तर्क किया। वितर्क किया। उनके मन से राग तिरोहित हो गया। पथ भ्रष्ट होते-होते उनके पवित्र विवेक ने उन्हे बचा लिया।

× × ×

उपाध्याय निग्रोध कल्प के साथ वगीश आलवी के अग्गालव चैत्य मे विहार करते थे। उपाध्याय भिक्षाटन से लौटते थे। भोजनोपरान्त विहार मे प्रवेश करते थे। दूसरे दिन भिक्षाचार के समय ही बाहर निकलते थे।

वगीश अभी नये प्रव्रजित थे। उनका मन चचल हो जाता था। मोह का प्रवेश हो जाता था। मोह एव राग किसी बाहरी शक्ति से दूर नही होता। आयुष्मान् वगीश ने तर्क-वितर्क किया

'पृथ्वी किवा आकाश मे स्थित सभी रूप अनित्य है। पुराने हो जाते है। ज्ञानी उन्हे जानकर विचरणशील होता है। सासारिक भोगो में लिप्त नही होता। इनमे अपनी इच्छाओ को दबा कर जो लीन नही होता वही मुनि है। साठो मिथ्या धारणाओ मे जो लिप्त नही होता वही भिक्षु है।'

× × ×

अभ्यास और उद्योग से वगीश धर्म पथ की ओर उत्तरोत्तर आरूढ होते जाते थे। उन्हे एक समय अग्गालव चैत्य मे विहार करते हुए अभिमान उत्पन्न हो गया। अपनी प्रतिभा के कारण अन्य भिक्षुओ की निन्दा करने लगे। उन्हे अपने कार्य पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होने तर्क किया। वितर्क किया

'लोग अभिमान मे लिप्त है। अभिमानी नरकगामी होते है। लम्बे समय तक उन्हे शोक प्राप्त होता है। वे नरक मे उत्पन्न होते है।

वाली तृष्णाएँ पार कर चुके है। जाति मरण से अशेष हो चुके हैं।'

'ऋषि सत्तम!' वंगीश ने श्रद्धा मिश्रित वाणी से कहा, 'आपकी वाणी से हमे प्रसन्नता हुई है। प्रश्न व्यर्थ नही गया। हमारी उपेक्षा आपने नही की। आपके श्रावक यथावादी थे। तथाकारी थे। उन्होंने मार के विस्तृत मायावी जाल का मोचन कर दिया था। भगवन्, कप्पिय को तृष्णा के कारण का ज्ञान था। कप्पिय ने सुदुस्तर मृत्यु राज का अतिक्रमण किया है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावकों मे तेईसवाँ कोसल श्रावस्ती निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न वगीश प्रतिभावालो (कवियो) मे अग्र हुए।

---

(३) पंचाल : यह जनपद शूरसेन तथा कोसल जनपदो के मध्य मे था। इसके पश्चिमोत्तर दिशा मे कुरु देश था। दक्षिण पूर्व वंस राज्य था। उत्तर तथा दक्षिण पचाल का उल्लेख मिलता है। इनके मध्य मे गंगा नदी थी। उत्तर पचाल की राजधानी कम्पिल नगर कहा जाता है। उत्तर पाचाल की राजधानी हस्तिनापुर भी बताया जाता है। मैंने यह स्थान देखा है। मुझे वहाँ दो एक टीलो के और कोई विशेष बात नही मिली। सिवा पालि ग्रन्थो मे पचाल की सीमा प्राचीन सीमा से भिन्न प्रतीत होती है। कम्पिल नगर वर्तमान कम्पिल फरुखाबाद जिला फतेहगढ से २८ मील उत्तर पूर्व गगा तटपर माना जाता है। कुछ किम्बिला को कम्पिल नगर से मिलाने का प्रयास करते है। अनुसन्धान का विषय है।

'भन्ते ! मेरे उपाध्याय ने निर्वाण प्राप्त किया है या नही ?'

तत्पश्चात् वगीश ने अपना आसन त्यागा । चीवर कन्धा पर डाला । भगवान् को प्रणाम कर गाथा मे कहा

'भन्ते ! आपने मेरे उपाध्याय ब्राह्मण का नाम निग्रोध कप्प रखा था । वे मु.क्ति को अपेक्षा रखते थे । दृढ पराक्रमी थे । निर्वाणदर्शी आपको प्रणाम कर चारिका करते थे ।

'सर्वज्ञ ! शाक्य ! अपने उस उपाध्याय के विषय मे हमारे श्रवण सुनने के लिए उत्सुक है । जानना चाहते है । आपके उस शिष्य का क्या हुआ ? मोहोन्मुख अज्ञान सम्बन्धी शका उत्पादक ग्रन्थियाँ, तथागत आप खोलने मे समर्थ है । आप पुरुषो के परम चक्षु है । मेघाच्छन्न आकाश को वायु निर्मल कर देती है । यदि लोगो की वासनाओ को आप तिरोहित नही करेगे, तो यह लोक मोहाच्छादित रहेगा । ज्योतिर्मय पुरुष भी ज्योति नही प्राप्त कर सकेगे । धीर प्रकाश देते है । आपको भी हम धीर मानते है । आप विशुद्धदर्शी है । ज्ञानी है । हम आपके सान्निध्य मे है । आप भिक्षु परिषद् मे निग्रोध कल्प के विषय मे प्रकाश डालिये ।

'तथागत !' वगीश ने पुन. निवेदन किया, 'हस अपनी सुन्दर ग्रीवा विस्तीर्ण कर मृदु सरस निकूंजन करता है उसी प्रकार आपकी मधुर वाणी हम ध्यानपूर्वक सुनने के लिये उत्सुक है ! आपने अशेष जन्म-मरण का नाश किया है । आपसे उपदेश निमित्त सानुरोध प्रार्थना करते है !'

'ऋजु प्रज्ञ !' वगीश ने सानुनय कहा, 'आपके उपदेश को पूर्णतया ग्रहण किया है । साजलि प्रणाम करता हूँ । हमे मोह मे मत रखिये । महाप्रज्ञ ! आदि से अन्त तक आर्य धर्म के ज्ञाता ! आप हमे मोह मे मत रखे । गर्मी से त्रस्त मनुष्य जलेच्छु होता है । उसी प्रकार हम आपकी पवित्र वाणी के इच्छुक है ।'

'भन्ते ! जिसके लिए आपके शिष्य ने, मेरे उपाध्याय ने, ब्रह्मचर्य का पालन किया था । क्या वह सफल हुआ ? क्या उन्हे निर्वाण प्राप्त हुआ है । क्या उनका जन्म शेष रह गया है ? हम सुनना चाहते है । उनकी मुक्ति किस प्रकार हुई है ।'

'आवुस !' भगवान् ने कहा, 'वे दीर्घकालीन नामरूप सरिता बहने

सुन्दरिक[1] भारद्वाज

भारद्वाज ! मै ब्राह्मण नही हूँ । राजपुत्र नही हू । वैश्य नही हूँ । कुछ और नही हूं । सामान्य जनो के गोत्र को जानकर, इस लोक मे मै अकिंचन भाव से चरण करता हूँ ।'

बुद्ध सुत्त निपात ३० १

सुन्दरिक नदी तट पर यज्ञ करने के कारण भारद्वाज का नाम सुन्दरिक भारद्वाज पड गया था । वह अक्कासक तथा विलगिका भारद्वाज का भाई भी कही-कही कहा गया है ।

तथागत सुन्दरिका नदी तट पर कोसल मे विहार कर रहे थे । सुन्दरिक भारद्वाज नदी तट पर यज्ञ करता था । अग्नि परिचरण करता था । उसने अग्नि मे हवन किया । अग्निहोत्र परिचरण किया । आसन से उठा । चारो दिशाओ की ओर दृष्टिपात किया । वह ढूढ रहा था किसी को । जिसे हव्य शेष दिया जाय ।

भारद्वाज ने देखा । एक वृक्ष की छाया मे एक व्यक्ति शिर ढके वैठा था । उसने वाम हाथ मे हव्य शेष लिया । दाहिने हाथ से कमण्डलु उठाया ।

वह वृक्ष मूल मे आया । पद-ध्वनि तथागत ने सुनी । मस्तक से वस्त्र हटा दिया । सुन्दरिक बोल उठा

---

(१) सुन्दरिक एक मत है कि सुन्दरिक भारद्वाज और भगवान् से बाहुका नदी तट पर भेट हुई । वही स्नान के विषय मे भगवान् से चर्चा हुई थी । सुन्दरिका कोसल देश मे एक नदी है । एक मत है कि सई नदी पालि साहित्य मे वर्णित सुन्दरिका नदी है ।

आधार ग्रन्थ
अगुत्तर निकाय १ : १४
धम्मपद २६ ३७
सुत्त निपात २४ (वगीश सुत्त)
सयुक्त निकाय ८ १–१२
थेर गाथा २६४ उदान १२१२–१२१५,
१२२२, १२३०
१२६७, १२–३

S I 185
Thag A II 211
S A I 207
Ah II 49

'ब्राह्मण, आपके इस भोजन के विषय मे मैने एक गाथा कही है। वह मेरे लिए अग्राह्य है। इसका ग्रहण करना धर्म नही है।'

'कारण ?'

'धर्मोपदेश करने पर प्राप्त भोजन मै नही लेता।'

'गौतम ! मै इस हव्य शेष को किसे दू ।'

'ब्राह्मण ! इस हव्य को तृणरहित स्थान मे रख दो। अथवा प्राणि-रहित जल मे रख दो।'

× × ×

भारद्वाज ने शेष हव्य को प्राणी रहित जल मे डाल दिया। हव्य जल मे पडते हो चिटचिटाने लगा। भभक उठा। लहरा उठा। वह उसी प्रकार चिटचिटाने लगा जैसे दिन मे तप्त हुआ लोहा जल मे डालने से चिटचिटाता है। धुआ छोडता है।

ब्राह्मण देखकर रोमाचित हो गया। उसे कौतूहल हुआ। उसे सवेग हुआ। वह भगवान् के पास गया। एक ओर खडा हो गया।

'लकडी जलाने से शुद्धि नही होती।' उसे देखकर भगवान् ने कहा 'यह बाहरी बाते है। बाहर से शुद्ध होना, कुशल पण्डितो की दृष्टि मे, वास्तव मे, शुद्धि नही है।'

'तो क्या शुद्धि है ?'

'ब्राह्मण ! मै लकडी जलाने की अपेक्षा अन्तर्ज्योति जलाता हूँ। मै नित्य अग्नि वाला हूँ। मै नित्य एकान्त चित्त वाला हूँ। मै ब्रह्मचर्य का पालन करता हूँ।'

'ओह—।'

'ब्राह्मण ! मै अध्यातम ज्योति जलाता हूँ। वह बुझती नही। वह अखण्ड ज्योति है। नित्य समाहित है। क्रोध धूंआ है। असत्य भस्म है। जिह्वा स्रुवा है। हृदय वेदी है। अपनी अन्तर्ज्योति ही यज्ञ-ज्योति है।'

'भन्ते ! यह ज्योति कैसे प्राप्त होती है ?'

'ब्राह्मण ! आत्म दमन द्वारा यह ज्योति मिलती है। धर्म सरोवर है।

'मुण्डक है—मुण्डक है। '

वह लौट जाना चाहा।

उसे आशा नही थी। कोई भिक्षु वहाँ बैठा होगा। वह लौटा। लौटते समय पुन विचार किया कितने ही मुण्डक भी ब्राह्मण होते है। उसकी जाति निश्चय करनी चाहिए।

भारद्वाज तथागत के समीप आया। उत्सुकतापूर्वक पूछा

'आपकी जाति क्या है ?'

'ब्राह्मण ! जाति मत पूछो।'

'तो क्या पूछू ?'

'आचरण पूछो।'

'अरे—!'

'कर्म पूछो।'

'ओह—!'

'हाँ ब्राह्मण ! लकडी से अग्नि उत्पन्न होती है। निम्न वर्ण का मानव भी द्युतिमान होता है। विज्ञ होता है। पापहीन होता है। मुनि होता है।'

भारद्वाज सुनने लगा। भगवान् ने पुन कहा—'जो सत्य का वादी है। जितेन्द्रिय है। ज्ञानी है। ब्रह्मचारी है। सयमी है। वही यज्ञ का उपनीत है। वह काल से दक्षिणय मे हवन करता है।

'ओह ! यह मेरा सौभाग्य है। मैने तुम्हारे जैसे वेद-परायण को देखा है। आप लोगो जैसे व्यक्ति न मिलने पर, अन्य लोग शेष हव्य भोजन करते है।'

'दु खो के अन्त का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। ब्रह्मचर्य का फल प्राप्त कर लिया है। उसी ब्राह्मण का तुम आवाहन करो। वही वास्तव मे समय पर हवन करता है। दक्षिणा पाने का पात्र है। सुन्दरिक !'

'गौतम आप भोजन करे।'

'क्यो ?'

'आप ब्राह्मण है।'

तथा [७] बाहुमती नदी में पापकर्मी मूढ चाहे जितना स्नान करे, वे शुद्ध नही होगे। सुन्दरिका, प्रयाग और बाहुलिका नदी मे स्नान कर क्या करेगा। वे पापकर्मियो को शुद्ध नही कर सकेगी। शुद्ध मनुष्य के लिए सर्वत्र, फल्गू नदी है। सर्वदा उपसोथ है। शुद्ध तथा शुचिकर्मा के व्रत सर्वदा पूर्ण होते है। यदि भारद्वाज! तुम मिथ्या भाषण नही करते। हिंसा नही करते। बिना दिये लेते नही। श्रद्धावान् हो। मत्सर रहित हो। तो गया जाने से क्या लाभ ? क्षुद्र जलाशय भी तुम्हारे लिये गया है।'

'आश्चर्य भगवन्! अद्भुत भगवन्!! मै आपसे प्रव्रज्या पाऊँ। उपसम्पदा पाऊँ।'

× × ×

●

---

(७) बाहुमती : बागमती नदी है। यह नेपाल से निकलती है। काठमाडू इसी के तटपर है। पशुपति का मन्दिर इसके तटपर है। मै यहाँ हो आया है। काशी के घाटो की यहाँ छटा मिलती है।

आधार ग्रन्थ :

सयुक्त निकाय ७ १ ९

सुत्त निपात ३ ४ (३०)

मज्झिम निकाय १ १ ७

सुन्दरिक भारद्वाज सुत्त

S i 167

S ii A ii 400

SA i 181

QHA iv 463

M : i 139

शील उसके घाट हैं। सज्जनता जल की निर्मलता है। निर्मल धर्म सरोवर है। उसमे ज्ञानी स्नान निमित्त उतरते है। उनका गात्र भीगता नही है।। स्वच्छ गात्र वाले पार उतर जाते है। ब्रह्म प्राप्ति, सत्य, धर्म, सयम और ब्रह्मचर्य पर आधारित है। इस प्रकार हवन करने वाले को मै दम्य सारथी कहता हूँ।'

× × ×

भगवान् श्रावस्ती के जेतवन मे विहार करते थे। एक दिन भगवान् ने भिक्षु सघ को सम्बोधित किया। सुन्दरिक भारद्वाज उपस्थित था। उसने उपदेश के पश्चात् भगवान् से निवेदन किया।

'भन्ते ! बाहुका नदी[२] स्नान निमित्त पधारेंगे ?'

'बाहुका नदी ? वहाँ क्या होगा स्नान कर ?'

'भन्ते ! बाहुका नदी लोकमान्य है।'

'और—?'

'पवित्र है।'

'और ?'

'उसमे स्नान करने से पाप का नाश होता है।'

'भारद्वाज ! बाहुका, [३]अधिकक्का, [४]गया, सुन्दरिका, [५]सरस्वती, [६]प्रयाग

---

(२) बाहुका नदी इसे राप्ती की सहायक नदी धुमेल कतिपय विद्वानो ने माना है।

(३) अधिकक्का एक पवित्र नदी है। निश्चय नही कहा जा सकता कि यह कौन नदी है।

(४) गया इससे तात्पर्य यहाँ एक तित्थ तथा घाट से था। फाल्गुन मास कृष्ण पक्ष मे गया फग्गुणी घाटपर एक मेला होता था। उसमें लोग इस स्थान पर स्नान करते थे। एक गया पोक्खरिणी अर्थात् पुष्करिणी भी थी। उसमें भी स्नान करना पुण्य माना जाता था।

(५) सरस्वती वेद वर्णित पवित्र सरस्वती नदी है। पूर्वीय पजाब मे बहती है। आधुनिक मत है कि अफगानिस्तान मे यह नदी है। जो सम्भवत हरिरुद नदी है।

(६) प्रयाग . यहाँ अर्थ सगम पर स्नान करने से है।

सोण कोटि विश

सोण का जन्म चम्पा[2] के एक समृद्धिशाली कुल मे हुआ था। उनके पिता का नाम उशम श्रेष्ठी था। वह जिस दिन से माता के गर्भ मे

(१) थेर गाथा मे सोण का वर्णन है। गाथा सख्या १५७, १०८ तथा ३४३ है। तीनो भिन्न व्यक्ति है। नामो के कारण भ्रम उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इनमें दो भिक्षु श्रावक तथा तीसरे भिक्षु थे।

बुद्ध घोप ने उसका नाम कोटि वेस्स (वैश्य) दिया है। क्योकि वह वैश्य वश का था। कुटुम्व कोटचधीश था। अतएव उसका नाम कोटि वैश्य पडा था।

सोण नाम के अनेक भिक्षु हुए है।

प्रियदर्शी बुद्ध के समय उनका देवदत्त तुल्य शत्रु था।

वेस्समु बुद्ध के समय मे एक सोण उनका कनिष्ठ भ्राता था। भगवान् ने प्रथम उपदेश उसी को दिया था।

वाराणसी के राजा को सोण एक अश्व था। उसे महासोण भी कहते थे। सोण एक भिक्षु था जो उत्तर भिक्षु के साथ सुर्वण भूमि मे धर्म प्रचार के लिये गया था।

एक सोण महासेन का अमात्य था।

इसके अतिरिक्त सोण पात्रिय पुत्र, सोण गृहपति पुत्र राजगृह विप्पली विहार के सोण, सोण महा विहार के थे।

(२) चम्पा . अग जनपद मे था। यह वर्तमान भागलपुर का अचल है। चम्पा नगरी को बहुजनाकीर्ण बताया गया है। चम्पा नदी का उल्लेख चम्पेय्य जातक मे मिलता है। यह वर्तमान चान्दन नदी है। मगध तथा अग के जनपदो के मध्य बहती थी।

पुत्र या कन्या

श्रावस्ती जेतवन मे भगवान् विहार कर रहे थे। कोसलराज प्रसेनजित वहाँ उपस्थित थे। एक ओर बैठे थे।

उस समय कोशलराज के पास एक सन्देशवाहक आया। राजा को प्रणाम किया। उनके कान मे कहा—देव! मल्लिका देवी ने कन्या प्रसव किया है।'

कन्या का जन्म सुनकर राजा खिन्न हो गया। भगवान् राजा का मनोभाव समझ गये। बोले—

'जनाधिप! कतिपय स्त्रियाँ पुरुषो से श्रेष्ठ होती है। मेधावी होती हैं। शीलवती होती है। श्वशुर-सेवक होती है। प्रतिव्रता होती है।'

राजा प्रसेनजित किंचित् लज्जा बोध करता तथागत की बात सुन रहा था। तथागत ने पुनः कहा—

'राजन्! उनसे दिशाओ पर विजय करने वाला महाशूरवीर पुत्र जन्म लेता है। दिशापति होता है। उस सुयोग्य स्त्री का पुत्र राज्य का शासन करता है।'

●

आधार ग्रन्थ :
संयुक्त निकाय ३ २–६

'राजा की ओर पैर फैलाकर मत बैठियेगा।'

'क्यो ?'

'राजा आपके पदतल के रोमो को देखना चाहते है।'

'तो क्या करूँगा ?'

'पलथी मारकर बैठ जाइए। इस प्रकार राजा आपके पद-तल को देख लेगे।'

× × ×

सोण शिविका पर आरूढ हुआ। राजभवन पहुँचा। राजा को प्रणाम किया। पलथी मारकर बैठ गया। तलवे पद्मासन तुल्य ऊपर खुले थे। राजा ने रोमो को देख लिया।

राजा ने ग्राम मुखियो से भगवान् का उपदेश सुनने के लिए आग्रह किया। वे राजा का आदेश मानकर उठे। भगवान् के स्थान की ओर प्रस्थान किया।

उन दिनो भिक्षु स्वागत भगवान् के उपस्थाक थे। उनसे आगत मुखियो ने निवेदन किया

'भन्ते ! हम भगवान् के दर्शनाकाक्षी है।'

'आयुष्मानो ! आप यहाँ ठहरिये। मै भगवान् से पूछकर आता हूँ।'

स्वागत अर्धचन्द्र पाषाण मे अन्तर्धान हो गये। भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। भगवान् को सब बाते बताई। भगवान् ने कहा

'विहार की छाया मे उनके लिए सादर आसन बिछा दिया जाय।'

ग्रामो के मुखिया आयुष्मान् स्वागत को अन्तर्धान होते देखे। वे विस्मित हुए। स्वागत पुन प्रकट हुए। उनके विस्मय की सीमा न रही।

आयुष्मान् स्वागत के साथ वे भगवान् के पास चले।

× × ×

आसन बिछा था। ग्राम मुखियो ने आसन ग्रहण किया। भगवान् का आगमन हुआ। वह आसन पर बैठ गये। ग्राम मुखिया स्वागत के ऋद्धि

आया था। कुटुम्ब का भाग्योदय हो गया था। धन-धान्य से उसके पिता का घर पूर्ण हो गया था। उसका पिता प्रसन्न था। उसे गर्भ मे धारण किये माता प्रसन्न थी। जिस दिन उसने जन्म लिया था समस्त नगर मे उस दिन उत्सव था। उसके माता-पिता ने खूब धन दान दिया था। बॉटा था। बहुत दिनो तक घर मे उत्सव होता रहा।

उसका शरीर सुन्दर था। कोमल था। उसका वर्ण स्वर्ण तुल्य था। अतएव उसे स्वर्ण कहा जाता था। उसके निवास निमित्त तीन ऋतुओ के अनुरूप तीन हर्म्यों का निर्माण हुआ था।

उसका एक नाम सुखमाल (सुकुमार) सोण था। उसका हाथ तथा पॉव वन्धुजीवक पुष्प (अडहुल) की तरह कोमल था। वह सफल वीणा वादक था।

× × ×

भगवान् राजगृह मे थे। गृद्धकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। मगध-राज सेनिय विम्बसार था। उसके राज्य मे अस्सी अहस्र ग्राम थे।

चम्पा नगर मे सोण कोटि विश रहता था। बीस करोड का धनी था। श्रेष्ठीपुत्र था। सुकुमार था। उसके शरीर मे विचित्र विशेषता थी। पाद तल मे रोम उगे थे।

राजा विम्बसार को यह विशेषता मालूम हुई। उसने ग्रामो के मुखियो को एकत्रित किया। एक सन्देश वाहक को आदेश दिया :

'सोण के आगमन का इच्छुक हूँ।'

दूत सन्देश लेकर सोण के पास चला।

× × ×

'आयुष्मान् !' दूत ने कहा, 'राजा आपका आगमन चाहते हैं।'

'चलूँगा दूत !' सोण राजा का सवाद सुनकर प्रस्थान की बात सोचने लगा। दूत ने कहा

'भणे ! एक बात है।'

'क्या ?' सोण ने ध्यानपूर्वक दूत की ओर देखा।

मे विहार करने लगा। वह अत्यन्त उद्योग परायण था। नगे पैर टहलता था। उसके तलवे से खून बहने लगा। चक्रमणस्थान रक्त से भर गया।

उसने सोचा था। कोमल शरीर द्वारा श्रमण धर्म नही प्राप्त हो सकता। किन्तु शरीर के परिश्रम की एक सीमा होती थी। उसका शरीर शिथिल होने लगा। दुर्बलता आ गयी। मन श्रमण धर्म से उचटने लगा। उत्साह शिथिल पड गया।

भगवान् को सोण की मानसिक दशा का पता लग गया। भिक्षु सघ के साथ सीत वन आये। चक्रमण स्थान देखा। वह खून से सिक्त था। भगवान् ने पूछा ·

'भिक्षुओ! रक्तसित यह किसके टहलने का स्थान है!'

'सोण का भते!'

भगवान् सोण की कोठरी पर गये। वहाँ आसन पर बैठ गये। आयुष्मान् सोण ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् बोले

'सोण! घर लोटने की बात इस एकान्त स्थान मे उदय हुई है?'

'हाँ भन्ते!'

'गृहस्थाश्रम मे तुम चतुर वीणा वादक थे।'

'हाँ।'

'सोण! वीणा तन्तु जब बहुत खिचे रहते थे, तो क्या उनसे स्वर निकलता था?'

'नही भन्ते!'

'वीणा तन्तु ढोले होते थे, तो क्या स्वर निकलता था!'

'नही भन्ते!'

सारिपुत्र तथा स्थविर उपसेन सप्प सोणिक पब्भार के समीप धार्मिक चर्चा किया था।

भगवान् ने अपना दूसरा वर्षावास राजगृह के सीतवन मे ईशापूर्व ५२६ वर्ष मे किया था।

प्रदर्शन से प्रभावित थे। भगवान् की उपस्थिति मे भी वे स्वागत की ओर विस्मय से देखते थे। भगवान् ने उनके मन को बात जान ली। स्वागत से बोले

'स्वागत ! इनकी प्रसन्नता के लिए कुछ ऋद्धि प्रदर्शन और करो।'

'भन्ते !' आयुष्मान् स्वागत ने भगवान् को प्रणाम किया।

आयुष्मान् स्वागत गगनगामी हो गये। आकाश मे जघा विहार करने लगे। स्थिर खडे हो गये। वैठ गये। लेट गये। धूआँ उनके शरीर से निकलने लगा। प्रज्वलित हो गये। अन्तर्धान हो गये। पुन प्रकट हुए। अनेक प्रकार से दिव्य शक्ति ऋद्धि प्रातिहार्य प्रदर्शित किया। तत्पश्चात् भगवान् के चरणो की वन्दना कर बोले

'भन्ते ! आप मेरे शास्ता है। मै श्रावक हूँ।'

ग्राम मुखिया चकित हो गये। उन्होंने भगवान् को स्वागत से श्रेष्ठ समझा। भगवान् की तरफ देखने लगे। भगवान् की वन्दना की। भगवान् का महत्त्व उनकी समझ मे आया। भगवान् ने उन्हे उसी समय उपदेश दिया। उनके दिव्य चक्षु खुले। उन्हे वास्तविक धर्म का ज्ञान हुआ। वे सब अजलिबद्ध भगवान् की शरण गये। उपासक हुए।

सोण कोटिविंश अत्यन्त प्रभावित हुआ था। मुखियो ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया। अनुमोदन किया। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। प्रस्थान किया। सोण वही ठहर गया। सुअवसर देख कर सोण ने निवेदन किया

'भन्ते ! मै प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ।'

× × ×

सोण कोटिविंश भिक्षु वन गया। घर त्याग दिया। वह सीतवन[1]

---

(१) सीतवन . मगध राज्य राजगृह मे था। पालि मे श के स्थान पर प्राय स शब्द का व्यवहार किया गया है। सीतवन राजगृह के स्मशान के समीप था। अजातशत्रु ने राजगृह के स्मशान के समीप वसाया था। स्मशान अर्थात् सुनसान वन को ही एक मत सीतवन मानता है। अनाथ पिण्डक वही पर प्रत्यप काल मे भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुआ था। यहाँ पर

रहे थे। गृहपति सोण भगवान् के समीप आया। भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। भगवान् ने पूछा

'सोण रूप नित्य है या अनित्य ?'

'भन्ते! अनित्य।'

'अनित्य दु:ख है या सुख ?'

'भन्ते! दु:ख है।'

'सोण! जो अनित्य है। जो दु:ख है। जो विपरिणामधर्मा है। क्या उसे तुम मानोगे यह मेरा है ? यह मै हूँ। यह मेरी आत्मा है ?'

'कभी नही भन्ते!'

'सोण!' भगवान् ने प्रश्न किया, 'वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान यह सब नित्य है या अनित्य ?'

'अनित्य है।'

'आयुष्मान्!' भगवान ने कहा, 'जो रूप, अतीत, अनागत, वर्तमान, आध्यात्म, बाह्य, स्थूल, हीन, प्रणीत, दूर किवा निकट है, उसे प्रज्ञा द्वारा देख लेना चाहिये।'

'क्या देख लेना चाहिए भन्ते ?'

'सोण! वे अपने है या नही ? वह स्वय हूँ या नही ? यह मेरी आत्मा है या नही ?'

'भन्ते!'

'सुनो सोण! श्रावक रूप से निर्वेद करता है। वेदना से निर्वेद करता है। सज्ञा से निर्वेद करता है। सस्कार से निर्वेद करता है। विज्ञान से निर्वेद करता है। निर्वद से विरक्त होता है। विरक्ति से मुक्त होता है। जब वह विचार करता है। वह मुक्त हो गया। तो उसे इसी प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। उसकी जाति क्षीण होती है। ब्रह्मचर्य

राजा ने प्रसन्न होकर आदेश दिया। यहाँ प्रतिदिन कलन्दको को चारा अर्थात् निवाप बँटा दिया जाय। कलन्दको को निवाप बँटा देने के कारण स्थान का नाम कलन्दक निवाप हो गया था।

'वीणा के तन्तु न तने होते थे, न ढीले होते थे तो क्या वह स्वर युक्त होते थे ?'

'हाँ भन्ते।'

'शोण। अत्यधिक उद्योग परायणता औद्धत्य उत्पन्न करती है। शिथिलता उत्पन्न करती है। उद्योग मे इन्द्रियो की समता तथा कारण ग्रहण कर।'

'भन्ते—!' सोण ने अजलिबद्ध प्रणाम किया।

भगवान् सीत वन से गृद्धकूट चले।

× × ×

भगवान् राजगृह मे थे। वेणुवन कलन्दक[1] निवाप मे विहार कर

---

(१) कलन्दक निवाप वैशाली के समीप एक ग्राम वज्जिया के देश मे था। इसे कलन्दक निवाप से मिलाना ठीक नही होगा। वेणु वन कलन्दक निवाप राजगृह मगधराज मे था। चतुर्थ वर्षावास भगवान् ने कलन्दक निवाप मे किया था। उग्रसेन ने वही भगवान् के उपदेश द्वारा वृहद् शासन स्वीकार किया था। भगवान् के यहाँ परिनिर्वाण के पश्चात् आनन्द ने यहाँ विहार किया था। अग्र श्रावक वक्कुल ने भी यहाँ विहार किया था। सारिपुत्र तथा महामौद्गल्यायन की उपसम्पदा यही पर हुई थी। ६ विनय नियमो का विधान किया गया।

भगवान् के शब्दो मे स्थान रमणीय था। भगवान् ने यहाँ सिगालोवाद सुत्त, सान्तियसुत्त, दथविनीत सुतन्त, चूल वेदल सुतन्त, अभयराज कुमार सुतन्त, भूमिज सुतन्त, धान जानि सुतन्त, महासकलदायि सुतन्त, चूल सकल-दायि सुतन्त, भूमिज सुतन्त, दत्तभूमि सुतन्त, छन्दोवाद सुतन्त, तथा पिणपाल परिसुद्धि सुतन्त यही कहे गये थे। इसके सम्बन्ध मे निम्नलिखित आख्यायिका है। उसक वर्णन बुद्धघोप ने किया है।

कोई मगधराज के इस उद्यान मे शिकार खेलने के लिए आया था। वह शिथिल हो गया था। मदपान किया। नीद आ गयी। सो गया। मद की गन्ध मुख से निकल रही थी। एक सर्प वहाँ आ गया। वह उसे डसना चाहता था। वन देवता गिलहरी का रूप धर वहाँ आ गया। वह शोर करने लगा। राजा की निद्रा भग हो गयी। राजा ने देखा। एक गिलहरी के कारण उसकी प्राण रक्षा हुई थी। गिलहरी का अर्थ कलन्दक होता है।

'मानी, प्रमत्त, बाह्य आशा युक्त, भिक्षु कभी शील, समाधि एवं प्रज्ञा प्राप्त नही करता है। कृत्य का त्याग कर, जो अकृत्य का वरण करता है, उनके गर्व एव प्रमत्त आश्रव वृद्धि करते है। अकृत्य कार्य जो नही करते, कायागत स्मृति मे, कृत्य मे उद्यत, स्मृतिमान, ज्ञानपूर्वक आचरण करने वालो का आश्रव नष्ट हो जाता है। बुद्ध मार्ग का अनुसरण करता अग्रसर होता जाये, प्रत्यावर्तित न होता हुआ, स्वय अनुभूति द्वारा निर्वाण पद प्राप्त करना चाहिए। तथागत ने वीणा की उपमा के साथ मुझे उपदेश दिया था। उनके वचनो का पालन करता हुआ, उनके शासन मे रत हो गया। निर्वाण निमित्त मैने समाधि का प्रतिपादन किया है।

'मै त्रिविद् पारगत हुआ हूँ। बुद्ध शासन को पूर्ण किया है। निष्काम कर्म एव चित्त शान्ति मे लीन रहता हूँ। जो व्यक्ति मैत्री, उपादान के तृष्णाक्षय मे तथा मोह को तिरोहित करने मे रत है, आयतनो की उत्पत्ति देख कर उनका चित्त सम्यक् रूप से मुक्त होता है। शान्त चित्त सम्यक् रूप से मुक्त को कर्म सचय नही करता है। उसे और कुछ करना शेष नही रह गया है। स्थिर अर्हत को शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श इष्ट एव अनिष्ट धर्म ये उसी प्रकार विचलित नही कर सकते जिस प्रकार वायु पर्वत को विचलित नही कर सकती। उसका चित्त, सस्कार रहित हो जाता है। स्थिर हो जाता है। वह विनाश को प्रत्यक्ष देखता है।'

× × ×

सोण ने समता ग्रहण की। कारण ग्रहण किया। एकान्त मे प्रमाद रहित हुआ। उद्योग युक्त हुआ। आत्म निग्रही हुआ। अनुपम ब्रह्मचर्य के परिणाम को इसी जीवन मे जान गया। विहरने लगा। जीवन मुक्त हुआ।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे सोलहवाँ स्थान प्राप्त, अगदेश, चम्पा नगर श्रेष्ठी कुलोत्पन्न, सोण कोटिविश आरब्ध वीरो मे अग्र हुआ।

पूर्ण होता है। उसे जो कुछ करना रहता है। कर लेता है। उसे कुछ करना शेप नही रहता। इस प्रकार का ज्ञान उसमे उत्पन्न होता है।'

सोण के अजलिबद्ध कर मस्तक से लग गये।

× × ×

राजगृह का कलन्दक निवाप था। वेणु वन था। सोण भगवान् के पास गया। अभिवादन किया। वन्दना किया। एक ओर बैठ गया। भगवान् ने उसे देखकर कहा

'सोण ! श्रमण और ब्राह्मण रूप जानते हो।'

'भन्ते ! कहिए।'

'आवुस ! जो लोग श्रमण और ब्राह्मण रूप को नही जानते है, वे रूप के समुदाय को नही जानते है। रूप के निरोध को नही जानते है। रूप के निरोधगामी मार्ग को नही जानते है। वे वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान को नही जानते है वे क्या श्रमणो मे श्रमण समझे जायेगे ? क्या ब्राह्मणो मे ब्राह्मण समझे जायेगे ?'

'भन्ते— ?'

'सोण ! वे इस जन्म मे परमार्थ का ज्ञान, दर्शन, एव प्राप्ति कर विहार नही करते ?'

'और जो जानते है ?''

'सोण ! जो श्रमण रूप को जानते है। ब्राह्मण रूप को जानते है। विज्ञान को जानते है। वही श्रमणो मे श्रमण है। ब्राह्मणो मे ब्राह्मण है। इसी जन्म मे श्रमण किवा ब्राह्मण के परमार्थ का ज्ञान, दर्शन एव प्राप्ति कर विहार करते है।'

× × ×

सोण कोटिविंश निरन्तर धर्म पथ पर बढता गया। वह निर्मल हो गया। उसने एक दिन उल्लास के साथ उदान कहा

'सोण ! तू चम्पा का कभी श्रेष्ठ नागरिक था। राज पार्षद था। किन्तु आज तू धर्म मे श्रेष्ठ है। दु ख से दूर हो चुका है। पाँचो बन्धनो का उच्छेद कर, पाँचो वन्धनो का भेदकर, पाँचो इन्द्रियो का अभ्यास कर, पाँचो आसक्तियो को पार कर, तू प्रवाह उत्तीर्ण कहा जाने लगा है।

[1]सोण (स्वर्ण कोटिकर्ण)

अवन्ति मे कुरर घर के एक कुलीन घर मे जन्म हुआ था। उसका नाम सोण रखा गया था। वह कानो मे एक करोड का रत्न पहनता था। अतएव उसका नाम कोटिकर्ण रख दिया गया था। उसका पूरा नाम पड गया था—सोण कोटि कर्ण।

वह धन-धान्य पूर्ण होने लगा। उसकी श्री वृद्धि होती गयी। उसका जीवन सुखमय बीत रहा था। बड़े भूखण्ड का वह स्वामी बन गया था।

× × ×

एक समय की बात थी। कात्यायन ने उसके गृह के समीप विहार किया था। उसी समय सोण उनके सम्पर्क में आया था। उसने कात्यायन

---

(१) सोण की माता का नाम कात्यायनी तथा काली दोनो दिया गया है। यह इतना भ्रमपूर्ण मुझे लगा कि मैंने यहाँ उसकी माता का नाम नही दिया है। अग्र श्रावको की जो तालिका भगवान् ने दी है उसमे कात्यायनी को ही सोण की माता कहा गया है।

सोण की माता जहाँ काली कही गयी है। वहाँ सोण की कथा भिन्न है। काली राजगृह सोण के जन्म के कुछ दिन पूर्व गयी थी। एक दिन वह शीतल वायु का सेवन घर पर कर रही थी। उसने दो पक्षियो का सवाद सुना। वे सातागिर तथा हेमवत थे। वे भगवान् के विषय मे वार्तालाप कर रहे थे। उनकी बात सुनकर वह श्रोतापन्न हो गयी। उसी रात्रि मे सोण का जन्म हुआ। उसका सोण नाम रखा गया। कुछ समय पश्चात् काली कुरर घर अवन्ती ससुराल लौट आयी। महाकात्यायन उसी के मकान के पास रहते थे। उसके निवास स्थान पर आते थे। महाकात्यायन का सोण भक्त हो गया। उन्होने सोण को बुद्ध शासन मे प्रव्रजित किया। तीन वर्ष पश्चाद् उसने उपसम्पदा प्राप्त की। सोण श्रावस्ती जाने लगा तो काली ने भगवान् के विहार मे फैलाने के लिए एक कम्बल दिया था।

आधार ग्रन्थ

पालि और हिन्दी

अंगुत्तर निकाय १ १४

विनय पिटक महावग्ग ५ १ १-३

संयुक्त निकाय ३५ १ ५ ७-६

थेर गाथा २४३, उदान ६३२-६४४

Thag A i 299, 544.

Mh i 93, 298.

A A i 130.

उसने महाकात्यायन से प्रव्रज्या के लिए निवेदन किया। किन्तु उसे पूव उत्तर मिला।

सोण के प्रव्रज्या उत्साह तरग तुल्य थे। उसने तीसरी वार प्रव्रज्या निमित्त निवेदन किया। महाकात्यायन ने उसे अत्यन्त उत्सुक देखा। प्रव्रज्या की प्रौढ भावना देखी। सोण को प्रव्रजित किया।

दक्षिणापथ मे उन दिनो भिक्षुओ का नितान्त अभाव था। तीन वर्ष पश्चात् किसी प्रकार १० भिक्षुओ को एकत्रित किया गया। सोण को महाकात्यायन ने उपसम्पन्न किया।

× × ×

सोण को परिवितर्क हुआ। भगवान् के रूप, गुण, ज्ञानादि के विषय मे बहुत कुछ सुना था। भगवान् के दर्शन की प्रबल इच्छा हुई।

एक दिन सायकाल सोण ध्यान से उठा। आयुष्मान् कात्यायन के पास गया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। उसके सकेत पर निवेदन किया

'भन्ते! मै एकान्त ध्यान रत था। मन मे परिवितर्क उत्पन्न हुआ। तथागत का दर्शन करूँ।'

'साधु! साधु!! साधु!!! सोण अवश्य! अवश्य दर्शन निमित्त जाओ। सोण! भगवान् को तुम प्रासादिक, प्रसादनीय, शातेन्द्रिय, दान्त, गुप्त, जितेन्द्रिय नाग देखोगे।'

सोण ने कात्यायन की वन्दना की। कात्यायन ने पुन: कहा:

'सोण! भगवान् की शिर से वन्दना करना। उनसे कहना—तुम्हारे उपाध्याय कात्यायन ने भगवान् के चरणो मे शिर से वन्दना की है।'

'भन्ते! जैसी आज्ञा।'

सोण आसन से उठा। उपाध्याय का अभिवादन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की।

× × ×

शयनासन, पात्र, चीवर, लेकर सोण श्रावस्ती की ओर प्रस्थान किया। चारिका करता चला। श्रावस्ती पहुँचा। अनाथ पिण्डक के जेतवन विहार मे भगवान् के दर्शन निमित्त प्रवेश किया।

से धर्म चर्चा सुनी। धर्म का रहस्य समझा। बुद्ध शासन का उसे परिचय हुआ। उसके धर्म चक्षु खुलने लगे।

× × ×

भगवान् श्रावस्ती मे थे। अनाथ पिण्डक के आराम जेतवन मे थे। विहार कर रहे थे। आयुष्मान् महाकात्यायन का सोण उपस्थाक था। [1]अवन्ति देशान्तर्गत [2]कुरर घरमे प्रपात पर्वत था। कहाकात्यायन वहाँ निवास करते थे। सोण कुटिकण्ण का नाम स्वर्ण कोटिकर्ण भी था।

सोण ने विचार किया। क्यो न मै महाकात्यायन से प्रव्रजित हो जाऊँ? अवसर पाकर कात्यायन से विचार प्रकट किया। कात्यायन ने उत्तर दिया

'सोण! एकाहार तथा एक शय्या युक्त ब्रह्मचर्य दुष्कर है। तुम्हारे लिए उत्तम है कि गृहस्थ रहकर, बुद्ध के शासन का अनुगमन करो। पर्व के दिनो मे एक आहार तथा एक शय्या का व्रत रख लेना।'

सोण का उत्साह शिथिल हो गया। उसमे पुन वितर्क उत्पन्न हुआ।

---

(१) अवन्ति . बुद्ध वश एक अवन्ती पुर का उल्लेख करता है। अवन्ती राष्ट्र का भी उल्लेख मिलता है। इसका अर्थ अवन्ती ही है। अवन्ती राष्ट्र मे उज्जैन कहा गया है। अतएव अवन्ती ओर अवन्ती राष्ट्र एक ही नाम की दो सज्ञा है। एक मत है कि उत्तर और दक्षिण दो अवन्तिका थी। दक्षिणापथ की अवन्ती की राजधानी माहिष्मती तथा उत्तर अवन्ती की राजधानी उज्जैन थी। कोसल और अवन्ती राज्य के मध्य वश किंवा वत्स किंवा वच्छ राज्य था। एक और मत है। अवन्ती उज्जैन से लेकर माहिष्मती तक थी। आठवी शताब्दी मे अवन्ती को मालवा कहने लगे थे।

(२) कुरर घर . श्रावस्ती जनपद मे एक कुरर घर नामक पर्वत का उल्लेख है। पठम हालिदिक्कानी, सुत्त, द्वितीय हालिदिक्कानि सुत्त तथा हलिद्दिक सुत्त मे उल्लेख है। अवन्ती मे कुरर घर नामक पर्वत का उल्लेख स्पष्ट मिलता है। इस कुरर घर पर्वत के पास ही कुरर घर नगर था। श्रावस्ती से कुरर घर १२० योजन दूर था। कुरर घर के समीप पपात पर्वत भी कहा गया है। कतिपय विद्वान् कुरर घर पर्वत को ही पपात पर्वत कहते है। इस विषय मे अनुसन्धान की और आवश्यकता प्रतीत होती है।

सोण ने मुदित मन भगवान को प्रणाम किया। भगवान ने पूछा

'भिक्षु! तुम्हारी उपसम्पदा कितने वर्ष की हुई ?'

'भगवान्! केवल एक वर्ष।'

'इतने विलम्ब से क्यो प्रव्रज्या ली ?'

'भन्ते! कर्मों के दुष्परिणाम को विलम्ब से देख पाया था। गृहवास बाधक होता है। बहुकरणीय होता है।'

भगवान् ने उदान कहा—'जगत् के दुष्परिणामो को अवलोकन कर, उपाधि रहित धर्म का ज्ञान प्राप्त कर, आर्य पाप मे नही रमते। पवित्रात्मा पाप मे नही रमता।'

सोण ने भगवान् से निवेदन करने का काल समझा। आसन त्याग दिया। उत्तरासग एक कन्ध पर रखा। भगवान् के चरण-कमलो पर मस्तक रख कर निवेदन किया

'भन्ते! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् कात्यायन भगवान् के चरणो मे शिरसा नमन करते है। वन्दना करते है।'

'भिक्षु! कहो—।' भगवान् ने सोण का अभिप्राय जान कर कहा।

'भन्ते! दक्षिणापथ अवन्ती मे भिक्षु बहुत कम है। चीवर पर्याय भगवान् कर दें तो सुविधा होगी।'

'अच्छा।'

भगवान् ने भिक्षु सघ को आमन्त्रित किया। सघ के एकत्रित होने पर भगवान् ने कहा .

'भिक्षुओ! दक्षिणापथ अवन्ति मे भिक्षु बहुत कम है। मै सभी प्रत्यन्त जनपदो मे विनयधर सहित केवल पॉच भिक्षुओ के गण से उपसम्पदा की अनुज्ञा देता हूँ। यहाँ यह प्रत्यन्त जनपद है। पूर्व दिशा मे कजगल निगम है। तत्पश्चात् साखू का वन है। उसके पश्चात् प्रत्यन्त जनपद है। पूर्व-दक्षिण दिशा मे सलिलवती नदी है। उसके पश्चात् प्रत्यन्त जनपद है। दक्षिण दिशा मे सेत कण्णिक निगम है। पश्चिम दिशा मे थूण ब्राह्मण ग्राम है। उत्तर दिशा मे उशीरध्वज पर्वत है। उनके पश्चात् प्रत्यन्त जनपद है। भिक्षुओ! प्रत्यन्त जनपदो के लिए अनुज्ञा देता हूँ विनयधर सहित पॉच भिक्षुओ के गण को उपसम्पदा करने की।'

भगवान् वहाँ आसन पर विराजमान थे। सोण ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् का संकेत पाकर बोला :

'भन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् कात्यायन ने भगवान् के चरणों में शिरसा नयन किया है। वन्दना की है।'

'भिक्षु ! खमनीय तो रहा ? यापनीय तो रहा ? अल्प कष्ट से यात्रा तो हुई ? मार्ग में पिण्ड का कष्ट तो नही हुआ ?'

'भगवान् ! खमनीय रहा। यापनीय रहा। यात्रा अल्प कष्ट से हुई। पिण्ड का कष्ट नही हुआ।'

सोण ने भगवान् को प्रणाम करते हुए निवेदन किया। भगवान् ने आनन्द को बुलाया। उनसे कहा :

'आनन्द ! नवागन्तुक भिक्षु को शयनासन दो।'

'आज्ञा भन्ते !'

आनन्दने विचार किया। भगवान् एक ही विहार मे नवागन्तुक के साथ रहना चाहते थे। जिस विहार मे भगवान् निवास करते थे। वही आनन्द ने सोण का शयनासन लगा दिया।

भगवान् रात्रि मे निर्मल नील गगन के नीचे विहार करते रहे। तत्पश्चात् पैर धोया। विहार मे प्रवेश किया।

प्रत्यूष काल मे भगवान् उठे। आयुष्मान सोण से भगवान् ने कहा :

'भिक्षु ! धर्म भाषण कर सकते हो।'

'भन्ते !' सोण ने शिरसा वन्दना की।

'अच्छा—कहो।'

'भन्ते—।'

सोण ने सस्वर सोलह अट्ठक वग्गिकों का पाठ किया। उसका सस्वर पाठ उत्तम था। स्वर लय समन्वित था। मधुर था। पाठ समाप्त हुआ। भगवान् ने अनुमोदन किया :

'साधु ! साधु !! भिक्षु ! तुमने पूर्णरूपेण अध्ययन किया है। अच्छी तरह धारण किया है। कल्याणी, विस्पष्ट, अर्थ विज्ञापन योग्य वाणी से तू युक्त है।'

थेर गाथा २०८, उदान ३६५-३६९
A 1. 24
Thag A 1 : 429
Uin i 194
Ud . v 6.
Thag vgs 365—369
A A 1 133
DhA iv 103.

भगवान् ने भिक्षु सघ मे दीक्षित करने की एक नवीन विधि बतायी। सोण ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की। अवन्ति के लिए प्रस्थान किया।

× × . ×

तोण भगवान् के प्रदर्शित पथ पर निरन्तर उन्नति करते गये। उन्होने एक दिन उदान कहा '

'मैने उपसम्पदा पायी है। मै आश्रव रहित हूँ। मै मुक्त हूँ। मैने शास्ता का दर्शन किया है। उनके साथ एक साथ विहार मे रहा हूँ। रात्रि मे वहुत काल गये तक भगवान् आकाश के नीचे रहे। तत्पश्चात् शास्ताने विहार मे प्रवेश किया। पर्वत गुहा मे निर्भय जिस प्रकार सिह शयन करता है उसी प्रकार सघाटी पर भगवान् ने शयन किया। उस समय मैंने भगवान् से धर्म की चर्चा की। पाँचो स्कन्धो का मुझे ज्ञान हुआ। आर्य मार्ग का अभ्यास किया। परम शान्ति का अनुभव किया। आश्रव रहित हो गया। निर्वाण प्राप्त किया।'

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे सत्तरहवाँ स्थान प्राप्त अवन्ति कुरर घर वैश्य कुलोत्पन्न सोण कुटिकण्ण सुवक्ताओ मे अग्र हुआ।

○

आधार ग्रन्थ

अगुत्तर निकाय १ १४

उदान ५ ६

महावग्ग ५ ३ १

सयुक्त निकाय ३४ २ ३ ५

काओ, उपासको तथा उपासिकाओ की तालिका मे पचहत्तरवाँ तथा उपासिकाओ मे दसवाँ स्थान प्राप्त मगध राजगृह कुल गेहोत्पन्न और अवन्ती कुररघर मे विवाहित कुररघर वाली काली उपासिका अनुश्रव प्रसन्नो मे अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ
अगुत्तर निकाय १ १४
A 1 26
A A 1 . 133, 245, 247.
SnA . 1 . 208.

कुररघरिका काली

काली सोण कुटिकर्ण अथवा कुटिकण्ण की माता थी। उसका विवाह कुररघर अवन्ती में हुआ था। कुटिकर्ण जब गर्भ मे था उसी समय काली माता पिता के निवास स्थान राजगृह् मे आयी।

एक दिन छत पर शीतल वायु मे आराम कर रही थी। उस समय मातागिर तथा हेमवत के बीच वार्तालाप हो रही थी। भगवान् बुद्ध के गौरव एव महत्त्व के सम्बन्ध मे चर्चा चल रही थी। उनसे भगवान् का उपदेश भी सुन लिया। उसे सुनते ही वह श्रोतापन्न हो गयी। उसी रात्रि मे सोण का जन्म हुआ।

- कालान्तर मे काली राजगृह् से कुररघर अवन्ती लौट आयी। महा कात्यायन के पास उपदेश सुनने जाने लगी।

सोण ने बुद्ध शासन मे प्रवेश किया। वह भगवान् के पास जाने लगा तो काली ने एक मूल्यवान कम्बल सोण को दिया। उसे सहेज दिया। भगवान् के विहार मे वह बिछा दिया जाय।

× × ×

सोण भगवान् के पास से लौट कर आया। काली ने उससे कहा-'सोण! तू मुझे उसी प्रकार बता जिस प्रकार तू ने भगवान् के सामने धर्म की बाते की थी। जिसे सुनकर भगवान् प्रसन्न हुए थे। तुम्हारी प्रशसा किये थे।

कात्यायनी की काली सखी थी। तथा सर्वदा उसके साथ रहती थी। सोण ने उपदेश देना स्वीकार कर लिया। उसका प्रबन्ध काली करने लगी।

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी से भगवान् के भिक्षु श्रावकों, श्रावि-

उत्तरा की सत्यवादिता से रानी प्रभावित हुई। उन्हें क्रोध नही आया। पुष्पो की कोमलता एव सुगन्ध ने क्रोध को जैसे सुला दिया था।

'उत्तरे! रानी ने सस्नेह कहा : 'तुम्हारा अपराध क्षम्य है।'

उत्तरा देवी के चरणो पर गिर गयी। रानी ने उसे उठाते हुए पूछा :

'तुममे यह ज्ञान कैसे उत्पन्न हो गया उत्तरे ?'

'आर्ये! मैने भगवान् का उपदेश सुना था।'

'ओह, उपदेश का यह प्रभाव है ?'

'देवी!' उत्तरा ने विनत नेत्रो से उत्तर दिया।

'मुझे भी सुनायेगी ?'

'देवी! मेरा सौभाग्य होगा।'

× × ×

रानी सोमावती उत्तरा को प्रतिदिन सुगन्धित जल द्वारा स्नान कराती थी। धर्मोपदेश सुनती थी। खुज्ज उत्तरा रानी सोमावती की माता तुल्य हो गयी थी। वह प्रतिदिन भगवान् का उपदेश कोशाम्बी मे सुनती थी। लौटने पर रानी सोमावती तथा वहाँ उपस्थित पाँच सौ सेविकाओ को सुनाती थी। वे सभी उत्तरा के उपदेश के कारण श्रोतापन्न हो गयी। एक दिन रानी ने उत्तरा से कहा

'उत्तरे! मै भी भगवान् का दर्शन करना चाहती हूँ।'

'अवश्य कीजिए देवी!'

'किस प्रकार करूँ ?'

'आर्ये! आप प्रासाद की दीवाल मे एक झरोखा खुदवा दीजिए।'

'उससे क्या होगा ?'

'भगवान् इधर से पधारते है। आप दर्शन कर लीजियेगा।'

× × ×

कालान्तर मे रानी सोमावती तथा उसकी सेवकाएँ भीषण अग्नि काण्ड मे जल मरी। उस समय खुज्ज उत्तरा राजप्रासाद मे नही थी। अतएव बच गयी।

खुज्ज उत्तरा

घोषित श्रेष्ठी की खुज्ज उत्तरा कन्या थी। कालान्तर मे वह रानी सोमावती की दासी हो गयी। रानी उसे आठ कार्षापण प्रतिदिन देती थी। राजा की आज्ञा थी। रानी उनसे पुष्प खरीद लिया करे।

खुज्ज उत्तरा सुमन माली को प्रतिदिन चार कार्षापण देती थी। पुष्प खरीदती थी। शेष चार रख लेती थी।

एक दिन भगवान् सुमन माली के यहाँ आमन्त्रित हुए थे। सुमन ने यथाशक्ति भगवान् का सत्कार किया। जो कुछ था परोस दिया। भोजनोपरान्त सुमन ने भगवान् का उपदेश सुना। वहाँ उत्तरा उपस्थित थी। उसने भी उपदेश ध्यानपूर्वक सुना। श्रोतापन्न हो गयी।

उस दिन उसमे विवेक ने प्रवेश किया। वह मननशील हुई। उसे ज्ञान हुआ। पैसा बचाकर उसने अपराध किया था वह घर लौटी। बचे हुए पैसो को निकाला। सबका फूल खरीद लिया। रानी ने फूलों का ढेर देखकर पूछा

'उत्तरे! आज तू इतना फूल कहाँ से लायी?'

रानी पुष्पराशि देखकर प्रसन्न हो गयी। पुष्पो को अजुलि से उठाती सूँघती थी। पुन रख देती थी। उसे गालो से लगाती थी। वह उनकी सुन्दरता पर मुग्ध थी।

'आर्ये! यह आप ही के पैसो का है।'

'मैने तो नही दिया था?'

'देवी! क्षमाकाक्षी हूँ। आपके प्रदत्त कार्षापण मे केवल चार कार्षापणका पुष्प खरीदती थी। आधा बचा लेती थी। उन्ही बचे पैसो से आज फूल खरीदकर लायी हूँ। मैने अपराध किया है, देवी।'

A A i 226, 232, 237.
A i 20, 23, 88 ; ii 164 ; . iv 368
DhA i 208, 226
P S A 498.
DVY 339—4.
ItV A 32
S ii 236
D A : iii : 910.
V S on 442.
Vibm A . 388
S : iii 168 , V · 192.
M, L 78
VdA 384.

रानी की मृत्यु के पश्चात् खुज्ज उत्तरा भगवान् का धर्मोपदेश निरन्तर सुनती थी। धर्माचरण करती थी।

× × ×

भगवान् श्रावस्ती मे थे। भगवान् से आदर्श श्राविकाओ के विषय मे प्रश्न पूछा गया। भगवान् ने उत्तर दिया।

'भिक्षुओ! अपनी एकमात्र कन्या को श्रद्धालु उपासिकाएँ शिक्षा दे—'पुत्री! तुम उपासिका खुज्ज उत्तरा तथा वेल कण्डकिय नन्द माता के समान आदर्श बनना।'

'क्यो भन्ते!' भिक्षुओ ने पूछा।

'आयुष्मानो! उपासिका श्राविकाओ मे यही दोनो आदर्श है।'

'और यदि भिक्षुणी बनना हो तो।'

'आयुष्मानो! शिक्षा देना—'भिक्षुणी क्षेमा और उत्पलवर्ण तुल्य बनना। वे ही आदर्श है।'

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भगवान् के भिक्षु श्रावक श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे अडसठवाँ स्थान तथा उपासिकाओ मे तीसरा स्थान प्राप्त, वत्स कौसाम्बी घोषक श्रेष्ठी की धात्री पुत्री खुज्ज उत्तरा बहुश्रुतो मे अग्र हुई थी।

०

आधार ग्रन्थ .

अगुत्तर निकाय १ १४

सयुक्त निकाय १६ ३ ४ (एकधीतासुत्त)

खुज्ज उत्तरा

माता नगरवासियो के साथ पुत्र का उपदेश सुनने के लिए चली। कात्यायनी जिस समय उपदेश सुन रही थी उसी समय उसके घर मे चोरो ने सेंध लगायी। उसका धन ढोने लगे। सुवर्ण, रजत, मणि, मुक्ता, रत्न राशि चोर ले जाने लगे। कात्यायनी की दासी ने चोरो को देखा। सवेग उपदेश स्थान पर पहुँची। स्वामिनी कात्यायनी से बोली—

'देवी! घर मे चोर आ गये है।'

कात्यायनी ने ध्यान नही दिया। दासी पुन: बोली:

'देवी, सब धन ढो ले जा रहे है।'

कात्यायनी का ध्यान उपदेश में लगा था। उसने पुन ध्यान नही दिया। दासी ने पुन व्यग्र होकर कहा

'देवी! सब कुछ चोरी ही जायगा। हम दरिद्र हो जायँगे।'

'ऊँह! उपदेश मे विघ्न मत डाल।'

'तो—

'चोर धन ले जाते है। ले जाने दें।'

'मै—आर्ये!'

'तू भी उपदेश सुन। चोरो को अपना कार्य करने दे।'

चोरो का नायक वहाँ उपस्थित था। वह कात्यायनी पर दृष्टि रख रहा था। किसी प्रकार की आहट मिलने पर वह चोरो को सकेत कर सकता था।

उसने कात्यायनी की बात सुनी। विस्मित हुआ। प्रभावित हुआ। कात्यायनी के घर की ओर अविलम्ब शीघ्रतापूर्वक भागा।

× × ×

'सुनो!' चोरो के प्रधान ने कहा।

'क्या है भाई!' चोरो ने पूछा।

'चोरी मत करो।'

'क्यो?' सबने आश्चर्य से पूछा।

'कात्यायनी उपासिका है। ऐसे पवित्र शान्त हृदय के घर चोरी करना उचित नही है।'

कात्यायनी (सोण कुटिकण्ण की माता)

परिसन्थार वुत्तस्स आचारकुसलो सिया।
ततो पामज्जवहुलो दुक्खस्सन्त करिस्सति ॥

(आचार कुशल, सेवा-सत्कार युक्त स्वभाव व्यक्ति, सानन्द दु खो का अन्त करता है ।)

ध० ३७६

आयुष्मान् महाकात्यायन के शिष्य कुटिकण्ण सोण थे। अवन्ती (उज्जैन) से चल कर जेतवन श्रावस्ती पहुँचे। भगवान् का उपदेश सुनकर कुररघर[1] वापस लौटे।

उनकी माता का नाम कात्यायनी[2] था। कोसल श्रावस्ती के कुल-गृह मे उत्पन्न हुई थी। पुत्र के लौटने पर प्रसन्न हुई। पुत्र का विचार सुनना चाहा। सोण ने प्रव्रज्या के पश्चात् घर त्याग दिया था।

उपदेश सुनने के लिए भेरी-घोष नगर मे कराया गया। सभी को आमन्त्रित किया गया उपदेश सुनने के लिये।

---

(१) कुररघर अवन्ती मे एक निगम था। यह कात्यायनी, काली, सोण कुट्टि-कण्ण आदि का निवास स्थान था। महाकात्यायन ने भी यहाँ निवास किया था। कुररघर से सम्बन्धित होने के कारण 'कुररघरिय सोण' की भी सज्ञा सोण कुटिकर्ण को दी गयी थी। श्रावस्ती इसके समीप जनपद पपात पर्वत समीपस्थ कुररघर पर्वत से इसे नही मिलाना चाहिए। अवन्ती के समीपस्थ पर्वत की भी सज्ञा कुररघर से एक मत देता है।

(२) कात्यायनी इसे कच्चानी भी कहते है। इसके विषय मे विशेष प्रकाश बौद्ध साहित्य से नही पडता। इसके माता-पिता कौन थे ? यह कहाँ की निवासिनी थी। इसका पति कौन था। इस पर कोई निश्चित तथा साधि-कारिक मत स्थिर नही हो सका है।

'तो—।'

'अपने पुत्र से मुझे प्रव्रज्या दिलाइये ।'

दासी का आश्चर्य से मुख खुल गया। उसने कल्पना नही की थी। कुछ घडी पूर्व का चोर सब कुछ त्याग कर प्रव्रजित होने का उद्योग करेगा। उसकी क्रोधित आँखे सरल हो गयी। कात्यायनी के करुण नेत्र चोर प्रधान पर उठे।

उसने मृदु स्वर मे कहा ·

'आवुस ! उठो। तुम प्रव्रजित होगे।'

'और एक बात है देवी।'

'वह क्या भणे।'

'मेरे सब चोर साथी भी प्रव्रजित होगे। तस्कर कर्म का त्याग करेंगे। ससार वन्धन का त्याग करेंगे।'

'भणे ! तुमने उत्तम निश्चय किया है।'

× × ×

सब चोर एकत्रित हुए। निश्चय किया। तस्कर कर्म का त्याग करेंगे। प्रव्रजित होंगे। सब चोर प्रधान सहित प्रव्रजित हो गये। सोण ने माता के निवेदन पर सबको प्रव्रजित किया।

वे प्रव्रजित हुए। उपसम्पन्न हुए। पर्वत पर वृक्षो के तले अलग-अलग उन्होने आसन लगाया। श्रमण धर्म का पालन करने लगे।

भगवान् एक सौ बीस योजन दूर जेतवन मे थे। दिव्य दृष्टि से सव कुछ देख लिया। उन्होने भिक्षु सघ को उपदेश दिया ·

'मैत्री युक्त, विहार करने वाला भिक्षु, हमारे शासन मे प्रसन्न रहता है। समस्त सस्कारो का शमन करता है। सुखमय पद प्राप्त करता हे।'

'भिक्षुओ ! नाव मे आये हुए जल को वाहर फेको। वोझिल नाव हलकी हो जायगी। उसी प्रकार तुम राग-द्वेप से बोझिल हो। उन्हे उच्छिन्न करो। तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।

'आयुष्मानो ! पाच को छिन्न, पाँच को त्याग, पाँच की भावना, पाँच के ससर्ग का अतिक्रमण करने वाला ओघो से पार हो जाता है।

'तो हम क्या करे ?'

'कार्य से विरत हो जाओ। जो जहाँ से लिया है वही रख दो।'

'और आप—?

'मै उपदेश सुनने जा रहा हूँ। विलम्ब हो रहा है।'

प्रधान सवेग उपदेश सुनने की तीव्र इच्छा से उलटे पैर भागा। चोरो ने जो चीज जहाँ से उठायी थी। पूर्ववत् लाकर रख दी।

× × ×

उपदेश समाप्त हुआ। धर्म-सभा समाप्त हुई। चोर प्रधान उपदेश से अत्यन्त प्रभावित हुआ था। वह चुपचाप आगे बढा। कात्यायनी के पैरो पर गिर पडा। बोला

'देवी! मुझे क्षमा कर दो।'

'क्या बात है भणे!' कात्यायनी ने शान्त स्वर मे पूछा।

'देवी! हमने आपके घर चोरी करवायी थी।'

'अच्छा भणे!' कात्यायनी के स्वर मे किंचित् मात्र उद्विग्नता नही थी।

उसे चोर प्रधान को देखकर क्रोध नही हुआ। शान्त बैठी रही। उनकी अद्भुत गम्भीरता, अनुद्वेगता, शान्ति देखकर चोर विस्मित हो गया था। दासी चकित थी। उसकी समझ मे, जैसे कुछ आ नहीं रहा था। दासी की आँखे उस चोर प्रधान को देखकर लाल हो गयी थी। वह शोर करना चाहती थी। पकडवाना चाहती थी। कात्यायनी ने उसे विरत किया। कात्यायनी ने मृदु स्वर मे कहा ·

'भणे! क्षमा तो धर्म है।'

'नही देवी!' उसने देवी का पद जोर से पकड लिया।

कात्यायनी ने सस्नेह उसकी ओर देख कर कहा

'भणे! मै क्या करूँ ?'

'देवी! आप क्षमा करती है ?'

'हाँ। भणे!'

'इस प्रकार नही।'

विशाखा[1]

पेमतो जायते सोको पेमतो जायते भयं।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भय॥

(प्रेम से शोक उत्पन्न होता है। प्रेम से भय उत्पन्न होता है। प्रेम से मुक्त को शोक नही होता, फिर भय किस लिए होगा ?)

ध० २.१३

'देव ! पत्र आया है।'

महामात्य ने राजा विम्बसार से निवेदन किया।

'किसका पत्र है भणे ?'

'कौशल के राजा का।'

'क्या लिखा है ?'

'पढ़ूँ !' अमात्य ने पत्र खोला। पढकर बोला, 'कोशल राज की इच्छा है। उनके यहाँ अमित भोग वाला कोई कुल नही है। अतएव एक अमित भोगी कुल कोशल राज्य के लिये भेजने की कृपा कीजिए।'

'अच्छा—!' विम्बसार ने अमात्यो की तरफ उनके मत जानने की दृष्टि से देखा।

महामात्यो तथा अमात्यो ने परस्पर मन्त्रणा की।

'महाकुल को अपने राज्य से हम कैसे भेजेंगे ?'

---

(१) अनेक विशाखा का उल्लेख वौद्ध ग्रन्थ मे मिलता है। एक प्रियदर्शी वुद्ध के समय मे उनकी मुख्य उपासिका थी। दूसरी विशाखा ककुसन्ध वुद्ध माता थी। वह अग्गिदत्त की स्त्री थी। तृतीय ओक्काक की पाँच रानियो में से एक का नाम विशाखा था। मैत्रेय वुद्ध के समय मे एक विशाखा गृह त्याग करेगी।

'भिक्षुओ ! प्रमाद मत करो। ध्यान मे लगो। काम गुणो मे चित्त को मत लगाओ। प्रमत्त होकर लोहे के गोले को मत निगलो। तुम्हे इस दह्यमान दु ख मे क्रन्दन न करना पडे।

'आवुस ! प्रज्ञा हीन को ध्यान नही होता। अध्यानी को प्रजा नही होती। ध्यान एवं प्रज्ञा युक्त निर्वाण के समीप पहुँचता है।

'भिक्षुओ ! शान्त चित्त, शून्य गृह स्थित, धर्म की उत्तमता मे विपश्यता करते हुए, अमानुषी रति प्राप्त होती है।

'आयुष्मानो ! ज्यो-ज्यो पाँच स्कन्धो की उत्पत्ति एव विनाश पर व्यक्ति विचार करता है उसे ज्ञानियो की प्रीति और प्रमोद स्वरूप अमृत की प्राप्ति होती है।

'आवुसो ! इन्द्रिय सयम, सन्तोष प्राप्ति मोक्ष की रक्षा प्रारम्भ मे करना उचित है। उसे शुद्ध जीवी, निरालस्य कल्याणकारी मित्र का सग करना चाहिए।'

भगवान् का उपदेश समाप्त हुआ। सघ ने प्राजलिभूत भगवान् को प्रणाम किया।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भगवान् के भिक्षु श्रावको, श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ मे तिहत्तरवाँ तथा उपासिकाओ आठवा स्थान प्राप्त, अवन्ति कुररघर वैश्य कुल सोण कुटिकण्ण की माता, कात्यायनी अतीव प्रसन्नो मे, अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ

धम्मपद २५ ७

A 1 26

AA 1 245

किया। अपने कुशल पुरुषो को आदेश दिया। श्रीमान् जाति कुल की कन्या पुत्र के विवाह निमित्त खोजो जाय।

× × ×

कुशल व्यक्तियो को श्रावस्ती मे कन्या नही मिली। वे साकेत पहुँचे।

विशाखा उस दिन पाँच सौ कुमारियो के साथ महावापी पर उत्सव मनाने के लिए गयी थी। कुशल पुरुषो को नगर मे अपने रुचि की कन्या नही मिली। वे नगर द्वार पर खडे हो गये।

राजा प्रसेनजित के पास आने के लिए धनजय ने प्रस्थान मार्ग मे अपना शिविर वहाँ लगाया था। रात्रि मे वही विश्राम करना चाहता था। उसे मालूम हुआ कि वह स्थान कोसल राज मे श्रावस्ती से सात योजन पर है। उसने राजा प्रसेनजित से आज्ञा लेकर वहाँ नगर वसाया था। सम्भव है प्राचीन साकेत नगर के समीप दूसरा नवीन नगर धनजय ने वसाया हो। उसका सायकाल सर्व प्रथम यहाँ शिविर लगा था अतएव इसका नाम साकेत एक मत के अनुसार पड गया। श्रावस्ती से प्रतिष्ठान के सीधे मार्ग पर साकेत पडता था। प्राचीन साकेत नगर एक मत है कि श्रावस्ती से भी प्राचीन था।

साकेत और श्रावस्ती के मध्य तोरण वत्थु था। राजा प्रसेनजित साकेत जा रहा था तो वहाँ एक रात्रि विश्राम किया था। वहाँ क्षेमा थेरी रहती थी। राजा उसके यहाँ गया था। साकेत और अयोध्या दो भिन्न स्थान निसन्देह थे।

साकेत के समीप अजन वन था। भगवान् ने वहाँ विहार किया था। साकेत के कालक श्रेष्ठी के पुत्र से अनाथ पिण्डक की कन्या चुल्ल सुभद्दा का विवाह हुआ था। साकेत वर्तमान अयोध्या नही था। दोनो नगरो का नाम बुद्ध ग्रन्थो मे आता है। अतएव भिन्न नगर थे। सम्भव है वे समीप ही रहे हो। एक मत है कि अयोध्या उस समय एक ग्राम मात्र था।

उन्नाव जिला मे सुजान कोट मे प्राप्त ध्वन्सावशेष स्थान सई नदी के तट पर साकेत का होना एक मत मानता है। फाइहान ने साकेत को कन्नौज से तेरह योजन दक्षिण पूर्व बताया है। वह इसका नाम 'शचि', देता है।

'किन्तु राजा के पत्र का आदर करना आवश्यक है।'

'श्रेष्ठी पुत्र को भेजना उचित होगा।'

'कौन उपयुक्त होगा। यहाँ तो अनेक श्रेष्ठी है।' राजा ने पूछा।

'धनजय को भेजा जाय।'

'वह कौन है ?'

'राजन्! मेडक श्रेष्ठी का पुत्र है।'

× × ×

कोशल पति ने धनजय[2] श्रेष्ठी को श्रावस्ती से सात योजन दूर पर बसाया। स्थान का नाम साकेत[3] रखा गया। धनजय को श्रेष्ठी का पद दिया गया।

× × ×

मृगार श्रेष्ठी का पुत्र पूर्णवर्धन था। श्रावस्ती निवासी था। वह युवा था। उसके पिता ने उसे गार्हस्थ जीवन मे लगा देने का विचार

---

(२) धनंजय बुद्ध धार्मिक साहित्य मे कम से कम ९ धनजय नामक व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है। एक धनजय काशी का राजा था। दूसरा कुरुदेश इन्द्रप्रस्थ का राजा था। तीसरा धनजय कौरव्य कुरुओ का राजा था। चौथा धनजय युधिष्ठिर गोत्र कौरव्य राजा था। पाँचवाँ धनजय भी कुरु का राजा था। उसका मन्त्री विधुर पण्डित था। छठवाँ धनजय फुस्स बुद्ध का समर्थक था। सातवाँ धनजय एक स्थान था जहाँ पद्म बुद्ध ने प्रथम उपदेश दिया था। आठवाँ धनजय नगर शिखी बुद्ध के समय मे था। धनपालक गृहपति को धर्म मे प्रव्रजित किया था।
यह धनजय भद्दिय नगर का श्रेष्ठी था। मेण्डक उसका पिता तथा चण्ड पदुमश्री उसकी माता थी। उसकी स्त्री का नाम सुमना देवी था। विशाखा और सुजाता उसकी दो कन्याएँ थी।

(३) साकेत भगवान् बुद्ध के समय भारत के छ महानगरो मे एक था। अन्य नगर किंवा पुरियाँ चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, कोशाम्बी तथा वाराणसी थी। कोसल की प्राचीन राजधानी था। साकेत के समीप अजन वन था। कोसल राज जनपद मे था! कोसल मे श्रावस्ती के पश्चात् दूसरा महत्त्वपूर्ण नगर था।

'तातो ! आपका परिचय !'

'हम मृगार श्रेष्ठी के आदमी हैं।'

'तातो ! आपके आगमन का प्रयोजन ?'

'आपके सुन्दर गृह मे वय प्राप्त कन्या है। इसी प्रयोजन से हमारे श्रेष्ठी ने आपकी सेवा मे भेजा है।'

'आपके श्रेष्ठी और मेरे धन में थोड़ा ही अन्तर है। जाति मे समानता है। हर बात मे समानता मिलना कठिन है।'

'तो आज्ञा ?'

'अपने श्रेष्ठी से कहिए। हमे सम्बन्ध स्वीकार है।'

× × ×

'तात !' कुशल पुरुषो ने मृगार श्रेष्ठी से निवेदन किया, 'रुचि अनुसार कन्या मिल गयी है।'

'कहाँ मिली ?

'साकेत मे धनजय श्रेठी की कन्या है। उसका नाम विशाखा है।'

'ओह ! वह तो महाकुल है !! अभी शासन भेजो।'

शासन भेजा गया। प्रतिशासन धनजय के यहाँ आया। बात पक्की हो गयी।

× × ×

मृगार श्रेष्ठी कोशल राज के यहाँ गया। करबद्ध निवेदन किया।

'देव ! इस सेवक के पुत्र पुण्ड वर्धन के साथ, धनजय श्रेष्ठी की कन्या विशाखा का विवाह सम्बन्ध स्थिर हुआ है।'

'बहुत उत्तम हुआ श्रेष्ठी।'

'देव ! साकेत जाने की अनुमति प्रदान करें।'

'श्रेष्ठी ! प्रसन्नता से जाओ।'

श्रेष्ठी ने और कुछ नही कहा। राजा ने मुस्कुराते हुए पूछा :

'श्रेष्ठी ! क्या हमे भी विवाह मे सम्मिलित होना होगा ?'

'राजन् ! हमारा इतना भाग्य कहाँ ?'

राजा ने श्रेष्ठो को प्रसन्न देखा। उसे और प्रसन्न करने की दृष्टि से बोले :

इसी समय वर्षा आयी। बडी-बडी बूँदे पडने लगी। विशाखा की सखियाँ भागी। शाला मे शरण ली। कुशल पुरुषो ने कन्याओ को ध्यान-पूर्वक देखा। उनके रुचि की कोई कन्या नही मिली।

विशाखा वर्षा से भयभीत नही हुई। सयम नही खोयी। सबके पीछे मन्द गति से शाला मे आयो। उसको शालीनता मे अन्तर नही पडा।

कुशल पुरुषो का ध्यान विशाखा ने आकर्षित किया। उन्होने विचार किया, 'इतनी रूपवती दूसरी कन्या भी हो सकती है। किसी-किसी कन्या का रूप परिपक्व नारियल की तरह होता है। देखना चाहिए। वह मधुर भाषिणी है या नही ?'

'अम्म !' वे बोले, 'तुम वृद्ध स्त्री की तरह मालूम होती हो।'

'क्यो तात !' विशाखा ने मृदु स्वर से मुसुकुराते हुए पूछा।

'तुम्हारी सखियाँ वर्षा भय से भाग कर, शाला मे शरण ली। तुम वृद्ध स्त्रियो की तरह पीछे-पीछे आयी। अपनी धोती भी भीगने की चिन्ता नही की।'

'तातो ! मेरे कुल मे धोतियाँ दुर्लभ नही है।'

'अम्म ! इतनी मन्द गति से क्यो आयी ?'

'तातो ! तरुण कन्याएँ विक्रमोपीय पात्र तुल्य है। हाथ, पैर, क्षत होने पर, विकलागो को कौन पुरुष ग्रहण करना चाहेगा ? शरीर को सुरक्षित रखने की दृष्टि से सहसा नही दौड पडी।'

कुशल पुरुषो को विशाखा रुची। उन्होने मन्त्रणा की। उसके ऊपर घुमा कर माला फेंक दिया।

माला विशाखा के वक्षस्थल पर शोभित हुई। अपरिगृहीत से परि-गृहीत हो गयी। विनय पूर्वक भूमि पर बैठ गयी। उसे वस्त्र से घेर दिया गया। सखियो सहित पितृगृह लौटी। उसके पीछे-पीछे मृगार श्रेष्ठी के कुशल पुरुष चले।

× × ×

'तातो ! आपका निवास-स्थान कहाँ है।

धनजय श्रेष्ठी ने कुशल पुरुषो का सत्कार करते हुए पूछा।

'हम श्रावस्ती के नागरिक है।'

'भन्ते ! लकड़ी समाप्त हो चुकी है।'

'अच्छा ! इस समय लकडी का मिलना सम्भव नही है। दुस्स कोष्ठागार खोलो। बडी-बडी साडियो (साटक) को निकाल लो। उनकी बत्ती बनाओ। तेल मे उन्हे तरल करो। उन्ही पर भोजन बनाओ।'

नव करोड रुपयो का महालता प्रसाधन तैयार हो गया। धनजय ने सभी श्रेणियो को आमन्त्रित किया। राज सेना के मध्य पहुँचा। वहा आठ कुटुम्बियो को जामिन रखकर कहा :

'यदि ससुराल मे कन्या का अपराध हो, तो उसका परिशोध कीजियेगा।'

उसने कोशल राज, मृगार सेठ तथा बारातियो का आदर-सत्कार किया। यथासाध्य भेट देकर विदा किया।

× × ×

श्रावस्ती नगर द्वार पर रथ पहुँचा। विशाखा ने विचार किया। आवृत रथ मे चलना चाहिए अथवा अनावृत। उसने निश्चय किया। वह खुले रथ पर चलेगी। नगरवासी उसके महालता प्रसाधन का अद्भुत सौन्दर्य देखेगे।

वह खुले रथ पर आरूढ हुई। वह अपने रूप तथा अलकार का प्रदर्शन करती चली। विशाखा की सम्पत्ति देखकर श्रावस्ती के लोगो ने कहा :

'यह विशाखा है। जैसा रूप है। वैसी ही सम्पत्ति है।'

विशाखा ने महान् ऐश्वर्य के साथ पति के विशाल प्रासाद मे प्रवेश किया।

बारातियो ने धनजय सेठ तथा विशाखा की बडी बडाई की। नगर मे बारात के स्वागत, सत्कार तथा भेट की चर्चा बहुत दिनो तक होती रही। नगर मे सर्वार्थक अन्य कुलो मे भिजवाया गया। जिस दिन विशाखा श्रावस्ती पहुँची थी उसी दिन रात्रि मे एक आजन्म अश्वी को गर्भ वेदना हुई। विशाखा ने दासियो को दण्ड दीपिका (मशाल) तैयार करने के लिए कहा। दण्ड दीपिका के साथ अश्वशाला मे पहुँची। अश्वी को स्नान कराया। तेल से मर्दन करवाया। तत्पश्चात् लौट आयी।

× × ×

'श्रेष्ठी ! मै भी चलूँगा ।'

श्रेष्ठी ने राजा के चरण कमल का स्पर्श किया ।

× × ×

धनजय ने सुना । मृगार श्रेष्ठी कोशलराज के साथ आ रहा है । वह दूर तक आगवानी के लिये आया । राजोचित आदर-सत्कार किया । राजा को अपने निवास स्थान पर ठहराया । श्रेष्ठी ने सबका यथोचित स्वागत किया । सभी प्रसन्न थे । किसी को शिकायत का मौका नही मिल सका ।

विवाह सम्पन्न हुआ । परन्तु बारात बिदा नही हुई ।

× × ×

एक दिन राजा ने धनजय को शासन भेजा ।

'चिरकाल तक कन्या अपने पितृ गृह मे नही रह सकती । चिरकाल तक आगत सज्जनो का सत्कार नही किया जा सकता । कन्या की विदाई का लग्न ठीक करना आवश्यक है ।'

धनजय ने राजा के शासन का प्रति उत्तर शासन द्वारा भेजा

'वर्पाकाल आ गया है । यात्रा के लिये चार मास चलना वर्जित है । आपके पक्ष के जितने लोगो को जो कुछ चाहिए, हम उसका यथोचित प्रबन्ध कर देगे ।'

× × ×

बारात चार मास ठहर गयी । साकेत मे प्रतिदिन महोत्सव होता था । तीन मास व्यतीत हो गये । विशाखा का महालता अलकार बन कर तैयार नही हुआ था ।

धनजय अलकार की तैयारी तक बारात रोक रखना चाहता था । सेवको से राय लिया । वे बोले—'और व्यवस्था ठीक है । केवल लकड़ी की कमी राजा के बलकाय के लिए है ।'

'तातो ! जाइये, हस्तिशाला, अश्वशाला, गोशाला तोड डालिए । उसकी लकडी से भोजन बनाइए ।'

पन्द्रह दिन तक लकडी का इस प्रकार काम चला । कामकरो ने पुनः निवेदन किया .

विशाखा लज्जित हुई। श्वसुर ने भिक्षु का आदर नही किया। भिक्षा देने का सकेत नही किया। वह कुछ क्रोधित हो गयी। भिक्षु के समीप आयी। श्रद्धापूर्वक बोली :

'भन्ते ! मेरा श्वसुर पुराना खा रहा है। कृपया आप आगे बढिए।'

मृगार श्रेष्ठी पुराना शब्द सुनते ही कुपित हो गया। भोजन से हाथ खीच लिया।

'अरे ! इस पायस को यहाँ से हटाओ। इस विशाखा को बाहर निकालो। मगल गृह मे अशुचि खाद्य मुझे खिलाने की बात करती है।'

गृह के सभी दास-दासी विशाखा के कहने मे थे। कोई उसे बाहर निकाल नही सका। कोई उसे कह भी नही सका। बाहर निकल जाये। विशाखा बात समझ गयी। बोली :

'मैं बात से नही निकलने वाली हूँ। मुझे पनिहारिन की तरह नही इस घर मे लाये हो। मेरे माता-पिता जीवित हैं। उनकी कन्या इसी तरह बाहर नही निकलेगी।'

'वाह !—क्या कहती है ?' मृगार झल्ला उठा।

'तात ! इसीलिए विदाई के समय आठ कुटुम्बियो को मेरे पिता ने जामिन रखा था। उन्हे बुलाकर मेरे दोष-अदोष का निर्णय कराइए।'

'ठीक। यही होगा।'

× × ×

श्रेष्ठी ने आठो कुटुम्बियो अर्थात् पचो को आमन्त्रित किया। उनसे सब घटना कही। पचो ने पूछा :

'अम्म ! क्या तुमने अशुचि खाने की बात कही थी ?'

'तातो ! बात कुछ और है। द्वार पर एक भिक्षु खडा था। उसने भिक्षा मागी। यह पायस खा रहे थे। उठे नही। मैने निश्चय कहा। मेरा श्वशुर पुराना पुण्य खा रहा है। इस शरीर द्वारा पुण्य नही करता।'

'आर्ये ! यह तो दोष नही है।'

'आर्यो ! बात और है।'

'क्या ?'

एक सप्ताह तक नगर मे खूब उत्सव होता रहा। मृगार श्रेष्ठी ने आठवे दिन तथागत के अतिरिक्त अन्य नग्न महन्तो को भोजन के लिए आमन्त्रित किया। श्रेष्ठी का घर नग्न श्रमणो से भर गया।

अर्हतो के आसन ग्रहण करने पर मृगार श्रेष्ठी ने वहू विशाखा को बुलाया। उसे सन्देश भेजा। आकर आर्हतो की वन्दना करे।

विशाखा आयी। उसने नग्न श्रमणो को बैठे देखा। उसे आश्चर्य हुआ। उसने कल्पना नही की थी। श्रमण इस प्रकार नग्न होगे। उसे ग्लानि हुई। व्यर्थ ही उसके श्वसुर ने लज्जा भय 'विवर्जितो की वन्दना करने के लिए वुलाया।

विशाखा उन्हे देखते ही धिक धिक कहती लौट गयी। नग्न श्रमण कुपित हुए। उन्होने मृगार श्रेष्ठी से कठोर वाणी मे कहा :

'क्या तुम्हे दुनिया मे और कन्या नही मिली ? यह श्रमण गौतम की श्राविका इस पवित्र गृह मे प्रवेश कैसे पा सकी ?'

'इस गृह से इसे बाहर करो। महा कुलक्षणी है।' मृगार चुप था। वे अत्यन्त क्रूर वाणी मे गर्ज कर बोले

मृगार सेठ के सम्मुख धर्म सकट उपस्थित हो गया। विशाखा महा-कुल की कन्या थी। उसे वह निकाल नही सकता था। उसने उन नग्न श्रमणो से निवेदन किया

'आचार्य ! यदि बालक ज्ञात किवा अज्ञात रूप से कुछ कहे तो उस पर ध्यान नही देना चाहिए। आप लोग उसे क्षमा कीजिए।'

नग्न श्रमण सुस्वादु भोजन कर चले गये।

मृगार एक विशाल आसन पर बैठ गया। सुवर्ण पात्र मे निर्जल खीर रखा था। सुवर्ण कलछुल से निकाल कर खाने लगा।

उसके भोजन के ही काल मे एक पिण्डचारी भिक्षु पिण्डचार करते हुए आया। श्रेष्ठी के द्वार पर खडा हो गया। भिक्षा माँगा। विशाखा ने भिक्षु को देखा। वह आड लेकर खडी हो गयी। ताकि उसका श्वसुर उसे देख न सके।

श्रेष्ठी ने स्थविर को देखकर भी नही देखा। मुख नीचा किये पायस खाता रहा।

ही चाहिए। सुख से बैठना चाहिए। पिता ने कहा था। सास-श्वशुर को देखकर उठने के स्थान पर नही बैठना चाहिए। सुख से खाना चाहिए। यह भी कहा था। यह इसलिए कहा था। सास-श्वशुर तथा स्वामी के भोजन कराने के पूर्व नही खाना चाहिए। सबको भोजन मिलता है या नही। इस बात को जानकर अनन्तर भोजन करना चाहिए। सुख से लेटना चाहिए भी कहा था। इसलिए कहा था कि, सास-श्वशुर, स्वामी के शयन पूर्व शय्या पर नही सोना चाहिए। उनकी सेवा आदि करने के पश्चात् सोना चाहिए।'

'अम्म ! तुमने कहा था अग्निपरिचरण करना चाहिए ?'

'हाँ कहा था। सास-श्वशुर स्वामी को अग्निपुज तुल्य, नागराज के समान देखना चाहिए। इस दृष्टि से कहा था।'

'नही-नही। इसमे चाहे जितने गुण हो, इसका पिता अन्तर्देवता को नमस्कार करवाता है।'

'अम्म !' यह क्या बात है ?'

'मेरे पिता ने यह विचार कर कहा था। अपने गृहस्थी मे जो कुछ भोजन हो उसे सर्वप्रथम द्वार पर आये प्रव्रजितो को देखकर तत्पश्चात् खाना चाहिए।'

'महाश्रेष्ठी ! शायद आपको प्रव्रजितो को देखकर कुछ न देना ही रुचिकर लगता है।'

श्रेष्ठी चुप हो गया।

'श्रेष्ठी ! क्या कन्या के और भी कोई दोष है।'

'आर्यो ! हमे और कुछ नही दिखाई देता।'

'यह निर्दोष है। अकारण किसी को कष्ट नही देना चाहिए।'

श्रेष्ठी चुप था।

'इसे व्यर्थ घर से निकालना ठीक नही है।'

'तातो !' विशाखा ने कहा, 'श्वसुर ने कहा था। मै निकल जाऊँ। उस समय मेरा बहिर्गमन उचित नही था। किन्तु—'

'किन्तु क्या अम्म ?'

'जिस दिन यह आयी उसी दिन से मेरे पुत्र का ध्यान छोड कर अपनी इच्छानुसार चाहे जहाँ चली जाती है।'

'अम्म ! क्या यह ठीक है ?'

'नही। बात दूसरी है। यहाँ एक अश्वी को प्रसव वेदना हुई। दण्ड-दीपिका मँगायी। प्राणी के दु ख को देखकर कौन चुपचाप बैठा रह सकता है। दासियो सहित अश्वशाला गयी। अश्वी का उपचार करवाया।'

'आर्य ! विशाखा ने तुम्हारे घर मे दासियो के न करने योग्य भी कार्य किया। उसे क्यो दोप देते हो ?'

'आर्यो और बात है। जिस दिन बारात की विदाई थी। उस दिन इसके पिता धनजय ने साकेत मे कहा था। अग्नि घर के बाहर नही ले जाना चाहिए। क्या पडोसियो का घर बिना अग्नि के रह जायगा ?'

तातो ! मेरे पिता ने इस अग्नि के विपय मे नही कहा था। उनके कहने का तात्पर्य यह था। सास तथा घर की स्त्रियो मे जो गुप्त बाते होती है। उन्हे दास-दासियो से नही कहना चाहिए। बात बाहर जाती है। कलह बढता है।'

'आर्यो ! यह बात नही है। इसके पिता ने कहा था। बाहर की अग्नि भीतर नही लानी चाहिए। भीतर की अग्नि यदि बुझ जाय तो बाहर से बिना अग्नि लाये कैसे काम चल सकता है ?'

'अम्म ! क्या यह बात है ?'

'तातो ! इसका तात्पर्य और है। इस अग्नि के विपय मे नही कहा था। उन दोषो के विपय मे कहा था। जो दास, कर्मकर तथा सेवक करते है। उन्हे घर के आदमियो से नही कहना चाहिए।'

'और बात है !' मृगार ने कहा, 'यह कहती है। देते है उन्ही को देना चाहिए। यह इसके दहेज का गर्व कहवाता है।'

'अम्म !' क्या ऐसी बात है ?'

'तातो ! मैने कहा था। जो नही देते है। उन्हे नही देना चाहिए। जो लेकर नही लौटाते। उन्हे नही देना चाहिए। देने वाले को देना चाहिए। न देने वालो को भी देना चाहिए। यह मैने इसलिए कहा था कि गरीब, अमीर, जाति मित्रो का चाहे वे प्रतिदान दे या नही उन्हे देना

उसने शास्ता के समीप विशाखा को देखा। उसने कहा—'अम्म आज से तू मेरी बहू नही है। माता है।'

मृगार श्रेष्ठी ने विशाखा को माता के स्थान पर प्रतिष्ठित किया। इस दिन से विशाखा मृगार माता नाम से प्रसिद्ध हुई।

× × ×

भगवान् जेत वन मे विहार करते थे। मृगार माता विशाखा जेतव मे आयी। भगवान् का अभिवादन और वन्दना की। एक ओर बैठ गयी भगवान् ने उसे धार्मिक कथाओ से समुत्तेजित किया। संप्रशसित किया विशाखा ने निवेदन किया .

'भन्ते ! कल हमारे निवास-स्थान पर भोजन ग्रहण करे।'

तथागत ने मौन द्वारा स्वीकार किया। स्वीकृति प्राप्त कर मृगा माता ने अभिवादन किया। वन्दना की। चली गयी।

किन्तु उस दिन उस रात्रि के बीतने पर महामेघ की वृष्टि हुई। भगवान् ने कहा

'यह वृष्टि चारो ओर हो रही है। भिक्षुओ ! मेघ स्थान करो।'

'भन्ते ! आज्ञा।'

भिक्षुओ ने चीवर उतार दिया। नग्न हो गये। मेघ स्नान करने लगे।'

मृगार माता की दासी भोजन की सूचना देने आयी। उसने आराम मे भिक्षुओ को नही देखा। लौटकर विशाखा से कहा–'भिक्षु आराम मे मे नही है। आजीवक वर्षा स्नान कर रहे है।'

विशाखा समझ गयी। भिक्षु वर्षा स्नान कर रहे थे। उसने पुन दासी से कहा—'तू जा देख।'

भिक्षु गात्र को शीतल कर चीवर सहित अपने आराम मे चले गये थे।

दासी लौटकर आयी। बोली, 'भिक्षुगण आराम मे नही है। आराम सूना है।'

विशाखा समझ गयी। गात्र को शीतल कर भिक्षु अपनी कोठरियो मे चले गये होगे। उसने दासी से कहा—'तू जा। उन्हे बुला ला। वे वही होगे।'

'मेरे पिता ने दोप-अदोष का निर्णय आपको दिया था। आपने मुझे निर्दोष बताया। अब मै यहाँ नही रहूँगी। यहाँ से प्रस्थान करूँगी।'

'अम्म!—'

'धन्यवाद! दासी रथ तैयार कराओ। मै जाऊँगी।'

'अम्म!' श्रेष्ठी ने कहा, 'मैने अनजाने बाते कही थी। मुझे क्षमा करो।'

'तात! क्षमा—आपका क्षन्तव्य दोप क्षमा करती हूँ। परन्तु—।'

'परन्तु क्या?' श्रेष्ठी ने पूछा।

'मेरा पितृ कुटुम्ब बुद्धधर्म मे अत्यन्त अनुरक्त है। भिक्षु सघ के बिना हमारा रहना कठिन है। यदि मुझे यहाँ बुद्ध सघ की सेवा का अवसर मिलेगा तो रहूँगी।'

'अम्म! अपनी इच्छानुसार सघ की सेवा करो। मुझे उसमे कोई आपत्ति नही होगी।'

× × ×

दूसरे दिन विशाखा ने भगवान् तथा सघ को घर पर भोजनार्थ निमन्त्रित किया। नग्न श्रमणो को यह बात मालूम हुई। वे मृगार का घर घेर कर बैठ गये। किन्तु घेरना व्यर्थ हुआ।

विशाखा ने समय पर अपने श्वशुर को बुलाया। निवेदन किया। वह अपने हाथो तथागत तथा भिक्षु सघ को भोजन परोसे। मृगार शान्त था। उसने भोजन परोसा।

विशाखा ने पुन अपने श्वशुर को शासन भेजा। भगवान् का उपदेश सुने। वह उपदेश सुनने चला। नग्न श्रमणो ने उसे घेर लिया। बोले :

'अरे! तुम श्रमण गौतम का उपदेश सुनोगे? महा अनिष्ट होगा।'

'मै तो जाने के लिये कह चुका हूँ'

'अच्छा। कनात के बाहर बैठकर सुन लेना। भीतर जाना ठीक नही है।'

मृगार सेठ कनात के बाहर जाकर बैठ गया। भगवान् का उपदेश सुना। उपदेश समाप्त होने पर वह कनात हटाकर भीतर गया। उपदेश से प्रभावित हो गया था। अपने भगवान् की चरण वन्दना की।

'और ?'—

'रोगी को सुचारु ढग से भोजन न मिलने पर व्याधि की वृद्धि होती है। मृत्यु होती है। मेरा भोजन ग्रहण करने से उनकी व्याधि नही बढेगी। वह मर न सकेगे।'

'और ?'

'रोगी के परिचायक भिक्षु विलम्ब से रोगी के लिए भोजन लाते हैं। उपवास हो जाता है। अतएव रोगी के परिवार के भोजन की व्यवस्था होने पर यह कष्ट दूर हो जायगा।

'और— ?'

'औषधि के अभाव मे रोगी का कष्ट बढता है। उसकी मृत्यु होती है। अतएव मैं रोगी की औषधियो की व्यवस्था करूँगी।'

'और— ?'

'आपने खिचडी की प्रशंसा की थी। उससे दश गुणो का होना अन्धक विन्द मे बताया था। मै जीवन भर सघ को निरन्तर खिचडी देना चाहती हूँ।'

'और— ?'

'अचिरवती नदी मे भिक्षुणियाँ एक साथ वेश्याओ के साथ नग्न स्नान करती है। वेश्याये उन्हे ताना मारती है—'तुम तरुणी हो। ब्रह्मचर्य सेवन से अभी क्या लाभ है। काम भोगो। वृद्धावस्था मे ब्रह्मचारी बनना। भिक्षुणिया वेश्याओ की बात सुनकर चुप हो जाती हैं। स्त्रियो को नग्नता उचित नही है। उन्हे मै वस्त्र देना चाहती हूँ।'

'विशाखा! जैसी तुम्हारी इच्छा।' तथागत ने विचार कर उत्तर दिया।

× × ×

उत्सव का दिन था। लोग मण्डित थे। धर्म श्रवणार्थ विहार मे जा रहे थे। विशाखा ने निमन्त्रित स्थान पर भोजन किया। महालता अलकार से अलकृत हुई। विहार मे पहुँची।

अलकार उतार कर दासी को दिया। विचार किया। लौटते समय उन्हे वह पुन पहन लेगी। परिषद् मे अलकार पहनकर जाना उचित नही समझा। तत्पश्चात् वह उपदेश सुनने चली गयी।

दासी गयी। तथागत ने आज्ञा दी—'पात्र चीवर सहित तैयार हो जाओ। भोजन का समय उपस्थित हो गया है।'

'भन्ते!' सब तैयारी करने लगे।

× × ×

भगवान् पहुँचे। भिक्षु सघ के सहित भिक्षा प्राप्त किया। तत्पश्चात् मृगार माता विशाखा एक तरफ बैठ गयी।

'भन्ते!' मृगार माता ने निवेदन किया।

'विशाखे! क्या कहना चाहती हो?'

'भन्ते! मै एक वर आपसे माँगती हूँ।'

'विशाखे! तथागत वर से परे हैं।'

'किन्तु भन्ते, जो निर्दोष है।'

'अच्छा बोलो विशाखा।'

'मै सघ को यावत् जीवन वर्षा की लुगी देनी चाहती हूँ। आगन्तुक को भोजन देना चाहती हूँ। यात्रा पर जाने वालो को भोजन देना चाहती हूँ। बीमार को भोजन देना चाहती हूँ। रोगी को औषधि देना चाहती हूँ। सर्वदा यवागू अर्थात् खिचडी देना चाहती हूँ। भिक्षुणी सघ को उदकसाटी देना चाहती हूँ।'

'यह आठ वर तुम क्यो माँगना चाहती हो?'

'भन्ते! नग्न रहना घृणित है। धर्म विरुद्ध है। वर्षा स्नान मे भिक्षुओ ने नग्न स्नान किया। अतएव उन्हे यावज्जीवन वार्षिक साटी देना चाहती हूँ। वे उन्हे पहन कर स्नान करे।'

'और—'

'आगन्तुक भिक्षु श्रान्त गलियो मे भिक्षाचार करते है। अतएव आगन्तुक मेरा भोजन ग्रहण कर वीथी कुशल, गोचर-कुशल, श्रान्ति हीन होकर, पिण्डचार करे।'

'और— ?'

'गमिक भिक्षु विकाल मे श्रान्त हो जाते है। भिक्षा की खोज में तथागत का साथ त्याग देते है। उन्हे मै भोजन देना चाहती हूँ।'

वह खाली हाथ लौट गयी। विशाखा ने खाली हाथ आते देखकर पूछा :

'अम्म ! क्या है ?'

सुप्रिया ने सब बाते बता दी। विशाखा बोली '

'आनन्द को उसे रखने मे कष्ट होगा। उसे ले आ। उससे कुछ नवीन चीज यहाँ बनवा दूँगी।'

सुप्रिया दौडी-दौडी गयी। महालता सीढी के समीप रखी थी। उसे उठाया। लौट पडी।

× × ×

'इसका क्या मूल्य होगा।' विशाखा स्वर्णकारो को बुलाकर महालता का मूल्याकन करवाने लगी।

'नव करोड़ इसका मूल्य है। इसकी बनवाई एक लाख होगी।'

'इसे बेच दो।'

'किन्तु इतना मूल्य देकर यहाँ कोई खरीदने वाला नही है।'

'बाहर बेच दो।'

'वहाँ भी कोई खरीद नही सकेगा।'

विशाखा चिन्तित हो गयी। पुन बोली .

'ठीक है। मै ही खरीदती हूँ।'

× × ×

विशाखा ने ९ करोड एक लाख मुद्रा गाडियो पर लदवायी। उसे विहार मे लेकर गयी। भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गयी। निवेदन किया .

'भन्ते ! मैने महालता बेच दिया है। उसे आयुष्मान् आनन्द ने स्पर्श कर दिया था। अतएव सघ को दे रही हूँ। उसका क्या उपयोग किया जाय।'

'विशाखे ! पूर्व द्वार पर सघ के लिए निवास-स्थान बनवा दे।'

'भन्ते ! जैसी आज्ञा।'

धर्म श्रवण पश्चात् वह उठी। दासी सहित चली। दासी महालता अलकार लेना भूल गयी।

परिषद् तथा सभा मे भूली वस्तु आनन्द सम्हालते थे। महालता मिली। तथागत के पास ले जाकर बोले

'विशाखा महालता भूल गयी है।

'एक ओर रख दो'

आनन्द ने उसे पीढी के पास रख दिया। विशाखा अपनी सुप्रिया के साथ विहार मे आगन्तुक गमिक तथा रोगियो को देख रही थी।

दूसरे द्वार से वह वाहर निकली। सुप्रिया से बोली

'अम्म! महालता ला। पहन लूँ।,

'अरे– ?'

सुप्रिया चकित हुई। अपना शरीर खोजने लगी। अपना वस्त्र झाड़ने लगी। व्यग्र होकर बोल उठी :

'कहो भूल गयी।'

'जा खोज ला।'

सुप्रिया व्यग्र चली। विशाखा ने उसे पुकार कर कहा·

'यदि आयुष्मान् आनन्द ने ले लिया हो तो उसे मत लाना।'

सुप्रिया व्यस्त व्याकुल महालता खोजने लगी। आनन्द ने उसे देखा। मुसकुरा कर पूछा

'क्या कुछ खो गया है ?'

'आवुस! आर्या महालता भूल गयी है।'

'वह सीढी के पास मैंने रख दिया है। ले लो।'

'आर्य! आपके हाथो का स्पर्श हो गया है।'

'तो क्या हुआ ?'

आर्या नही लेगी।'

'क्यो ?'

'उनके धारण करने के अयोग्य हो गया है।'

सहायिका अत्यन्त दु खी हुई। उसकी आँखें भर आयी। आनन्द उसे विकल देखा। उससे पूछा

'देवी! क्यो दु खी हो ?'

'मै वस्त्र बिछाना चाहती हूँ। स्थान नही है। कहाँ बिछाऊँ ?'

'चिन्ता मत कर बहन!' आनन्द ने कहा। सहायिका प्रसन्न। गयी। वस्त्र आनन्द की तरफ बढाया। आनन्द ने कहा

'बहन! इसे सीढी और पैर धोने के मध्य चौपत कर बिछा दो।'

'अरे— ।'

'हाँ।' यह पाँवपोश का काम देगा। जो भिक्षु पाद प्रच्छालन क भीतर प्रवेश करेंगे, वे सर्व प्रथम तुम्हारे वस्त्र पर पद रखेंगे। तुम्हे प्रत्येक भिक्षु की सेवा का फल प्राप्त होगा।'

विशाखा ने उस स्थान के वस्त्र का ध्यान नही किया था। वह बड़े आयोजन मे लगी थी। छोटी योजना का ध्यान नही था।

× × ×

भगवान् ने अपना ३४वाँ वर्ष श्रावस्ती मे व्यतीत किया। मृगार माता के प्रासाद पूर्वाराम मे विहार कर रहे थे।

विशाखा मृगार माता का प्रिय मनाय नाती मर गया। वह भीगे केश, भीगे वस्त्र भगवान् के समीप आयी। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया।

'विशाखे! मध्याह्न काल मे भीगे वस्त्र, भीगे शरीर कहाँ से असमय आ रही हो ?'

'भन्ते! मेरी नतिनी मर गयी है। इसीलिए भीगे वस्त्र तथा भीगे शरीर आ रही हूँ।'

'विशाखा! श्रावस्ती मे जितने लोग है, उतना पुत्र और नाती की तुम कामना करोगी ?

'हाँ! भगवन्।'

'श्रावस्ती मे प्रतिदिन कितने प्राणी मरते है।'

'यहाँ दस, नव, आठ, सात, छ, पाँच, चार, तीन, दो, एक प्रतिदिन मरते है।'

विशाखा ने ९ करोड की भूमि खरीदी। ९ करोड लगाकर भवन निर्माण कराया। दो तल का प्रासाद बनवाया। भूमितल पर ५०० गर्भ अर्थात् कोठरियाँ बनवायी। ऊपरी तल पर ५०० गर्भ बन गये। वह प्रासाद एक सहस्र गर्भो से सुसज्जित हो गया।

× × ×

भगवान् चारिका करते पुन: श्रावस्ती मे पधारे। विशाखा सघाराम और विहार निर्माण करा रही थी। निर्माण समाप्तप्राय था। शास्ता का आगमन विशाखा ने सुना। वह भगवान् की अगवानी के लिए गयी। उसने सुना था। भगवान् जेतवन पधारेंगे।

विशाखा ने तथागत के पास पहुँचकर निवेदन किया

'भन्ते! चातुर्मास मेरे सघाराम मे विहार करो।'

'क्यो विशाखे ?'

'मै प्रासाद उत्सव करूँगी।'

विशाखा ने सघ के भी भिक्षा का प्रबन्ध कर दिया। वही एक भिक्षादान देती थी।

× × ×

एक दिन विशाखा की सहायिका अर्थात् सखी सहस्र मूल्य का एक वस्त्र लेकर आयी। उसने उसे अमूल्य समझा था। उसने विशाखा से निवेदन किया

'सहायिके! मै यह वस्त्र तुम्हारे यहाँ बिछाना चाहती हूँ।'

'अवश्य बिछाओ सखी।'

'कहाँ बिछाऊँ ?'

'प्रासाद के दोनो तल तथा सहस्र कोठरियो मे जहाँ चाहे वहाँ बिछा दो।'

सहायिका वस्त्र लेकर चली। उसे कही भी उससे कम मूल्य का वस्त्र वहाँ बिछा दिखाई नही दिया। उसे दु:ख हुआ। उसका वस्त्र प्रासाद मे स्थान नही पा रहा था। वह पुण्य की भागी नही बन पा रही थी।

'दूसरे के अधीन जो कुछ है। वह सब दु.ख है। लोग सामान्य बातो से पीडित होते है। काम भोगादि योगो का अतिक्रमण करना कठिन है।'

× × ×

—और भभवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे सडसठवाँ तथा उपासिका श्राविकाओ मे द्वितीय स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती निवासी विशाखा मृगार माता दायिकाओ मे अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ

अगुत्तर निकाय १ १४

थेरी गाथा १३, उदान १३

धम्मपद १६ ३

अ० नि० अ० क० १ : ७ २

महावग्ग ३ ३ ८

८ ४ ५-६

८ ५ ३

१० २ २

चुल्लवग्ग ६ ५ १६

चुल्लवग्ग ६ १

उदान ८ ८

सयुत्त निकाय ३ २ १

८ ७

२१ २ ३ १०

४५ . ५ १

४६ ५ ५

४९ २ ४

'क्या कोई ऐसा दिन है जब कोई न मरता हो ?'

'नही भन्ते ।'

'तो क्या तुम सर्वदा भीगे वस्त्र, भीगे केश रह सकोगी ?'

'नही भन्ते ! मेरे जितने पुत्र, प्रपौत्र है वे ही पर्याप्त है ।'

'विशाखे ! जिनके एक सौ प्रिय होते हैं । उनके एक सौ दु ख होते हैं । जिनकी पुत्र-पौत्रो की क्रमश. कमी होती जाती है । उनके क्रमश. दु ख कम होते जाते है ।'

'भन्ते— !'

'विशाखे ! जिन्हे प्रिय नही होता उन्हे दु ख नही होता । वह शोक-रहित है । रागरहित है । उपायास रहित है ।'

'भन्ते !'

'विशाखे ! लोक मे प्रिय के कारण नाना प्रकार के शोक, दु ख तथा परिवेदना होती है । प्रिय के अभाव मे उनका भी अभाव हो जाता है । वही सुखी है । वही शोक रहित है । जिसे इस लोक मे कुछ प्रिय नही है । जो चाहता है कि अशोक रहे, निर्मल रहे, उसे इस लोक मे प्रिय नही बनाना चाहिए ।'

× × ×

भगवान् का चालीसवाँ वर्षावास था । श्रावस्ती के मृगार माता के पूर्वाराम मे भगवान् विहार कर रहे थे ।

उस समय विशाखा का एक काम राजा प्रसेनजित् से अटका था । प्रसेनजित् कुछ निर्णय नही कर पाता था ।

मध्याह्न काल था । विशाखा भगवान् के पास आयी । अभिवादन वन्दना कर, एक ओर बैठ गयी । भगवान् ने पूछा

'विशाखे ! इस असमय मे ?'

'भन्ते ! आज्ञा हो तो कहूँ ।'

'कहो विशाखे ।'

'मेरा काम राजा प्रसेनजित् से अटका है ।'

भगवान् ने विशाखा का आशय समझ कर उदान कहा

राष्ट्रपाल

कुरुदेश[1] था। उसमे थुल्लकोट्ठित[2] निगम (कस्वा) था।

उसका कुछ समृद्धशाली था। भोग की सभी सामग्रियाँ उपलब्ध थी। अल्प युवाकाल मे ही नारियो के मध्य वह पड गया था। उसके

---

(१) कुरुदेश : बुद्ध काल मे १६ महाजनपदो मे एक महाजनपद था। वहाँ के राजकुमारो के नाम पर इसका नाम कुरु पड गया था। बुद्धघोष का मत है कि मान्धाता जव चार महाद्वीपो का भ्रमण कर जम्बूद्वीप मे लौट आये तो उनके साथ वहुत से उत्तर कुरु के लोग थे। वे जम्बूद्वीप मे आवाद हो गये। जहाँ वे आवाद हुए थे उसे कुरुत्थ कहते थे। उसमे अनेक नगर तथा ग्राम थे। पूर्व वौद्ध काल मे पाचाल, कुरु तथा केकय राज्यो का महत्व था। परन्तु वुद्ध के समय उसका विशेष महत्व नही रह गया था। जातको से पता चलता है कि कुरुदेश ४०० योजन विस्तृत था। उसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। इन्द्रप्रस्थ सात योजन क्षेत्र मे विस्तृत था। इन्द्रप्रस्थ के राजा युधिष्ठिर गोत्र के थे।

कुरु जनपद सूरसेन तथा मत्स्य जनपद के उत्तर मे था। पाचाल जनपद के पश्चिम मे था। कुरु पाचाल का नाम एक साथ आता है। उसके सामीप्य को प्रमाणित करता है। कुरु जनपद मे वर्तमान मेरठ, मुजफ्फर नगर, बुलन्दशहर, सहारनपुर, दिल्ली, कुरु क्षेत्र तथा थानेश्वर सम्मिलित थे। यहाँ के लोगो को स्वच्छ शरीर तथा स्वस्थ चित्त होना कहा गया है।

(२) थुल्ल कोट्ठित निगम कुरु जनपद मे था। कौरव्य राजा इसी निगम मे रहता था। एक मत है कि यह स्थान इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली के समीप था। दूसरा मत है कि हस्तिनापुर के समीप था।

बुद्ध घोष नाम की उत्पत्ति देते हुए कहता है—इसका नाम थुल्ल कोट्ठित इसलिए पडा था कि यहाँ के लोगो के कोठे अन्न से सर्वदा भरे रहते थे। वह इसका नाम 'स्थूल कोष्ठक' देते हैं।

A i · 26; 205, iv · 91; 269; 348.

DhA : i : 395, 397, 403, 384, 409, 128, 100, 416, iii 278, 58.

Udan · ii 9.

A A 219, 313, ii 724.

Ud viii 8

J : ii 347, iv : 144; 315; v ii.

Vin i : 153, 296, ii 129.

DA iii 746

एक दिन तथागत से सानुनय निवेदन किया : 'भन्ते ! मुझे माता-पिता के दर्शन की आज्ञा दे।'

'समयानुसार जो उचित समझो करो।'

भगवान् ने शान्त स्वर मे कहा।

× × ×

आयुष्मान् राष्ट्रपाल थुल्लकोट्ठित आया। वहाँ राजा कौरव[३] के मृगाचीर[४] उद्यान मे विहार किया।

पूर्वाह्ण समय पात्र लिया। चीवर उठाया। पिण्डचार निमित्त निगम मे प्रवेश किया। अपने घर पहुँचा।

उसका पिता मध्य द्वारशाला मे बैठकर बाल बनवा रहा था। दूर से उसने भिक्षु को देखा। पुत्र को श्रवण वेष मे पहचान न सका। वह श्रमणो से चिढता था। श्रमणो के कारण पुत्र खोया था। समीप आने पर, उसने उसकी ओर आँख भी नही उठायी। बोल उठा·

'इन श्रमणो ने मेरे एकमात्र पुत्र को मुझसे छीन मिया। प्रव्रजित कर लिया। मै बिना सन्तान हो गया हूँ।'

राष्ट्रपाल चकित हुआ पिता का व्यवहार देखकर। श्रावस्ती से वह उनके दर्शन निमित्त आया था। प्रतिज्ञा पालन किया था।

अपने ही घर से भिक्षा नही मिल सकी। प्रत्याख्यान नही मिला। कटु शब्दो से स्वागत हुआ था।

घर से उसकी ज्ञात दासी वासी कुल्माष फेकने बाहर आयी। राष्ट्रपाल ने दासी से कहा

'बहन ! इसे व्यर्थ क्यो फेकती हो। मेरे पात्र मे ही इसे फेक दो।'

दासी ने सकेत किया। राष्ट्रपाल ने पात्र बढा दिया। दासी ने पात्र मे कुल्माष डालते समय उन्हे पहचान लिया।

---

(३) कौरव . कौरव्य यह कुरु देश का राजा था। विशेष विशाखा मे द्रष्टव्य धनजय टिप्पणी है। राष्ट्रपाल के मिलने के समय राजा की आयु ८० वर्ष की थी।

(४) मृगाचीर . कौरव्य का एक सुरम्य उद्यान था। यह इन्द्रप्रस्थ मे था। ऋषिपत्तन सारनाथ को भी मिगचीर कहा जाता था।

सुख की तुलना देवताओ के सुख से की जा सकती थी। जीवन सरलता-पूर्वक आनन्दपूर्वक बीतता जाता था। उसका विवाह हुआ।

× × ×

कुरुदेश था। भगवान् भिक्षु सघ के साथ चारिका कर रहे थे। कुरुओ के निगम थुल्ल कोट्ठित में पहुँचे।

ब्राह्मण गृहपतियो ने तथागत के आगमन की बात सुनी। शास्ता के दर्शन और उपदेश सुनने की इच्छा हुई। वे आये। एक ओर बैठ गये। वे उपदेश द्वारा प्रेरित हुए। सदर्शित हुए। समुत्तेजित हुए। सप्रशसित हुए।

क्षुल्लकोट्ठित के अग्रकुलिक का पुत्र राष्ट्रपाल वहाँ बैठा था। उसने ब्रह्मचर्य सम्बन्धी देशना सुनी। अत्यन्त परिशुद्ध शख-सा प्रच्छालित ब्रह्मचर्य गृह मे रहकर सम्भव नही था। उसने प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया। भगवान् की सेवा मे पहुँचा। एक ओर बैठ गया। तथागत के सकेत पर निवेदन किया

'भन्ते! मै आपसे प्रव्रज्या पाऊँ। उपसम्पदा पाऊँ।'

'राष्ट्रपाल! माता-पिता से प्रव्रज्या की अनुज्ञा ले ली है?'

'नही भन्ते!'

'बिना माता-पिता की आज्ञा मै प्रव्रजित नही करूँगा।'

'अच्छा। मै आज्ञा लूँगा भन्ते!'

राष्ट्रपाल कुलपुत्र ने भगवान् की प्रदक्षिणा की। अभिवादन किया। अपने घर की ओर चला।

× × ×

माता-पिता से उसने प्रव्रज्या की आज्ञा माँगी। उन्होने एकमात्र पुत्र को प्रव्रज्या की अनुमति नही दी। वश लोप होने का भय था।

राष्ट्रपाल ने अन्न-जल त्याग दिया। भूमि पर पड गया। प्राण त्याग की बात उठायी। मित्रो ने मध्यस्थता की। निश्चय हुआ। प्रव्रज्या के पश्चात् माता-पिता को दर्शन देता रहेगा। उभय पक्षो ने बात मान ली। उसे अनुज्ञा मिल गयी।

तथागत ने उसे प्रव्रजित किया। श्रावस्ती भगवान् के साथ गया। वहाँ विहार किया। जो कुछ जानना चाहिए था। जान गया। अर्हत् हुआ।

'बहन' सम्बोधन सुनते ही भार्यायें मूर्छित होकर गिर पडी। राष्ट्रपाल ने कहा

'गृहपति ! भोजन देना है या कष्ट ?'

'नही-नही भोजन करो।'

स्वादिष्ट भोजन के पश्चात् राष्ट्रपाल ने उपस्थित लोगो को उपदेश दिया

'यह मनुष्य आकार देखो। वर्णो से यह सज्जित है। आतुर है। सकल्पो का गेह है। यह स्वय ध्रुव नही है। इसका विचत्र बना रूप देखो ! यह मणियो से सज्जित है। कुण्डल से शोभित है। यह सुन्दर सूक्ष्म वस्त्रो से वेष्ठित है। अस्थि-मास से सम्पादित कितना सुन्दर लगता है। पद मे महावर लगे है। मुख पर अगराग लगा है। यह रूप बालक को आकर्षित कर सकता है। परन्तु पारगवेषी को यह मोहित करने मे असमर्थ है।

'और यह कुचित लम्बे केश, अजन रजित नेत्र, बाल को मोह-जाल मे फँसाने मे समर्थ है। पारगवेषी पर उनकी नही चलेगी। यह सड़ता शरीर नवीन विचित्र अजन नाली के समान अलकृत है। यह बालक को मोह सकता है। पारगवेषी को नही।

'व्याध ने जाल फैलाया। मृग जाल मे नही फँसा। हरित तृण चरता चला गया। व्याधा रोता रह गया।'

पिता ने स्नेह से कहा

'पुत्र ! तुमने कुछ माँगा नही।'

'सौम्य ! भीख माँगना अपने को गिराना है।'

राष्ट्रपाल उठ कर चल दिया। कौरव्य के मिगचीर उद्यान मे विहार किया।

× × ×

कौरव्य राजा का मिगचीर उद्यान था। उद्यान मे मिगव माली उद्यान साफ कर रहा था। वृक्ष मूल मे राष्ट्रपाल श्रमण को देखा। वह दौडा राजा के पास गया

'देव ! उद्यान साफ हो गया है। परन्तु—।'

वह दौडकर भीतर आयी। माता को देखकर चिल्ला उठी—'राष्ट्र-पाल! राष्ट्रपाल!! राष्ट्रपाल!!! वह आये है।' पिता ने सुना। बाल बनवाना छोड कर दौडा। उसने देखा। उसका पुत्र दिवाल का सहारा लेकर बैठा था। वासी कुल्माष खा रहा था। पिता को विस्मय हुआ। पुत्र को पारुषित कुल्माष खाते देखकर दु खी हुआ।

'यह क्या खाते हो? चलो घर।'

'गृहपति! अब मेरा घर कहाँ। प्रव्रजितो का विश्व घर है। हम बेघर है। आपके घर गया। वहाँ भिक्षा नही मिली। प्रत्याख्यान नही मिला। कटु वाक्य मिले।'

'तात! घर चलो।'

'नही। आज मै खा चुका।'

'तो कल—?'

राष्ट्रपाल ने मौन द्वारा स्वीकृति दी।

× × ×

राष्ट्रपाल के पिता ने बहुओ को सुअलकृत किया। घर का सब धन एकत्रित किया। उसका ढेर बनाकर रखवा दिया।

राष्ट्रपाल पूर्व-मध्यान्ह काल मे पात्र और चीवर सहित आया। घर से उसका अभ्युत्थान हुआ। सत्कार हुआ। स्वागत हुआ। पिता ने धन राशि दिखाते हुए कहा

'देखो। यह अपार सम्पत्ति है। इसका भोग करो। पुण्य करो। शिक्षा को त्याग कर गृहस्थ धर्म पुन स्वीकार करो।'

'गृहपति!' राष्ट्रपाल ने शान्त स्वर मे कहा, 'इस धन-राशि को गगा मे प्रवाहित कर दो।'

'क्यो—?'

'इसके कारण आपको शोक नही होगा। दु ख नही होगा। दौर्मनस्य नही होगा।'

राष्ट्रपाल की प्रत्येक सुन्दर भार्याएँ उसका चरण पकड कर विनती करने लगी घर मे निवास करने के लिये। राष्ट्रपाल ने कहा

'बहन! हम ब्रह्मचर्य का पालन करते है।'

'क्या आपमें वह बल, वह पुरुषार्थ आज है ? क्या आपका बल आपका पुरुषार्थ ध्रुव रहा ?'

'नही। मैं अब वृद्ध हूं। अस्सी वर्ष मेरी आयु है। अपना शरीर चलाने मे असमर्थ हूँ।'

'यही तथ्य जानकर तथागत ने कहा। अध्रुव है। अतएव मैं प्रव्रजित हुआ था।'

'दूसरी बात— ?'

'राजन् ! यह लोक त्राण रहित है। आश्वासन रहित है।'

'इसका क्या अर्थ ?'

'राजन् ! आपको अनुशायिक व्याधि है ?'

'राष्ट्रपाल—है। मैं वायु रोग से पीड़ित हूँ। एक समय तो जीवन से निराश हो गया था। मेरे मित्र, अमात्य, ज्ञाति, मुझे घेर कर खडे थे। कहते थे। राजा, कौरव्य मृत्यु मुख मे था। मैं सुनता था। अपने मरने की बात अपने मुखापेक्षियों से।'

'राजन् ! क्या आपके मित्र, अमात्य, ज्ञाति-बन्धुओ ने आपकी वेदना को बाँट लिया ? उसे हलका किया ?'

'नही राष्ट्रपाल ! मेरी वेदना का कोई भागी नही बना। मैं ही अपनी पीडा सहता था। वेदना सहता था।'

'राजन् ! इसीलिए तथागत ने कहा था। लोक त्राणरहित है। आश्वासन रहित है।'

'और तीसरी बात— ?'

'राजन् !' तथागत ने कहा, 'यह लोक अपना नही है। इसे त्याग कर जाना है।'

'इसका क्या अर्थ है ?'

'राजन् ! आप पाँच काम गुणो से आज युक्त है। जन्मान्तर मे भी आप उन्हे पायेगे। दूसरे इस भोग को पायेंगे। और आप अपने कर्मानुसार जायेंगे।'

'राष्ट्रपाल ! मै इस समय पाँच गुणों से युक्त विचरता हूँ। जन्मान्तर

'परन्तु क्या मिगव ?'

'वहाँ थुल्लकोट्ठित के अग्र कुलिक का राष्ट्रपाल व कुलपुत्र वृक्ष मूल मे विहार कर रहा है।

'अच्छा— ?'

'देव ! आप उसकी बहुत प्रशसा करते रहे है।'

'सौम्य मिगव ! मै आज उसी के साथ सत्सग करूँगा। तुम और कष्ट मत उठा।'

राजा साथियो के साथ यान पर रवाना हुआ। जहाँ तक यान जा सकता था। यान से गया। तत्पश्चात् अपने सहचरो के साथ पैदल गया। वृक्ष के समीप पहुँचा। राष्ट्रपाल के साथ समोदन किया। एक ओर खड़ा हो गया।

'आयुष्मान्' राजा कौरव्य ने कहा। 'राष्ट्रपाल ! आप सुख से हत्थ-त्थर गलीचा पर वैठिए।'

'आप वही बैठे। मै अपने आसन पर सुखी हूँ।'

राजा कौरव्य राजासन पर वैठ गया। कौरव्य ने कहा

'राष्ट्रपाल ! किन बातो से प्रभावित होकर आपने प्रव्रज्या ली है ?'
'राजन् ! वे चार कारण है।'
'वे क्या है ?'
'लोक अध्रुव है।'
'इसका अर्थ ?'

'राजन् ! आप एक समय २० वर्ष के थे। पच्चीस वर्ष के हुए। पचास वर्ष के हुए। साठ वर्ष के हुए। अब आप अपने वर्तमान आयु मे है।'

'तो— ?'

'राजन् ! युवा काल मे आपने युद्धक हाथी, अश्व, रथ की सवारी मे सिद्धता प्राप्त की थी। धनुप, कृपाण, धारण करते थे। आपका ऊरु वलिष्ठ था। वाहु वलिष्ठ था। आप अपने जैसा वली किसी दूसरे को नही देखते थे।'

'तो— ?'

देते है। परन्तु पुन उसी शव को अग्नि में लुटा पुटाकर भस्म कर देते है। भोग उसका साथ नही देते। केवल एक वस्त्र से आच्छादित वह स्मशान जाता है। वहाँ उसकी कपाल क्रिया होती है। वहा उसके मित्र, वन्धु-वान्धव सहायक नही होते। उत्तराधिकार के इच्छुक श्मशान में उनके धन हरण की योजना बनाते है, मृत के साथ धन नही जाता। राज नही जाता। माता, पिता, पुत्र तथा स्त्री नही जाती। केवल कर्म जाता है।'

'राजन्! क्या धन से लम्बी आयु प्राप्त हो सकती है? वित्त द्वारा जरा का नाश किया जा सकता है? धीर लोगो ने इस जीवन को स्वल्प, नश्वर तथा भगुर कहा है। धनी और दरिद्र दोनो स्पर्शो को स्पर्श करते है। वाल तथा धीर भी उसी प्रकार है। बाल मूर्खता से विचलित होता है। किन्तु धीर स्पर्श स्पष्ट होकर विचलित नही होता।'

'धन्य है राष्ट्रपाल—धन्य है।'

राष्ट्रपाल ने पुन कहा .

'धन से प्रज्ञा श्रेष्ठ है। प्रज्ञा से तत्त्व का निश्चय होता है। निर्वाण न प्राप्त करने पर यह मोहाभिभूत आकाश मन के चक्कर मे पड जाता है। पापो मे रत हो जाता है। परलोक पाता है। वह प्रज्ञावान विश्वासकर गर्भ और परलोक प्राप्त करते है। सेध मे रगे हाथ पकडा गया चोर अपने कर्म से मारा जाता है। इसी प्रकार पापी मर कर, अपने कर्म से, दूसरे लोक मे मारा जाता है। अद्भुत मन प्रिय काम चित्त को नाना प्रकार से मथते रहते है। इस काम योग के दुष्परिणाम को देखकर, मैंने प्रव्रज्या ली है। फलप्रद वृक्ष के फल समान तरुण तथा वृद्ध प्राणी शरीर त्याग कर गिरते है। किन्तु न गिरने वाला एक भिक्षु है। अतएव मैंने यही राज देखकर प्रव्रज्या ली है।

'मैने पूर्ण श्रद्धा के साथ बुद्ध शासन मे प्रवेश किया है। मेरी प्रव्रज्या रिक्त नही है। उऋण होकर मैं भिक्षा प्राप्त करता हूँ। विषयो को अग्नि तुल्य देखता हूँ। जन्म को दु ख देखता हूँ। नरक मे महाभय देखता हूँ। इन दुष्परिणामो को दृष्टिगत कर मुझ में सवेग उत्पन्न हुआ। दु ख द्वारा बाधित मैंने आश्रवो का क्षय किया है। भव भार को उतार कर फेंक दिया है। तृष्णा को समूल नष्ट किया है। जिस कारण मैंने गृह का त्याग किया था, उससे सर्व बन्धनों को क्षय कर प्राप्त किया है।

× × ×

मे मै कैसे इन गुणो से विचर पाऊँगा ? दूसरे इन्हे यहाँ भोगेगे। मै अपने कर्म के अनुसार जाऊँगा।'

'राजन् ! इसीलिए भगवान् ने कहा—'लोक अपना नही है।'

'चौथी बात—राष्ट्रपाल ?'

'राजन् ! लोक तृष्णा का दास है।'

इसका क्या अर्थ है ?'

'इस समय राजन् आप कुरुदेश के राजा है।'

'हाँ। मै समृद्धिशाली कुरुदेश का स्वामी हूँ।'

'राजन् ! यदि कोई आपका विश्वासपात्र दूत आकर कहे—'मै पूर्व दिशा से आ रहा हूँ। वह समृद्धिशालियो से पूर्ण स्थान है। जनाकीर्ण है। वहाँ हाथी काय है। अश्व काय है। रथ काय है। पत्नी काय है। वहाँ हाथी दाँतो तथा मृग चर्मो की बहुलता है। वहाँ कृत्रिम अकृत्रिम सुवर्ण का भण्डार है। वहाँ तरुणी कामिनियाँ खूब मिलती है। आपके पास जितनी सेना है, उनकी उस देश को सरलतापूर्वक जीतने के लिए पर्याप्त है—तो आप उस समय क्या करेगे ?'

'मै उस देश को जीतकर उसका राजा बन जाऊँगा।'

'राजन् ! इसी प्रकार आपके विश्वासपात्र दूत पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाओ से आकर इसी प्रकार की बात बढा-चढाकर कहेगे तो आप उन्हे जीतने का प्रयास करेगे। आपको एक जीत से सन्तोष न होगा।'

'आश्चर्य है! अद्भुत है ! राष्ट्रपाल।'

'इसीलिए भगवान् ने कहा है—'लोक तृष्णा का दास है।'

आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने पुन कहा

'इस लोक मे धनी मनुष्यो को देखते है। मोह से वे दान नही करते। धन का सचय करते है। उसे और अधिक धन की, भोग की, आकाक्षा होती है। राजन् ! राजा लोग शक्ति से देश जीतते है। समुद्र तक इस भूमि पर शासन करते है। तथापि समुद्र पार पहुँचकर शासन करना चाहते है। मनुष्य तृष्णा रहित नही होते। मृत्यु का वरण करते है। यह लोक काम से तृप्त नही होता। जात वाले मृत देखते है। बाल बिखेर कर रोते है। पुक्का फाड़कर रोते है। आकाश भूमि क्रन्दन से एक कर

अंगुलिमाल

उसभं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं ।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

(मै उन्हे ब्राह्मण कहता हूँ । जो उत्तम है । प्रवर है । वीर है । महर्षि है । विजेता है । अकम्प्य है । स्नातक है और ज्ञानी है ।)

—ध० ४२३

अगुलिमाल[1] कोसल के राजा के पुरोहित का पुत्र था । कुलीन

---

(१) अगुलिमाल कथाओ मे कुछ भिन्नता मिलती है । एक कथा है कि अगुलिमाल की माता अपने पुत्र के पास जा रही थी । वह हिसक वृत्ति से विरत हो जाय । वह जब वन में पहुँची तो केवल एक आदमी का मारना और बच गया था । एक मत है कि अगुलीमाल माता को भी मारना चाहता था । परन्तु भगवान् ने आकर माता की रक्षा कर ली । एक कथा है । भगवान् ने अगुलिमाल को हिसा से विरत करने के लिए उसकी वृद्ध माता को उसके सम्मुख कर दिया था । इसे मारकर वह एक हजार की प्रतिज्ञा पूरी करे । परन्तु वह मार न सका । इसे सारनाथ की मूलगन्ध कुटी विहार मे जापान सम्राट् की तरफ से जापानी चित्रकार ने बहुत ही कलात्मक और भावात्मक शैली मे चित्रित किया है ।

अगुलिमाल* का चरित्र इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कहा जायगा कि वह इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि पूर्व दुष्कृत वर्तमान के कुशल कर्मो द्वारा नष्ट हो जाता है ।

अगुलिमाल के कारण यह नियम बनाया गया था कि पकडे हुए डाकू को भिक्षु नही बनाना चाहिए । बौद्ध देशो मे यदि कोई अपराधी पकडा नही जाता और सघ मे सम्मिलित हो जाता है तो उसे प्राय बन्दी नही बनाते ।

---

* बौद्ध जगत् मे अस्सी अग्र श्रावकों को परम्परा मानने वाले अगुलिमाल को एक अग्र श्रावक मानते है ।

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे इक्कीसवाँ स्थान प्राप्त कुरु देश थुल्लकोट्ठित वैश्य कुलोत्पन्न राष्ट्रपाल श्रद्धा द्वारा प्रव्रजितो मे अग्र था।

आधार ग्रन्थ

मज्झिम निकाय २ ४ २

रट्ठपाल सुत्त

थेर गाथा २५१, उदान ७६८-७९२

A A ı 141, 143, 165, ıı : 506.

Ah ı 63

DA iıı 642

DhA : ıv 195

S A ııı 201.

M A ıı 722

Thag A ıı 30.

Vıdh A 306.

Vın : ııı 148.

पुरोहित का मुख लटक गया। प्रतिभाहीन हो गया।

'ओह—।'

'और कुछ पूछा ?'

'क्या पूछता ?'

'वह अकेले चोर होगा या उसका कोई दल होगा ?'

'पूछा था।'

'क्या उत्तर मिला ?'

'वह अकेला चोर होगा। उसका कोई दस्यु दल नही होगा।'

'अच्छा तो उसे मार डालो।'

'यदि वह अकेला चोर होगा तो उस पर नियन्त्रण रखा जा सकेगा राजन् !'

पुरोहित ने उदासीन स्वर मे कहा। राजा के मस्तिष्क मे उसके कारण अहिंसा की भावना उत्पन्न हुई थी। अतएव उसका नाम अहिंसक रखा गया। कहा जाता था। उसमे सात हाथियो का बल था। एक मत है। अस्त्र शस्त्रो के कारण किसी की हानि नही हुई थी। अतएव नाम अहिंसक रखा गया।

× × ×

वह मेधावी था। उसे तक्षशिला विद्याध्ययन के लिए भेजा गया। वह व्रत सम्पन्न था। आज्ञाकारी था। आचार प्रिय था। प्रियवादी था। उसका गुण दूसरो की ईर्ष्या का कारण हुआ।

वह सबसे अधिक प्रज्ञावान था। किन्तु दुष्प्रज्ञ नही था। व्रतयुक्त था। उसे दुर्बल नही कहा जा सकता था। जाति मे था। अतएव उसे कुजाति नही कहा जा सकता। गुणो के कारण उसकी किसी प्रकार शिकायत करने का मौका नही मिलता था।

विद्यार्थियो ने निश्चय किया। आचार्य को इससे विमुख करना चाहिए। इसके लिए आचार्याणी को माध्यम बनाने का निश्चय किया। उन्होने तीन दल बनाया। एक बार एक दल जाकर आचार्य से उसकी शिकायत करता था। पहला दल आचार्य के पास गया। शिष्यो को देख कर आचार्य ने कहा .

'तातो ! क्या प्रयोजन है ?'

ब्राह्मण कुल का था। उसके पिता का नाम गार्ग्य (भार्गव ?) था। उसकी माता का नाम मैत्रायणी था।

जिस दिन उसका जन्म हुआ था नगर मे अस्त्र-शस्त्र चमकने लगे थे। राजकीय शस्त्रागार के अस्त्र शस्त्र चमकने लगे थे। राजा अपनी शय्या पर पडा उन्हे देखता रहा। उस रात्रि राजा को निद्रा नही आई।

उसके पिता ने जन्म के समय रात्रि मे ज्योतिषियो से सम्पर्क स्थापित किया। उसके भविष्य जानने का प्रयास किया।

प्रात काल पुरोहित राजा के पास गया। कुशल-मगल पूछा। यह भी पूछा

'राजन्! रात्रि मे निद्रा तो आई थी ?'

'मै कैसे सुख निद्रा प्राप्त कर सकता हूँ सौम्य!'

'क्यो राजन्।'

'रात्रि पर्यन्त शस्त्रागार मे अस्त्र-शस्त्र ज्योतिर्मय हो उठे थे।'

'राजन्! भयभीत मत होइये।'

'क्यो सौम्य ?'

'मेरे घर मे एक पुत्र का जन्म हुआ है।'

'उससे क्या होता है ?'

'राजन्! उसके प्रभाव के कारण नगर के समस्त अस्त्र-शस्त्र ज्योतिर्मय हो उठे थे।'

'सौम्य! आपका पुत्र क्या पुरोहित होगा ? गुरु होगा ?'

'नही राजन्!'

पुरोहित उदास हो गया।

'क्या भविष्य है ?'

'राजन्! मैने ज्योतिषियो से रात्रि मे ही पूछा था।'

'उन्होने क्या कहा ?'

'वे बोले—'पुरोहित आगे बोल न सका। लज्जित हो गया। राजा ने उत्साहित करते हुए पूछा

'उन्होने क्या कहा ?'

'मेरा पुत्र चोर होगा।'

'देव !'

'जो माँगूगा दोगे ?'

'निश्चय गुरो !'

'एक सहस्र व्यक्तियो को मारो।'

'यह कैसे होगा आचार्य ?'

'क्यो ?'

'मेरा कुल अहिसक है।'

'वाह— !'

'मेरा नाम इसोलिए अहिसक रखा गया है।'

'तात ! बिना दक्षिणा विद्या फलवती नही होती।'

'किन्तु आचार्य— ।'

'नही ! तुमने प्रतिज्ञा की है। तुम्हे यह गुरु दक्षिणा देनी होगी।'

अहिसक उदास हो गया। उसे रुलाई आने लगी। उसे अपना जीवन, अपनी विद्या, सब कुछ, नष्टप्राय प्रतीत होने लगा।

× × ×

यह पाँच आयुधो से युक्त हुआ। आचार्य के पास गया। उनकी वन्दना की। कोशल के जालिनी वन मे प्रवेश किया। अटवो के प्रवेश स्थान, मध्य स्थान तथा बहिर्गमन स्थान पर खडा होता था। आगन्तुको की हत्या करता था। उन्हे मारता था। उनकी कोई सम्पत्ति, द्रव्य, वस्त्र, वेष्टन आदि स्पर्श नही करता था। वह मृतको की गणना करता जाता था।

समय आया। गिनती याद करनी उसके लिये सम्भव नही रह गयी। उसने एक उपाय निकाला। मृत व्यक्ति की एक उगली काट कर गिनती मिलाने के लिए रख लेता।

किन्तु रखे स्थान से उगलियाँ खो जाती। उसको उपाय सूझा। उगलियो की माला बनाकर पहन लिया। अतएव उसका नाम अगुलि-माल पड गया।

अटवी उसके क्रूर कर्म से आक्रान्त हो गयी। जगल मे लकडी आदि काटने कोई नही आता था। भय से सब त्रस्त थे।

'एक बात सुनाई पडती है।'

'क्या ?'

'माणवक—

'वह बडा सुशील है। गुणी है।

'तथापि—।'

'तथापि क्या ?'

'आपके घर को दूषित करता है।'

'वृषलो! भाग जाओ। मेरे पुत्र तुल्य शिष्य और मुझमे अन्तर डालना चाहते हो ?'

किन्तु योजना बन चुकी थी। दूसरा दल आया। उसने भी यही बात कही। तीसरा दल आया। उसने भी वही बात कही। सबने कहा। उनका विश्वास था। आचार्य स्वय परीक्षा कर देख ले।

आचार्य के मन मे सन्देह ने प्रवेश किया। यह ऐसी बात थी। खुल कर कही नही जा सकती थी। आचार्याणी से स्पष्ट पूछी भी नही जा सकती थी।

आचार्य ने विचार किया। अहिंसक माणवक को मारूँ। परन्तु उन्हे ध्यान आया। विद्यार्थी अगर मारा जायगा तो तक्षशिला की बदनामी होगी। विद्यार्थियो का आना बन्द हो जायगा। दिशा प्रमुख आचार्य-गण अपने विद्यार्थियो को यहाँ नही भेजेगे। हत्या कर देने पर मेरे पास कोई विद्यार्जन करने के लिए नही आएगा।

बहुत तर्क-वितर्क करने के पश्चात् आचार्य को एक उपाय सूझा। अहिंसक से गुरु-दक्षिणा माँगी जाय। उससे कहूँ 'सहस्र को मारो।' इससे यह अहिंसक हिंसक हो जायगा। इसका सब कुछ नष्ट हो जायगा। क्रूरकर्मा होगा।

गुरुदक्षिणा का समय आया। अहिंसक अत्यन्त श्रद्धाभक्ति के साथ गुरु के सम्मुख उपस्थित हुआ।

बोला

'गुरु! दक्षिणा देने की कामना है।'

'स्तुत्य अहिंसक।'

अगुलिमाल ने देखा। शान्त गम्भीर मुद्रा तथागत चले आ रहे थे। उसे क्रोध हुआ। जिस मार्ग से उसके आतक के कारण कोई नही आ सकता था। उस पर कैसे तथागत चले आ रहे थे। उसने समझा। आगन्तुक श्रमण उसका तिरस्कार कर रहा था। निरादर कर रहा था। वह कुपित हो गया।

उसने असि चर्म लिया। धनुप-वाण लिया। तथागत को मार डालने की इच्छा से उनके पीछे चलने लगा। अगुलिमाल तथागत की गति नही पा रहा था। उसे आश्चर्य हुआ। वह खड़ा हो गया। भगवान् को सम्बोधित किया

'श्रमण! ओ श्रमण!! खडा रह।'

'मै स्थित हूँ।'

'आप तो चलते जा रहे है। आप सत्यवादी है। मिथ्या भापण क्यो कर रहे, श्रमण?'

'मै स्थित हूँ। मै खडा हूँ! अगुलिमाल।'

अगुलिमाल फिर चकित हुआ। उसने भगवान् को गतिशील देखा। पुन पुकार कर कहा

'श्रीमान्! आप चले जा रहे है। और कहते है। खडे है! स्थित है?'

'अगुलिमाल! तू चल रहा है। मै खडा हूँ।'

'वाह!—मे खड़ा हूँ। आप चल रहे है। यह कैसी उलटी बात?'

'मै ठीक कहता हूँ।'

'कैसे आप स्थित है?'

'प्राणियो के लिए मुझमे दण्ड भावना नही है। अतएव मै सर्वदा स्थित हूँ।'

'और मै—?

'तू अस्थित है। प्राणियो मे असयमी है। मै सयमी हूँ। दण्ड का तुमने परित्याग नही किया है।'

अगुलिमाल की पूर्व चेतना जैसे जागृत हुई। उसे तथागत की बात गुरु वाक्य तुल्य प्रिय लगी। उसने विचार किया। महर्षि का पूजन किए

जंगल मे लोगो का आना बन्द हो गया। अगुलीमाल चिन्तित हुआ। वह रात्रि में उठता। ग्रामो मे आता। पाद प्रहार से बन्द द्वार तोडता। लोगो की हत्या कर चला जाता। उनकी उगली काटकर अपनी माला मे गुह लेता।

ग्रामीण जनता उसके आने से निगमो मे आ गयी। ग्राम मे मनुष्य नही मिलते थे। वह निगमो में आकर मनुष्यो की हत्या करने लगा। निगमो से भाग कर लोग नगर मे आ गये।

जंगल के तीन योजन चारो तरफ के लोगो ने श्रावस्ती मे शरण ली थी। शरणार्थियो से श्रावस्ती भर गयी। अपने बच्चे की उगली पकडे चारो ओर से जन-समुदाय राजा के प्रागण मे एकत्रित हो गया। गोहार देने लगा

'देव ! अगुलिमाल दस्यु से हम त्रस्त है। आपके राज्य को वह नष्ट कर रहा है।'

राजा चिन्तित हो गये। जनता को सान्त्वना दी। किन्तु जनता को रक्षा का विश्वास नही हुआ। राज्य मे भयकर आतक छा गया था। किसी को भी अपने प्राण-रक्षा का विश्वास नही था।

× × ×

तथागत अनाथ पिण्डक के जेतवन श्रावस्ती मे विहार कर रहे थे। उनके कानो तक बात पहुँची। उन्होने गम्भीरतापूर्वक सुना। कुछ बाले नही।

लोगो ने देखा। भगवान् हाथ मे पात्र और चीवर लिये अगुलिमाल के निवास-स्थान की ओर चले। मार्ग मे गोपालको ने, कृषको ने, पथिको ने भगवान् को अगुलिमाल से सावधान किया। उसने ९९९ मनुष्यो को हत्या की थी। उसकी अनेक क्रूर कथाएँ सुनाईं। परन्तु भगवान् मार्ग से विरत नही हुए।

और आगे बढने पर लोगो ने अगुलिमाल के अनेक लोम हर्षण पूर्ण घटनाओ से भगवान् को भयभीत करना चाहा। परन्तु भगवान् चलते ही रहे। वे पहुँच गये अगुलिमाल के निर्जन वन मे।

× × ×

उसे देखते ही राजा भयभीत हो गये। स्तब्ध हो गये। उन्हे रोमाच हो आया। तथागत ने कोशलपति को भयभीत मुद्रा मे देखा।

राजा ने अगलिमाल को सामान्य व्यक्ति जैसा देखा। उसे जो नही जानता था उसे उसने तेजस्वी भिक्षु समझा। जो जानते थे उन्हे अनायास उससे घृणा तथा भय उत्पन्न हो जाता था। राजा प्रसेनजित् अगुलिमाल के समीप आकर बोले :

'आप अगुलिमाल है ?'

महाराज !'

'आर्य ! आपके पिता का गोत्र क्या है ?'

गार्ग्य ।'

'माता का ।'

'मैत्रायणी'

'गार्ग्य मैत्रायणी पुत्र ! आप सुख से मेरे राज्य मे अभिरमण कीजिए ।'

धन्यवाद राजन् !'

'गार्ग्य ! मै आपके चीवर, पिण्डपात, शयनासन आदि परिष्कारो से सेवा करूँगा ?'

'राजन् ! मेरे पास तीनो चीवर है।' आयुष्मान् अगुलिमाल ने कहा।

राजा की श्रद्धा कभी के पण्डित, कभी के दस्यु और अब के भिक्षु अगुलिमाल पर बढ गयी। वह तथागत के पास आकर बोले :

'भन्ते ! बिना दण्ड, बिना शस्त्र, आपने कैसे अगुलिमाल का दमन कर लिया ? हमारे शस्त्र और दण्ड अगुलिमाल के दमन मे असफल हो हो चुके थे।'

भगवान् ने अगुलिमाल की ओर देखा। अगुलिमाल विनत नेत्र था। प्रसेनजित् ने भगवान् से कहा :

'भन्ते ! आज्ञा दे, बहुत काम करना है।'

'जैसा आप काल समझते है वैसा कीजिए।'

बहुत दिन हो चुके थे। श्रमण का दर्शन महावन मे अनायास मिल गया था। उसे ध्यान आया। उनसे धर्मयुक्त गाथा सुनेगा। चिरकाल के पाप से मुक्त होगा।

अगुलिमाल ने हथियार फेक दिया। तथागत के समीप आया। चरणो की वन्दना की। प्रव्रज्या देने की प्रार्थना की। तथागत ने करुण वाणी मे कहा

'आ भिक्षु !

× × ×

भगवान् श्रावस्ती मे आये। उनके साथ अगुलिमाल था। भगवान् जेतवन मे पहुँचे।

दूसरी ओर राजा के प्रागण मे महाशब्द हो रहा था। राजा से लोग दीर्घ घोष के साथ कह रहे थे। अगुलिमाल के अत्याचार से उनकी रक्षा की जाय।

सायकाल दो सौ अश्वारोहियो के साथ राजा प्रसेनजित् अपने राज-भवन से निकला। भगवान् के जेतवन मे पहुँचा। तथागत की वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया।

'राजा ! चिन्ता का विषय क्या है ? आप पर राजा बिम्बसार क्रुद्ध हैं या वैशाली के लिच्छवी लोग ?'

'भन्ते ! उनमे कोई नही। चिन्ता का विषय अगुलिमाल है। मै अपनी इस अश्वारोही सेना के साथ उसी के निवारणार्थ निकला हूँ।'

'यदि अगुलिमाल को आप श्रमण भिक्षु रूप मे देखेगे तो आप क्या करेगे।'

'भन्ते ! हम उसका प्रत्युत्थान करेगे। आसन ग्रहण करने के लिए आमन्त्रित करेगे।

'ठीक राजन् !'

'किन्तु भन्ते ! इतना दु शील पापी कैसे शील सयमी हो सकता है ?'

अगुलिमाल भगवान् के पार्श्व मे बैठा था। भगवान् ने अगुलिमाल का बाहु पकडकर राजा को दिखाते हुए कहा

'राजन् ! यह है अंगुलिमाल।'

जनता उसकी दुष्कृतियो को सुन चुकी थी। उसके अत्याचार की कहानी सुन चुकी थी। क्रुद्ध थी। कुछ मूर्खो ने उस पर ढेला चला दिया। कुछ ने उसे डडो से मारा। किसी ने ककड फेक कर उसे कष्ट दिया।

अंगुलिमाल का सर फट गया। खून बहने लगा। चीवर रक्तमय हो गया। उस पर लाल धब्बे पड गये। उसका रूप डरावना हो गया। उसका पात्र भग्न हो गया। फूटे पात्र, फटे चीवर, रक्त से भीगा वह भगवान् के समीप पहुँचा। कष्ट सहने पर भी उसकी जिह्वा एक भी कटु शब्द आक्रामको के लिए नही कह सकी। उसका मन क्षुभित नही हुआ। उसकी शान्ति मे अन्तर नही पडा। गम्भीरता मे व्यथा प्रदर्शित नही हुई।

'ब्राह्मण !' भगवान् ने देखते ही कहा . 'तू ने स्वीकार कर लिया। तुमने स्वीकार कर लिया। जिन कर्मो के कारण सैकडो सहस्रो वर्ष तुम्हे नरक मे रहना पडता, उस कर्म विपाक को ब्राह्मण ! इसी जन्म मे भोग चुका।'

× × ×

अगुलिमाल एकान्त मे आसन लगा कर वैठा था। ध्यानावस्थित था। विमुक्ति सुख का अनुभव करता था। उसने उदान कहा .

'मेघ से मुक्त चन्द्रमा के समान वह इस लोक को प्रभासित करता है जो प्रथम अर्जित कर पश्चात् उसे मार्जित करता है। वह मुक्त है। जिसका पाप कर्म पुण्य से ढँक जाता है। जो तरुण भिक्षु बुद्ध शासन मे प्रविष्ट होता है। वह मेघ से मुक्त शशि तुल्य इस लोक को प्रभासित करता है।

'ओ ! दिशाओ !! मेरे धर्म को सुनो। ओ दिशाओ ! जो बुद्ध शासन से युक्त है। वे सत दिशाओ का सेवन करते है। जो धर्म के लिए लोगो को प्रेरित करते है। दिशाओ ! शान्तवादियो ! मैत्री प्रशसको के धर्म को समय-समय पर सुनो। उसके अनुसार आचरण करो। जो अपने को दूसरे को या किसी को नही मारता वह परम शान्ति पाकर स्थावर जगम की रक्षा करता है। नाली वाले पानी ले जाने के लिए काम करते है। इषुकार शर सीधा करते है। बढई लकडी का पीछा करते है। उसी प्रकार पण्डित अपना स्वय दमन करते है।

राजा ने भगवान की प्रदक्षिणा की। वन्दना की। सेना के साथ लौट गया। जिसका दमन करने आया था। उसका अभिवादन कर लौटा।

श्रावस्ती नगरी थी। भिक्षापात्र लिये अगुलिमाल था। पिण्डपात्त कर रहा था। उसने एक विद्यातगर्भा किंवा मूढगर्भा स्त्रा देखी। उसका गर्भस्थ शिशु मर गया था। स्त्री की पीडा दखकर अगुलिमाल उठा—'हाय! हाय!! प्राणी दु खी है।'

किसी दिन के क्रूरकर्मा से करुणा अनायास प्यार करने लगी। अँगुलिमाल भगवान् के समीप आया। वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर वैठ गया।

'भन्ते! पूर्वाह्ण काल था। मै श्रावस्ती मे पिण्डचार के लिए गया था। वहा मैंने एक मूढगर्भा देखी। आह! प्राणी कितना दु ख भोग रहा है।

'अगुलिमाल।'

'देव! आज्ञा।'

'तुम उस दु:खी स्त्री के पास जाओ।'

'वहाँ जाकर क्या करूँगा? उसकी वेदना देखकर दु ख होगा।'

'अगुलिमाल! दु ख दूर करने जाना होगा। उस स्त्री मे कहना—'बहन, जबसे मै आर्य जाति मे जन्म लिया हूँ तबसे जानबूझ कर किसी प्राणी का वध नही किया हूँ। इस सत्य से तुम्हारा मङ्गल हो। गर्भ का मङ्गल हो।'

'भन्ते! मै यह कैसे कह सकता हूँ।'

'क्यो?'

'मिथ्या भाषण होगा। मैंने जानकर प्राण हत्या की है।'

'अगुलिमाल! मेने जो कहा है। वही जाकर कह।'

'भन्ते! आपके आदेश का पालन करूँगा।'

भगवान् का आदेश सुनकर स्त्री के पास पहुँच। स्त्री के सामने जाकर कहा।

उसके कहने से स्त्री का मङ्गल हो गया। गर्भ का मङ्गल हो गया।

× × ×

पूर्वाह्ण काल मे अगुलिमाल ने चीवर उठाया। पात्र उठाया। श्रावस्ती मे पिण्डचार के लिए निकला।

आधार ग्रन्थ .

धम्मपद १३ ६
२६ ३६
मज्झिम निकाय २ ४ ६
अगुलिमाल सुत्त
विनय पिटक महावग्ग १ ३ ४
थेर गाथा २५५, उदान ८६५-८६०
अवदान शतक स २७
मिलिन्द प्रश्न २ ३५५

A A i 369
D A i 240, ii 645.
DhA i 124, iii 185
J iv . 180, v 456
M ii 103
M A 747
Thag 868—70.
Vin i 74.

'कोई दण्ड से दमन करते है। कोई शस्त्र से दमन करते हैं। कोई कोडा से दमन करते है। किन्तु तथागत द्वारा विना दण्ड, विना शस्त्र, विना कोडा के ही मेरा दमन हुआ है। मै पहले हिसक था। आज मेरा नाम हिंसक हो गया है। आज मेरा नाम सार्थक है। मै किसी की हिंसा नही करता।'

'पहले मैं अगुलिमाल नाम से प्रसिद्ध था। दस्यु था। जलप्लावन मे डूबते सदृश बुद्ध की शरण आया हूँ। पहले मै रक्तरजित हस्त रुद्र लोहित वाणी नाम से कुख्यात था। शरणागत के कारण मेरा भव जाल सकुचित हो गया है। दुर्गति की ओर खीचने वाले कर्मो द्वारा कर्म करने लगा था। आज उनसे उऋण होकर भोजन करता हूँ। दुर्बुद्धि लोग प्रमाद मे लगे रहते है। मेधावी पुरुप अप्रमाद की श्रेष्ठ धन की भाति रक्षा करते हैं। काम-रति का साथ त्याग दो। प्रमाद युक्त मत हो। अप्रमाद युक्त पुरुप ध्यान करता, विपुल सुख प्राप्त करता है। यहा मेरा आना स्वागत है। दुरागत नही है। यह मन्त्रणा है। दुर्मन्त्रणा नही है। प्रतिभान होने वाले धर्मो मे जो श्रेष्ठ है। उस निर्वाण को मैने प्राप्त कर लिया हे।

'स्वागत है। अपगत नही है। यह मेरी दुर्मंत्रणा नही हे। मैने तीनो विद्याओ को प्राप्त कर लिया है। वुद्ध शासन को प्राप्त कर लिया है।'

'ओह! उस समय मै अरण्य मे पडा रहता था। पेड की छाया मे पडा रहता था। पर्वतो की गुफाओ मे पडा रहता था। चिन्तित रहता था। और अव ? सुख से हूँ। सुख से उठता हूँ। मै मारके पाश से मुक्त हूँ।

'पूर्वकाल मे मैं दोनो ओर से परिशुद्ध था। मैं औदिच्य ब्राह्मण जाति का था। ओर मै सुगत, धर्मराज, शास्ता की सन्तान हूँ। मेरी तृष्णाएँ शान्त हो गयी ह। सयत हूँ। पाप के मूलो का नाश किया हे। आश्रवो का क्षय किया हूँ। मेने भारी भव भार उतार कर फेंक दिया है। भव तृष्णाओ को आमूल नष्ट किया हे।'

०

'कहिये राजन् !'

'प्रातः और सायंकाल मैं जहाँ आपका दर्शन प्राप्त कर सकूँ उस राजोद्यान मे आप प्रव्रज्या लेकर निवास कीजिए।'

'तथास्तु, राजन् !'

वावरी शिष्यो सहित राज्योद्यान मे प्रव्रज्या लेकर विहार करने लगे। राजा ने उनका तथा उनके शिष्यो का प्रबन्ध कर दिया। प्रतिदिन प्रात तथा सायकाल आचार्य के दर्शन निमित्त जाता था।

किन्तु नगर के समीप जनता की भीड आश्रम मे हो जाती थी। स्वाध्याय तथा तपस्या मे विघ्न पडता था। आचार्य के शिष्यो ने निवेदन किया

'आचार्य ! नगर का सामीप्य प्रव्रजितोके लिए अच्छा नही होता। विघ्न पडता है। हमे कही एकान्त दूर चलना चाहिए।'

'राजा से कहूँगा।' वावरी आचार्य ने विचार करते हुए कहा।

× × ×

आचार्य ने राजा से कही दूर जाने के लिए अनुमति माँगी। राजा ने तीन वार, उन्हे जाने से विरत करने का प्रयास किया। किन्तु आचार्य स्थान त्यागने पर तुल गये थे।

राजा ने आचार्य का हठ देखकर अमात्यो को आदेश दिया। आचार्य की इच्छानुसार उनका आश्रम बना दिया जाय।

आचार्य ने उत्तर दिशा का त्याग किया। दक्षिण दिशा जानेका निश्चय किया। रमणीय कोसल से वे दक्षिण पथ की ओर, शिष्यो सहित चले।

शिष्यो सहित अस्सक[1] के राज्य मे अल्लक की सीमा पार कर आचार्य

(१) अस्सक-अल्लक अगुत्तर निकाय मे उल्लिखित सोलह महाजनपदो मे एक महाजनपद अस्सक है। यह गोदावरी उपत्यका मे था। पर अल्लक के समीप था। अलक पैकन के समीप के भूमि भाग को कहते है। यहाँ अवन्ती के साथ इसका नाम उसी प्रकार लिया जाता है जैसे मगधके साथ अग का लिया जाता है। यह अवन्ती के उत्तर पश्चिम मालूम होता है। कलिंग जातक मे वर्णन मिलता है कि अस्सक के राजा अरुण ने दन्तपुर के कलिंग राज के

बावरी

अत्तानुदिट्ठं ऊहच्च एव मच्चुतरा सिया।
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सतीति ॥

(स्मृतिमान बनकर ससार को शून्य स्वरूप देखिए। आत्म दृष्टि नष्ट होगी। मृत्यु को पार करोगे। ससार का यह स्वरूप जो देखता है। उसे मृत्यु राजा नही देख पाता।)

—सुत्त निपात ७० ४

कोसलराज प्रसेनजित् के पिता के एक पुरोहित थे। उनके घर मे बावरी ने जन्म लिया था। वह महापुरुषो के तीन लक्षणो से युक्त था। तीनो वेदो मे पारगत था। पिता की मृत्यु के पश्चात् राज पुरोहित पद पर प्रतिष्ठित हुआ था। सोलह ज्येष्ठ अन्तेवासियो ने उससे शिक्षा प्राप्त की थी। वह आचार्य था।

कोसल राज की मृत्यु के पश्चात् उसका पत्र प्रसेनजित् राजा हुआ। कोसल की राजधानी श्रावस्ती थी। आचार्य बावरी को प्रसेनजित् ने यथावत् राज पुरोहित पद पर प्रतिष्ठित किया। बालकाल मे आचार्य बावरी से राजा ने शिक्षा प्राप्त की ।

एक दिन आचार्य ने राजा से कहा :

'राजन्! मै प्रव्रज्या लूँगा।'

'आचार्य! पिता की मृत्यु के पश्चात् आप मेरे पिता तुल्य है। आप कृपया यही निवास कीजिए। प्रव्रजित होने पर आपके सग का लाभ न उठा सकूँगा।'

नही राजन्! मै प्रव्रज्या लूँगा।' बावरी ने हठ किया।

'आचार्य! एक उपाय है।'

'आचार्य ! यदि आप मुझे न देगे तो–।' ब्राह्मणने भय प्रदर्शित किया ।

'तो क्या ?' आचार्यने विनम्र वाणी से पूछा ।

'सातवे दिन तुम्हारी मूर्धा के सात टुकडे हो जायेगे ।'

ब्राह्मण का वचन कठोर था । भीपण था । आचार्य सुनकर दु खी हो गये । ब्राह्मण शाप देकर चला गया । आचार्य शाप भय से दिन-रात सूखने लगे । निराहार रहने लगे ।

× × ×

आचार्य के हिताकाक्षी एक देवता ने बावरी से कहा

'आचार्य ! वह पाखण्डी था । पाखण्डी क्या जाने मूर्धा का हाल ।'

'आप मूर्धापात जानते है ?' आचार्य ने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

'नही, मै भी नही जानता ।'

'कौन जानता है ?' आचार्य ने जिज्ञासा की ।

'मूर्धा तथा मूर्धापात बौद्धो का दर्शन है ।'

'इस पृथ्वी पर जिसे मूर्धा तथा मूर्धापात का ज्ञान है। उसे मै जानना चाहता हूँ देव ?'

'आचार्य ! भगवान् बुद्ध को उसका ज्ञान है। उन्ही से इसकी जिज्ञासा करनी चाहिए ।'

आचार्य के सूखे मुख पर किञ्चित् तेज आया । बडे प्रसन्न हुए । उसने देवता से पूछा ·

'लोकनाथ इस समय कहाँ निवास करते है ?'

'कोसल, श्रावस्ती मे निवास है ।'

देवता ने प्रस्थान किया । आचार्य ने शिष्यो को आमन्त्रित किया । उनसे बोले

'माणवको ! जगत् मे वुद्ध ने जन्म ग्रहण किया है । सम्वुद्ध नाम से विख्यात है । श्रावस्ती जाइये । नरश्रेष्ठ का दर्शन लाभ कीजिये ।'

'हम उन्हे पहचानते नही । उन्हे कैसे जान सकेंगे कि वे वुद्ध हैं ।'

'महापुरुषो के बत्तीस लक्षण होते है। शास्त्रोक्त उन लक्षणो को देखकर उन्हे जान जाओगे ।'

पहुँचे। गोदावरी तट पर उन्होने अपना आश्रम बनाया। गोदावरी वहाँ दो धाराओ मे बँट जाती है। मध्य मे द्वीप बनाता है। वहाँ पर पूर्व काल मे ऋषि शरभग का आश्रम था। बावरी उच्छ तथा फल से जीवन निर्वाह करते थे। वहाँ एक विपुल ग्राम था। उस ग्राम के आय से, उसने एक महायज्ञ का आयोजन किया। महायज्ञ समाप्त होने पर आचार्य पुनः आश्रम मे चले गये।

× × ×

वहाँ एक ब्राह्मण आया। उसका पाँव घिसा था। प्यासा था। दाँतो पर मैल जमी थी। सिर पर धूल थी।

आचार्य ने उसका स्वागत किया। आसन दिया। कुशल-मगल पूछा। ब्राह्मण ने कहा :

'आचार्य ! मुझे पाँच सौ मुद्रा चाहिए।'

'ब्राह्मण ! मेरे पास जो कुछ था मैने दान कर दिया।' आचार्य ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

'नही, मुझे पाँच सौ चाहिये।' ब्राह्मण के स्वर मे तीव्रता थी।

'मेरे पास कुछ नही है ब्राह्मण ! आचार्य ने मन्द स्वर मे कहा।

साथ युद्ध कर उसे परास्त किया था। कालान्तर में उसने कलिग राज कन्या से विवाह कर सम्बन्ध अच्छा कर लिया था। हाथी गुफा के खारवेल लेख से प्रतीत होता है कि खारवेल ने अस्सक या असिका पर आक्रमणार्थ सेना भेजी थी। मारकण्डेय पुराण तथा वृहद् सहिता के अनुसार अस्सक उत्तर पश्चिम था। उसकी राजधानी पोतन महाभारत वर्णित पौदन्य नगर था। भट्ट स्वामी अस्सक को महाराष्ट्र मे मानते हैं। भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् से राजा अस्सक पोतली का राजा था। उसका पुत्र सुजन था। दोनो को महाकात्यायन ने बुद्धशासन मे लिया था। राजा रेणु के समय अस्सक का राजा ब्रह्मदत्त था। भगवान् के समय अस्सक का राजा अन्ध्रक राजा था। पोतन को गोदावरी और मजीरा नदियो के सगम स्थित पोदन नगर कुछ विद्वानो ने माना है।

(२) अल्लक . अस्सक के उत्तर तथा विन्ध्य पर्वतमाला के दक्षिण इसे माना जाता है। इसकी राजधानी प्रतिष्ठान नगरी थी। यह वर्तमान पैठन निगम है।

'नरोत्तम ! तृष्णा छेदक !! आचार्य बावरी के लक्षणो को विस्तार-पूर्वक कहिए। हम लोगो को किसी प्रकार की शका न रह जाय।'

'माणवक ! उसकी ऊर्णा भ्रूमध्य है। मुख को अपनी जिह्वा से ढक लेता है। लिग कोष से ढँका है।'

शिष्यो तथा उपस्थित लोग विस्मित हो गये। बिना प्रश्न सुने मनोगत प्रश्नो का ठीक उत्तर तथागत दे रहे थे।

वे प्रमुदित थे। अजलिवद्ध विचार करने लगे। क्या बुद्ध ब्रह्मा थे। इन्द्र थे। सुजाम्पति थे। कौन देवता थे। जो प्रश्नो का वास्तविक उत्तर दे रहे थे।

'भन्ते !' माणवक ने पूछा। 'आचार्य बावरी, मूर्धा तथा मूर्धापात के विषय मे जिज्ञासु है। भगवान् प्रश्न का उत्तर देकर अनुग्रहीत करेगे। हमारी शका का समाधान हो जायगा।'

'माणको ! तथागत ने कहा, 'अविद्या मूर्धा है। श्रद्धा, स्मृति, समाधि, छन्द तथा वीर्य युक्त विद्या मूर्धापातिनी है।'

माणवक प्रसन्न हो गये। स्तम्भित हो गये। मृगचर्मो को एक कन्धा पर रखा। भगवान् के चरणो पर श्रद्धापूर्वक मस्तक रख दिया। वन्दना की

'हे मार्ष ! हे चक्षुष्मान् ! शिष्यो सहित बावरी ब्राह्मण हृष्ट चित्त, सुमन आपकी पाद वन्दना करता है।'

'ब्राह्मण !' भगवान् ने आशीर्वाद दिया। 'शिष्यो सहित बावरी सुखी हो। माणवक ! आप लोग सुखी हो। चिरजीवी हो।'

वे प्रसन्न हो गये। सम्बुद्ध के अवकाश देने पर अजलिवद्ध सब बैठ गये। तथागत से आचार्य बावरी के सोलहो शिष्यो ने प्रश्न किया। मोघराज ने मृत्यु के विषय में पूछा

'भन्ते ! मैने दो बार प्रश्न किया। किन्तु चक्षुष्मान् ने उसकी व्याख्या नही की। मैने सुना है। तीसरी बार प्रश्न करने पर देवर्षि उत्तर देते है।'

भगवान् ने मोघराज की ओर देखा। उन्होने प्रश्न का सकेत किया। मोघराज ने पूछा

'यशस्वी ! लोक है। परलोक है। देवो सहित ब्रह्मलोक है। आपका मत इस विषय मे क्या है ? कैसे लोक को देखने वाले को मृत्युराज नही देख पाता ?'

'और—?'

'अपने मन मे प्रश्न करना, मूर्धा भेदन के विपय मे। यदि वह आवरण रहित द्रष्टा होगे तो बिना प्रश्न किये उत्तर देगे।'

शिष्यो ने आचार्य का आदेश ग्रहण किया। आचार्य बावरी का अभिवादन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की। जटा धारण किया। मृग चर्म लिया। आचार्य को प्रणाम कर उत्तर दिशा को ओर प्रस्थान किया।

× × ×

वे प्रतिष्ठान (पैठन, औरगाबाद दक्षिण) उज्जैन, गोनद्ध, विदिशा, वन सह्य, कोशाम्बी, साकेत, श्रावस्ती, सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर, वैशाली, चारिका करते मगध की राजधानी राजगृह पहुँचे। भगवान् उस समय मनोरम पाषाण[1] चैत्य मे विहार कर रहे थे।

शिष्य भगवान् से प्रश्न करने के इच्छुक थे। जैसे प्यासा मनुष्य शीतल जल, वणिक लाभ तथा धूप से पीडित शीतल छाया की आकाक्षा करता है, वैसे ही उन्होने शीघ्रतापूर्वक पर्वत आरोहण किया।

सिह जिस प्रकार वन मे गम्भीर गर्जन करता है। उसी प्रकार भगवान् भिक्षु परिषद् मे बैठे थे। उपदेश दे रहे थे। उन्होने प्रखर रश्मि पूर्ण सूर्य तथा पूर्णमासी के शशि बिम्ब तुल्य भगवान् को देखा। भगवान् के शरीर के लक्षणो को देखा। उनमे शास्त्रोक्त बत्तीसो लक्षण वर्तमान थे।

आचार्य के आदेशानुसार शिष्यो ने मन मे प्रश्न किया—'आचार्य की आयु क्या है ? जाति क्या है ? गोत्र क्या है ? लक्षण क्या है ? मन्त्र की योग्यता क्या है ? कितना पाठ करते है ?'

'आवुसो !' भगवान् ने कहा, 'उसकी एक सौ वीस वर्ष की आयु है। बावरी गोत्र है। तीन लक्षणो से युक्त है। त्रिवेद मे पारगत है।'

'वह लक्षण शास्त्र, इतिहास, निघटु युक्त कैटुभ मे पॉच सौ मन्त्रो का पाठ करते है। वह धर्म मे पारगत है।'

बावरी शिष्य चकित हो गये। उन्होने पुन परीक्षा की दृष्टि से प्रश्न किया

(१) पाषाण चैत्य गिज्झकूट (गृद्ध कूट) पर्वत पर यह चैत्य स्थित था। यह चैत्य पाषाण अर्थात् पत्थर का बना रहा होगा अतएव इसका नाम पाषाण चैत्य पड़ गया होगा।

होना है। मोघराज को कुष्ट हो गया है। वे पीड़ित थे। विहार के बाहर पुआल बिछा देते थे। उसी पर बैठते थे।

मोघराज भगवान् के दर्शन निमित्त गये। भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गये। उन्हे देखकर भगवान् ने पूछा :

'मोघराज ! आप चर्म व्याधि से ग्रसित है। क्या आप प्रसन्न है ? सतत समाहित हेमन्त ऋतु की शीतल रात्रि आ रही है। भिक्षु ! तुम समय कैसे व्यतीत करोगे ?'

'भन्ते ! समस्त मगध शस्यपूर्ण है। मै पुआल बिछा लूँगा। उसी पर शयन करूँगा। मुझे उसी मे सुख मिलेगा जब कि दूसरे सुखासन पर सुख-पूर्वक निद्राभिभूत होगे। मुझे शीत का भय नही है।'

मोघराज का जीवन अत्यन्त सरल, सादा और त्याग पूर्ण था। वह व्यापारियो, दर्जियो, रगरेजो द्वारा जो कपडा खराब समझ कर फेक दिया जाता था उसे बीन लाते थे। उसी से अपना रुक्ष चीवर बनाते थे।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे इकतालीसवाँ स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती बावरी शिष्य ब्राह्मण कुलोत्पन्न मोघराज रुक्ष चीवर धारियो मे अग्र हुआ था।

आधार ग्रन्थ :

सुत्त निपात ५ ५५-७२

थेर गाथा २०, १६४ उदान २०७-२०८

अंगुत्तर निकाय १ १४

A A ı 183

D A ı 275

MıL 168.

SN vıs 976-1148, 1019.

SNA 603, 575

'मोघराज !' भगवान् ने उत्तर दिया। 'सर्वदा स्मृतिमान होकर इस संसार को शून्य देखो। इस प्रकार आत्मदृष्टि त्यागी मृत्यु से परे हो जाता है। लोक को जो इस प्रकार देखता है। उसकी ओर मृत्युराज नही देख पाता।'

× × ×

बावरी के सोलह शिष्य, अजित, तिस्स मेत्तेय, पुण्यक, मेत्तग, धोतक, उपसीव, नन्द हेमक, तोदेय्य, कप्प, पण्डित जातुकण्णी और भद्रायुध, उदय ब्राह्मण पोसाल, बुद्धिमान मोघराज और महर्षि पिंगिय आचार्य बावरी के समीप पहुँचे। आचार्य का अभिवादन किया। वन्दना की। तथागत से हुए प्रश्नोत्तर तथा समस्त घटना का वर्णन किया। सुनकर बावरी ने पूछा

'पिंगिय ! तत्क्षण फलदायक, तृष्णा निवारक, दु ख हारक, धर्म का जिस महाप्रज्ञ अनुपमेय, महाविज्ञ गौतम ने उपदेश दिया है, क्या उनसे मुहूर्त मात्र विलग रह सकते हो ?'

'ब्राह्मण !' पिंगिय[1] ने उत्तर दिया। 'मै उन महाप्रज्ञ, महाविज्ञ गौतम से अलग नही रह सकता। ब्राह्मण ! प्रमत्त होकर रात-दिन अपने मानस मे उनका दर्शन करता रहता हूँ। रात्रि मे मै उन्हे प्रणाम करता हूँ। अतएव कैसे कह सकता हूँ। उनसे अलग हूँ। उनके उपदेश से विरत नही हो सकता। जहाँ उन महाप्रज्ञ का गमन होता है, वहाँ-वहाँ मेरा मस्तक श्रद्धा से विनत हो जाता है। मेरा यह जीर्ण शरीर, बलहीन शरीर, वहाँ नही जा सकता। किन्तु मेरा मन उनके साथ गमन करता है। मै वासना पक मे पडा था। वेदना से छटपटा रहा था। एक द्वीप मे जाता था। अन्ततोगत्वा मैने भव-सागर पार किया है। वासनाहीन सम्बुद्ध का दर्शन प्राप्त किया है।'

× × ×

शरीर का धर्म कष्ट है। क्षय है। दु ख है। विगलित होना है। नष्ट

(१) पिंगिय ववेरी के समस्त शिष्य भगवान् के उपदेश के कारण अर्हत हो गये थे। पिंगिय भगवान् जब उपदेश दे रहे थे तो वावरि के विषय मे सोच रहा था। अतएव केवल वह अनागामी रह गया। कालान्तर मे पिंगिय अर्हत हो गया और वावरि केवल अनागामी हुआ। पिंगिय वावरि का भतीजा था।

गृहपति क्षुभित हुआ। उसने भगवान् का अभिवादन नही किया। वन्दना नही की। उठकर चला गया।

× × ×

भगवान् के विहार स्थान से बहुत दूर वह नही गया था। उसे अक्ष धूर्त जुआ खेलते मिले। गृहपति वहाँ ठहर गया। उनसे चर्चा की—

'मै श्रमण गौतम के यहाँ गया था। मेरा पुत्र शोक देखकर उन्होने कहा—'तुम्हारी चेष्टाएँ तुममे स्थिर नही हैं। प्रिय से शोक होता है। यह कैसे होगा ? प्रिय से तो आनन्द उत्पन्न होता है।'

'फिर क्या किया ?'

'मैने उनके भाषण का अभिनन्दन नही किया। उठकर चला आया।'

'प्रिय से तो गृहपति आनन्द उत्पन्न होता है।' वे बोले।

गृहपति प्रसन्न हो गया। अक्षधूर्त उसकी बात का समर्थन करते थे।

× × ×

मल्लिका[1] देवी कोसल के मुख्य मालाकार की कन्या थी। अत्यन्त रूपवती थी। शीलवती थी। वह सोलह वर्ष की कुमारी थी। एक दिन वह तीन पात्रो मे मट्ठा लेकर उद्यान जा रही थी। मार्ग मे भगवान् मिल गये। उसने मट्ठा भगवान् को समर्पित कर दिया। भगवान् ने मट्ठा ग्रहण किया। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। भगवान् उसे आनन्दित देखकर मुसकराये।

'भन्ते !' आनन्द ने पूछा, 'क्या करण है। आप मुसकरा रहे है ?'

'आनन्द ! यह कुमारी राजा प्रसेनजित् की मुख्य महिषी आज ही होगी।'

× × ×

राजा अजातशुत्र ने राजा प्रसेनजित् को पराजित कर दिया था। वह अपने अश्व पर लौट रहे थे।

---

(१) मल्लिका मल्लिका की एक कन्या का उल्लेख मिलता है। उसके किसी पुत्र का वर्णन नही मिलता। केवल एक जगह उल्लेख मिलता है कि मल्लिका ने भगवान् से प्रश्न पूछा था कि क्यो कुछ स्त्रियाँ सुन्दर होती है। कुछ साधारण होती है। कुछ अमीर होती हैं। कुछ गरीब होती हैं। भगवान् ने उसका उत्तर दिया था। मल्लिका सुत्त द्रष्टव्य है।

प्रिय से दुःख

जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता
अथो सरीरम्पि जरं उपेति।
सत च धम्मो न जर उपेति
सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति॥

(सुचित्रित राजा का रथ जीर्ण हो जाता है। यह शरीर भी जीर्ण हो जाता है। सन्तो का धर्म जीर्ण नही होता। सन्त लोग सन्तो से यही कहते है।)

—ध० १५१

भगवान् श्रावस्ती जेतवन मे विहार कर रहे थे . श्रावस्ती के गृहपति का एकमात्र पुत्र दिवंगत हो गया था। पुत्र की मृत्यु के पश्चात् पिता को जीवन से विराग हो गया था। उसका मन काम-काज मे नही लगता था। अपने पुत्र के लिए विलाप करता विक्षिप्त घूमता रहता था।

एक दिन वह तथागत के समीप आया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। भगवान् ने उसकी विकल मुद्रा देखी। उन्होने पूछा'

'गृहपति! तुम्हारी चेष्टाएँ चित्त मे स्थिर नही है। क्या उनमे अन्यथात्व आ गया है?'

'भन्ते! उनका अन्यथात्व होना स्वाभाविक है। मेरा एकमात्र प्रिय पुत्र मर गया है। उनकी मृत्यु के पश्चात् मेरा किसी काम मे मन नही लगता है। भोजन अच्छा नही लगता है। मै उसकी चिता के समीप जाकर रोता रहता हूँ।'

'गृहपति! प्रिय से उत्पन्न होने वाले शोक, क्रन्दन, दु ख, दौर्मनस्य तथा उपायास होते है।'

'भन्ते! यह कैसे प्रिय से ही उत्पन्न होने वाले है?'

'गृहपति! ऐसा ही है।'

गृहपति और तथागत की वार्ता की चर्चा राजभवन तक पहुँच गयी। राजा प्रसेनजित् ने मल्लिका देवी को बुलाया। उनके आनेपर पूछा :

'मल्लिके ! तुम्हारा गौतम कहता है, प्रिय से शोक उत्पन्न होता है।'

'यदि तथागत ने यह कहा है तो ठीक ही होगा।'

'मल्लिका ! श्रमण गौतम जो कुछ कहते है, तू उसे ठीक ही मानती है।'

'मै ठीक कहती हूँ।'

'तू तो वैसे ही कहती है। जैसे आचार्य अपने शिष्य को जो कुछ कहता है। शिष्य उसे ही दुहराता है। आचार्य ठीक है।'

'यह होना ही है।'

'मल्लिका ! तू भी अपने श्रमण गौतम की बात का इसी प्रकार समर्थन करती है।'

'करूँगी–।'

'ऊह–मुझे पसन्द नही।'

× × ×

रानी मल्लिका चुप बैठने वाली नही थी। उसने नाली[१] जघ ब्राह्मण को आमन्त्रित किया। ब्राह्मण आया। मल्लिका देवी ने उससे कहा

'ब्राह्मण ! आप शास्ता के पास जाइये। मेरी ओर से उनके चरणो मे सिर से वन्दना कीजियेगा। उनका कुशल-क्षेम पूछिए, और उनसे कहिए—'क्या भगवान् ने यह कहा है। प्रिय से शोकादि उत्पन्न होते है।' आकर मुझे उत्तर सुनाइयेगा।'

× × ×

ब्राह्मणने तथागत के चरणो पर शिर से वन्दना की। रानी मल्लिका का प्रश्न सन्देश उनसे पूछा। भगवान् ने कहा ·

'ब्राह्मण ! मैने यही कहा था।'

---

(१) नाल्मा जंघ वह ब्राह्मण थे। मल्लिका रानी ने अपना सन्देश वाहक बनाकर भगवान् के पास भेजा था। इससे अधिक और कुछ इसके विषय मे उल्लेख नही मिलता।

मल्लिका भगवान् को मट्ठा देकर उद्यान मे चली गयी थी। वह उमगित थी। भगवान् ने उसका मट्ठा ग्रहण किया था। वह मजु स्वर से उल्लसित होकर गाने लगी थी।

राजा प्रसेनजित् ने उद्यान में मधुर सगीत सुना। वह शिथिल थे। पराजय की उदासी उन पर छायी थी। गीत सुनकर उनका भारी मन जैसे कुछ हलका हुआ। उद्यान मे प्रवेश किया।

राजा को देखकर मल्लिका उनके पास आयी। घोडे का रास पकड़ लिया। राजा घोडे से उतरे। राजा तरु-छाया मे बैठ गये। मल्लिका उमंगपूर्वक गाती रही।

राजा को मालूम हुआ। वह अविवाहिता थी। राजा को आराम मिलने लगा। वह ऊँघने लगे। मल्लिका ने राजा का मस्तक अपनी पलथी पर रख लिया। राजा को बडा आराम मिला। कुछ समय पश्चात् राजा की नीद खुली। उनका शरीर विश्राम के कारण हलका हो गया था। मल्लिका के साथ नगर मे प्रवेश किया।

सायकाल राजा ने उसके घर रथ भेजा। उसे बडे उत्साह तथा सज-धज के साथ राजप्रासाद मे लाये। वहाँ मल्लिका को रत्नो के ढेर पर बैठा दिया। उससे उसी दिन विवाह किया। उसे राजमहिषी का पद दे दिया।

× × ×

मल्लिका भगवान् की उपासिका थी। राजप्रासाद मे रह कर भी वह भगवान् के उपदेशो का मनन करती थी। राजा ने मल्लिका को सर्वदा उचित मन्त्रणा देने वाली पाया। वह निर्भीक सब बात कह देती थी। राजा को उस पर बडा विश्वास हो गया था।

आनन्द ने मल्लिका तथा वासभक्षत्रिया को धर्म उपदेश नियमित रूप से देने लगे। मल्लिका ने धर्म को, वासभक्षत्रिया[1] से अच्छी तरह समझा था।

× × ×

(१) वासभ क्षत्रिया . यह महानाम शाक्य की दासी पुत्री थी। इसका विवाह राजा प्रसेनजित् के साथ हुआ था। इसके पुत्र का नाम विडूडभ था। विशेष द्रष्टव्य विडूडभ कथा है।

'हाँ।'

'यदि वासभ क्षत्रिया को अन्यथात्व हो तो आपको दु:ख नही होगा ?'

'मल्लिका। जीवन का कभी अन्यथात्व होगा।'

'यही जानकर तथागत ने कहा था।'

'मल्लिका— ।'

'राजन्। विडूडभ[१] सेनापति आपके प्रिय है ?'

'हाँ।'

'उसके अभाव मे आपको दु:ख होगा या नही ?'

'मल्लिका। होगा।'

'सुनो राजन्। मै आपकी प्रिय हूँ।'

'हाँ मल्लिके। तुम मुझे जीवन से भी प्रिय हो।'

'तो राजन्। यदि मुझे विपरिणय किवा अन्यथात्व हो तो आपको दु:ख होगा या नही।'

'होगा मल्लिका।'

'यही जानकार तथागत ने कहा था–प्रिय से शोकादि होते है।'

'मल्लिका–।'

'राजन्। आपको कोशल और काशी प्रिय है।'

'निश्चय। काशी-कोशल के अनुभाव पर ही काशिक चन्दन का हम भोग करते हैं। माला, गध, विलेपन का व्यवहार करते है।'

'यदि काशी-कोशल पर सकट हो, तो क्या अपको दु ख नही होगा ?'

'होगा।'

'देव। यही जानकार भगवान् ने कहा था–प्रिय से शोक उत्पन्न होता है। दु:ख उत्पन्न होता है।'

'मल्लिके। तथागत ने ठीक कहा।'

प्रसेनजित् अपने आसन पर खडा हो गया। उत्तरासग को वाम स्कन्ध पर रख लिया। भगवान् जिस दिशा मे निवास करते थे। अजलि वद्ध उधर मुँह कर खडा होकर, बोला

---

(१) विडूडभ वासभ क्षत्रिया का पुत्र था। प्रसेनजित का पुत्र था। इसने कपिल वस्तु पर उसके आक्रमण के कारण नष्ट हो गया। पुन वह समृद्धि-शाली नगर नही हो सका। विशेप द्रष्टव्य विडूडभ है।

वह कैसे होगा भगवान् ।'

'सुनो ब्राह्मण । इसी श्रावस्ती मे एक महिला की माता मर गयी थी । वह माता की मृत्यु से उन्मत्त हो गयी । एक पथ से दूसरे पथ, एक वीथी से दूसरी वीथी, एक चौराहे से दूसरे चौराहे पर जाकर लोगो से पूछती—'क्या आपने मेरी माता को देखा है ? क्या मेरी माता को देखा है ?'

'भन्ते ।'

'सुनो ब्राह्मण । इसी श्रावस्ती की एक स्त्री अपने पीहर माता के घर गयी । उसके बन्धु-बान्धव उसे छीनकर दूसरे पति को देना चाहते थे । वह स्त्री इसे नही चाहती थी । उसने अपने पति से कहा ।

'उसका पति सोच मे पड गया । उसने एक उपाय निकाला । स्त्री से वियोग असह्य था । उसने सोचा दोनो एक साथ मरकर पुन एक साथ जन्म लेंगे पति-पत्नी बनकर रहेगे । उसने अपनी प्रिय पत्नी को मार दिया । उसके दो टुकडे कर दिये । तत्पश्चात् अपनी आत्महत्या कर ली ।

× × ×

नालि जघ ब्राह्मण भगवान् का उत्तर मल्लिका देवीसे यथाविधि सुना दिया । रानी राजा प्रसेनजित् के समीप गयी । उनसे बोली

'महाराज ! आपको अपना एकमात्र पुत्री वज्रा[1] प्रिय है ?'

'हाँ ! कुमारी मुझे प्रिय है ।'

यदि कुमारी किसी सकट मे पड जाय, या कुछ अन्यथात्व हो जाय, तो आपको दु ख होगा या नही ?'

उसके लिए मै अपना जीवन सकट मे डाल सकता हूँ, मल्लिके ।'

'यही समझकर भगवान् ने कहा था, प्रिय से उत्पन्न शोकादि होता है ।'

'मल्लिका—।'

'सुनो राजन् ! वासभ क्षत्रिया आपकी प्रिय है ?'

---

(१) वेजी (कुमारो वजीरा) वज्रिणी, राजा प्रसेनजित् की एक मात्र कन्या थी । इसका विवाह अजातशत्रु के साथ हुआ था । राजा ने काशी का ग्राम वजीरा के दहेज मे अजातशत्रु को दिया था । इसके कारण अजातशत्रु तथा प्रसेनजित् मे युद्ध हुआ था ।

'क्या है राजन् ?'

'भन्ते ! मै मल्लिका देवी के साथ राजप्रासाद के ऊपरी तल पर गया था।'

'फिर क्या हुआ ?'

'भन्ते! मल्लिका ने कहा– 'उसे अपने से बढकर दूसरा प्रिय नही है।'

'आपने क्या कहा आयुष्मान् !'

'मैने भी यही कहा– 'मुझे भी अपने से अधिक दूसरा प्रिय नही है।'

भगवान् की पवित्र वाणी मे यह गाथा उद्भूत हुई —

'समस्त दिशाओ मे अपने मन को दौडकर देखो। अपन से प्रिय और कुछ दिखाई नही देगा। इसी प्रकार दूसरो को भी अपना जीवन और शरीर प्रिय है।

'तो– ?'

'राजन् ! अपनी भलाई का इच्छुक दूसरो को इसलिए कष्ट न दे।'

●

आधार ग्रन्थ

मज्झिम निकाय २ ४ ७

धम्मपद ११ ६

सयुक्त निकाय ३ १ · ८

मल्लिका सुत्त

A iii 57.

DhA ii . 8, 15, iii 119, 121

J i 110, iii 20, 405; iv 437

M ii · 106.

Mil 115, 291

S i 77, 86

Ud v : 1

Vin iv , 158,

'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्य।'

'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्य।'

'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्य।'

× × ×

राजा प्रसेनजित् अपनी रानी मल्लिका देवी के साथ राजप्रासाद के ऊपर गया। वहा से उसने श्रावस्ती का प्राकृतिक मनोरम दृश्य देखा। राजा तथा रानी वार्तालाप करने लगे। राजा प्रसेनजित् ने अनायास पूछा :

'मल्लिके! तुम सबसे अधिक किससे प्रेम करती हो।'

मल्लिका देवी राजा का प्रश्न सुनकर सस्मित उनकी ओर देखते लगी। राजा ने पुन पूछा

'देवी! तुम्हे अपने जीवन से बढकर क्या और कुछ प्रिय है?'

'आर्य! इस जीवन से बढ कर जगत् मे और क्या प्रिय हो सकता है?'

'हूँ–।' राजा ने मल्लिका की ओर देखा। उसे निराशा हुई। वह सुनना चाहता था। मल्लिका उन्ही का नाम लेगी।

'आर्य! आपको क्या अपने जीवन से बढकर कोई और दूसरा प्रिय है?'

'मल्लिके! तुम्हारी बात ठीक है। मुझे भी अपने से बढकर और कोई दूसरा प्रिय नही है।' राजा के स्वर मे उदासीनता थी।

'आर्य! यथार्थ बात यही है।'

राजा प्रसेनजित् गम्भीर हो गया। वह राजप्रासाद के ऊपरी तल से उतरा। मल्लिका देवी भी साथ उतरी। राजा ने मल्लिका देवी से कहा :

'आर्य! मै भगवान् के पास जाता हूँ।'

'क्या कहिएगा।' मल्लिका देवी ने प्रसन्नतापूर्वक पूछा।

'वही कहूँगा जो यहाँ मैने कहा है।'

× × ×

राजा प्रसेनजित् भगवान् के समीप पहुँचा। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् ने पूछा :

ज्येष्ठ भ्राता पूर्ण ने कनिष्ठ भ्राता को घर पर छोड दिया। पाँच सौ गाडियाँ लादा। श्रावस्ती पहुँचा। उसने शकटसार्थ अर्थात् गाडी के कारवा को जेतवन से दूर पर नही ठहराया। प्रात. जलपान किया। अनन्तर अपने स्थान पर बैठ गया।

उसने देखा। श्रावस्ती निवासी प्रात जलपान के पश्चात् श्रावस्ती के दक्षिण द्वार[1] (महेट द्वार) से निकल रहे थे। वे शुद्ध उत्तरासंग ओढ़े थे। उनके हाथो मे गध था। पुष्प था। वे जेतवन की ओर जा रहे थे। पूर्ण को कौतूहल हुआ। उसने लोगो से पूछा। मालूम हुआ। तथागत के दर्शन निमित्त श्रावस्ती निवासी गमनशील थे।

पूर्ण अपने साथियो के साथ उठा। श्रावस्तीवासियो का अनुगमन किया। भगवान् के निवास-स्थान पर पहुँचा।

भगवान् के सम्मुख भिक्षु संघ एकत्रित था। श्रावस्ती के नर-नारी एकत्रित थे। भगवान् उपदेश दे रहे थे। पूर्ण ने नवीन तर्क सुना। नवीन ज्ञान उसमे स्फुरित हुआ। वह भगवान् की देशना से प्रभावित हो गया। उसने प्रव्रज्या लेने का संकल्प किया।

पूर्ण अपने निवास-स्थान पर पहुँचा। पाँच सौ शकटो को देखा। अपने साथियो को देखा। जिनके साथ वह वर्षों से व्यापार करता था। घूमता था। नगर-नगर जाता था। धन अर्जन करता था।

उसने भण्डारी को बुलाया। सब साथियो को बुलाया। वह अत्यन्त शान्त था। गम्भीर था। उसकी जैसे अपने धन मे, साथियो मे, शकटो मे कोई स्नेह नही रह गया था।

'भण्डारी!' पूर्ण ने कहा। 'मै प्रव्रज्या लूँगा।'

सुनते ही लोग स्तब्ध हो गये। भण्डारी चकित हुआ। पूर्ण ने कहा :

'भण्डारी! मै शास्ता से प्रव्रजित हूँगा।'

---

(१) दक्षिण द्वार श्रावस्ती के प्राकार मे यह दक्षिण दिशा मे द्वार था। अनाथ-पिण्डक के निवास स्थान से दक्षिण द्वार तक राजपथ आता था। यही श्रावस्ती का बाजार था। इस द्वार के दक्षिण पूर्व कोण पर पूर्वाराम था। यहाँ से एक पथ पूर्वाराम तथा दूसरा पथ पश्चिम उत्तर स्थित जेतवन जाता था। जेतवन और पूर्वाराम दोनो नगर के बाहर थे।

पुण्ण[1]

सूनापरान्त[2] राष्ट्र था। वहाँ वणिको का एक ग्राम था।[3] सुप्पारक बन्दरगाह था। दो भाई निवास करते थे। दोनो भाई के पास पाँच सौ गाडियाँ थी। जनपदो मे वे जाते थे। माल लादते थे। कभी बडा भाई जाता था कभी छोटा भाई।

---

(१) पुण्ण अनेक पुण्ण नामक भिक्षु तथा उपासको का वर्णन बुद्ध साहित्य मे मिलता है। राजगृह का पुण्य श्रेष्ठी उत्तरा नन्द माता का पिता था। दूसरा पुण्य मेण्डक का दास था। तीसरे पुण्य का उल्लेख आश्वलायन सुत्त मे आता है। चौथा पुण्य कोलिय पुत्र था। पाँचवाँ पुण्य मैत्रायणी पुत्र था। सिहली आदि देशो मे इन्हे अग्रश्रावक की श्रेणी में रखा जाता है। यहाँ तात्पर्य ८० अग्रश्रावको की तालिका से है।
पुण्ण का नाम पुण्णक किंवा पुन्नक भी मिलता है।

(२) सूनापरान्त यह एक प्रदेश था। इसी के अन्दर सोपारक वन्दरगाह था। वर्मा के वौद्ध इसे इरावदी नदी के दक्षिण तटपर पगान के समीप मानते है। सूनापरान्त एक मत के अनुसार अपरान्त अचल था। सूनापरान्त जनपद की राजधानी सुप्पारक था। यह जन पन्थ वर्तमान थाना तथा सूरत जिलो का अश मिलकर उस समय वना था। एक मत के अनुसार अपरान्त किंवा अपरान्तक के अन्तर्गत सिन्ध, पश्चिमी राजपूताना, गुजरात तथा नर्मदा की उपत्यका थी। सिन्ध गुजरात एव वलभी के राज्य अपरान्तक के अन्तर्गत थे। वाणिज ग्राम, भडौच, नासिक, सूरत तथा लाट आदि नगर इसी के अन्तर्गत थे।

(३) सुपारक यह सूनापरान्त मे वन्दरगाह था। यहाँ से भरुकच्छ तथा सुवर्ण-भूमि से व्यापार होता था। सुप्पारक से श्रावस्ती एक सौ वीस योजन दूर थी। यह थाना जिला मे वम्बई से उत्तर स्थित है। सस्कृत मे इसे सुपार्क कहते है। यह वर्तमान सोपारा है। दीप वश में इसका उल्लेख है।

'भन्ते !' अजलिबद्ध पूर्ण ने उत्तर दिया, 'सूनापरान्त एक जनपद है। मै वही विहार करना चाहता हूँ।'

'पूर्ण !' भगवान् ने कहा, 'वहाँ के मनुष्य चण्ड है। परुष है।'

'भन्ते !'

'सुनो पूर्ण ! यदि वहाँ के लोग तुम्हारा आक्रोशन करेगे तो तुम क्या करोगे ?'

'भन्ते ! मै यही कहूँगा। सूनापरान्त के प्राणी भद्र है। सुभद्र है। वे मुझ पर हस्त प्रहार नही करते।'

'अच्छा–।'

'सुगत ! मै ऐसा ही संकल्प करूँगा।'

'यदि पूर्ण ! सूनापरान्त के लोग हस्त प्रहार तुम पर करे तो—?'

'भन्ते ! मै यही विचार करूँगा। सूनापरान्त के लोग भद्र है। सुभद्र है। मुझे डण्डा से नही मारते।'

'यदि पूर्ण ! सूनापरान्त के लोग तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा तुम्हारी हत्या कर दे तो ?'

'भन्ते ! मै सोचूँगा। जैसे आपका कोई शिष्य इस जीवन से ऊबकर, घृणाकर, तग आकर, शस्त्र हारक खोजते है। उसी प्रकार मै प्रसन्न हूँगा। मुझे शस्त्र हारक विना परिश्रम मिल गया। सुगत, मेरी यही प्रतिक्रिया होगी। मै सूनापरान्त के लोगो को फिर भी भद्र कहूँगा। सुभद्र कहूँगा।'

'साधु पूर्ण ! साधु !! शम दम से युक्त होकर सूनापरान्त मे तुम निवास कर सकते हो ?'

पूर्ण ने भगवान् की वन्दना की। प्रदक्षिणा की। आदेश की आशा मे खडा हो गया। भगवान् ने कहा .

'पूर्ण ! तू जिसका काल समझ, कर।'

पूर्णने भगवान् की चरण वन्दना की। पात्र उठाया। चीवर लिया। सूनापरान्त के लिए प्रस्थान किया।

× × ×

पुण्य सूनापरान्त देश सुप्पारक पत्तन पहुँचा। अपने उद्योग, अभ्यास और प्रयास से त्रिविद्या मे पारगत हुआ। उसने अर्हत्त्व प्राप्त किया। उसने

भण्डारी नत मस्तक हो गया। कुछ बोल न सका। सब साथी विस्मयापन्न बैठे रहे। सबने भगवान् का दर्शन किया था। उपदेश सुना था। सभी प्रभावित थे। किसी का साहस नही हुआ। पूर्ण से संकल्प विरत होने के लिए कहते। पूर्ण ने सबको मौन देखा। सबको दु खी देखा। उसने कहा

'भण्डारी! समस्त धन, शकटादि मेरे कनष्ठि भ्राता को सौप देना।'

पूर्ण खडा हो गया। उसके साथी खडे हो गये। सबने उसका चरण स्पर्श किया। किसी के नेत्र वाष्प पूर्ण थे। किसी के शान्त थे। किसी मे कौतूहल था। कोई उदास था। कोई एकटक पूर्ण के शान्त मुख-मण्डल पर दृष्टि स्थिर किये था।

पूर्ण ने पूर्ण त्याग किया। उसके पवित्र पद जेतवन की ओर उठने लगे।

× × ×

तथागत ने पूर्ण को प्रव्रजित किया। पूर्ण योगाभ्यास परायण हुआ। उसका अभ्यास ठीक से नही चल रहा था। विघ्न पड जाता था। चित्त वृत्तियो का निरोध नही हो रहा था। उसने निश्चय किया। जनपद का वातावरण उसके अनुकूल नही था। शास्ता से योगविधि प्राप्त कर घर लौट चलूँ।

आयुष्मान् पूर्ण जेतवन पहुँचा। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक और बैठ गया। भगवान् से सुअवसर पाते ही निवेदन किया •

'भन्ते! मै सक्षिप्त धर्म उपदेश सुनना चाहता हूँ। उसे जानकर मै घर लौटूँ। एकान्ती, अप्रमादी, उपयोगी, सयमी होकर विहार करूँ।'

पूर्ण!' भगवान् ने कहा, 'चक्षु द्वारा विज्ञेय इष्ट, प्रिय रूप, रजनीय होते है। यदि भिक्षु उनका स्वागत करता है, अध्यवसाय करता है, तो नन्दी अर्थात् तृष्णा उत्पन्न होगी। नन्दी की उत्पत्ति से दु ख समुदाय की उत्पत्ति होती है। यदि जिह्वा द्वारा विज्ञेय रस इष्ट, यदि नेत्रो द्वारा विज्ञेय रूप इष्ट, का स्वागत नही करता तो नन्दी निरुद्ध हो जाती है। पूर्ण! नन्दी के निरोध से दु.ख का नाश होता है। पूर्ण! मन द्वारा विज्ञेय धर्म इष्ट है। मेरे इस सक्षिप्त उपदेश से तुम उपदिष्ट हो।'

'भन्ते!' पूर्ण ने अजलिवद्ध भगवान् को प्रणाम किया।

'पूर्ण!' भगवान् ने प्रश्न किया, 'किस जनपद मे तुम विहार करोगे?'

था। व्यापारियो ने लाल चन्दन से जहाज भर लिया। प्रस्थान किया। द्वीप की आत्मा व्यापारियो के इस काम से क्रुद्ध हो गयी। समुद्र मे भयकर तूफान उठा। व्यापारियो के समुख भयकर रूप धर कर आया। प्रत्येक व्यापारी अपने इष्टदेव का स्मरण करने लगे। चुल्ल पुण्य ने अपने ज्येष्ठ भ्राता पुण्य का स्मरण किया।

पुण्य को ज्ञान हो गया उसका भाई कष्ट मे था। वह आकाश मार्ग से जहाज के समीप आये। उन्हे देखते ही दुष्ट आत्मा भाग गयी। व्यापारियों ने अपने जीवन रक्षा के उपकार स्वरूप रक्तचन्दन एक भाग पुण्य को दिया।

पूर्ण ने प्राप्त रक्त चन्दन द्वारा चन्दनशाला भगवान् के निमित्त बनवायी। वहा वह उपासक तथा उपासिकाओ के साथ विहार करने लगा। उसने भगवान् को एक पुष्प भेजकर आमन्त्रित किया। भगवान् वहा पाच सौ अर्हतो के साथ पधारे। एक रात चन्दन शाला मे विहार किया। दूसरे दिन उषाकाल के पूर्व ही वहा से प्रस्थान किया।

कुण्डधान प्रथम भिक्षु था जो भगवान् के साथ सूनापरान्त मे आया था। शक्र ने पाच सौ शिविका यात्रा निमित्त भेजी थी। सबमे अर्हत थे। एक शिविका खाली थी। उसमे सच्च बद्ध बैठा। भगवान् ने मार्ग मे उसे प्रव्रजित किया था।

लौटते समय भगवान् ने नर्वदा के तट पर विहार किया था। यहा नागराज ने भगवान् का स्वागत-सत्कार किया था।

× × ×

उसका अन्तकाल आया। वह मृत्यु का आलिगन करने के लिए प्रसन्न था। किचित् दु ख नही था। उसने अन्तिम शब्द कहे

'जगत् मे शील श्रेष्ठ है। प्रज्ञा सर्वोत्तम है। मानव एव देवताओ में शील एव प्रज्ञा से वास्तविक विजय होती है।'

●

बुद्ध शासन मे पाँच सौ उपासको तथा अनेक उपासिकाओ को सम्मिलित किया।

सूनापरान्त मे सर्वप्रथम पुण्य ने अम्बहत्थ[1] पर्वत पर विहार किया। किन्तु वहाँ उसे भाई ने पहचान लिया। अतएव उसने पर्वत का त्याग कर दिया। वह समुद्रगिरि[2] विहार मे आया। वहाँ विहार करने लगा। किन्तु वहाँ समुद्र की उत्ताल तरगे तट से टकराती थी। साधना मे विघ्न पड़ने लगा। उसने समुद्र की लहरो को शान्त कर दिया।

वहाँ से वह मातुल[3] गिरि पर आया। वहा विहार करने लगा। परन्तु पक्षियो का इतना अधिक रव होता था कि उस स्थान से उसका चित्त उचट गया। वहा से वह मकुल[4] ग्राम मे आया। वही विहार करने लगा।

पुण्य के कनिष्ठ भ्राता का नाम चुल्ल[5] पुण्य था। वह पाच सौ व्यापारियो के साथ समुद्र पार जहाज से व्यापार करने जा रहा था। प्रस्थान के पूर्व वह ज्येष्ठ भ्राता पुण्य के पास आया। उनका अभिवादन किया। वन्दना की। उनसे आशीर्वाद मागा। उसकी यात्रा सुखद हो। उसकी समुद्र मे रक्षा होती रहे।

× × ×

जहाज एक द्वीप के समीप आया। वहा लाल चन्दन खूब पैदा होता

---

(१) अम्बहत्थ सूनापरान्त मे एक पहाडी है।

(२) समुद्रगिरि यहाँ का चक्रमण चारो ओर चुम्बकीय शिला खण्डो से घिरा था। चक्रमण पर कोई चल नही सकता था। यहाँ एक विहार था। सूनापरान्त मे था।

(३) मातुलगिरि या मातुगिरि सूनापरान्त मे एक स्थान था। जहाँ पुण्ण ने निवास किया था।

(४) मुकुल आराम सूनापरातन मे एक विहार था। एक मकुल पर्वत का वर्णन मिलता है। वह वर्तमान कलुहा पहाड हजारीवाग जिला विहार मे वोघ गया से २६ मील दक्षिण है। मकुल आराम तथा मकुल दो भिन्न स्थान एव नाम है।

(५) चुल्ल पुण्ण . चुल्ल का अर्थ छोटा होता है। यहाँ कनिष्ठ पुन्न से अर्थ लगाना चाहिए।

वृद्धावस्था

भगवान् ने छत्तीसवाँ वर्षावास मृगार माता के प्रासाद पूर्वाराम में किया।

भगवान् अपराह्ण काल मे ध्यान से उठे थे। प्रासाद के पीछे बैठे थे। आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। भगवान् का शरीर मर्दन करने लगे। वे बोले

'भन्ते ! भगवान् का शरीर उतना परिशुद्ध, उज्ज्वल नही है। गात्र शिथिल हो गये है। झुर्रियाँ पड रही है। कमर लटक रही है। इन्द्रियो मे विकार प्रवेश करने लगे है।'

'आनन्द !' तथागत ने कहा 'यौवन मे जरा धर्म छिपा है। आरोग्य मे व्याधि-धर्म छिपा है। जीवन मे मरण-धर्म छिपा है। आनन्द ! जरा के कारण शरीर पूर्ववत् सुन्दर नही रहता। गात्र शिथिल हो जाते है। त्वचा सकुचित हो जाती है। शरीर झुक जाता है। इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती है।'

'जरा तुझे धिक्कार है। तुम सुन्दरता को नष्ट करती है। सुन्दर शरीर को मसल डालती है। शतायु भी एक दिन मरता है ! मृत्यु किसी को नही छोडती। सबको पीस डालती है।'

'इस दुनिया मे ऐसा उपाय नही है। जिससे उत्पन्न प्राणी न मर सके। जरा पिण्ड छोड सके।'

'फल पकता है। जरा मनुष्य शरीर पका देती है। पका फल वृक्ष का त्याग करता है। उसकी मृत्यु होती है। उसी प्रकार यह शरीर मृत्यु से भयभीत रहता है।

'मिट्टी के बर्तन फूटते है। उसी प्रकार यह काया भाण्ड फूटता है! मूर्ख और पण्डित सब मृत्यु के अधीन है। पिता पुत्र की रक्षा नही कर सकता। कन्या माता की रक्षा नही कर सकती।

आधार ग्रन्थ

सयुक्त निकाय ३४ २ · ४ ५

मज्झिम निकाय ३ ५ ३

थेर गाथा ७० उदान ७०

दिलावदान ३७-३९

पुन्नोवाद सुत्त

Ap ii . 341.

Thag A : i · 156

Thag · vso · 70.

M A ii 1014

S A iii 14

KhA 149

नकुल पिता

भर्ग देश मे सुसुमार गिर[1] (चुनार) स्थान है। प्रकृति की सुन्दर गोद मे आबाद है। वहाँ भगवान् एक समय पधारे।

नकुल पिता और नकुल माता सुसुमार गिर के गृहपति थे। भगवान् उस समय सुसुमार गिर के मेपकलावन मे विहार कर रहे थे। पति और पत्नी दोनो भगवान् का दर्शन करने गये। भगवान् का उपदेश श्रवण किया। श्रोतापन्न हो गये।

गृहपति नकुल पिता और माता वृद्ध हो गये थे। भगवान् के समीप आये। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। सुअवसर देखकर नकुल पिता ने निवेदन किया :

'भन्ते!' मै जीर्ण हूँ। वृद्ध हूँ। आयु प्राप्त हूँ। हारा शरीर हूँ। किसी समय मृत्यु प्राप्त कर सकता हूँ। भिक्षुओ का दर्शन इच्छानुसार नही कर पाता हूँ। भगवन्! मुझे उपदेश दीजिये। चिरकाल तक जो मेरे हित और सुख के लिए पर्याप्त हो।'

'गृहपति!' भगवान् ने कहा, 'ठीक है। इस प्रकार वृद्ध शरीर धारण करने वाला मुहूर्त मात्र के लिए यदि आरोग्य की आशा रखता है तो वह मूर्खता कही जायेगी।'

'तो मै क्या करूँ भन्ते?'

'गृहपति! ध्यान रखो। अभ्यास करो। शरीर चाहे भले ही आतुर हो जाय परन्तु चित्त आतुर नही होना चाहिए।'

गृहपति ने शिरसा प्रणाम किया। भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन किया। अनुमोदन किया। आसन त्याग कर उठा। अभिवादन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की। सारिपुत्र के निवास-स्थान की ओर चला।

× × ×

---

(१) सुसुमार गिर—नकुल माता की कथा द्रष्टव्य है।

'वध भूमि की ओर जाने वाले पशु की तरह एक-एक प्राणी की मृत्यु हत्या करेगी। अधिक से अधिक यह काया सौ वर्ष चलेगी। इसके लिए विलाप करना बुद्धिमत्ता नही है। शोक करना बुद्धिमत्ता नही है। उससे शरीर कृश होता है। शरीर विवर्ण होता है। वेदना होती है। विलाप निरर्थक होता है।

'मरने वाला लौटकर आने वाला नही है। उसका जड शरीर विलाप सुनकर दयार्द्र होने वाला नहीं है। उसका भस्म मे मिले, धूल मे उडते, शरीर का शेषाश कुछ भी सुनने और करने मे असमर्थ है। वह शोक-वेदना देखकर द्रवीभूत होने वाला नही है।

तीव्र वियोग वेदना देखकर सान्त्वना देने वाला नही है। जो गया वह गया। उसके निमित्त चिन्ता करना, किसी तरह का प्रयास करना निरर्थक है। वेदना का स्वय कारण है।'

•

आधार ग्रन्थ .

सयुक्त निकाय ४६ ५ १

सुत्त निपात ४४ (जरासुत्त)

है। गृहपति ! इस प्रकार शरीर आतुर हो जाते है। अतएव उनका चित्त आतुर हो जाता है।'

'भन्ते ! शरीर के आतुर होने पर किस प्रकार चित्त आतुर नही होता ?'

'गृहपति ! कोई विद्वान् आर्य श्रावक है। आर्यों को देखते है। आर्य धर्म को जानते है। आर्य धर्म मे सुविनीत है। सत्पुरुषो के धर्म मे सुविनीत है। वह रूप को अपनेपन की दृष्टि से नही देखते। रूप को अपना नही मानते। अपने मे रूप को नही मानते। रूप मे अपने को नही अवलोकन करते। वे रूप है। उनका रूप है। इस प्रकार विचार नही करते। उस रूप के विपरिणत हो जाने पर, अन्यथा हो जाने पर, उनको शोकादि नही होते।'

'अद्भुत भन्ते !'

'गृहपति ! वेदना, सस्कार, सज्ञा, विज्ञान को जो अपनेपन की दृष्टि से नही देखते। उनके विपरिणत हो जाने पर, अन्यथा हो जाने पर, उन्हे शोकादि नही होता।'

'और—?'

'हा, और इस प्रकार शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त आतुर नही होता।'

गृहपति नकुल पिता सन्तुष्ट हो गया। आयुष्मान् सारिपुत्र की प्रदक्षिणा कर प्रस्थान किया।

× × ×

वृद्धावस्था मे बीमारी प्राय आती रहती है। और उसके पश्चात् आती है मृत्यु। नकुल पिता बीमार पडा। बीमारी सावातिक थी। नकुल माता ने देखा। पति चिन्तित है। पूछा .

'क्या चिन्ता है ?'

'ऊह !' नकुल पिता ने बेचैनी से कहा।

'आवुस ! हमारी क्यो चिन्ता करते हो। हमारी और सन्तानो की चिन्ता त्याग दो।'

'ओह—!' नकुल पिता का मस्तिष्क चिन्ताग्रस्त था।

'आप हमारी चिन्ता त्याग दे। आप अच्छे हो जायेगे।'

गृहपति नकुल पिता सारिपुत्र के पास आया। उनका अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। सारिपुत्र ने उसको प्रसन्न मुद्रा देखकर पूछा :

'गृहपति! तुम्हारी इन्द्रियाँ प्रसन्न है। मुख पर दिव्य कान्ति है। परिशुद्ध है। क्या तुमने भगवान् का उपदेश सुना है ?'

'भन्ते! मैने अभी भगवान् का उपदेश सुना है। धर्मोपदेश अमृत द्वारा अभिषिक्त हुआ हूँ।'

'क्या सुना आवुस!'

'भगवान् ने कहा—शरीर चाहे आतुर हो जाय परन्तु चित्त आतुर नही होना चाहिए।'

'इसके आगे को बात नही पूछा आवुस!'

'नही। क्या पूछता ?'

'आवुस! तुम्हे पूछना चाहिए था। किस प्रकार शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर होता है ? किस प्रकार शरीर के आतुर होने पर चित्त नही आतुर होता ?'

'भन्ते! उत्तम होगा। यदि आप कृपाकर बताएँ।'

'ध्यानपूर्वक सुनोगे ?'

'हाँ भन्ते! किस प्रकार शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर होता है ?'

'गृहपति! अनेक पृथक् जन, अविद्वान् जो आर्यों को नही देखते। आर्य धर्म का जिन्हे ज्ञान नही है। जो आर्य धर्म मे विनीत नही है। सत्पुरुषो को नही देखते। उनके धर्म को नही जानते। सत्पुरुषो के धर्म मे विनीत नही हुए हैं। अपनेपन को दृष्टि से रूप को देखते है। रूपवान को अपनेपन की दृष्टि से देखते है। अपने को रूप मे देखते है। रूप मे अपने को देखते है। विचार करते है। वे रूप है। रूप उनका है। जिस रूप को वे अपने मे देखते है। जिस रूप को अपना समझते है। वह विपरिणत हो जाता है। बदल जाता है। उस रूप के विपरिणत और अन्यथा होने पर उसमे शोक, विलाप, दु ख, दौर्मनस्य और उपायास पैदा होते हैं। इसी प्रकार वह वेदनाओ, सज्ञाओ, सस्कारो और विज्ञान को अपनेपन की दृष्टि से देखते हैं। विज्ञान को अपना समझते हैं। अपने मे विज्ञान को देखते है। वे विज्ञान जिन्हे अपने मे देखते है। अपना समझते है। विपरिणत हो जाते है। अन्यथा हो जाते है। शोकादि उनमे प्रवेश करते

उत्पलवर्णा

मधुवा मञ्ञति बालो याव पापं न पच्चति ।
यदा च पच्चति पाप अथ बालो दुक्ख निगच्छति ॥

(मूर्ख को पाप उस समय तक मधुर लगता है, जब तक उसे उसका विपाक नही मिलता । उसे उस समय दु ख होता है, जब पाप का फल मिलता है ।)

–ध० ६९

उत्पलवर्णा वास्तव मे उत्पलवर्णा थी । उसका वर्ण नील कमल तुल्य था । कमल से भी कोमल थी । सुन्दर थी । उसका लावण्य अपूर्व था । वह अपने कोसल श्रावस्ती के श्रेष्ठी कुल की कुमुदनी थी ।

उसका यौवन निखरा । रोम रोम मे आकर्षण मुसकुराता । यौवन की ख्याति फैली । रूप की ख्याति फैली । उसके कुल की ख्याति फैली ।

उससे विवाह करने वाले राजपुत्रो, कुलपुत्रो एव श्रेष्ठीपुत्रो की बाढ आ गयी । सब विवाह करना चाहते थे । सब कुछ न्यौछावर करना चाहते थे । पिता के सामने भयकर समस्या मूर्तमान खडी हो गयी । उसे जीवन का भय हुआ । धन का भय हुआ । कन्या का भय हुआ ।[1]

उसको एक उपाय सूझा । वह किसी को अस्वीकार कर शत्रुता मोल नही ले सकता था । किसी को अस्वीकार कर एक की मित्रता और सैकडो की शत्रुता लेने मे असमर्थ था । उसने कन्या से पूछा :

---

(१) धम्मपद मे यह कथा दूसरे प्रकार से दी गयी है कथा इस प्रकार है कि जम्बू द्वीप के सभी राजा उत्पलवर्णा के रूप के कारण उसे चाहते थे । उसके पिता श्रेष्ठी ने झझट से दूर होने के लिए उसे भिक्षुणी बना दिया । उत्पलवर्णा के मामा का पुत्र नन्द माणव था । उस पर अनुरक्त था । उसके साथ एक विहार मे पहुँचकर बलात्कार किया । वह ज्योही कोठरी के बाहर निकला, जमीन फट गयी और वह उसमे समा गया ।

नकुल माता ने इतने विश्वास के साथ कहा कि नकुल पिता की चिन्ता हटने लगी। वह थोडे ही दिनो मे चिन्ता रहित हो गया। उसका स्वरूप पुन लौट आया।

× × ×

नकुल पिता भगवान् की सेवा मे एक समय पहुँचा। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् ने पूछा .

'कुशल से तो है आवुस !'

'भगवान्, बीमार हो गया था।'

'अच्छे हो गये।'

'हाँ। भन्ते ! नकुल माता ने मुझे उपदेश दिया। सन्तोष दिया। विश्वास दिया। मै अच्छा हो गया।'

'आवुस ! इस प्रकार की स्त्रियाँ विरलो को मिलती है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे पैसठवाँ और उपासको मे ग्यारहवाँ स्थान प्राप्त भर्ग देश ससुमार गिरि श्रेष्ठीकुलोत्पन्न नकुल पिता गृहपति विश्वासको मे अग्र हुआ था।

●

आधार ग्रन्थ :

सयुक्त निकाय २१ १ १ १
३४ ३ ३ ८

A i 26, 216, ii 61; iii 295, 465, iv 268, 348.

A A . i 216, 246, 514

S A ii 182.

S iii 1, iv 116.

उद्योग, ध्यान से प्रतिसविद् (पटिसम्मिदा) प्राप्त किया। अर्हत्व प्राप्त किया ऋद्धि विकुर्वण प्राप्त किया।

× × ×

अन्तर्वासिनी उत्पलवर्णा सात वर्षों तक भगवान् का अनुगमन करती रही। विनय स्मरण करना चाहती थी। परन्तु वह भूल जाती थी। उसकी स्मृति दुर्बल थी। उसने विचार किया। इस प्रकार आजन्म भगवान् का अनुगमन करने पर भी वह विनय को स्मरण न रख सकेगी।

भगवान् ने उसके विचारो को जाना। उस समय तक स्त्रियाँ विनय का पाठ नही कर सकती थी। भगवान् ने अनुमति दी—'भिक्षुणियाँ भी विनय पाठ कर सकती है।'

× × ×

श्रावस्ती जनपद था। अन्ध वन[1] था। पुष्पित शाल वृक्षो से पूर्ण

(१) अन्धवन : श्रावस्ती के दक्षिण लगभग दो मिल दूर मे एक वन था। एक गव्यूती दूर था। श्रावक तथा श्राविकायें यहाँ एकान्त सेवन निमित्त आती थी। यहाँ पर एक प्रधान गृह था। ध्यान निमित्त उसमे उपासक बैठते थे। यहाँ पर अनुरुद्ध वहुत वीमार पड गये थे। भगवान् ने राहुल को यहाँ चुल्ल राहुलोवाद सुत्त सुनाया था। वहाँ पर क्षेमा, सोमा तथा सारिपुत्र ने निवास किया था। उत्पलवर्णा, उदायी आदि सम्वन्धी घटनाओ के कारण यह स्थान प्रसिद्ध हो गया था। वर्तमान मे पुराना स्थान अन्ध वन खण्ड माना जाता है।

अन्ध नाम पडने के दो कारण मुख्यतया दिये जाते है। काश्यप वुद्ध के समय मे सोरक नामक स्थविर की आँखें चोरो ने निकाल ली थी। चोर सव अन्धे हो गये। अतएव नाम अन्ध वन पड गया। दूसरी गाथा फाहियान कहता है। उसने अपनी यात्रा मे अन्धवन को जेतवन से उत्तर पश्चिम दिशा मे देखा था। भगवान् ने यहाँ पाँच सौ अन्धो को आँखें प्रदान की थी अतएव नाम अन्धवन पड गया था। इस वन मे चोरो का सर्वदा भय रहता था। एक वार राजा प्रसेनजित् को चोरो ने घेर लिया था। यह स्थान ध्यान के लिए उत्तम समझा जाता था। यहाँ भिक्षुणी, सोमा, कृशा गौतमी, विजया, उत्पलवर्णा, चाला, उपचाला, शिशूपचाला, सेला तथा वजीरा ध्यान करने आयी थी।

मै समझता हूँ कि यह वन इतना सघन था कि दिन मे भी वहाँ अन्धेरा लगता था। अतएव उस का विशेषण अन्ध शब्द हो गया था।

'बेटी ! विकट समस्या है।'

'पिता जी समझती हूँ।' कन्या ने लज्जा से कहा।

'एक उपाय सोचा है।'

'क्या पिता जी ?' उत्पलवर्णा ने सलज्ज नेत्रो को पिता के मुखमण्डल पर स्थिर करते हुए पूछा।

'तुम मानोगी।' पिता का मस्तक नत था। वाणी उदास थी।

'क्यो न मानूँगी पिता जी !' उत्पलवर्णा ने किंचित् उत्साह के साथ उत्तर दिया।

'तुम प्रव्रज्या ले लो !' पिता कहते-कहते काँप उठा।

'प्रव्रज्या—? भिक्षुणी—?' उत्पलवर्णा विस्मित हुई।

'हाँ बेटी !' पिता ने नील गगन की ओर देखते हुए कहा।

उत्पलवर्णा नीरव हो उठी।

'यही एक उपाय है।'

'अच्छा लूँगी पिता जी !' कहती-कहती उत्पलवर्णा घर मे चली गयी।

पिता की आँखो मे आँसू आ गया।

× × ×

उत्पलवर्णा तैयार हुई। पिता सम्मान के साथ भिक्षुणी सघ की ओर चला। कुटुम्बियो ने उसे विदाई दी। वह सौम्य हो गयी थी। घर त्याग रही थी। उसे दु ख नही हुआ। एक बार हिचकी। पुन. साहस किया। प्रव्रज्या का उत्साह उत्पन्न हुआ। वह पिता के साथ चल पडी।

भिक्षुणी सघ मे पिता और पुत्री पहुँचे। पिता ने कन्या को प्रव्रज्या की सम्मति दी। पुत्री ने प्रव्रज्या लेना स्वीकार किया। उत्पलवर्णा प्रव्रजित हुई। उसका घर छूटा। पिता छूटे। भोग छूटा। बन्धन टूटा। राग भागा। वह निरन्तर धर्म पथ की ओर आग्रसर होने लगी।

एक समय उसकी पारी उपोसथ भवन मे काम करने की आयी। उसने दीप जला कर कोठरी साफ किया। वह दीप शिखा को देखती रही। उसे तेजोकसिण हुआ। उसका ध्यान लगने लगा। उसके ज्ञान चक्षु खुले। उसका यह ध्यान उसके अर्हत्व के मार्ग मे एक मजिल हुआ। उसे धर्म का रहस्य मालूम हुआ। उसने इस प्रकार निरन्तर परिश्रम,

'तुम तो एकाकी हो। अनेक मेरा कुछ नही विगाड सकते।'

'मैं अदृश्य हो सकता हूँ।' मार ने गर्व से कहा।

'अच्छा–?'

'तुम्हारे शरीर मे प्रवेश कर सकता हूँ।'

'वाह–?'

'हाँ–तुम्हारी भ्रू मे अदृश्य हो सकता हूँ। वही छिप सकता हूँ।'

'और–?'

'तुम मुझे देख नही सकोगी ?'

'तथापि तुम मेरा कुछ नही कर सकते ?'

'क्यो–?'

'चित्त मेरा वशीभूत है। ऋद्धियाँ करवद्ध स्वत मेरे पास आ जाती है।'

'और–?'

'मैं छहो ज्ञानो की जानने वाली हूँ।'

'और–?'

'वुद्ध शासन मे स्थिर हूँ।'

'और–?'

'तुम भोग को आनन्द कहते हो ?'

'हाँ।'

'मेरे लिए वे दु ख समुदाय है। घृणा के आधार है।'

'सुनयने–।'

'सुनो काम। तृष्णा एव स्कन्ध समूह मुझे बर्छी को तरह भेदते है।'

'वाह–।' मार हँसा।

'मैने अज्ञानान्धकार को विदीर्ण किया है। वासना का उच्छेद किया है।'

'हूँ–।' मार गम्भीर हो गया।

'पापी। तुम प्राणियो का नाश करते हो। तुम्हारा जाल मुझपर नही पड सकता।'

× × ×

उत्पलवर्णा अपने विपय मे स्वय कहती है .

'मुझे दिव्यचक्षु प्राप्त हुआ है। मै दूसरो के चित्त का ज्ञान प्राप्त करने

था। सुरभित था। उत्पलवर्णा शाल वृक्ष के नीचे खडी थी। शाल पुष्प उसके शरीर पर गिर रहे थे। उसकी शोभा निखर आयी थी। वन जैसे वन देवी की पूजा कर रहा था।

वनश्री कुसुमावली मे चेतन थी। गन्धवह मे सुगन्धि प्रसरित था। मुग्धकर था। शीतल था। उस जीवनप्रद प्रकृति सुषुमा मे उत्पलवर्णा का यौवन पूर्ण विकसित था। भिक्षुणी वेशभूषा ने शरीर विकास मे परिवर्तन नही कर सका था। किन्तु उसका वह यौवन दिव्य था। निर्मल था। नील उत्पलल तुल्य सुन्दर था। काया मे निवास करते हुए भी उपेक्षित था। मार ने वह रूप देखा। प्रेम प्रदर्शित करते बोला :

'भिक्षुणी! शाल पुष्पित है। सुरभित है। वनश्री मुग्धकर है। वासन्ती वायु मे चचल होकर प्रकृति यौवन मुखरित है।'

उत्पलवर्णा ने मार की ओर देखा। मार पुन: बोला :

'भीरु! एकान्त है। निर्जन है। तुम एकाकी हो और मैं — ।'

मार मुसकराया। उत्पलवर्णाके नेत्रो मे करुणा थी। मार ने पुनः कहा

'अगने! तुम्हारा सौन्दर्य अनुपम है। मैने इतना उत्तम सौन्दर्य कभी नही देखा था।'

उत्पलवर्णाने अपने शरीर की ओर देखा। उसे अपने सुन्दर शरीर के प्रति विराग हुआ। अस्थिर सौन्दर्य पर, अस्थिर यौवन पर, अस्थिर रूप सर दया आयी। मार ने वक्र मुसकान के साथ कहा

'मूढे! इस अरक्षित अवस्था मे तुम्हे दुष्टो से भय नही लगता?'

उत्पलवर्णा ने पापी मार की ओर देखा। निर्विकार भाव से बोली :

'यदि लक्ष लक्ष आततायी आ जॉय–।'

'तो–?' मार ने व्यग्य से पूछा।

'मेरे एक के हाथ का स्पर्श नही कर सकते।'

'ओह–?'

'हॉ, मेरा रोम-रोम स्थिर रहेगा। विचलित नही होगा। मै अकेली हूँ। निर्जन वन है। तथापि मै तुमसे किंचित् मात्र भयभीत नही हूँ।'

'क्यो–?' मार विस्मित हुआ।

उन्होने कहा कि काम, लोभ, सत्कारादि का विचार भी सन्तो के हृदय मे प्रवेश नही करना चाहिये।

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओ को तालिका मे चौवालीसवाँ तथा भिक्षु श्राविकाओ मे तीसरा पद प्राप्त कोसल श्रावस्ती श्रेष्ठी कुलोत्पन्न उत्पलवर्णा ऋद्धिमतियो मे अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ .

वि० पि० चुल्लवग्ग १० २ ५

संयुक्त निकाय ५ ५, १६ ३ ४

धम्मपद ५ १०, २६ १८

अगुन्तर निकाय १ १४

थेरो गाथा ६४, उदान २२४ २३५

A ı 25, 88 ; ıı 164

A A ı : 188.

DhA ıı 48, 49

S ı 131, ıı 236.

Thag A 190, 195.

Vin · ıı 216 . ııı . 35, 211, 208.

मे समर्थ हुई हूँ। मेरी श्रोत्रेन्द्रियाँ शुद्ध हुई है। मैने योग द्वारा सिद्धियो को साक्षात्कार किया है। मेरा चित्त निर्मल हो गया है। चित्तमलो का नाश हो गया है। मैने श्रेष्ठ ज्ञानो को प्राप्त किया है। बुद्ध शासन पूर्ण किया है। योगबल द्वारा प्रस्तुत चार अश्वो पर आरूढ होकर मै आई और भगवान् की पाद वन्दना की।'

उत्पलवर्णा इतनी ऋद्धि सम्पन्न हो गयी थी कि जब भगवान् गण्डम्ब पर प्रातिहार्य करने आये तो उसने स्वयं पहले प्रातिहार्य करने का निवेदन किया। भगवान् ने हँसकर कहा—'अभी नही।'

भगवान् ने जेतवन मे भिक्षुसघ के सम्मुख कहा था—'उत्पलवर्णा अद्भुत ऋद्धि शक्ति से युक्त है।'

× × ×

एक समय की बात है। उत्पलवर्णा की कुटी पर अन्धक वन मे कोई मास छोड गया था। सम्भवत कोई दयालु चोर उसके लिए छोड गया था। मास बनाकर उसे भगवान् के पास वेणु वन मे ले आयी। भगवान् उस समय भिक्षाचार करने गये थे। उसने मास उदायी के पास रख दिया। क्योकि वही विहार की व्यवस्था उन दिनों देख रहे थे। सहेज दिया। उसे भगवान् को दे दिया जाय। किन्तु उदायी ने कहा कि उसकी सेवा के बदले वह अपना अन्तरवस्त्र उसे देंगे।

× × ×

श्रावस्ती था। भगवान् भिक्षु सघ मे बैठे थे। भगवान् बोले

'भिक्षुओ! लाभ सत्कार से दूर रहना वांछनीय है। घर त्याग कर प्रव्रज्या लेने वालो को उत्पलवर्णा और क्षेमा के आदर्शो का अनुकरण करना चाहिये। भिक्षुणी श्राविकाओ मे वे दोनो आदर्श है।

यह बात मालूम हुई। भगवान् ने उसी दिन से भिक्षुणी के लिए नन्दक वन मे निवास करना वर्जित कर दिया।

उस समय यह विवाद उठा। अर्हत भी मानव हैं। उन्हें भी इच्छा होती है। उन्हे क्यो न प्रेम तथा काम शान्त करने की अनुज्ञा दी जाय। वे वृक्ष नही हैं। पर्वत नही है। वे अस्थि, मास, मज्जा पूर्ण मनुष्य है।

भगवान् ने जोरों के साथ इस प्रकार के विचारो का खण्डन किया।

'भिक्षुणियाँ कहती है।'
'मुझे घर पर ही गर्भ रह गया था।'
'तुम यहाँ नही रह सकती।'
'क्यो ?'
'तुम्हारे कारण हमारे आश्रम के विपय मे अपवाद फैलेगा।'
'मै निर्दोप हूँ। आप व्यर्थ मुझ पर रुष्ट हो रहे है।'
'तुम्हे चीवर त्यागना होगा।'
'और—?'
'श्वेत वस्त्र पहनना होगा।'
'और–?'
'इस आश्रम से बाहर किया जायगा। तुम्हारा आचरण शुद्ध नही है।'
'किन्तु मै आपके शासन में प्रव्रजित नही हूँ।'
'क्या कहा ?' देवदत्त बिगडा।

'मैने शास्ता के शासन मे प्रव्रज्या ली है। यही मेरा प्रारम्भ से विचार था।'

'ओह—!'
'जी हाँ, मुझे शास्ता के पास भेज दिया जाय।'
'अच्छा !'
देवदत्त ने स्वत· बला टलती देखकर आदेश दिया।
'इसे भिक्षु सघ मे पहुँचा दिया जाय।'

× × ×

वह तथागत के समीप आयी। तथागत ने उसका तिरस्कार नही किया। निन्दा नही की। उस पर उन्हे करुणा उत्पन्न हुई। तथागत ने उपालि से कहा ·

'आयुष्मान् ! इस भिक्षुणी की जाँच करनी चाहिए।'
'किस प्रकार—?'
'यह निर्दोष है या नही।'
'आज्ञा भन्ते।'

उपालि भिक्षुणी को लेकर विशाखा के पास पहुँचा। राजा प्रसेनजित्, अनाथपिडकादि के सम्मुख उसे विशाखा के नियन्त्रण मे दे दिया।

× × ×

कुमार काश्यप

अत्त हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।
अत्तना व सुदत्तेन नाथं लभति दुल्लभ ॥

(अपना स्वामी व्यक्ति स्वयं है। उसका अन्य कोई कैसे स्वामी हो सकेगा ? अपने को वश करने पर वह दुर्लभ स्वामी (निर्वाण) का लाभ करता है।)

—ध० १६०

राजगृह के नगर के श्रेष्ठी की एक पुत्री थी। सुख मे पली थी। वह प्रव्रजित होना चाहती थी। माता-पिता ने प्रव्रज्या की आज्ञा नही दी।

समय आया। उसका धूमधाम से विवाह हुआ। वह पति-गृह आयी। पतिभक्त थी। पति की सेवा करती थी। पति उस पर प्रसन्न था। उसका इच्छा पूर्ति करने का भरसक प्रयत्न करता था।

पत्नी ने एक दिन उससे निवेदन किया। प्रव्रजित होना चाहती थी। पति ने वियोग के कारण, उसे अपने विचार से विरत होने के लिए कहा। किन्तु पत्नी के सतत आग्रह पर, उसने प्रव्रज्या की सहर्ष अनुमति दे दी।

पति उसे लेकर भिक्षुणी आश्रम की ओर चला। कुछ विचित्र घटना घटी। भगवान् के आश्रम मे न पहुंचकर, देवदत्त के आश्रम मे पहुँच गया। भिक्षुणियो ने उसे प्रव्रजित किया।

× × ×

आश्रम मे भिक्षुणियो को सन्देह हो गया। वह गर्भवती थी। बात देवदत्त के कानो तक पहुँची। आश्रम मे स्त्री का गर्भिणी होना अपवाद का कारण हो सकता था।

'तुम गर्भवती हो।' देवदत्त ने पूछा।

हाँ।

'यहाँ हुई हो ?'

'नही।'

से वह प्लावित हो गयी। वह दौडती पुत्र के पास आयी। उसे स्नेह से पकड लिया।

काश्यप ने माता को पहचाना। माता की दशा पर उनको करुणा आयी। उन्होने कहा .

'यह क्या ?'

'पुत्र—।'

'स्नेह वन्धन नही तोड सकती ?'

'ओह—।'

पुत्र भिक्षु, माता भिक्षुणी दोनो को अपने धर्म का ज्ञान हुआ। स्नेह दुःख का कारण है। माँ रुक गयी। पुत्र भिक्षाचार करता आँखो से ओझल हो गया। और माँ पुत्र के कारण उसी दिन अर्हत हो गयी।

× × ×

श्रावस्ती थी। जेतवन था। अनाथपिण्डक का आराम था। भगवान् विहार कर रहे थे उन्ही दिनो कुमार काश्यप अन्ध वन मे विहार करते थे। शशि गगन मे था। आकाश निरभ्र था। कौमुदो मे जगत् शीतल था।

कुमार काश्यप ने देखा। अन्ध वन अभिक्रान्त वर्ण देवता की ज्योति द्वारा प्रभासित हो उठा था। कुमार काश्यप के समीप देवता हस गति से आया। एक ओर खडा हो गया। काश्यप ने औपचारिक शैली से देवता का अभिनन्दन किया। देवता ने प्रश्न किया ·

'भिक्षु। वल्मीक को देखा।'

'हाँ।'

'आवुस। रात्रि मे उससे धूँआ निकलता है।'

'हाँ।'

'दिन को प्रज्वलित होता है ?'

'हाँ।'

'कुमार। यह वल्मीक क्या है ? धुआँ का निकलना क्या है ? प्रज्व-लित होना क्या है ? ब्राह्मण क्या है ? सुमेध क्या है ? शास्त्र क्या है ? अभीक्षण क्या है ? लगी क्या है ? दो मार्ग क्या है ? चगवार क्या है ?

भिक्षु परिषद् एकत्रित थी। राजा प्रसेनजित भी परिषद् मे उपस्थित थे। विशाखा उसे परदे की आड मे ले गयी। उसका जाच की। राजा की उपस्थिति मे घोषित किया गया। वह पवित्र थी। उसे गर्भ युद्ध शासन मे आने के पूर्व रहा था। शास्ता ने निर्णय मान लिया। वह निर्दोप घोपित की गयी।

× × ×

कालान्तर मे उससे कुमार काश्यप का जन्म हुआ। शिशु का लालन-पालन विहार मे हुआ। राजा प्रसेनजित् ने शिशु बडे होने पर, लालन-पालन का उत्तरदायित्व लिया। राजाश्रय मे शिशु बढने लगा।

बडा होने पर राजा ने उसे भिक्षु सघ मे भेज दिया। गर्भ मे आने के बीस वर्प पश्चात् प्रव्रजित हुआ! बहुत युवा था। बीस वर्प की अवस्था मे उपसम्पदा पाया था। अतएव भगवान् कहा करते है—'काश्यप को यह फल दे दो। वह खाने की चीज है? अच्छा, काश्यप को दे दे।'

वहा अनेक काश्यप थे। भिक्षुओ ने पूछा·

'किस काश्यप को दिया जाय?'

'ओह! कुमार काश्यप को।'

भगवान् ने उसका नाम कुमार रख दिया था। वह राजकुल में पला था। कुमार था। भिक्षुओ मे भी कुमार था। अतएव वृद्धावस्था तक उसका नाम कुमार काश्यप ही रहा। इसी नाम से वह सम्बोधित किया जाता था।

× × ×

कुमार काश्यप को गर्भ से लेकर बीस वर्ष की अवस्था मे उपसम्पदा दी गयी थी। विवाद उठ खडा हुआ। बीस वर्ष की आयु के पूर्व कैसे उपसम्पदा दी जा सकती थी। भगवान् ने शका समाधान किया। गर्भ-कालीन समय भी जोडा जाता है। इस प्रकार काश्यप बीस वर्प के थे।

कुमार काश्यप प्रव्रजित हुए। माता से अलग हुए। राजा प्रसेनजित् से विलग हुए।

वारह वर्ष वीत गया। माता अपने द्वार पर थी। उसने एक भिक्षु को देखा। पुत्र को देखते ही उसके स्तनो मे दूध उतर आया। पुत्र स्नेह

उनका अन्तिम आविर्भाव है। इस जन्म-मृत्यु सयुक्त जगत् मे उसका पुनर्जन्म नही होगा।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे सुश्रावको मे अट्ठाईसवा स्थान प्राप्त मगध राजगृह निवासी कुमार काश्यप चित्र कथिको मे अग्र हुए थे।

●

आधार ग्रन्थ :

मज्झिम निकाय १ ३ ३
विनय पिटक महावग्ग १ ४
धम्मपद १२ ४
थेर गाथा १६१, उदान २०१-२०३

A 1. 24
A A 1 158, 172.
Ap. 11 473
DhA 111 147; 11 210-212
J. 1 147, 148
M 1 143
M A 1 335.
Thag A 1 322
Ud 1 80.
Vin 1. 93.

कर्म क्या है ? असिसूना क्या है ? मासपेशियाँ क्या है ? नाग क्या है ?

काश्यप कुमार विचार करने लगे।

'भिक्षु ! देवता ने कहा 'मैने तुमसे प्रश्न किया है। उसका उत्तर तथागत से पूछो।'

'उत्तर सुनकर क्या करूँगा ?'

'आवुस ! उन्हे धारण करना।'

देवता अन्तर्धान हो गया।

× × ×

रात्रि व्यतीत हुई। भगवान् के समीप कुमार काश्यप पहुँचे। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। भगवान् के संकेत पर रात्रि की घटना का वर्णन दिया। प्रश्नो को निवेदन किया।

भिक्षु ! 'भगवान् ने कहा, 'वल्मीक काया है। दिन के कर्म को जो रात्रि मे करने का विचार करता है, वह रात्रि का घुघुवाना है। रात्रि कर्म को जो दिन मे करता है, वही दिन का धधकाना है। ब्राह्मण, यह तथागत, अर्हत सम्बुद्ध का नाम है। सुमेध, निर्वाण मार्गारूढ व्यक्ति का नाम है। शस्त्र, आर्य प्रज्ञा है। अभीक्षण, वीर्यारम्भ अर्थात् उद्योग का नाम है। लगी, अविद्या का नाम है। घुघुवाना, क्रोध उपायास का नाम है। द्विधा, पथ सशय का नाम है। चगावर, पाँच आवरणो का नाम है। कूर्म, यह पाच उपास्कन्धो के नाम है। असिसूना पाँच काम गुणो के नाम है। मासपेशी, नन्दी है। यह राग का नाम है। नाग, क्षीणाश्रय भिक्षु का नाम है।'

कुमार काश्यप भगवान् के उत्तर से सन्तुष्ट हो गये। उसका अभिनन्दन किया। अनुमोदन किया।

कुमार काश्यप धर्म पथ पर अग्रसर होते चले गये। उन्होने धार्मिक भावनाओ से प्रेरित होकर एक दिन भगवान् के प्रति उदान कहा ·

'यह धर्म धन्य है। भगवान् धन्य हैं। उनके अमित गुण धन्य हैं। उनके कारण श्रावक धर्म का साक्षात्कार कर लेता है। असख्य कल्पो से पच स्कन्धो के चक्कर मे पडा था। यह भगवान् का अन्तिम जन्म है।

अकस्मात् उसने अपने सम्मुख देखा। एक सुन्दर रमणी। वह उसकी पूर्व भार्या थी। पत्नी मुसकरा उठी। उसके नेत्रो मे काम था। राग था। मन दूषित था। नन्दक ने उसे भगिनीस्वरूप समझा। उसे नमस्कार किया। उसके सम्मुख निस्सकोच चला गया।

नन्दन की दृष्टि मे काम नही था। अकाम दृष्टि काम दृष्टि से मिली। अकाम दृष्टि शान्त थी। स्थिर थी। त्याग था। काम दृष्टि मे तृष्णा थी। वासना थी। नन्दक ने वही अपनी पूर्व भार्या को धार्मिक कथाओ से समुत्तेजित किया। उसे शरीर की अनित्यता बतायी। काम को अनित्यता बतायी। उसने धर्म का पवित्र मार्ग उसे दिखाया.

'ओ! नारी!! तुम्हारी वासना को धिक्कार है। तुम मार के दुर्गन्धमय वातावरण मे निवास करती हो। तुमने देखा है? तुम्हारे इस शरार मे नव स्रोत हैं। उनसे सर्वदा मल प्रवाहित रहता है। देवी! मै पूर्व का तुम्हारा पति नही रह गया हूँ। मै तथागत का श्रावक हूँ। मुझे प्रलोभित करने की चेष्टा मत करो। भगवान् के शिष्य स्वर्ग मे भी प्रलोभित नही होते। इस नश्वर जगत् की तुम क्या वात करती हो। वे मार के चक्कर मे पडते है जिनका साथ, मूर्खता, बुद्धहीनता, मतिहीनता ने पकडा है। जो मोहाच्छादित है। भवजाल में आसक्त है। जिनका साथ राग, द्वेष एव अविद्या ने त्याग दिया है। जिनके सब सूत्र छिन्न हो गये हैं। जिनके वन्धनो का अवसान हो चुका है। वे आसक्तियो से बहुत दूर है।

पूर्व भार्या मे विमल दृष्टि उत्पन्न हुई। और नन्दक के पद पात्र के साथ उठते-उठते मार्ग मे लोप हो गये। भार्या विस्मित, चकित पूर्व पति की ओर देखती रह गया।

× × ×

नन्दक ने एक उपदेश मिगार मातु पसाद[1] मे मिगार के पौत्र

---

(१) मृगार मातु प्रसाद . यह एक विहारका नाम है। विशाखा मृगार माता ने श्रावस्ती की पूर्व दिशामे पूर्वाराम में निर्माण कराया था। भगवान् ने अपने जीवन के अन्तिम बीस वर्षावास श्रावस्ती मे किया था। उन दिनो अनाथपिण्डकाराम, जेतवन मृगारमातु प्रासादाराम मे विहार करते थे।

नन्दक

नन्दक श्रावस्ती निवासी था। अपदान के अनुसार जिस दिन जेत वन भगवान् को दिया गया था उसी दिन उसने प्रव्रज्या ली थी।

भगवान् जेतवन मे थे। अनाथपिण्डक के आश्रम मे थे। महाप्रजापति गौतमी ५०० भिक्षुणियो के साथ भगवान् के आश्रम मे आई। भगवान् का अभिवादन किया। एक ओर खडी हो गयी। सकेत पाकर भगवान् से प्रार्थना की .

'भन्ते ! भिक्षुणियाँ उपस्थित है। आपके आदेश की इच्छुक है।'

क्रम यह था। भिक्षुणियो को स्थविर भिक्षु पर्याय अर्थात् वारी-वारी से उपदेश देते थे। नन्दक के उपदेश देने की आज वारी थी। किन्तु वे उपदेश नही देना चाहते थे। भगवान् ने आनन्द से पूछा

'आनन्द ! आज किसकी बारी है ?'

'आयुष्मान् ! नन्दक की।'

'नन्दक उपदेश क्यो नही देते ?'

'वह अपनी वारी मे नही देना चाहते।'

'नन्दक !' भगवान् ने नन्दक की ओर देखकर कहा . 'भिक्षुणियो का अनुशासन करो ब्राह्मण ! उन्हे धार्मिक कथा सुनाओ।'

'भन्ते !' नन्दक ने आज्ञा शिरोधार्य किया।

× × ×

एक दिन श्रावस्ती मे नन्दक भिक्षाचार कर रहा था। उसके हाथ में पात्र था। शरीर पर चीवर था। उसका शरीर ब्रह्मचर्य की दिव्य कान्ति से भूपित था। वह शान्त चित्त भिक्षा माँग रहा था। उसकी चंचलता लोप हो चुकी थी।

पूर्वाह्ण काल था। अयुष्मान् नन्दक सुआच्छादित हुए। पात्र लिया। चीवर लिया। श्रावस्ती मे भिक्षाचार हेतु प्रवेश किया। भिक्षाचार किया। भोजन किया। एक भिक्षु को साथ लिया। श्रावस्ती नगर मे राजकाराम[1] विहार था। उसमे भिक्षुणियाँ निवास करती थी। वहाँ नन्दक पहुँचे।

भिक्षुणियो ने नन्दक की अभ्यर्थना की। हस्त-पद प्रच्छालन निमित्त जल दिया। आसन बिछाया। एकत्रित हुई। नन्दक ने कहा

'भगिनियो ! हमारी कथा प्रतिपृच्छ होगी। शंका निवारण करना होगा।'

'भन्ते ! हम इतने से ही सन्तुष्ट है।'

'भगिनियो ! मै प्रश्न करता हूँ।'

'भन्ते–पूछे।'

'चक्षु नित्य है या अनित्य ?'

'भन्ते ! चक्षु अनित्य है।'

'अनित्य से सुख होता है या दु ख ?'

'भन्ते ! दु ख।'

'भगिनियो ! मै पूछता हूँ। उत्तर दो। जो अनित्य है। जो दु ख है। जो विपरिणामधर्मा है। क्या उसके सम्बन्ध मे हम कह सकते है ? यह मै हूँ। यह मेरा है। यह मेरी आत्मा है।'

'भते ! नही।'

'क्या ऐसा समझना युक्त है ?'

---

(१) राजका राम . जेतवन श्रावस्ती के समीप एक विहार था। राजा प्रसेनजित् ने उसका निर्माण कराया था। वह श्रावस्ती नगर के दक्षिण पूर्व था। राजा ने इसे उपासिकाओ तथा श्राविकाओ के लिए निर्माण कराया था। राजकाराम शब्द से ही स्पष्ट है कि वह राजकीय आराम था। स्व० श्री राहुल साकृत्यायन ने इसे श्रावस्ती नगर के प्राकार के भीतर ही नगर मे रक्खा है। इसकी स्थिति दक्षिण द्वार से पश्चिम उत्तर की दिशा मे पडती है। फाहियान तथा युआन चुआग दोनो ने इसे देखा था। इसे भिक्षुणी सघाराम कहा गया है।

साल्ह[1] तथा दूसरा उपदेश उसने पेखुनिय[2] के पौत्र को दिया था। वह दूसरा उपदेश उसने जेतवन मे दिया था। उसकी वाणी इतनी मधुर एव भाषा प्राजल थी कि भगवान् उसकी ओर आकर्षित हुए थे।

भवन के बाहर खडे होकर सुनने लगे। द्वार भीतर से बन्द था। बहुत देर तक उसका उच्चस्तरीय मधुर भाषण सुनते रहे। खडे-खडे भगवान् की पीठ मे दर्द होने लगा। परन्तु वे उपदेश के बीच मे विघ्न नही डालना चाहते थे। उपदेश समाप्त हुआ। भगवान् ने द्वार खटखटाया।

द्वार खुला। नन्दक तथा श्रोता भिक्षु चकित हो गये। भगवान् द्वार मे खडे थे। अकेले थे। भगवान् को देखते ही सबने उनकी वन्दना की। अभिवादन किया। नन्दक ने क्षमा प्रार्थना करते हुए कहा .

'भन्ते! क्षमा करे! हमे मालूम नही था। आप बाहर खडे है।'

'नन्दक! तुम्हे मै साधुवाद कहने आया हूँ। मुझे तुम्हारा उपदेश प्रिय लगा। इसलिए खडा सुनता रहा।'

नन्दक प्रशसा सुनकर लज्जित हो गया। भगवान् ने पुन कहा :

'नन्दक! सभी पुण्यकर्मा भिक्षुओ का यह कर्त्तव्य है कि इसी प्रकार उपदेश दिया करे।'

नन्दक ने भगवान् को शिरसा नमन किया। भगवान् भवन से चले गये। नन्दक ने अपना उपदेश पुन आरम्भ किया।

× × ×

---

(१) साल्ह इन्हे मृगार नट कहा जाता है। यह एक बार पेखुनिय के साथ नन्दक के पास गये थे। उसने श्राविकाओ के निमित्त एक विहार का निर्माण कराया था। सुन्दरी नन्दा उस विहार का काम देखती थी। सुन्दरी नन्दा और वे परस्पर मिलते रहते थे। उनमे अनुराग उत्पन्न हो गया। एक बार सुन्दरी को अपने घर ले जाने के लिए सभी श्राविकाओ को उसने आमन्त्रित किया। नन्दा ने साल्ह का विचार जान लिया। वह नही गयी। किन्तु साल्ह विहार मे दौडा आया। और नन्दा से मिला।
वुद्ध घोप का मत है कि मृगरनट विशाखा का पौत्र था।

(२) पेखुनिय यह रोहन का पौत्र था। उसे पेखुनिय नट कहा जाता है।

'नही भन्ते ।'

'क्यो भगिनियो ?'

'जिस कारण से वेदना उत्पन्न होती है। उन कारणो के विरोध से वेदना निरुद्ध हो जाती है।'

'भगिनियो ! महावृक्ष का मूल अनित्य है। स्कन्ध अनित्य है। शाखा अनित्य है। पत्र अनित्य हैं। छाया अनित्य है। कहते है। मूलादि अनित्य है। परन्तु छाया नित्य है। क्या उनका कहना ठीक होगा।'

'नही भन्ते।'

'क्या कारण है भगिनियो ?'

'जब मूलादि अनित्य है तो उनसे होने वाली छाया कैसे नित्य होगी भन्ते ?'

'ठीक है। उसी प्रकार जो कहता है। छः बाह्य आयतन अनित्य है। किन्तु आयतनो द्वारा उत्पन्न वेदना, सुख-दु खादि नित्य है। क्या यह कहना ठीक होगा ?'

'नही भन्ते।'

'भगिनियो ! एक चतुर गो घातक है। वह गाय को मारता है। गाय के शरीरस्थ मास तथा बाह्य त्वचा को हानि पहूँचाता है। बिना गाय को अनुपहत्य किये उसे तेज धुरा से छेदन करे और काटे। बाह्य त्वचा को साफ कर उस गाय को उस त्वचा मे रख दे और कहे—यह गाय पूर्ववत् है तो क्या यह कहना ठीक होगा ?'

'नही भन्ते।'

'भगिनियो ! मैने यह उपमा अर्थ समझाने के लिये दी है।'

'क्या अर्थ है भन्ते ?'

'अन्तस्थ मास काय छ' आध्यात्मिक आयतनो के नाम है। बाहरी चर्म काय छ बाहरी आयतनो के नाम है अन्तस्थ मास, अन्तस्थ स्नायु बन्धन राग है। तीक्ष्ण गोविकर्तन आर्य प्रज्ञा का नाम है। यह आर्य प्रज्ञा आन्तरिक मल, अन्तस्थ वन्धन को छेदती है। काटती है।'

'भन्ते! आस्रवो का क्षय कैसे सम्भव होगा।'

'भगिनियो ! सात बोध्यग है। इनके अभ्यास द्वारा इस जन्म मे आस्रवो से व्यक्ति मुक्ति पाता है।'

भन्ते ! सत वोध्यग क्या है।'

'नही भन्ते।'

'बोलो भगिनियो! श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया यह सब तुम्हारे है ?'

'भन्ते! नही।'

'मन नित्य है अथवा अनित्य ?'

'अनित्य है। भन्ते!'

'क्या नित्य समझना युक्त है ?'

'नही भन्ते।'

'कारण–भगिनियो ?'

'भन्ते! पूर्वकाल मे हमने प्रज्ञा द्वारा इसे देखा था। हमारे आध्यामिक आयतन अनित्य है।'

'साधु! साधु!! भगिनियो। अच्छा, उत्तर दो। रूप नित्य है अथवा अनित्य ?

'अनित्य।'

'शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्म नित्य है या अनित्य।

'अनित्य है भन्ते।'

'चक्षु विज्ञान नित्य है अथवा अनित्य ?'

'भन्ते! अनित्य।'

'श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन विज्ञान नित्य है अथवा अनित्य ?'

अनित्य है भन्ते।'

'भगिनियो! जलता तैल दीप देखा है ?'

'देखा है भन्ते!'

'भगिनियो! तैल अनित्य है। विपरिणामधर्मा है। दीप बत्ती अनित्य है। विपरिणामधर्मा है। अर्चि अनित्य है। विपरिणाधर्मा है। आभा अनित्य है।

'हा भन्ते।'

'क्या उन्हे नित्य कहना उचित होगा ?'

'नही भन्ते।'

'क्योकि अनित्य है।'

'भगिनियो! इसी प्रकार, जो कहता है कि उसके छः आयतन अनित्य है। किन्तु आततनो का अनुभव, सुख, दु.ख अथवा असुख-अदु:ख नित्य है। शाश्वत है। क्या यह विचार ठीक है ?'

अड्ढकाशी

काशी मे एक कुलीन तथा प्रतिष्ठित नागरिक की अड्ढकाशी[1] कन्या थी। कालान्तर मे रूप और गुणग्राहकता के कारण वह गणिका हो गयी थी।

भगवान् का उसने उपदेश सुना। भिक्षुणी हो गयी। भगवान् का धर्म द्वार सबके लिए खुला था। उसमे मनुष्य मनुष्य मे भेद का स्थान नही था। जाति, वर्ग अथवा गोत्र का एकाधिकार नही था। भगवान् ने धर्म और मनुष्य के बीच कोई माध्यम नही रखा था। धर्म का मूलाधार लोकतन्त्रीय था।

वह इतनी सुन्दर और कला-पटु थी कि काशी राज्य की जितनी आय थी उतनी उसकी एक रात्रि का शुल्क होता था। उसकी सेवा का मूल्य इससे कम नही होता था।

किन्तु उसका वह अनुपम सौन्दर्य उसकी ग्लानि का हेतु हुआ। उस रूपाजीवा को अपने सौन्दर्य से घृणा हो गयी थी। उसने तीनो विद्याओ का साक्षात्कार किया था। उसने भगवान् के शासन को पूरा किया था। उसकी रुचि धर्म मे निरन्तर बढती गयी।

भिक्षुणी की इच्छा हुई। भगवान् से वह उपसम्पदा प्राप्त करे। भगवान् उन दिनो श्रावस्ती मे विहार कर रहे थे।

---

(१) अड्ढ काशी नामकरण के कई कारण दिये गये है अर्ध=अड्ढ अर्थात् अर्ध काशी इसलिए कहा जाता था कि वह आधा सहस्र मुद्रा एक रात्रि का पारिश्रमिक लेती थी। अश्वघोष के अनुसार काशी का अर्थ एक सहस्र था। एक सहस्र का आधा वह लेती थी इसलिए अड्ढ काशी उसका नाम प्रसिद्ध हो गया था।

'भगिनियो ! वे स्मृति, धर्म विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रान्धि, समाधि और उपेक्षा है ।'

भिक्षुणियाँ विचारशील हो गयी । आयुष्मान् नन्दक ने कहा :

'भगिनियो ! जाने का समय हो गया ।'

भिक्षुणियो ने नन्दक को अभिनदित की । आसन से उठी । उनका अभिवादन किया । प्रदक्षिणा की । उन्होंने निश्चय किया । भगवान् के पास जाने का ।

भगवान् के पास वे गयी । भगवान् ने उन्हे देखकर पूछा

'भिक्षुणियो ! यह जाने का समय है ।'

भिक्षुणियो ने भगवान् का अभिवादन किया । प्रदक्षिणा को । वहाँ से प्रस्थान की ।

भगवान् ने नन्दक को सम्बोधित किया ·

'नन्दक ! कल पुन भिक्षुणियो को अपवाद से उपदेश दो ।'

'भन्ते ! नन्दक ने भगवान् को शिरसा प्रणाम किया ।

× × ×

—भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे छत्तीसवा स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती कुलगृहोत्पन्न नन्दक भिक्षुणियो के उपदेशको मे अग्र हुए थे ।

●

आधार ग्रन्थ

मज्झिम निकाय ३ ५ ४

थेर गाथा १८९, उदान २७९-२८२

A i . 25, 193, iv 358.

A A . ii 794.

Apadan i 499.

MA i : 348.

Thag A i : 384.

'उसकी प्रक्रिया क्या होगी भन्ते ?'

'भिक्षुणी' दूत गणिका के पास जायगी। भिक्षुणी दूत सघ के सम्मुख उपस्थित होगी। कन्धा पर उत्तरासग होगा। भिक्षुओ के चरणो की वन्दना करेगी। उकड़ू वैठेगी। करबद्ध निवेदन करेगी

'आर्ये! अमुकनाम्नी भिक्षुणी अमुकनाम्नी उपसम्पदा की इच्छुक है। उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुणी संघ मे दोपो से मुक्त है। वह किसी कारण किंवा अन्तराय के कारण उपस्थित होने मे असमर्थ है। अमुकनाम्नी सघ से उपसम्पदा माँगती हे।

आर्यो! संघ कृपया उसका उद्धार करे।

'तीन बार इस प्रकार उक्त बाते दुहराई जाय। तत्पश्चात्, ज्ञप्ति, अनुश्रावण तथा धारण की प्रक्रिया की जायेगी।

'जिस तरह उपसम्पदा दी जायगी वह समय सगीति बताना चाहिए। समय जानने के लिए छाया नापी जायगी। ऋतु का प्रमाण तथा दिन का भाग बताना चाहिए। यही सगीति होगी। भिक्षुणियो को तीन निश्चय तथा आठ अकरणीय बताना चाहिये।'

आधार ग्रन्थ

थेरी गाथा २२, उदान २५-२६

चुल्लवग्ग १० ५ ६

Ap 11 610-611

Thig vso 25-26.

Thig A : 30, 32

Sp 1 : 242.

Vin 11 : 277

V T, 111 , 306, 11 195-96

नगर के धूर्तो ने सुना। गणिका श्रावस्ती जायगी। धन अपहरण की योजना बनायी। श्रावस्ती के मार्ग मे गणिका की सम्पत्ति लूटने के लिए बैठ गये।

गणिका को बात मालूम हुई। उसने यात्रा स्थगित कर दी। भगवान् के पास दूत भेजा। सब घटना दूत को समझा दी। वह भगवान् से निवेदन करे—'गणिका भगवान् से उपसम्पदा चाहती है। वह धूर्तो के कारण नही आ सकती। इस स्थिति मे क्या करणीय है ?'

× × ×

दूत श्रावस्ती पहुँचा। भगवान् से गणिका की प्रार्थना निवेदन किया। भगवान् ने भिक्षु सघ को आमन्त्रित किया।

सघ एकत्रित हुआ। भगवान् ने सघ को उद्बोधित किया .

'भिक्षुओ! दूत द्वारा उपसम्पदा दी जा सकती है। मै इसकी अनुमति देता हूँ।'

'किस प्रकार भन्ते!'

'भिक्षुओ! भिक्षु दूत भेजकर उपसम्पदा नही देनी चाहिए।'

'क्या करना चाहिए भन्ते!'

'शिक्षमाण दूत द्वारा उपसम्पदा देना चाहिये। उसे भेजना चाहिये।'

'और-भन्ते!'

'श्रमणो! दूत भेजना उचित है।'

'और-भन्ते ?'

मूर्ख अज्ञ दूत द्वारा उपसम्पदा नहीं करना चाहिए।'

'उससे क्या होगा ?'

'दुक्कट[2] होगा। दोप होगा।'

'कैसा दूत भेजा जाय भन्ते ?'

'चतुर दूत भेजा जाय। तदर्थ दूत भेजा जाय। इस प्रकार के भिक्षु दूत से उपसम्पदा दिलानी चाहिए।'

---

(२) दुक्कट दुष्कृति।

पक्षी कब तक उडता रहता। उसे गठरी भारी लगने लगी। शिथिल होने लगा। पर्वत मूल मे हरित वृक्ष देखा। स्थान अल्लकप[१] के आश्रम के समीप था। उसने कम्बल सहित वृक्ष के ऊपर छोड दिया। रानी पत्तियो पर गिरी थी। वृक्ष सघन था। वह गिर न सकी।

रानी के जान मे जान आयी। उसे आकाश से गिरने का भय था। एक भय समाप्त हुआ। दूसरे भय का आरम्भ हुआ। पक्षी से भय उत्पन्न हो गया। पक्षी का आहार न बन सका।

रानी ने पूरी शक्ति एकत्रित की। शोर किया। ताली बजायी। उसे आशा थी। उसकी पुकार पर लोग आ जायेंगे। उसकी रक्षा करेंगे। किसी मानव का वहाँ दर्शन नही हुआ। किन्तु पक्षी शोर सुनकर भय-भीत हुआ। भाग गया।

रानी तीन दिनो तक वृक्ष पर बैठी रही। पानी बरसता रहा। बाल कम्बल मे सिकुड गये। कम्बल के कारण जीवन खतरे मे पडा था। कम्बल के कारण आकाश मे वह रक्षित हुई थी। कम्बल सहायक हुआ वर्षा से रक्षा करने मे।

पर्वत मूल के समीप एक तपस्वी रहता था। अरुणोदय था। तपस्वी घूमता पर्वत मूल मे आया। रानी ने वृक्ष शिखर से उसे देखा। उसे जीवन आशा हुई। उसने पुकारा। तपस्वी वृक्ष के समीप आया।

उसने वृक्ष पर वस्तु देखी। उसे किसी विशाल पक्षी का भय हुआ। किसी हिंसक पशु का भय हुआ। किसी वैताल का भय हुआ। तपस्वी

---

(२) अल्लकप : वह अल्ल कप्प के राजा थे। वह राजा वेठदीपक के मित्र थे। दोनो ने ससार त्याग कर साधु हो गये थे। हिमालय पर निवास करने लगे थे। वे पहले एक साथ रहते थे। तत्पश्चात् अलग रहने लगे। पन्द्रहवें व्रत के दिन मिल लेते थे।

वेठदीपक ने देखा कि अल्लकप्प को हाथी परीशान करते थे। उसने एक Lute अल्लकप्प को दिया। उसमे तीन तार थे। पहला बजाने पर हाथी भाग जाते थे। दूसरा बजाने पर वे भागते थे परन्तु हर पग पर पीछे मुडकर देखते थे। तीसरा बजाने पर हाथियो का नायक आता था। अपने पीठ पर बजाने वाले को बैठा लेता था। अल्लकप्प राजा ही वह अल्लकप साधु था।

उदयन

कौशाम्बी राज्य था। बौद्ध काल था। नगर धन-धान्य सम्पन्न था। गौरवशाली था। सास्कृतिक केन्द्र था। राजा परन्तप[1] था। उसकी राजमहिषी गर्भवती थी।

एक समय राजा अपनी राजमहिषी के साथ बैठा था। धूप का सेवन कर रहा था। राजमहिषी लाल कम्बल ओढे थी।

हत्थिलिंग पक्षी आकाश मे उड रहा था। लाल कम्बल ओढे रानी को देखा। उसे भ्रम हुआ। मास का लाल टुकडा समझा। बुभुक्षा तीव्र हो गयी।

रानी पर टूटा। कम्बल चोच मे दबाया। वेग से उडा। रानी जीवन भय से काँप उठी। कम्बल मे लिपटी रही। निस्तब्ध रही। कुछ करने का साहस नही हुआ।

पक्षी उसे छोड सकता था। आकाश से रानी ताल फल की तरह गिर सकती थी। जीवन लीला समाप्त हो सकती थी। उसने चुप रहना अच्छा समझा।

राजा किकर्त्तव्यविमूढ हो गया। शोर करने लगा। पक्षी के पीछे कुछ दौडा। परन्तु पक्षी गगन मे सवेग लोप हो गया। राजा अपनी विवशता पर खीझ उठा। उसे अपने ऊपर क्रोध आने लगा।

रानी को वस्तुस्थिति समझने मे देर न लगी। कम्बल को दृढतापूर्वक पकड लिया। जीवन मृत्यु के झूले मे झूलती रही। पक्षी आकाश मे उडता रहा। रानी का प्राण कमल पत्र पर पडे चचल जल विन्दु की तरह था। किसी क्षण टपक सकती थी।

---

(१) परन्तप कोशाम्बी का राजा था। उदयन का पिता। इसका विशेष उल्लेख नही मिलता।

रानी तपस्वी के साथ थी। उसके पति कौशाम्बीराज परन्तप की मृत्यु हो गयी। रात्रि मे तपस्वी ने नक्षत्र देखा। उससे मालूम कर लिया।

तपस्वी अल्लकप्प ने रानी को सूचित किया—'तुम्हारे पति का देहान्त हो गया। तुम्हारी क्या इच्छा है।'

रानी पति वियोग से दु.खी थी। वह सहसा कुछ उत्तर न दे सकी। तपस्वी ने कुछ समय पश्चात् पुन पूछा .

'तुम्हारा पुत्र यहाँ निवास करेगा अथवा अपने पिता का छत्र धारण करेगा ?'

'उससे पूछूगी।'

रानी ने पुत्र से पूछा। उसका विचार जानना चाहा। सम्पूर्ण कथा सुना गयी। पुत्र को अपने वास्तविक पिता का ज्ञान हुआ। उसे गर्व हुआ। उसने कहा—'मै यहाँ तपस्या कर क्या करूँगा ? मै राजा का पुत्र हूँ। अपने पिता का छत्र धारण करूँगा।'

रानी ने तपस्वी से पुत्र की इच्छा प्रकट की। तपस्वी ने कहा—'अच्छा।'

× × ×

तपस्वी हस्तिकान्त मन्त्र जानता था। उसे शक्र ने मत्र दिया था। शक्र एक वार उससे प्रसन्न हुए थे। उसकी कुटी पर आये। उससे कहा—

'तुम्हे यदि कष्ट हो तो मै दूर करूँ ?'

'हाथी घेरते है।' तपस्वी ने अपना अत्यन्त लघु दुःख शक्र से निवेदन किया।

'दु ख निवारण होगा तपस्वी ?' शक्र ने प्रसन्न वाणी से कहा। तपस्वी कृतार्थ हो गया। उसने इन्द्र को प्रणाम किया। इन्द्र बोले ·

'तपस्वी ! यह हस्तिकान्त वीणा है। यह हस्ति कान्त मत्र है। हाथी भगाने के लिए मत्र पढ कर वोणा बजान पर हाथी भाग जायेगे।'

'ओर बुलाने के लिये देवेन्द्र ?'

'यह भी मत्र है। हाथी बुलाना हो तो इस मत्र को पढ कर वीणा बजाना। हाथी आ जायेगे।'

को रानी ने हिचकता देखा। उसने कम्बल से मुख निकाला। आवाज़ दिया। तपस्वी को मानव ध्वनि सुनकर और विस्मय हुआ।

तपस्वी की भयाकुल मुद्रा रानी ने देखा। उसने तुरन्त सुसंस्कृत वाणी मे कहा

'तपस्वी! मै मानव हूँ। कृपया मेरी सहायता कीजिएगा?'

तपस्वी ने वृक्ष पर देखा। एक सुन्दर महिला थी। उसका भय तिरोहित होने लगा। कौतूहल हुआ। वह अनिन्द्य सुन्दरी वहा किस प्रकार आ गयी थी। तपस्वी ने ऊपर देखते हुए प्रश्न किया

'देवी! आपकी जाति क्या है?'

'मुने! मै मनुष्य हूँ। विपत्ति मे हूँ। कृपया यहाँ से उतारिये।'

'शाखा पकडकर उतर आइये।'

'साधु! मै गर्भिणी हूँ। कैसे ऊँचे-नीचे पाँव रख सकती हूँ। गिर सकती हूँ। गर्भ नष्ट हो सकता है।'

'तो क्या करूँ—?'

'सीढी मँगाइये।'

'अच्छा'

× × ×

तपस्वी अल्लकप्पने एक सीढी बनवायी। सीढी वृक्ष पर लगायी गयी। रानी वृक्ष से उतरी। तपस्वी के प्रति आभार प्रदर्शित किया। उन्हे प्रणाम किया। तपस्वी रानी को अपनी कुटी मे लाया। उसे पतली खिचडी खिलाया। उस आपत्ति काल मे वह खिचडी भूखी रानी को अमृत से भी उत्तम लगी।

रानी को प्रसव वेदना हुई। उसे पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। बालक वर्षा ऋतु तथा पर्वत ऋतु के साथ जन्म लिया था। उसका नाम उदयन रखा गया।

रानी ने अपना पूरा परिचय तपस्वी को दिया। शिशु रक्षा के लिये निवेदन किया। तपस्वी फलादि से माता तथा उसके शिशु का भरण-पोषण करने लगा। रानी लौटी नही। तपस्वी की कुटी मे रह गयी। उसका एकमात्र जीवन आधार शिशु था। उसी के भविष्य पर उसकी आँखे लगी थी।

कौशाम्बी नगर पर घेरा डाल दिया। सन्देश भेजा—'मै राजा का पुत्र हूँ। कम्बल और अगूठी मेरे पास चिन्ह है। मेरी माता जीवित है। जिन्हे विश्वास न हो वे मेरे पास आएँ। मुझे अपने पिता का राज्य चाहिए। छत्र चाहिए। सम्पत्ति चाहिए।'

किसी को विरोध करने का साहस नही हुआ। कोशाम्बी नगरी का द्वार खुला। जयघोष के साथ, विशाल अवैतनिक सेना के साथ, विशाल हाथी समूह के साथ, उसने नगर मे प्रवेश किया।

पुरोहितो ने, अमात्यो ने, मन्त्रियो ने, पौरजनो ने उदयन को राजा स्वीकार किया। उसे छत्र मिला। सिहासन मिला। सम्पति मिली। कुशल राजा हुआ। किन्तु वह अपना शिल्प भूला नही। अवकाश मिलते ही वनो मे चला जाता था। हाथी का सग्रह करता था।

उदयन ने घोपक को अपना कोपाध्यक्ष बनाया। उसने घोषक की धर्मपुत्री सामावती से विवाह कर लिया।

× × ×

चण्डप्रद्योत उज्जैन का राजा था। उसने सकल्प किया। हाथी पकडने की विद्या उदयन से ग्रहण करेगा। उदयन उसके लिए सहज तैयार नही था।

प्रद्योत ने एक काठ का हाथी[1] बनाया। उसके भीतर बहुत से योद्धाओ को बैठा दिया। उदयन को हाथी पकडने का शौक था। वह उस हाथी के पास गया। उसके पहुँचते ही काठ के हाथी का द्वार खुला। वर्मधारी सशस्त्र सैनिक हाथी के पेट से बाहर कूद पड़े। उदयन चकित हो गया। कुछ न कर सका। छल का शिकार बन गया। पकड़ लिया गया।

---

(१) काष्ट हाथी ट्राय नगर का पतन काष्ठ के घोडे के कारण हुआ था। यूनानियो ने ट्राय का पतन होता न देखकर काठ का घोडा बनाया। उसमे सैनिक बैठा दिये गये। ट्राय वाले कौतूहल वस घोडा दुर्ग में ले गये। रात्रि मे सैनिक घोडा से बाहर निकल आये। दुर्ग का द्वार खुला। यूनानी सैनिकों का प्रवेश हुआ और ट्राय का पतन हुआ।

तपस्वी ने हस्ति कान्त मंत्र उदयन को सिखाया। कुमार तेजस्वी था। मेधावी था। चतुर था। मंत्र सीख गया।

उदयन[1] कुमार ने परीक्षा करने का विचार किया। वह एक वट वृक्ष पर चढ गया। उसने हाथी बुलाने के लिये वीणा वादन दिया। हाथियो का समूह आ गया।

उसने उन्हे भगाने के लिये पुन वीणा वादन किया। हाथी भाग गये। शिल्प पर विश्वास हो गया। अपनी शक्ति सचय तथा राज प्राप्ति के साधन मे लगाने का विचार किया। उसे शिल्प के माहात्म्य तथा शक्ति का ज्ञान हुआ।

दूसरे दिन उसने वीणा वादन किया। हाथियो का विशाल समूह उसके सम्मुख एकत्रित हो गया। हाथियो के नायक ने उसके सम्मुख मस्तक झुका दिया।

उदयन उसके स्कन्ध प्रदेश पर आरूढ हो गया। उसने युद्ध योग्य युवक हाथियो का चयन किया। उसने लाल कम्बल जिसे ओढकर[2] माँ वृक्ष पर आयी थी ले लिया। साथ ही पिता को अँगूठी माता से माग ली। माता की वन्दना की। तपस्वी की वन्दना की। प्रदक्षिणा की। तपस्वी ने मगल कामना की। स्वस्ति वाचन किया।

उदयन राज्य प्राप्ति के लिये हस्ति समूह के साथ प्रयाण किया। माता की आँखे भर आयी। वह पुत्र की ओर एक टक उस समय तक देखती रही। जब तक वह ओझल नही हो गया।

मार्ग मे उदयन ने घोषणा की। वह राज्य प्राप्त करने जा रहा था। जिन्हे सम्पत्ति की इच्छा हो। वे साथ आये। उदयन के पीछे साहसी युवक योद्धाओ का विशाल समूह लग गया। बिना धन व्यय किये। उसने एक सेना संगठित कर ली।

---

(१) उदयन नाम के अनेक लोगो का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थो मे आया है। कम से कम सात उदयन के नामो का उल्लेख स्पष्ट किया गया है। उदयन भिक्षु, कोसल के उदयन उपासक, उदयन सुमन बुद्ध के उपस्थापक, उदयन कौण्डप्प बुद्ध के साथी, राजा उदयन चैत्य, उदयन सिद्धत्थ बुद्ध के पिता, जिन्हे जयसेन भी कहा जाता है, उदयन राजा, आदि भिन्न-भिन्न व्यक्ति है।

सामावती

> अप्पमादो अमत पद पमादो मुच्चनो पद ।
> अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥

(अप्रमाद अमृत पद है । प्रमाद मृत्यु पद है । अप्रमादी की मृत्यु नही होती । प्रमादी तो मृत स्वरूप हे ।)

—ध० २१

कोशाम्वी के राजा उदयन थे । उनकी तीन रानियाँ थी ।[1] एक का नाम मागन्दिय था। दूसरी का नाम सामावती (श्यामावती) था। तीसरी का नाम वासवदत्ता था । सामावतो भद्रवति राष्ट्र के भद्रिका[2] नगर के भद्रवतिक[3] श्रेष्ठी की कन्या थीं ।

भद्रावती मे भयकर प्लेग फैला । नर-नारी मरने लगे। भद्रवतिक सेठ सामावती तथा कुटुम्व की प्राण रक्षा निमित्त भद्रावती से भागकर कोशाम्वी मे आकर शरण ली ।

घोपित[4] श्रेष्ठी का अन्न सत्र कोशाम्बी मे चलता था। पास मे

---

(१) एक मत है कि उदयन की तीन रानियाँ थी ।

(२) भद्रिका किवा भद्दिय । अग देश मे एक नगर था ।

(३) भद्रवतिक यह एक निगम भद्रवती था । सामावती के पिता भद्रवतिय श्रेष्ठीका निवास स्थान था । कौशाम्वी तथा भद्दवती अथवा भद्रवती के वीच व्यापार होता था । भद्रवती के आधार पर भद्रवतिक श्रेष्ठी का नाम पडा था ।

(४) घोपित : घोपक श्रेष्ठी भी कहते है । यह राजा के एक दरवारी का पुत्र था । वह घूर पर फेक दिया गया था । एक पथिक ने उस नवजात शिशु को घूर पर से उठा लिया । कौशाम्वी के श्रेष्ठी ने उसे लेकर पाला । कुछ दिन

अवन्ती नरेश प्रद्योत ने उदयन[1] के पास अपनी कन्या वासुलदत्ता (वासवदत्ता) को भेजा। उसे समझा दिया। उदयन से शिल्प सीख ले। उदयन राजकन्या पर अनुरक्त हो गया। राजकन्या को साथ लिया। अपने नगर कौशाम्बी लौट आया। प्रजा प्रसन्न हुई नव दम्पत्ति देखकर।

---

(१) उदयन ने कालान्तर मे मागदिय से भी विवाह किया था। उसका वर्णन सामावती और खुज्ज उत्तरा के प्रसग मे किया गया है।

उदक वन कौशाम्बी मे उसका सामना पिण्डोल भारद्वाज से हुआ था। पिण्डोल को उसके प्रासाद की रमणियो ने वस्त्र दिया था। राजा ने पिण्डोल से वस्त्र ग्रहण करने के औचित्य के विषय मे प्रश्न किया। पिण्डोल ने कुछ उत्तर नही दिया। राजा ने उसे लाल चीटियो से कटाने की धमकी दी। किन्तु पिण्डोल भारद्वाज अपनी ऋद्धि शक्ति से गगन मे लोप हो गया। भारद्वाज की कालान्तर मे राजा से मित्रता हो गयी। राजा ने उससे धार्मिक प्रश्न किया था। किस प्रकार युवक भिक्षु काम पर नियन्त्रण करते थे। इसी प्रसग मे उदयन ने स्वय अपने को भगवान् का अनुयायी होना घोषित किया था।

उदयन के पुत्र का नाम बोधिराजकुमार था। उदयन भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् जीवित था। यह पता नही चलता कि बोधिराजकुमार ने उदयन के पश्चात् राज सिहासन पाया था या नही।

उदयन को वत्सराज, वशराज, कोशाम्बीराज कहा गया है। उसे वत्सराज भी कहा गया है।

●

आधार ग्रन्थ .

विनय पिटक चुल्ल वग्ग ११ ४ १

DhA i 216

J iii · 157, iv 375, 384

S iv 110.

S A iii 27

SnA , ii 514, 515

'नही भाई, यह बात नही है।' सामावती की आँखो मे आँसू आ गये

'ओह! क्या बात है?'

'भाई! पहले दिन पिता मर गये। और दूसरे दिन माता, अब मै अकेली हूँ।'

'अरे—!'

सामावती अचल से आँसू पोछने लगी। मित्त ने उसे सान्त्वना दी। उसकी पीठ सुहला कर सन्तोष दिया। कन्या रूप अनाथ जानकर उसे रख लिया।

× × ×

अन्नसत्र मे बडी भीड होती थी। कोलाहल होता था। लोग एक पर एक टटते थे। एक दिन सामावती ने वहाँ की धक्कम-धुक्की देखी। उसने अपने पोष्य पिता से कहा—'यदि कहें तो मै इन्तजाम कर दूँ?'

'निश्चय! बडा गडबड होता है।'

'मै ठीक कर दूँगी।'

एक उपाय सामावती ने निकाला। आने और जाने का मार्ग लगाकर अलग कर दिया। लोग एक पक्ति मे एक तरफ से क्रमश· आने लगे। दूसरी तरफ से निकल जाते थे। हल्ला-गुल्ला शान्त हो गया। सुचारु रूप से काम होने लगा।

घोषक ने देखा। अन्नसत्र मे हल्ला-गुल्ला नही हो रहा था। उसे आश्चर्य हुआ। कारण पूछा। सामावती की बात मालूम होने पर, उसे बुलाया। बात करने पर प्रभावित हुआ। उसे अपनी दत्तक पुत्री बना लिया।

सामावती का पूर्व नाम श्यामा था। उसने 'वती' अर्थात् घेरा बनाया था। अतएव उसका नाम सामावती पड गया।

× × ×

एक पर्व था। नर-नारी स्थान करने जा रहे थे। सामावती भी स्नान करने निकली। सरिता घाट दिशा मे जा रही थी। राजा उदयन ने उसे देखा। उसकी सोम्य मूर्ति से आकर्पित हुआ। उसके प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उसके कुल का पता लगाया।

कुछ नही था। सामावती अन्नसत्र में भोजन लेने गयी। पहले दिन उसने तीन व्यक्ति का भोजन लिया। दूसरे दिन दो व्यक्ति का भोजन लिया। तीसरे दिन केवल एक व्यक्ति का लिया।

प्रथम दिन ही उसके पिता का देहान्त कोशाम्बी पहुँचने पर हो गया। दूसरे दिन उसकी माता का अवसान हो गया। तीसरे दिन जब उसने केवल एक ही व्यक्ति के लिए भोजन माँगा तो मित्त[1] जो भोजन बाँट रहा था उसे चिढाया—

'आज तुम्हे मालूम पडता है तुम्हारे पेट की स्थिति मालूम पडी है।'

'क्या कहते हो भाई ? मैं समझ नही सकी ?' सामावती से उदासीन स्वर मे जिज्ञासा की।

'पहले तुम मालूम पडता था बहुत भूखी थी, इसलिए तीन का भोजन लिया। दूसरे दिन भूख की ज्वाला कम हुई इसलिए दो का भोजन लिया। आज तुम्हे साधारण भूख लगी है। इसलिए केवल एक का भोजन ले रही हो।'

पश्चात् घोपक को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने घोपक को दासी काली के द्वारा मार डालना चाहा। पर सफल नही हुआ। उसने एक कुम्भकार को एक सहस्र मुद्रा घोपक को मारने के लिए दी। एक पत्र के साथ घोषक को कुम्भकार के पास भेजा कि पत्र पाते ही पत्र वाहक का वध कर दो। मार्ग मे घोपक को उसका दूध पीता भाई मिला। पत्र उसे देकर कुम्भकार के पास भेजा। कुम्भकार ने उसे मार डाला। श्रेष्ठी ने एक पत्र के साथ अपने ग्राम के व्यवस्थापक के पास भेजा। उसे देखते ही मार [illegible] पत्र उसके शरीर से बाँध दिया गया ताकि दूसरे को न दे सके। मार्ग मे ग्राम श्रेष्ठी के यहाँ ठहरा। श्रेष्ठी की कन्या उस पर अनुरक्त हो गयी। पत्र कन्या ने पढा। उसके स्थान पर यह लिख कर रख दिया कि घोपक की शादी उसके साथ धूम-धाम के साथ कर दी जाय। घोपक का विवाह हो गया। श्रेष्ठी सुनते ही बीमार पड गया। मृत्यु शय्या के पास घोपक तथा उसकी पत्नी आये। श्रेष्ठी कहना चाहता था। 'मैं इसे अपनी सम्पत्ति नही देना चाहता' परन्तु मुख से निकल गया। चाहता हूँ। घोपक बडा पुण्यात्मा हुआ। राजा उदयन ने उसे अपना श्रेष्ठी बना लिया।

(१) मित्त : घोपक के अन्न सत्र का व्यवस्थापक था।

उसके माता-पिता भगवान् का उपदेश सुनकर भिक्षु भिक्षुणी बन गये थे। मागदिय अपने चाचा चुल्ल मागदिय के यहाँ रहने लगी थी।

चुल्ल मागदिय कन्या मागदिय को लेकर कोशाम्बी आया। उसके रूप से आकर्षित होकर राजा उदयन ने उससे विवाह किया। उसे रानी बना लिया। मागदिय भगवान् का वह वाक्य कभी नही भूलती—'यह शरीर मल-मूत्र का पात्र है।' उसे यह बात लग गयी थी। भगवान् से बदला लेना चाहती थी।

घोषक, कुक्कुठ[1], पावारिय[2] तथा खुज्जउत्तरा की प्रार्थना पर भगवान् का कोशाम्बी आगमन हुआ।

कोशाम्बी मे भगवान् का आगमन सुनकर मागदिय ने भगवान् से बदला लेने की योजना बनाना आरम्भ किया।

सामावती रानी की दासी ने भगवान् का उपदेश सुना। वह स्रोतापन्न हुई। रानी उससे प्रतिदिन भगवान् का उपदेश सुनती थी। रानी मागदिय को यह वात मालूम हुई। वह ईर्ष्या से जल गयी। वह भगवान् से द्वेष रखती थी। सामावती को इसका दण्ड देने का विचार किया।

सामावता तथा उसकी सखियाँ राजप्रासाद मे नव-निर्मित झरोखे से भगवान् का दर्शन करती थी। परस्पर चर्चा करती थी।

× × ×

मागदिय को अच्छा अवसर मिला। उसने राजा से कहा—'सामावती आपकी हत्या का षडयन्त्र रच रही है।' राजा ने ध्यान नही दिया। किन्तु मागदिय अपनी बात पर जोर देती गयी। राजा को नव-निर्मित झरोखा दिखाया। उसे षडयन्त्र का आरम्भ बताया गया। राजा मे सन्देह अकुरित हुआ। उसने झरोखा बन्द करवा दिया। खिडकियाँ ऊपर उठवा कर लगवा दिया। ताकि उनसे कोई बाहर न देख सके।

भागंदिय की पहली योजना विफल हुई। परन्तु भगवान् का जो दर्शन सामावती तथा उनकी सखियो को मिलता था वह वन्द हो गया। मागदिय को थोड़ा सन्तोष हुआ।

---

(१) कुक्कुट . घोपक का मित्र था।

(२) पावारिय घोपक का साथी था।

सायंकाल राजा ने घोषक के यहाँ सन्देश वाहक भेजा। सामावती राजप्रासाद में भेजी जाय। घोषक ने कन्या को राज-भवन में भेजना अस्वीकार कर दिया।

राजा क्रोधित हुआ। उसने घोषक तथा स्त्री को घर से निकलवा दिया। घर में ताला लगा दिया गया। वे बिना घर-बार के हो गये।

सामावती को बात मालूम हुई। घोषक के पास आयी। निवेदन किया :

'पिता जी! क्या बात है?'

'राजा तुम्हें राजभवन में चाहता है।'

'तो—?'

'पुत्री! मैं कैसे तुम्हें वहाँ भेज सकता हूँ।'

'इसीलिये राजा ने घर बन्द करवा दिया है?'

'हाँ पुत्री।'

'पिता जी।'

'कहो।'

'मेरी बात मानोगे?'

'क्यों न मानूँगा?'

'मैं राज भवन में जाऊँगी।

'सा—!' घोषक चिल्ला उठा। घोषक की पत्नी ने मुँह फेर लिया।

'पिता जी।'

'सामावती! यह कभी नहीं होगा।'

'पिता जी विश्वास रखो। आपकी प्रतिष्ठा पर [illegible] होगा।'

सामावती राजभवन में आयी। [illegible] राजा उदयन [illegible] बन गया। राजमन्दिर में मागंदिय भी [illegible]

[illegible] मागंदिय [illegible] मागंदिय की, जिस मागंदिय ब्राह्मण [illegible] भगवान् [illegible] [illegible] था। भगवान् ने [illegible] था। मागंदिय [illegible] भगवान् [illegible]

'इनका क्या किया जाय।'

'राजन्! इन्हे सामावती के पास भेज दिया जाय।'

'वह क्या करेगी ?'

'आपके निमित्त उन्हे पकायेगी।'

'ठीक है भेज दो।'

मागदिय के सुना। वह प्रसन्न हुई। परन्तु सामावती तथा उनकी सखियो ने पक्षियो को मारना अस्वीकार कर दिया।

मागदिय ने Page से कहा। उन्हे बुद्ध के भोजन निमित्त तैयार किया जाय। Page को सामावती ने घूस देकर मिला लिया। जीवित पक्षियो के स्थान पर मरे पक्षी रख दिये गये। सामावती ने उनका मास बनाया और भगवान् के पास भेज दिया।

× × ×

मागदिय ने अपनी यह योजना असफल होती देखकर दूसरी एक और योजना बनायी। उसने अपने चाचा से एक सर्प मंगाया। सर्प का विषैला दात उखडवा दिया। राजा उदयन वसी बजाता था। उसे अपने साथ रखता था। रानी ने वसी मे साप रख दिया। वसी का मुख एक फूल से बन्द कर दिया।

राजा उदयन एक-एक सप्ताह अपनी तीनो रानियो के अन्त.पुर मे विवास करता था। वह सामावती के अन्तःपुर की ओर जाने लगा। मागदिय ने राजा से अनुरोध किया। वहाँ न जाय। जीवन का भय है। राजा ने नही माना। मागदिय स्वय. चलने के लिये तैयार हो गयी। राजा ने उसे साथ ले लिया।

राजा गाढी निद्रा मे सो गया। मागदिय ने वसी से फूल निकाल लिया। सर्प निकला। तकिया पर गेडली मार कर बैठ गया। मागंदिय ने शोर दिया-'साप-साप-साप।'

राजा जाग उठा। उसने अपने तकिया पर सर्प देखा। वह घबडाया। मागदिय रोकर बोल उठी-'सामावती ने राजन्! आपको मारने का यह षडयन्त्र किया था।'

मागंदिय ने सामावती के विरुद्ध राजा का कान भरना आरम्भ किया। उस पर नाना प्रकार के दोषारोपण किये। परन्तु राजा ने सामावती को निर्दोष पाथा। उसे कोई एक वर मागने के लिए कहा। सामावती ने यही इच्छा प्रकट की। भगवान् प्रतिदिन राजभवन मे उपदेश देने आया करे। राजा ने सामावती की बात मान ली।

राजा ने भगवान् से निवेदन किया। राज-भवन मे प्रतिदिन उनका शुभागमन हो। वे रानी तथा राजभवन की महिलाओ को उपदेश दे। परन्तु भगवान् ने आनन्द को राजभवन भेज दिया। स्वय नही गये।

मागदिय ने कुछ दासो को रुपयो की लालच देकर एकत्रित किया। उनका काम था। राज मार्ग मे भगवान् की निन्दा करे। उनके प्रति अपशब्दो का व्यवहार करे। अपमान करे।

आनन्द ने यह स्थिति देखकर भगवान् से कहा—'हमे कही और चलना चाहिए।'

नही आनन्द!' भगवान् ने कहा, 'मै उस हाथी के समान हूँ जो मै कीचड प्रवेश किया है। मुझे उन कीचड़ो को बर्दास्त करना चाहिए, जो हम पर उछाले जा रहे है।'

सात दिन के पश्चात् भगवान् के प्रति होता प्रचार स्वत समाप्त हो गया। कहने वाले थक गये। भगवान् पर कोई प्रभाव नही पड़ा। जनता वास्तविकता समझ गयी :

× × ×

मागदिय ने दूसरी योजना बनायी। अपने चाचा चुल्ल मागदिय[1] से कहा आप आठ पक्षी एक विदूषक के साथ महाराज की मदशाला मे भेजो। जब वे मदपान रत हो।

चुल्ल मागंदिय ने योजना कार्य रूप मे परिणत किया। राजा ने उन्हे देखकर पूछा :

---

(१) चुल्ल मागंदिय मागदिय का चाचा तथा मागदिय का कनिष्ठ भ्राता था। विशेप मागदिय कथा मे द्रष्टव्य है।

क्रोधित हुआ। परन्तु उसे जब मालूम हुआ, कि आनन्द ने उसे भिक्षुओं को दे दिया और कुछ नष्ट नहीं हुआ, तो पांच सौ और भेज दिया।

मागंदिय अपनी सब योजनाओं को असफल होते देखकर प्रतिहिंसाग्नि से सुलग उठी थी। उसने सामावती तथा उसकी सखियों को नष्ट करने का अन्तिम निश्चय कर लिया।

चुल्ल मागंदिय के साथ उसने पुनः योजना बनायी। षडयन्त्रकारियो ने सामावती के प्रासाद के स्तम्भों को तेल में डुबोये कपड़ों से ढँक दिया। दाहक पदार्थ सब जगह रख दिये। निश्चित समय पर आग लगा दी गयी। प्रासाद अकस्मात् ज्वालामय हो उठा। सामावती तथा उसकी सखियो को बाहर भाग निकलने का अवसर भी नहीं मिला। सब उसमें भस्म हो गयीं।

× × ×

राजा को सामावती के मरने का बड़ा दुःख हुआ। उसने मागंदिय का यह कार्य समझा। मागंदिय के सभी सगे-सम्बन्धी इस प्रलोभन देकर बुलाये गये। राजा उन्हे पुरस्कार देगा।

वे प्रसन्नता पूर्वक एकत्रित हुए। मागंदिय अत्यन्त प्रफुल्लित थी। राजा सामावती की मृत्यु पर उसके सम्बन्धियो का सत्कार कर रहे थे। सगे-सम्बन्धियो सहित अपनी सफलता पर फूली नही समाती थी।

किन्तु राजा ने उस समूह को सैनिकों से घिरवा लिया। आज्ञा दी :

'सबको प्रासाद की भूमि मे कमर तक गाढ दो। उन पर घास-फूस रखकर आग लगा दो।'

मागंदिय चिल्ला उठी। राजा की तरफ बढी। राजा ने सैनिको को संकेत किया। वह आगे न बढ सकी। मागंदिय के सम्बन्धी उस पर बिगडने लगे। कोसने लगे। उसे मार डालने पर कटिबद्ध हो गये। मागंदिय की रक्षा सैनिको ने उसे दूर ले जाकर की। मागंदिय मूर्छित होकर गिर पडी।

राजा पाषाण तुल्य हो गया था। उस पर उसने शोक, दुःख, आर्तनाद का कुछ प्रभाव नही पडा। उठकर राजप्रासाद मे चला गया।

× × ×

'ओह्–बुलाओ उसे।' राजा को इस बार निश्चय हो गया था। सामावती सचमुच उसका अन्त करना चाहती थी। मागदिय का विचार ठीक था। उसका गलत था।

× × ×

राजा ने अपना धनुष-बाण मगाया। वह निपुण धनुर्धर था। वह एक ही बाण से कई व्यक्तियो को घायल कर सकता था।

सामावती आयी। सखियाँ उसके साथ थी। मागंदिय मुसकुराई। सामावती ने अनुपम किया। विनय किया। वह निर्दोष थी। राजा ने एक बात नही मानी। उन्हे एक पंक्ति मे एक के पीछे दूसरे को खडा करवा दिया। सबसे आगे सामावती थी।

राजा ने सामावती के हृदय को लक्ष्य कर बाण छोडा। सामावती किंचित् मात्र विचलित नही हुई। बाण छूटते ही मागदिय प्रसन्नता से उछली। परन्तु बाण सामावती को स्पर्श नही कर सके। गिर पडे। राजा चकित हुआ।

मागगिय उदास हो गयी। वहाँ से भागी। सामावती शान्त खडी रही। राजा को विश्वास हो गया। सामावती निर्दोष थी। राजा प्रेम से उसके पास चला गया। मधुर स्वर मे पूछा

'रानी! तुम पर व्यर्थ आरोप लगाया गया था।'

'होता ही रहता है राजन्!'

'रानी! तुम्हारी मै क्या इच्छा पूर्ण कर सकता हूँ।'

'आर्य! भगवान् यहाँ प्रतिदिन उपदेश देने आया करे।'

'आवश्य आयेगे आर्ये!'

× × ×

राजा ने भगवान् के पास निमन्त्रण भेजा। भगवान् स्वय नही आये। उन्होने आनन्द को भेज दिया।

आनन्द प्रतिदिन राजभवन उपदेश देने आने लगे। उन्हे प्रतिदिन वहाँ भोजन मिलने लगा। एक दिन उपस्थित महिलाओ ने पाँच सौ वस्त्र, जिसे राजा ने उन्हे दिया था। आनन्द को दे दिया। राजा बड़ा

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओं तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे उनहत्तरवां तथा उपासिका श्राविकाओ मे चौथा स्थान प्राप्त भद्रवती राष्ट्र भद्दिया नगर, भद्रवतिक श्रेष्ठा पुत्री, पश्चात् वत्स कोशाम्वी घोपित श्रेष्ठी की धर्मकन्या वत्सराज उदयन की महिपी सामावती मैत्री विहार प्राप्तो मे अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ :

धाम्मपद २ १

A i 26; iv 348.

A A ii 791

DhA i 187—91, 205—225,

Ud , vii 10,

सब सम्बन्धी प्रासाद के प्रांगण में कमर तक भूमि मे गाड दिये गये। उन पर घास-फूस रख कर आग लगा दी गयी। घोर आर्तनाद मे वे जल गये। जलने पर उस भूमि पर राजा ने हल चलवा दिया।

मागदिय के सुन्दर शरीर से मास के टुकडे काटे गये। उन्हे पूरी की तरह तेल मे छाना गया। मागदिय को जबर्दस्ती उसका ही काटा हुआ, पका हुआ मास जलर्दस्ती खिलाया गया।

× × ×

भिक्षाटन करने भिक्षु गये थे। उन्होने घटना का वृत्तात सुना। भस्म अन्त.पुर देखा। भगवान् के पास आये। भगवान् का अभिवादन तथा वन्दना कर पूछा .

'भन्ते! सामावती की क्या गति हुई ?'

'भिक्षुओ! भस्म होने वाली उपासिकाओ मे कुछ श्रोतापन्न थी। कुछ सकृदागामी थी। कुछ अनागामी थी।'

'उनका क्या हुआ भन्ते!'

'उनकी मृत्यु निष्फल नही हुई है।'

'किस प्रकार ?'

'जो प्रव्रजित गृहस्थ प्रमाद के साथ विहार करते है, वे जीवितावस्था मे भी मृत स्वरूप है।'

'और मागदिय रानी-।'

'वह जीवित रहकर भी मृतक स्वरूप है। मृत्यु के परान्त भी वह मृत्यु स्वरूप ही रहेगी।'

'और सामावता ?'

'भिक्षुओ! सखियो के साथ वह मर कर भी जीवित है। अप्रमादियो की मृत्यु नही होती।'

× × ×

सामावती की दो सखियाँ जिनका नाम भी सामा था इतनी दुःखी हुई कि उन्होने प्रव्रज्या ले ली।

× × ×

मुखो से जो सुना था। जिसे स्वय माना था। आज अचानक बात कैसे हो गयी। उसने शकित वाणी से प्रश्न किया :

'यह कैसे हुआ भन्ते!'

'आवुस! उसके पश्चात् मैने मनन किया। मै इसी परिणाम पर पहुँचा कि सभी सस्कार अनित्य नही है।'

'नही-नही। यह नही हो सकता।' शूर ने जोर से कहा, 'तुम तथागत नही हो।'

मार ने देखा। वह पहचाना जा रहा है। वहाँ से भागा।

•

आधार ग्रन्थ :

A 1. 26, 111 : 451

A A 1 215.

D A : 111 864.

शूर अम्वष्ट

शूर अम्वष्ट[1] का जन्म कोसल श्रावस्ती श्रेष्ठी कुल मे हुआ था। वह निर्गन्थो का अनुयायी था। एक दिन भगवान् भिक्षाचार करते उसके द्वार पर गये।

शूर ने भगवान् को घर के अन्दर आने के लिए आमन्त्रित किया। उन्हे सुखासन पर बैठाया। स्वादिष्ट भोजन दिया। भोजन के पश्चात् भगवान् ने प्रस्थान के समय शूर को धन्यवाद दिया।

शूर भगवान् के शील, व्यवहार तथा आचरण से अत्यन्त प्रभावित हुआ। श्रोतापन्न हो गया।

भगवान् ने कुछ समय पश्चात् श्रावस्ती का त्याग किया। मार ने सुअवसर पाया। भगवान् का रूप धारण किया। शूर के पास आया। शूर ने उसका स्वागत किया। शूर से उसने कहा 'जो कुछ पहले कहा था। वह ठीक नहीं है। उसका विरोध करने आया है।' शूर ने किंचित् विस्मित स्वर मे प्रश्न किया।

'आवुस ! मैने कहा था। सभी सस्कार अनित्य है।'

'फिर–।'

'किन्तु यह वात ठीक नही है।'

'तो क्या ठीक है भन्ते ?'

'सभी सस्कार अनित्य नही है।'

'अच्छा–।'

शूर विस्मित हुआ। भगवान् का जो उपदेश सुना था, दूसरो के

---

(१) अम्वष्ट से शूर अम्वष्ट को नही मिलाना चाहिए। इस प्रकार की त्रुटियाँ कई वार लेखको ने की हैं।

सम्बन्ध हो गया था। राजा प्रसेनजित् को शंका थी। शाक्य अपने वश की शुद्ध कन्या नही देगे। राजा ने वासभ क्षत्रिया और महानाम को एक ही पात्र मे भोजन करने के लिये कहलवाया। ठीक भोजन के समय एक दूत आया। महानाम उठ कर चले गये। कन्या ने भोजन किया। सब लोगो ने समझा। महानाम ने कन्या के साथ भोजन किया। इसका विस्तृत वर्णन मैने विदूडभ की कथा में किया है। यहाँ उसे पुन लिखना अप्रासगिक होगा।

कपिलवस्तु मे शाक्यो ने सस्थागार निर्माण कराया था। उसका उद्घाटन नही हुआ था। उसमे कोई श्रमण किवा ब्राह्मण ने निवास नही किया था। शाक्य भगवान् के पास पहुँचे। उनमे महानाम भी था। भगवान् की वन्दना कर शाक्यो ने निवेदन किया ·

'भन्ते! कपिलवस्तु मे हम शाक्यो ने नवीन संस्थागार निर्माण कराया है।'

'अच्छा किया आवुसो।'

'भन्ते! सर्वप्रथम भगवान् उसका उपभोग करे।'

'क्यो शाक्यो ?'

'भन्ते! आपके उपयोग करने पर कपिलवस्तु के शाक्यो के चिरकाल के लिए सस्थागार हितकर होगा। सुखकर होगा।'

भगवान् ने मौन रहकर स्वीकार किया।

× × ×

भगवान् की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी थी। शाक्यो ने सस्थागार मे बिछौना विछाया। आसन स्थापित किया। जल पूर्ण कलश रखा। तैल प्रदीप आरोपित किया। रुचिपूर्वक सज्जित किया। तत्पश्चात् भगवान् के पास पहुँचे। करबद्ध निवेदन किये .

'भन्ते! भगवान् जिसका काल समझे करे।'

भगवान् सुआच्छादित हुए। चीवर लिया। पात्र लिया। भिक्षु सघ के साथ संस्थागार के लिए प्रस्थान किया।

सस्थागार के बाहर जल-पात्र रखा था। भगवान् ने भिक्षु सघ के साथ पैर धोया। शाक्यो ने पैर धोया। संस्थागार मे सबने प्रवेश किया।

महानाम[1]

महानाम अमृतोदन के पुत्र थे। अनुरुद्ध के ज्येष्ठ भ्राता थे। भगवान् के भतीजा थे। महानाम स्वय प्रव्रजित होना चाहते थे। परन्तु कनिष्ठ भ्राता अनुरुद्ध के प्रव्रजित होने पर घर रह गये। महानाम भगवान् से एक मास ज्येष्ठ थे।

महानाम को अपने ज्येष्ठ भ्राता बुद्ध के प्रति बडी श्रद्धा थी। उनके ज्ञान को जानने की निरन्तर अभिलाषा रखते थे। एक बार भगवान् कपिलवस्तु पधारे। महानाम से रात्रि मे ठहरने के लिए स्थान की जिज्ञासा की। महानाम ने चारो ओर उपयुक्त स्थान खोजा परन्तु नही मिला। अन्ततोगत्वा भ्रन्दु कालाय के आश्रम मे ठहराया।

दूसरे दिन महानाम भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुए। उस दिन महानाम, भ्रन्दु तथः भगवान् मे धर्म की चर्चा हुई। भ्रन्दु अत्यन्त प्रभावित हुए। कपिलवस्तु त्याग कर चले गये। पुन उन्हे किसी ने इस जगत् मे नही देखा।

महानाम की एक दासी कन्या थी। उसका नाम वासभ क्षत्रिया था। उनकी दासी नागमुण्डा की कन्या थी। कोसल राज प्रसेनजित् शाक्य वंश से सम्बन्ध करना चाहते थे। परन्तु महानाम अपने शुद्ध रक्त वश की कन्या नही देना चाहते थे। महानाम ने वासभ क्षत्रिया का विवाह राजा प्रसेनजित् के साथ करने का विचार किया।

प्रसेनजित् को सन्तोष हुआ। भगवान् के वश से उनके वश का

---

(१) महानाम नाम के कई व्यक्ति हुए है। महानाम थेरा श्रावस्ती के भिक्षु थे। दूसरे महानाम पचवर्गीय भिक्षुओ मे एक थे। तीसरे महानाम एक लिच्छवी थे। पाँचवें महानाम श्रीलका के एक राजा हुए हैं। छठवें महानाम थेरी द्वीघसण्ड के हुए है। सातवें महानाम थेरा सद्धर्म प्रकाशिनी के लेखक थे।

लिए जितना आवश्यक हो, भूख प्रकोप शमन करने के लिए जितना आवश्यक हो, भोजन करते है। यह सोचकर भोजन करते है कि पुरानी भूख की वेदनाओ का नाश करेंगे। नवीन वेदनाओं को उत्पन्न नही होने देंगे। शरीर यात्रा निर्दोष होगी। विहार निर्द्वंद्व होगा।'

'आयुष्मान्! किस प्रकार श्रावक जागरण मे तत्पर होते है?'

'महानाम!' 'आनन्द ने कहा, 'दिन मे टहलना, बैठना एव आचरणीय धर्मो द्वारा चित्त को शोधित करने से होता है।'

'भन्ते! क्या करना चाहिए।'

'महानाम! रात्रि के प्रथम याम मे टहलना, बैठना एव आचरणीय धर्मो द्वारा चित्त को शोधना चाहिये।'

'रात्रि के मध्यम याम मे भन्ते?'

'महानाम! उस समय पद पर पद रखकर स्मृति सप्रजन्य युक्त, उत्थान का मन मे ध्यान कर, दाहिनी करवट सिंह शय्या से लेटना चाहिए।'

'भन्ते! रात्रि के अन्तिम याम मे?'

'महानाम! उस समय टहलना, बैठना एवं आचरणीय धर्मो से मन को शुद्ध करना चाहिए।'

'भन्ते! आर्य श्रावक सप्त सद्धर्मों मे किस प्रकार युक्त होते है?'

'महानाम! श्रद्धालु, लज्जाशील, सकोची, बहुश्रुत, आरब्ध वीर्य, स्मृति तथा प्रज्ञावान् इनके पालन से, सप्त सद्धर्मो से, आर्य श्रावक युक्त होते है।'

'भन्ते! चारो चैतसिक ध्यानो का किस प्रकार लाभ प्राप्त कर आर्य श्रावक विहार करते है।'

'महानाम! 'आनन्द ने कहा, 'चारो ध्यानो के अभ्यास से होता है।'

'भन्ते! क्या व्याख्या करेंगे।'

'महानाम! करूँगा।' आनन्द ने कहा, 'प्रथम ध्यान मे काम, अकुशल धर्म एव विवेक द्वारा उत्पन्न सतर्क, सविचार, वाले प्रथम ध्यान को मनुष्य प्राप्त होता है।'

भगवान् सस्थागार मे पूर्वाभिमुख बैठ गये। भिक्षु सघ भगवान् के पृष्ठ भाग मे पश्चिम दीवाल से लग कर बैठ गया। शाक्य पूर्व की दीवाल से लग कर पश्चिमाभिमुख बैठ गये।

सन्ध्या हुई। सस्थागार आलोकित किया गया। भगवान् ने बहुत रात तक शाक्यो को उपदेश एव धार्मिक कथा द्वारा सदर्शित, समुत्तेजित, सप्रहर्षित किया। भगवान् ने कुछ समय पश्चात् कहा

'आनन्द ! मै किंचित् विश्राम करूँगा। तुम शाक्यो को उपदेश दो।'

भगवान् ने वही चौपेती सघाट बिछा दिया। दाहिनी करवट लेट गये। पद के ऊपर पद रख लिया। स्मृति सम्प्रजन्य सहित, उत्थान की सज्ञा युक्त सिह शय्या लगाया।

आनन्द ने अपनी वक्तृता आरम्भ की .

'महानाम ! आर्य श्रावक शील युक्त, सयत इन्द्रिय, नियमित आहार, जागरूक, सप्त सद्धर्मों युक्त, इसी जीवन मे, सुख विहारोपयोगी, चारो चैतासिक ध्यानो का बिना किसी प्रकार की कठिनाई के लाभ प्राप्त करते है।'

'आयुष्मान् ! किस प्रकार आर्य श्रावक शीलयुक्त होते है।'

'महानाम ! आर्य श्रावक सदाचारी प्रातिमोक्ष सवर द्वारा सवृत हो कर विहार करते है। अणु मात्र दोष से भी भयभीत होते है। शिक्षा पदो को ग्रहण करते है। अभ्यास करते है। उस समय वह शील सम्पन्न होते है।

'आयुष्मान् ! इन्द्रिय सयत किस प्रकार होता है ?'

'महानाम ! आर्य श्रावक चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया स्पर्श आदि मे यदि आरक्षित होकर, विहार करते है, तो अभिध्या दौर्मनस्य प्रवेश करती है ! यदि मन द्वारा धर्म जानकर, मन एव इन्द्रिय मे सवर युक्त होते है, तो वे इन्द्रियो के सयम मे सकल होते हैं।'

'आयुष्मान् ! भोजन मे नियमित कैसे होते है ? कैसे भोजन की मात्रा जानने वाले होते है ?'

'महानाम ! आर्य श्रावक क्रीडा, मद, मडन, विभूषण के लिए आहार नही करते ! शरीर के लिए जितना आवश्यक हो, ब्रह्मचर्य पालन के

रहित चित्त विमुक्ति, प्रज्ञा विमुक्ति का इसी जन्म मे साक्षात्कार करता है। यह अण्डे का तीसरा फूटना है।'

'इस आर्य श्रावक को क्या कहते है ?'

'उसे विद्या-चरण सम्पन्न कहते है।'

'अद्भुत! आश्चर्य !!'

'महानाम! सनत्कुमार ब्रह्मा द्वारा गाई यह गाथा सुगीता है। सुभाषित है। अर्थ युक्त है। तथागत द्वारा अनुमत है।'

भगवान् उठकर बैठ गये। उन्होने आनन्द की प्रशसा करते हुए कहा

'साधु आनन्द! साधु!! तुमने शैक्ष्य मार्गका उचित रूप से व्याख्या की है।'

कपिलवस्तु के शाक्यो ने आनन्द के भाषण का अभिनन्दन किया।

× × ×

आयुष्मान् लोमक्ष वगीस कपिलवस्तु के निग्रोधाराम मे विहार कर रहे थे। महानाम उनके पास पहुँचे। प्रणाम किये। एक ओर बैठ गये। सुअवसर देखकर महानाम ने पूछा

'आयुष्मान्! शैक्ष्य विहार और बुद्ध विहार एक ही है, या उनमे भिन्नता है।'

'दोनो मे अन्तर है महानाम।'

'क्या अन्तर है आयुष्मान्!'

'जिन भिक्षुओ ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति नही की है, अनुत्तर योग-क्षेम निमित्त प्रयत्नशील है, पच नीवरणो के पुराण निमित्त विहार करते है! वे भिक्षु अभी शैक्ष्य है।

'वे पच निवारण क्या है भन्ते ?'

'वे काम छन्द, व्यापाद, आलस्य, औद्धत्य कौकृत्य तथा विचिकित्सा है।'

'और '

'महानाम! जो भिक्षु अर्हत हो चुके है। उनके पच नीवारण प्रहीण हो गये है। वे शिर कटे ताल वृक्ष की तरह है। वे पुन नही उग पाते।'

× × ×

'द्वितीय ध्यान भन्ते !'

'महानाम ! वितर्क एव विचार शान्त होता है आन्तरिक शान्ति, चित्त की एकाग्रता, वितर्क विचार रहित, द्वितीय ध्यान प्राप्त करता है।'

'तृतीय ध्यान भन्ते !'

'महानाम ! उस ध्यान मे साधक प्रीति से विरक्त होता है। उपेक्षक बनता है। स्मृति सप्रजन्य से युक्त होता है।'

'चतुर्थ ध्यान भन्ते !'

'महानाम ! साधक सुख एव दुःख का परित्याग करता है। इस समय तक सौमनस्य एव दौर्मनस्य दोनो का लय हो चुका रहता है। उपेक्षा द्वारा स्मृति शुद्ध हो जाती है।'

'इसके पश्चात् भन्ते !'

'महानाम ! इस अवस्था मे पहुँचे आर्य श्रावक को शैक्ष्य प्रातिपद कहा जाता है। वह निर्भेद योग्य होता है। सबोध योग्य होता है। अनुपम योग-क्षेम प्राप्ति योग्य होता है।'

'आयुष्मान् !'

'सुनो महानाम ! एक उपमा देता हूँ। अनुमान करो आठ-दस मुर्गी के अण्डे हैं। मुर्गी उन्हे सेती है। मुर्गी का इच्छा न रहने पर भी कुक्कुट पोतक स्वत बाहर निकल आते है। उसी प्रकार पन्द्रह अगो से युक्त भिक्षु निर्वेद, सम्बोध, अनुत्तर योग-क्षेम प्राप्ति निमित्त योग्य हो जाता है।'

आयुष्मान् ! पूर्वजन्म का स्मरण किस अवस्था मे उत्पन्न होता है ?'

'महानाम ! स्मृति परिशुद्धि उपेक्षा द्वारा आर्य श्रावक पूर्वजनो का स्मरण करता है यह अण्डे का पहला फूटना कहा जायगा।'

'दूसरा आयुष्मान् !'

'महानाम ! आर्य श्रावक उपेक्षा द्वारा अमानुप विशुद्ध दिव्य चक्षु द्वारा प्राणियो को कर्मानुसार गति प्राप्त करते हुए पहचानता है।' यह दूसरा अण्डे का फूटना है।

'और तीसरा—आयुष्मान् !'

'महानाम ! आर्य श्रावक उपेक्षा द्वारा आश्रवों के क्षय द्वारा आश्रय

'भगवान् के लिए कुछ भिक्षु चीवर बना रहे है। सुना है। भगवान् तीन मास पश्चात् चीवर लेकर चारिका के लिये जायेंगे ।'

'हाँ । महानाम ।'

'भगवन् । जो लोग बीमार पडे है। उन्होने भगवान् का उपदेश नही सुना है। यदि उनके लिये उपदेश दिया जाय तो उत्तम होगा ।'

'महानाम । बीमारो को चार धर्मों द्वारा आश्वासन देना उचित है ।'

'वे चार क्या हैं, भन्ते ?'

'बुद्ध, सघ, धर्म एव उत्तमशील—।'

'तत्पश्चात्—?'

'उनसे पूछना चाहिए। क्या माता-पिता के प्रति मोह-माया है ?'

'यदि कहे 'हा' ।

'महानाम । यदि मोहमाया है, तब भी मृत्यु होगी। यदि नही है, तब भी होगी। ऐसी अवस्था मे क्यो न मोहमाया की गठरी उतार फेके ।'

'यदि वे कहे–'मोह-माया प्रहीण हो गयी है ?'

'उनसे पूछना चाहिए–'पत्नी तथा सन्तानो के प्रति मोह-माया है ?'

'यदि वे कहे–'हाँ ।

'उनसे कहना चाहिए, मोह–माया रहने पर भी मृत्यु आयेगी। न रहने पर भी आयेगी। इस स्थिति मे क्यो न उसका त्याग कर निर्मल हुआ जाय ।'

'यदि वे कहे, 'मानवीय पाच काम गुणो के प्रति उनकी मोह–माया शेष है ?'

'उन गुणो के रहने पर भी मृत्यु अवश्यम्भावी है। न रहने पर भी है। क्यो न उनसे दूर रहा जाय ।'

'यदि वे कहे 'चार देवो मे उसका चित्त लगा है ?'

'त्रयस्त्रिश देव उन चार देवो से बड़े है ।'

'यदि चार देवो से मन हटाकर त्रयस्त्रिश देव मे मन लगाया हो तो ?'

कपिलवस्तु था। महानाम शाक्य गोध ।शाक्य के समीप गये। उन्होने गोधा से प्रश्न किया :

'हे गोधे ! किसको आप श्रोतापन्न मानते है ?'

'जो तीनो धर्मो से युक्त है।'

'वे तीन क्या है।'

'जो बुद्ध, धर्म एव सघ के प्रति श्रद्धावान् होते है।'

महानाम के मन मे बात बैठी नही। गोधा ने महानाम के मन की शका समझ ली। प्रश्न किया

'महानाम ! आप किसे श्रोतापन्न मानते है।'

'गोधे ! मै चार धर्मो से युक्त को श्रोतापन्न मानता हूँ।

'महानाम ! वे चार धर्म क्या है ?'

'मै उनमे चौथा उत्तमशील को और जोड देता हूँ।'

'नही।'

'तो क्या किया जाय ?'

'चलो भगवान् के पास चले।'

'हॉ ठीक है। वही बताएँगे।

महानाम और गोधा भगवान् के पास आये। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। सुअवसर देखकर महानाम ने निवेदन किया

'भगवान् ! श्रोतापन्न कौन होता है ?'

'गोधे !' भगवान् ने पूछा, 'तुमने महानाम शाक्य को उत्तर दिया था ?'

'मैने महानाम को कल्याण और कुशल के अतिरिक्त कुछ नही कहा था।'

'महानाम !' भगवान् ने कहा, "तीन सयोजनो के क्षय होने से व्यक्ति श्रोतापन्न होता है।'

× × ×

कपिलवस्तु था। भगवान् निग्रोधाराम मे विहार कर रहे थे। महानाम शक्य ने भगवान् के पास पहुंचकर निवेदन किया .

वक्कलि

> पामोज्ज बहुलो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने ।
> अधिगच्छे पद सन्तं सखारूप समं सुख ।।
>
> —छ० ३८१

वक्कलि श्रावस्ती निवासी थे। ब्राह्मण कुल मे जन्म लिया था। तीनो वेदो के विद्वान् थे। सुन्दर थे। सुआच्छादित होकर भिक्षाटन के लिए जाते थे। उनमे महापुरुषो के ३२ लक्षणो मे से कुछ लक्षण थे। ब्रह्मचर्य के कारण उनका शरीर दिव्य सुवर्ण वर्ण भभकता था।

वक्कलि युवक थे। उन्होने एक दिन देखा। भगवान् के हाथो मे पात्र था। चीवर पहने थे। साधारण भिक्षुओ के समान द्वार-द्वार भिक्षाचार कर रहे थे। वक्कलि उस परम शोभनीय रूप को देखकर विस्मित हो गये। भगवान् की रूपश्री देखने लगे। अत्यन्त प्रमुदित हो गये। सर्वदा भगवान् का रूप देखना चाहते थे। भगवान् भिक्षाटन कर विहार मे चले आये। वक्कलि लौट आया।

× × ×

वक्कलि ने विचार किया। यदि वे भिक्षु हो जायँ तो सर्वदा भगवान् का रूप देखते रहेगे। इस निश्चय के साथ प्रव्रज्या ले लिए। भगवान् के समीप रहने लगे। उन्हे देखते रहते थे। हटते नही थे। ध्यान-भावना के स्थान पर वह भगवान् के रूप-सौन्दर्य को निरखते रहते थे।

शनै.-शनै. वक्कलि की अपरिपक्व बुद्धि का विकास होने लगा। उस अपरिपक्व बुद्धि काल मे भगवान् ने वक्कलि से कुछ नही कहा। वे समय देख रहे थे। वक्कलि की गतिविधि तथा कामना का उन्हे ज्ञान था। वक्कलि का ज्ञान कुछ परिपक्व हुआ। भगवान् ने एक दिन वक्कलि को सम्बोधित किया .

'महानाम ! त्रयस्त्रिंश देव से याम देव, तुषित देव, निर्माण रति देव, पर निर्मित, वश वर्ती देवो से ब्रह्मलोक बडा है।'

'यदि वे हे–'सब देवो से हटाकर ब्रह्मलोक मे मन लगा दिया है तो ?,

'आयुष्मान्। ब्रह्मलोक भी अनित्य है। अध्रुव है। सत्काम की अविद्या से युक्त है।'

'तो क्या करे–?'

'ब्रह्मलोक से मन विरत कर सत्काय निरोध मे लगाये।'

'यदि वे कहे–'ब्रह्मलोक से मन हटाकर सत्काय निरोध मे लगा दिया है तो–?'

'महानाम। इस पुरुष, और आश्रवो से विमुक्त चित्त भिक्षु, मे कोई भेद नही है।

महानाम ने भगवान् को शिरसा नमन किया।

●

आधार ग्रन्थ

विनय पिटक

मज्झिम निकाय २ १ ३
१ ४ ३
१ · १ : ४
१ २ ६

सयुक्त निकाय ५३ ३ . ५
५३ . ६ : ४

J . 1 133, IV . 145.
Vin 11 : 180; IV . 101.
A A : i : 213.
DhA 1 133, 345; IV . 124.
M A . 1 . 289.
A . 1 . 26, 111 . 451.
S v : 327, 1 . 219.

'वक्कलि ! यहाँ से हट जा।'

भिक्षु सघ ने निन्दनीय दृष्टि से वक्कलि की ओर देखा।

× × ×

वक्कलि उदास थे। उसने सोचा। तथागत उससे भाषण नही करेगे। उससे बोलेगे नही। यहाँ रहने से क्या लाभ ? इस जीवन से क्या लाभ ! यदि भगवान् को न देख सका।

वक्कलि गृद्धकूट पर्वत पर पहुँचे। शिखर पर चढ गये। नीचे जगल था। वह ऊपर खडे थे। उन्हें ग्लानि हुई। आत्महत्या करने का निश्चय किये। शिखर से नीचे देखे। कुछ ही क्षणों मे वह मर सकते थे। उसी समय तथागत का ध्यान आया। वह जैसे उसे कह रहे थे। इस कार्य से विरत हो जा। वक्कलि आत्महत्या नही कर सके। शिखर से उतर आये।

वक्कलि का अन्तर्दृष्टि खुलने लगी। वक्कलि मे विवेक उत्पन्न हुआ। उसने धर्म पर विचार किया। भगवान् की वाणी का मनन करना आरम्भ किया। वह रूप से, राग से जैसे हटने लगा। भगवान् के शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा उनके ज्ञान सौन्दर्य मे अद्भुत आनन्द पाने लगा।

वक्कलित एकान्त मे बैठ गया। विचारशील हुआ। उसने शनै-शनै. ज्ञान प्राप्त कर लिया।

× × ×

वक्कलि निर्जन स्थान मे, दुरूह स्थान मे, कठिन स्थान मे योगभ्यास मे रत हो गया। उसे वात व्याधि ने ग्रस लिया था। भगवान् उसकी व्याधि अवस्था मे उसे देखने, उसके पास उस जन-शून्य स्थान मे पधारे। वक्कलि ने भगवान् का अभ्युत्थान किया। सत्कार किया। अभिवादन किया। वन्दना की। भगवान् के आसन ग्रहण करने पर एक ओर बैठ गया। भगवान् ने पूछा .

'वक्कलि !' तुम इस निर्जन कानन मे निवास करते हो। यह वन है। यहाँ भिक्षा मिलना कठिन है। तुम कैसे जीवन निर्वाह करते हो ?'

'भन्ते ! मैने विपुल सुख से शरीर व्याप्त किया है। कठिनाइयो पर नियन्त्रण किया है। इस प्रकार मै इस जनशून्य कानन में विहार करूँगा।

मै चार स्मृति प्रस्थानो, पाँच इन्द्रियो, पाँच वलो, सात बोध्यगो का अभ्यास करता हुआ, सुखपूर्वक कानन मे विहार करूँगा।

'वक्कलि !'

'भन्ते !'

'तुम मुझे देखते रहते हो।'

'हाँ भन्ते।'

'क्यों ?'

'प्रसन्नता होती है।'

'आवुस ! इस अपवित्र शरीर मे क्या रखा है ?'

वक्कलि चुप हो गये।

'इस अनित्य शरीर को देखने से क्या लाभ ?' वक्कलि भूमि की ओर देखने लगे।

'वक्कलि ! जो धर्म को देखता है। वह मुझे देखता है।' वक्कलि गगन की ओर देखने लगा।

'वक्कलि ! तुम धर्म की ओर क्यो नही देखते ?'

वक्कलि नीरव हो गये।

× × ×

समय बीतता गया। वक्कलि तथागत की ओर देखते नही थे। परन्तु तथागत का साथ नही त्याग सके। विहार और उनका मोह उसे बाँध रखा था। चतुर्मास समाप्त हो गया। वर्षावास का अन्तिम दिन था। एक दिन भिक्षुसघ बैठा था। वक्कलि भी बैठे थे। भगवान् की तरफ देख रहे थे। भगवान् ने कहा

'वक्कलि !'

वक्कलि ने भगवान् की तरफ देखा।

'वक्कलि ! यहाँ से चला जा।'

वक्कलि उठे नही।'

'वक्कलि ! स्थान त्याग दो।'

वक्कलि को पसीना आने लगा।

होता था। शुभ कलश बनता था। फिर कुम्भ फूटता था। मिट्टी में मिल जाता था। जिससे बनता था अन्ततोगत्वा वही पहुँच जाता था।

आयुष्मान् वक्कलि व्याधि ग्रस्त थे। कुम्भकार के घर मे पडे थे। एक दिन इच्छा हुई। तथागत का दर्शन करे। उसने अपने सुश्रूषक से कहा .

'आवुस ! तथागत के दर्शन की इच्छा है।'

'अवश्य करना चाहिये आयुष्मान् ! किन्तु आप वहाँ तक चल नही सकेगे।'

'आवुस ! तुम भगवान् के पास जाओ। उन्हे मेरी ओर से शिरसा प्रणाम करना।

उनसे प्रार्थना करना। यदि भगवान् वक्कलि भिक्षु को दर्शन दे तो कृपा होगी।'

'आवुस ! जाऊँगा।'

× × ×

भन्ते !' परिचायक ने कहा, 'वक्कलि भिक्षु ने भगवान् के चरणो मे शिरसा प्रणाम किया है। वन्दना की है।

'आवुस ! वक्कलि यापनीय है। क्षमणीय है।'

'नही भन्ते ! वह व्याधि ग्रस्त है।'

भगवान् का ध्यान परिचायक की ओर गया। उसने प्रार्थना की।

'भन्ते ! वक्कलि भगवान् के दर्शनो के इच्छुक है।'

भगवान् ने मौन रहकर स्वीकार किया।

× × ×

भगवान् वक्कलि के निवास-स्थान की ओर हस गति से चले। वक्कलि ने भगवान् को दूर से ही देखा। प्रसन्न हो गया। सम्पूर्ण शक्ति एकत्रित कर उठा। खाट ठीक करने लगा। भगवान् ने पहुँचकर कहा

'आवुस ! रहने दो। यहाँ आसन रखा है। बैठ जाऊँगा। खाट पर बैठकर क्या होगा ?'

वक्कलि ने भगवान् के चरणों पर मस्तक रख दिया। अभिवादन किया। वन्दना की। भगवान् ने पूछा :

'वक्कलि ! तुम्हारा शरीर व्याधि ग्रस्त है। इस समय अभ्यास कैसे सफल होगा ?'

'भन्ते ! मै उपयोगी हूँ। निर्वाणरत हूँ। दृढ पराक्रमी हूँ। नित्य पराक्रम मे लगा हूँ। मै अपने सह ब्रह्मचारियो के साथ इस कानन मे विहार करूँगा।

'वक्कलि ! तुम्हारा विचार श्लाघनीय है।'

'भन्ते !' वक्कलि ने भगवान् को शिरसा नमन करते हुए कहा . 'मै आप, श्रेष्ठ, दान्त, समाहित, सम्बुद्ध, का रात-दिन तन्द्रा रहित स्मरण करता विहार करूँगा।'

'साधु वक्कलि–!'

भगवान् ने हरित, सघन, पादप पूर्ण दुर्गम कानन की ओर देखते हुए कहा।

× × ×

वक्कलि ने श्रद्धापूर्वक भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। भगवान् ने आसन ग्रहण किया। भगवान् ने देखा। पुराने वक्कलि मे आमूल परिवर्तन हो चुका था। वह भगवान् को उस दृष्टि से नही देख रहा था जिससे पूर्वकाल मे देखता था। भगवान् ने पूछा .

वक्कलि ! कैसे है ?'

'भन्ते ! मुझे पूर्ण आनन्द है।'

क्यो ?'

'भन्ते ! ससार प्रपचो से दूर हूँ। राग से दूर हूँ। रूप से दूर हूँ।'

भगवान् ने वक्कलि को अपने आनुपूर्वीय कथा से समुत्तेजित किया। वक्कलि के विमल चक्षु खुले। उसे निर्मल ज्ञान का बोध हुआ। उसने अर्हत्त्व प्राप्त किया।

× × ×

राजगृह था। वेणुवन था। कलन्दक निवाप था। तथागत विहार कर रहे थे। राजगृह मे एक कुम्भकार था। कुम्भो से उसका घर भरा था। कुम्भकार कच्ची मिट्टी लाता था। कुम्भ लाल होता था। जलपूर्ण

'मेरी खाट ऋषिगिल शिला[1] पर रखवा देंगे आवुस !'

'अवश्य आयुष्मान् !'

चार व्यक्तियो ने वक्कलि की खाट उठायी। ऋषिगिलशिला पर रख दी।

भगवान् उस दिन-रात गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते रहे।

रात्रि भिनी। गृद्धकूट पर्वत देवज्योति से ज्योतिर्मय हो उठा। दो देवदूतो ने भगवान् का अभिवादन किया। एक ओर खड़े हो गये। एक देवता न कहा।

'भन्ते! वक्कलि भिक्षु का चित्त विमोक्ष मे लग रहा है।'

भगवान् गम्भीर हो गये।

'भन्ते!' दूसरा देवता बोला। 'भिक्षु विमुक्त होगा। निर्वाण प्राप्त करेगा।'

भगवान् को सुनकर सन्तोप हुआ। देवताओ ने भगवान् का अभिवादन किया। प्रदक्षिणा को। अन्तर्धान हो गये।

× × ×

रात्रि समाप्त हुई। भगवान् ने भिक्षुओ को आमन्त्रित किया। भगवान् ने देवताओ से हुए संवाद को बताया। भिक्षुओ ने कहा .

'आवुसो! वक्ललि से देवताओ की बात कहना। यह भी मेरी ओर से कहना—

'वक्कलि! भयभीत मत हो। तुम्हारी मृत्यु निष्पाप होगी।'

'भन्ते!' भिक्षुओ ने नत-मस्तक श्रद्धापूर्वक आदेश ग्रहण किया।

× × ×

'आयुष्मान्!' भिक्षुओ ने वक्कलि से निवेदन किया। वक्कलि ने उन्हे टोका।

---

(१) ऋषि गिल शिला . राजगृह के पाँच पर्वतो मे एक पर्वत है। यह नगर का सुरम्य स्थान था। उसके एक पार्श्व मे एक काली शिला थी। यह स्थान भगवान् को बहुत प्रिय था। यहाँ पर गोधिका तथा वक्कली ने आत्म-हत्या की था। महामोग्गलायन की यही पर हत्या की गयी थी। यहाँ निर्गन्थ नाथ पुत्र का जमावड़ा रहता था।

'आवुस ! बीमारी घट तो रही है ?'

'भन्ते ! बढती जा रही है ।'

'आवुस ! तुम्हे इस समय कोई पश्चात्ताप तो नही हो रहा है ?'

'भन्ते ! नही ।'

'शील पालन न करने का पश्चात्ताप तो नही है ?'

'भन्ते ! नही ।'

'आवुस ! तुम्हे किस बात का पश्चाताप हो रहा है ? किस बात का दु ख हो रहा है ?'

'आपके दर्शन की कामना की । शरीर निर्बल था । पहुँच नही सकता था । इसी का दु ख था । पश्चात्ताप था ।'

'आवुस !' भगवान् ने अपना शरीर स्वय देखते हुए कहा, 'इस शरीर से तुम्हारी आस्था ? इस शरीर के दर्शन से क्या होगा ? यह तो मलो से भरा है । दूषित पदार्थो से भरा है ।'

वक्कलि के नेत्र श्रद्धा से वाष्प पूर्ण हो गये । भगवान् ने कहा :

'आवुस ! धर्म का दर्शन मेरा दर्शन है । और मेरा दर्शन धर्म का दर्शन है ।'

वक्कलि ने भगवान् को प्रणाम किया । भगवान् ने कहा :

'आवुस ! यह रूप नित्य है, या इसे अनित्य मानते है ।'

'अनित्य ।'

'आवुस ! जिसने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है उसका पुनर्जन्म नही होता ।'

भगवान् ने आसन त्याग दिया । शान्त उठे । वक्कलि ने भगवान् को वन्दना की । प्रदक्षिणा की । शिरसा प्रणाम किया । भगवान् गृद्धकूट पर्वत की ओर चले ।

× × ×

'आवुस !' वक्कलि ने अपने परिचायक से कहा, 'घर मे मरना ठीक नही है ।'

परिचायक मरने की बात सुनकर दु खी हो गया ।'

'भगवान् चले। उनके पीछे चला भिक्षु सघ । देखने उस वक्कलि को जो कल चेतन था। आज जिसका शरीर अचेतन था। जो कल जीवित था और आज जिसे लोग कहते है मृत।'

× × ×

भगवान् ने देखा। वक्कलि का मस्तक छिन्न था। वह खाट पर पडा था और प्राची दिशा मे घुधली छाया उड रही थी। प्रतीची की ओर उड रही थी। ऊर्ध्व की ओर उड रही थी। अध की ओर उड रही थी। चारो ओर उड रही थी।

भगवान् ने छाया की ओर देखा। भिक्षुओ को आमन्त्रित किया।

'आवुसो ! यह घुधली छाया देखते हो ?'

'भन्ते, देख रहे है।' सघ छाया की ओर देखकर बोला।

'भिक्षुओ ! यह पापी है। मार है। कुलपुत्र वक्कलि के विज्ञान का अन्वेषण कर रहा है।'

'भन्ते ! कुलपुत्र का विज्ञान कहा लगा है ?'

'भिक्षुओ ! उसका विज्ञान कही नही लगा है। उसने प्राप्त किया है—परिनिर्वाण।'

भगवान् ने छिन्न मस्तक वक्कलि की मिथ्या काया पर दृष्टिपात करते हुए कहा :

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे उन्नीसवॉं स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती ब्राह्मण कुलोत्पन्न वक्कलि श्रद्धावानो मे अग्र हुए थे।

●

आधार ग्रन्थ

थेर गाथा २०५, उदान ३५०-३५४

धम्मपद २५ ११

सयुक्त निकाय २१ २ ४ ५

A 1 25

A A 1 140

Ap 1 465.

V S M 1 129

Vibh A 276

S A 11 229

S N vs 1146

DVY' 49

Thag A 1 420

'आवुसो! भगवान् का सन्देश मै खाट पर वैठकर कैसे ग्रहण करूँगा? आप मुझे खाट से उतार दीजिये। मै भूमि पर बैठूँगा। भगवान् का पवित्र सन्देश सुनूँगा।'

'आधु वक्कलि, साधु!'

भिक्षुओ ने वक्कलि को सहारा दिया। खाट से उतारा। वक्कलि पूर्ण श्रद्धा और शुद्ध चित्त आसन पर बैठ गया। भगवान् को स्मरण कर बोला.

'भिक्षुओ! भगवान् का क्या आदेश है?

'आवुस! देवताओ ने कहा है। तुम्हारा चित्त विमोक्ष मे लग रहा है। तुम विमुक्त होगे। निर्वाण प्राप्त करोगे।'

वक्कलि ने शिरसा नमन किया। उसने मृदु स्वर से पूछा

'तथागत ने कुछ और कहा है?'

'आवसु!' तथागत ने तुम्हे सन्देश दिया है—'वक्कलि भयभीत मत हो। तुम्हारी मृत्यु निष्पाप होगी।'

'आवुसो!' वक्कलि ने भगवान् का ध्यान किया। अजलिबद्ध कहा· 'तथागत से निवेदन कीजिएगा—वक्कलि भगवान् के चरणो मे शिरसा प्रणाम करता है। कहता है—रूप अनित्य है। अनित्य ही दु ख है। मुझे इस मे किचित् मात्र सन्देह नही है। मै रूप की आकाक्षा नही करता हूँ। अनित्य दु ख परिवर्तनशील है। इस शरीर के प्रति मुझे राग नही है।'

भिक्षुओ ने शान्त स्थिर मन वक्कलि का निवेदन ग्रहण किया। वक्कलि ने कहा

'आवुसो! वेदना अनित्य है। संज्ञा अनित्य है। संस्कार अनित्य है। विज्ञान अनित्य है।'

'आवुस!' भिक्षुओ ने कहा। 'तथागत से हम तुम्हारी बात कहेगे आयुष्मान्।'

वक्कलि ने सबको शिरसा प्रणाम किया।

× × ×

'भिक्षुओ!' भगवान् ने कहा। 'वक्कलि ने आत्महत्या कर ली है।'

भिक्षु सघ विस्मित हुआ। किन्तु शान्त था। भगवान् ने कहा.

'आवुसो!' ऋषि गिल शिला पर हम चलेगे। वहाँ वक्कलि की अनित्य काया पडी है।'

'भन्ते!' भिक्षुओ ने श्रद्धापूर्वक आदेश ग्रहण किया।

भगवान् के परिनिर्वाण के आठ वर्ष पूर्व, प्रतिहिंसा भावना के कारण देवदत्त ने अजातशत्रु से मित्रता स्थापित करने का प्रयास किया।

वह ऋद्धिमान था। एक शिशु का रूप धारण किया। उसके शरीर म एक सर्प गेडुरिया कर लपट गया। वह अजातशत्रु की पालथी पर बैठ गया। अजातशत्रु भयभीत हो गया। देवदत्त ने अपना वास्तविक रूप धारण किया। अजातशत्रु अत्यन्त प्रभावित हुआ। दोनों मित्र हो गये। परन्तु दुर्बुद्धि का आश्रय लेने के कारण देवदत्त की ऋद्धि शक्ति का लोप हो गया।

देवदत्त का आदर-सत्कार बढा। अजातशत्रु उसके यहाँ ससम्मान जाने लगा। जनता ने सोचा। देवदत्त मे कुछ गुण होगा। देवदत्त के यहाँ भीड एकत्रित होने लगी।

× × ×

भगवान् चारिका करते वेणुवन कलन्दक निवाप[1] राजगृह पहुँचे। वेणुवन मे विहार करने लगे। भिक्षु सघ ने भी स्थान ग्रहण किया।

देवदत्त की ख्याति हो रही थी। उसके लाभ-सत्कार की चर्चा थी। भिक्षुओं ने एक दिन भगवान् से कहा

'भन्ते! देवदत्त का बहुत लाभ-सत्कार हो रहा है।'

'किस प्रकार—?'

'भन्ते! कुमार अजातशत्रु रथ समूह के साथ उसके यहाँ जाता है। उसके यहाँ पाँच सौ स्थाली-पाक भेजता है।'

---

(१) कलन्दक निवाप वेलुवन मे एक उद्यान था। (Wood land) यहाँ पर नियमित रूप से गिलहरियो को निवाप अर्थात् भोजन दिया जाता था। कहा जाता है एक राजा वहाँ गया था। वह मद पीकर सो गया। उसके पारषद राजा को सुप्तावस्था मे देखकर फल-फूल की खोज मे वन मे चले गये। मद की सुगन्ध से आकर्षित होकर एक सर्प राजा के पास आया। वह राजा को काट लेता यदि एक वृक्ष देवता चेखुर का रूप बनाकर राजा की रक्षा न करता। उसने राजा को अपने जगा दिया। राजा ने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि उस स्थान के गिलहरियो को नियमित रूप से भोजन दिया जाया करे।

देवदत्त

यो च वन्त कसावस्स सीलेसु सुसमाहितो।
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति ॥

(चित्त मलो को जिसने तिरोहित किया है, शील सयम तथा सत्य युक्त है। वह कापाय वस्त्र धारण करने का पात्र है।)

—ध० १०

देवदत्त सप्रवुद्ध का पुत्र था। उसकी माता का नाम अमिता था। उसकी बहन राहुल माता मद्रा कात्यायनी किवा यशोधरा थी।

प्रव्रज्या के पश्चात् भगवान् का प्रथम बार कपिलवस्तु मे आगमन हुआ था। उन्होने सात दिन कपिलवस्तु मे विहार किया। उसी समय अनूयिया मे अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल और देवदत्त को भगवान् ने प्रव्रजित किया था।

भगवान् उन्हे प्रव्रजित कर कोशाम्बी की ओर चारिका के लिए चले। उनके साथ भिक्षु सघ था। देवदत्त भी था। भगवान् का सर्वत्र आदर-होता था। उस आदर-सत्कार को देवदत्त ने देखा। उसकी इच्छा हुई। उसे भी भगवान् की तरह आदर-सत्कार प्राप्त होता रहे।

उसने सोचा। राजा विम्वसार का पुत्र अजातशत्रु कुमार था। तरुण था। यदि उसकी प्रसन्नता प्राप्त कर ली जाय, तो वडा लाभ-सत्कार प्राप्त हो सकता है। उसने कुमार अजातशत्रु को प्रभावित करने का निश्चय किया।

× × ×

भगवान् तथा सघ का देवदत्त ने त्याग किया। शयनासन तथा चीवर उठाया। अजातशत्र के निवास-स्थान राजगृह को ओर चला।

भगवान् ने भिक्षु संघ को आमन्त्रित किया। बोले .

भिक्षुओ ! भिक्षु सघ देवदत्त के कार्य के लिए उत्तरदायी नही है।'

× × ×

देवदत्त को असफलता ही असफलता मिलती जा रही थी। वह और क्रुद्ध हो गया। प्रतिहिंसा की भावना से जल उठा। उसने भगवान् की शक्ति, भिक्षु सघ की शक्ति, क्षीण करने के लिये सघ मे भेद डालने का प्रयास किया।

कोकालिक,[1] कटमोर तिस्स[2] और खण्ड देवी पुत्र समुद्र दत्त[3] भिक्षुओ के यहाँ देवदत्त पहुँचा। उनका कुशल-मगल पूछकर बोला '

'आवुसो ! गौतम का सघ भेद और चक्र भेद आइये मिलकर करे।'

'क्या करना चाहिए ?

'श्रमण गौतम ! भिक्षु परिषद् के साथ बैठता है। जनता भी एकत्रित रहती है। उस समय हमे ऐसी योजना बनानी चाहिए कि भेद उत्पन्न हो।'

'आपने कुछ सोचा है ?'

'सुनो ! उनसे प्रश्न करना चाहिए—'आजन्म अरण्य मे रहना चाहिए।'

'इससे क्या होगा ?

'श्रमण जनपद मे, ग्राम मे चारिका करते है। इस प्रकार वह अरण्य वासी होकर बँध जायगा।'

'और—?'

---

(१) काकालिक . यह देवदत्त का साथी भिक्षु था। काकालिक देवदत्त के अपराधो तथा दोपो का समर्थन करता था। बुद्ध घोप का मत है कि यह जन्मजात ब्राह्मण था। देवदत्त का शिष्य था। इसे यहाँ कोकालिक कहते हैं। एक दूसरे कोकालिक ओर थे। उन्हे चुल्ल कोकालिक कहा जाता था।

(२) कटमोर तिस्स . यह भिक्षु थे। थुल्ल नन्दा अग्रश्राविका इनका बहुत आदर करती थी। इनके प्रति भगवान् से सुब्रह्म तथा सुधावास भिक्षुओ ने असन्तोप प्रकट किया था।

(३) समुद्रदत्त देवदत्त का साथी एक भिक्षु था। थुल्ल नन्दा भिक्षुणी इसे मानती थी।

'भिक्षुओ! देवदत्त मे स्पृहा मत करो। यह लाभ-सत्कार उसके नाश का कारण होगा। कुशल धर्मों की हानि होगी।'

'भन्ते—।'

'सुनो! क्रोधी श्वान के नाक पर पित्त चढ जाती है, तो वह चण्ड श्वान और चण्ड हो जाता है। प्रमत्त हो जाता है। देवदत्त का लाभ-सत्कार, उसके आत्म वध के लिये, एक हेतु स्थापित हुआ है।'

'भन्ते! उसे फल—।'

'आवुसो! फल कदली स्तम्भ का नाश करता है। फल बाँस का नाश करता है। फल नरकट का नाश करता है।'

'भन्ते—।'

'भिक्षुओ! सत्कार कुपुरुप को उसी प्रकार मारता है, जिस प्रकार खच्चरी अपने गर्भ के कारण मरती है।'

× × ×

भगवान् राजगृह मे थे। कलन्दक निवाप मे थे। वेणुवन मे विहार करते थे।

तथागत एक बडी परिपद् मे बैठे थे। उपदेश कर रहे थे। राजा भी वहाँ बैठा था। देवदत्त उठा। उसके एक स्कन्ध पर उत्तरासग था। भगवान् की ओर अजलिवद्ध खडा होकर बोला

'भन्ते! आप वृद्ध हो गये है। भिक्षुसघ को आप मुझे दे दे।'

'देवदत्त! तुझे भिक्षु सघ कैसे रुचिकर होगा?'

'नही शास्ता मुझे दे दे।'

'देवदत्त! यह कैसे होगा?'

'नही भन्ते! मै उन्हे सम्हालूँगा।'

'देवदत्त! मै सारिपुत्र और मौद्गलायन को भिक्षु संघ नही दे सकता। तुम्हे कैसे दूँ। तू तो मृत थूक तुल्य है?"

देवदत्त को ईर्ष्या हुई। वह विगडा। सारिपुत्र मौद्गलायन को भगवान् ने आगे बढाया था। उनके प्रति ईर्ष्या हुई। ईर्ष्या, द्वेप से जलता देवदत्त परिपद् से चला गया।

'और मत्स्य मांस—।'

'देवदत्त ! मैंने केवल अदृष्ट, अश्रुत तथा अपरिशंकित इन तीनो कोटि के परिशुद्ध मांस की अनुज्ञा दी है।'

देवदत्त प्रसन्न हो गया। उसने समझा। भगवान् उसकी किसी वात का उत्तर हाँ नही मे नहीं दे सके।

× × ×

देवदत्त ने भगवान् के विरुद्ध प्रचार आरम्भ कर दिया। भिक्षुओं में भेद फैलने लगा। आनन्द पूर्वाह्ण राजगृह मे भिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए। देवदत्त ने उन्हे देखा। समीप आया। देवदत्त बोला

'आवुस ! आनन्द ! मैं भिक्षु संघ से अलग उपसोथ करूँगा।'

'क्यो देवदत्त ?'

'मेरा संघ आज से अलग रहेगा।'

'देवदत्त ! विचार कर लिया है ?'

'हाँ आनन्द !'

देवदत्त गर्वपूर्वक चला गया। आनन्द भगवान् के पास आये। सव वृत्तान्त कहा। भगवान् ने उदान कहा

'सज्जनो के साथ भलाई सुखकर है। दुर्जनो के साथ भलाई दुष्कर है। पापियो के साथ पाप सुखकर है। आर्यों के साथ पाप दुष्कर है।'

× × ×

उपसोथ का काल था। उन दिनो पाँच सौ वज्जिपुत्रक नवीन भिक्षु बने थे। उनका ज्ञान पूर्ण नही था। देवदत्त ने अनेक प्रकार से मिथ्या प्रचार किया।

देवदत्त आसन उठाया। शलाका उठाया। भिक्षुओ से बोला

'भिक्षुओ ! मैंने पाँच वाते श्रमण गौतम से पूछी थी। उन्होने उत्तर नही दिया। हम उन्हे मानेगे। जिन महानुभावो को पाँचो वाते पसन्द हो कृपया शलाका उठाये।'

'वे क्या है ?'

देवदत्त ने पाँचो वातो को बताया। अपरिपक्व बुद्धि भिक्षुओ ने

आजन्म पिण्डपात पर निर्भर रहे।'

'इससे क्या होगा ?'

'श्रमण गौतम को लोग आमन्त्रित करते है। वह भिक्षु संघ के साथ जाता है। उसका प्रचार होता है। यह आपसे आप बन्द हो जायगा।'

'और–?'

'आजन्म पासुकूलिक रहे।

'इससे क्या होगा ?'

'चिथडा पहनना होगा। गृहस्थ भिक्षुओ को चीवर देते है। उनका आदर-सत्कार करते है। सुआच्छादित होकर वे निकलते है। जनता पर उनका प्रभाव पडता है। वह बन्द हो जायगा।'

'और–?'

'आजन्म वृक्ष मूलिक रहे।'

'इससे क्या होगा ?'

'वृक्ष के मूल मे निवास करने पर सघाराम, आराम, विहार नही बनाना पडेगा। आज तो विहार, आराम, वेणु और आम्र वन श्रमण गौतम के प्रचार के केन्द्र हो गये है। वर्षा मे, धूप मे, शीत ऋतु मे कैसे कोई वृक्ष मूल मे रहेगा।'

'ठीक कहा–और ?'

'आजन्म मत्स्य, मास का सेवन करना चाहिए।'

'बात आपकी विचारणीय है।'

'चलो चले।' देवदत्त बोला।

भिक्षु सघ एकत्रित था। भगवान् बैठे थे। देवदत्त अपने साथियो के साथ आया। भगवान् को अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। पुन पाँचो प्रश्न भगवान् से पूछा। भगवान् ने गम्भीरतापूर्वक प्रश्नो को सुना। उन्होने उत्तर दिया

'देवदत्त! अपनी इच्छानुसार जो चाहे आजन्म अरण्यक, पिण्डपातिक, पासुकूलिक, वृक्ष मूलिक रह सकता है, और चाहे तो नही भी रह सकता।'

'आवुस ! आओ ! बैठो ।'

सारिपुत्र और मोद्गलायन बैठ गये। देवदत्त ने कहा :

'सारिपुत्र ! भिक्षुओ को उपदेश दो। मेरी पीठ बैठे-बैठे गरम हो गयी है।'

'अच्छा— ।'

'मै विश्राम करूँगा ।'

देवदत्त चौपाती संघाती बिछाकर दाहिनी करवट लेट गया। उसे निद्रा आ गयी।

सारिपुत्र ने धर्म की व्याख्या की। भिक्षुओ को समझ मे धर्म आया। उनका विचार पलटा। सारिपुत्र ने अपनी देशना का प्रभाव होते देखकर कहा

'आवुसो ! उठो ! जहाँ भगवान् है वहाँ चले ।'

भिक्षु सघ उठकर तथागत के पास चला। —और देवदत्त की निद्रा भग नही हुई। कोकालिक चिल्ला उठा—'देवदत्त ! सो रहे हो। संघ चला गया।'

× × ×

उसी रात्रि को देवदत्त बीमार पडा। उसे बडा धक्का लगा था। जिस सघ को उसने सगठित किया था। वह पुन भगवान् के पास लौट गया था।

देवदत्त के हृदय पर इस घटना से इतनी चोट लगी कि रात्रि मे रक्त वमन होने लगा। वह नव मास तक बीमार पडा रहा। उसकी ख्याति मिट्टी मे मिल गयी थी ! अजातशत्रु भी प्रबल विरोधी जनमत के कारण देवदत्त की सहायता नही कर सका। देवदत्त जगत् से त्यक्त, भिक्षु संघ से त्यक्त, अजातशत्रु से त्यक्त एकाकी भग्न हृदय, भग्न अभिलाषा रह गया था।

× × ×

उसका अन्त आया। भगवान् का दर्शन करना चाहा। पुराने रक्त सम्बन्ध ने जोर मारा। शिविका मँगायी। जेतवन की ओर प्रस्थान किया।

देवदत्त का समर्थन किया। शलाका उठाने लगे। पाँच सौ वज्जि भिक्षुओ ने शलाका उठा लिया।

'भिक्षुओ! हमारा यह सघ अलग बनेगा।' देवदत्त ने हर्षपूर्वक कहा .

'भन्ते– ?'

'भिक्षुओ! हम गया सीस चलेगे। वही हमारा निवासस्थान होगा।'

'साधु भन्ते।'

देवदत्त चला। उसके साथ पाँच सौ भिक्षु चले। भगवान् के सघ मे फूट पड गयी।

× × ×

सारिपुत्र और मौगद्लायन ने भगवान् से भिक्षु सघ की घटना का वर्णन किया। भगवान् ने कहा

'सारिपुत्र! तुम्हे उन नव भिक्षुओ पर दया नही आयी ?'

'भन्ते– !'

'उसके पास जाओ उन्हे समझाओ।'

'भन्ते।'

× × ×

सारिपुत्र और मोगद्लायन गयाशीर्ष पहुँचे देवदत्त भिक्षु सघ के मध्य बैठा था। उपदेश दे रहा था। उसने सारिपुत्र और मोद्गलायन को आते देखा। भिक्षुओ से कहा

'आवुसो! मेरा धर्म कितना श्रेष्ठ है। देखो सारिपुत्र और मोगद्लायन भी हमारे सघ मे मिलने आ रहे है।'

'आवुस! देवदत्त! कोकालिक ने कहा, 'आप उनका विश्वास मत कीजिये।'

'नही। उनका स्वागत है। वे मेरे धर्म पर विश्वास कर आ रहे है।'

सारिपुत्र और मोगद्लायन समीप आ गये। उन्हे देखकर देवदत्त ने कहा :

'चलिए राजा के पास !'

अमात्यगण अजातशत्रु को साथ लेकर उसके पिता राजा विम्बसार के पास चले ।

× × ×

'कुमार !' राजा ने चकित दृष्टि से कुमार की तरफ देखा । अजातशत्रु अपराधी तुल्य था । लज्जित था । उसे भय था । उसे दण्ड दिया जायगा । अमात्यो ने सब बाते राजा को बतायी । पिता विम्बसार ने पुत्र अजातशत्रु से पूछा

'पुत्र ! पिता की हत्या क्यो करना चाहते थे ?'

'देव ! राज्य चाहता था ।'

'राज्य—?'

'हाँ—?'

'यह तो तेरा है पुत्र !'

'पुत्र ! विम्बसार ने सिहासन पर से उठते हुए कहा 'तुम राज्य करो । इस राज्य के लिए पिता की हत्या की क्या आवश्यकता थी ।'

× × ×

विम्बसार सभा-मण्डप से बाहर चला गया ।

'कुमार ! आप राजा हो गये ।'

'आपकी कृपा से ।'

'अब आज्ञा दीजिए ।'

'क्या ?'

'श्रमण गौतम की हत्या कर दी जाय ।'

अजातशत्रु ने अपने पार्षदो की तरफ देखते हुए कहा :

'भणे ! आचार्य देवदत्त की आज्ञानुसार कार्य किया जाय ।'

देवदत्त ने प्रत्येक मार्गो पर, भगवान् के निवास-स्थान पर, हत्यारो को भगवान् की हत्या के लिए नियुक्त किया ।

× × ×

मार्ग मे एक पुष्करिणी पडती थी। उसने विचार किया। जेतवन पहुँचने के पूर्व हाथ-मुह धो लेना अच्छा होगा। शिविका से उतरा। पुष्करिणी के तट की ओर चला। तट पर पहुँचने के पूर्व ही भूमि फट गयी। देवदत्त भूमि मे समा गया।

गाथा है कि जब भूमि उसे आत्मसात् कर रही थी तो देवदत्त ने आर्तनाद करते हुए कहा—'भगवान् के अतिरिक्त और कही शरण नही है।'

× × ×

'कुमार!' देवदत्त ने अजातशत्रु के पास जाकर बोला।

'देवदत्त! आइए।'

'कुमार! पूर्वकाल मे मनुष्य दीर्घायु होते थे। स्वल्पायु होते थे।'

'तो—?'

'मुझे चिन्ता है। कही आप कुमार रहते ही मर जाय—!' मृत्यु की बात करते देवदत्त को सकोच नही हुआ।

'तो मै क्या करूँ?'

'पिता को मार कर राजा बनो।'

'और आप?'

'मै बुद्ध को मार कर बुद्ध बनूँगा।'

अजातशत्रु मुसकराया। दोनो घातक साथी मित्र बन गये।

× × ×

मध्याह्न काल था। अजातशत्रु ने जघा मे छुरा बाधा। अन्त पुर मे प्रविष्ट हुआ। उस पर पाप की छाया थी। वह भयभीत था। शकित था। त्रस्त था! महामात्यो को उसकी मुद्रा देखकर सन्देह हुआ।

कुमार को अपराधी समझ पकड लिया। कुमार से पूछा .

'तुम्हारा क्या मन्तव्य था?'

'पिता की हत्या।'

'किसने आपको उत्साहित किया था?'

'देवदत्त ने।'

भगवान् का पैर देवदत्त के फेंके शकलिका के कारण आहत हो गया था। वह घाव पैर पर फरसा से लगे घाव की तरह मालूम होता था। उससे रक्त बहता था। लाक्षा रस की तरह रजित हो गया था। भगवान् को वेदना होने लगी।

भिक्षुओ ने परस्पर परामर्श किया। उज्जगल[1] निवास योग्य नही था। विपम था। प्रव्रजित तथा क्षत्रिय आदि के पहुँचने मे कठिनाई होती थी। निश्चय किया गया। भगवान् को यहाँ से दूसरे स्थान पर ले जाया जाय। अतएव मच शिविका मे भगवान् को बैठाकर भद्दकुक्षि[2] मे वे ले आये।

× × ×

भगवान् भद्दकुक्षि मे विहार करते थे। भगवान् को तीव्र वेदना हो रही थी। किन्तु भगवान् स्थिर चित्त थे। स्मृतिमान् थे। सप्रज्ञ थे। वेदना का सहन कर रहे थे।

भगवान् ने सघाती चौपत कर बिछवा दिया। सिहशय्या लगायी। पैर पर पैर रखा। स्मृतिमान एवं सम्प्रज्ञ होकर लेट गये।

राजगृह मे भद्रकुच्छि मृगदाव मे भगवान् विहार कर रहे थे। शारीरिक वेदना होती थी। किन्तु भगवान् को दु ख नही होता था। उसे उन्होने शरीर का धर्म समझा। अपना धर्म नही।

× × ×

राजगृह मे नालागिरि हाथी था। महा चण्ड था। मनुष्यघातक था। देवदत्त हस्तिशाला मे गया। फिलवान से बोला ·

---

(१) उज्जगल कुरु वेला के समीप प्रस्कन्दन, वलाकत्थ, उज्जगल एव जगल चार गाँवो मे एक गाँव उज्जगल था।

(२) भद्द कुच्छि : कोमला देवी राजा प्रसेनजित की बहन तथा अजात शत्रु की माता थी। बिम्बसार ने बाहु चीर कर रक्त रानी को वैद्यो के कथन पर पिलाया था। वह इस स्थान मे ज्योतिपियो से यह जानने पर की गर्भ पितृ हन्ता होगा उसे गिराने गई थी परन्तु सफल नही हुई। यह राजगृह मे एक एक उद्यान था। गृद्धकूट पर्वत के मूल मे था। यह मृगदाव था। जहाँ मृग तथा पशु पक्षी मारे नही जा सकते थे।

प्रत्येक मार्गों पर सशस्त्र सैनिक तथागत की हत्या निमित्त बैठा दिये गये। एक शक्तिशाली व्यक्ति धनुष, बाण, ढाल, तलवार से सुसज्जित हुआ। जहाँ भगवान् थे गया।

उसने भगवान् की भव्य काया देखी। शान्त मुद्रा देखी। वह अपराधी था। भयभीत था। उद्विग्न था। शून्य शरीर तुल्य खडा था। भगवान् ने उसे देखकर बुलाया

'आवुस! भय का क्या कारण ? आओ।'

भगवान् की मधुर निर्विकार वाणी सुनते ही, उस पुरुष ने ढाल तलवार फेंक दी। भगवान् के चरणो पर मस्तक रख दिया। उसने प्रायश्चित्त सूचक स्वर मे कहा .

'भन्ते! मेरे अपराधो को क्षमा करे।'

'जो अपराधो को धर्मानुसार प्रतिकार करता है। हम उसे स्वीकार करते है।'

वीर पुरुष ने कहा, 'भन्ते! मुझे उपासक स्वीकार करे।'

'आवुस! तुम दूसरे मार्ग से लौटना। जिस मार्ग से आये हो उससे फिर मत गमन करना।'

× × ×

'भन्ते!' वह पुरुष देवदत्त के पास पहुँच कर बोला।

'ओह! तुम मार आये?' देवदत्त प्रसन्नता पूर्वक बोला।

'नही '

देवदत्त उदास हो गया। पुरुष ने कहा

'मै उन्हे नही मार सका। वे महा ऋद्धिक है।'

'ओह! चिन्ता न कर। मै ही श्रमण गौतम को हत्या करूँगा।'

× × ×

भगवान् गृद्धकूट पर्वत की छाया मे चारिका कर रहे थे। भगवान् को मार डालने के विचार से देवदत्त ने एक शिला पहाडी से फेंकी। शिला गिर कर टूट गयी। उसकी एक पपडी उछली। भगवान् के पैर मे लग गयी। रुधिर बहने लगा।

× × ×

आधार ग्रन्थ .

चुल्लवग्ग ७ १-३
सयुक्त निकाय १ ४ ८
६ २ २
१६ ४ ५-७
धम्मपद १ ७
A ii . 73, iii 123, 402, iv 160, 402
Ap : ii 300
DhA i 112, 122, 143, 164, iii 44, 154, 123, 126, 147
J i 113, 142, 185, 490, 491, ii 438; iv 37, 158; v 333, vi 129
M i 393
M A : i 298.
MhV . ii 22
MiL i 108, 410.
M T 136
S A . i 62.
Ud i 5

'तथागत राज पथ पर आये, तो इस हाथी को उन पर छोड देना।'

'भन्ते! यही करूँगा।'

देवदत्त प्रसन्न लौट आया।

× × ×

पूर्वाह्न काल पात्र-चीवर तथा भिक्षुओ के साथ भगवान् राजगृह मे भिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए।

राजपथ पर आते ही फीलवान ने हाथी छोड दिया। हाथी भगवान् की हत्या करने दौडा। साथ के भिक्षु भयभीत हुए। चिल्ला उठे

'नालागिर[७] आता है नाला गिर आता है। भन्ते! हट जायँ, हट जायँ।'

नर-नारी कौतुक देखने के लिए राजगृह पर, हर्म्यो पर, प्रासादो पर, छतो पर चढ गये,। मोई मूर्ख कहते थे। श्रमण गौतम को नाला गिर-मार डालेगा। बुद्धिमान कहते थे--नाग (बुद्ध) सग्राम करेगा नाग (हाथी) से।

भगवान् के मन मे नाग के प्रति मैत्री भावना थी। उनमे द्वेष नही उत्पन्न हुआ। उसकी हत्या करने हाथी आ रहा था। उन्हे भय नही हुआ।

भगवान् स्थिर राजपथ मे खडे थे। उनके एक हाथ मे भिक्षा-पात्र था दूसरे मे चीवर था। लोग दूर हट गये थे। राजपथ पर एकाकी भगवान् और दूर से आता क्रोधी हाथी था। भगवान् हाथी की तरफ मुख कर खडे हो गये।

आश्चर्य! हाथी की आँखो ने देखा भगवान् को, भगवान् की शान्त दृष्टि को।उसका क्रोध स्वय तिरोहित हो गया। वह धीरे-धीरे आगे बढा। सूड़ से भगवान् का चरण-स्पर्श किया। उलटा लौटा। हस्ति-शाला मे अपने स्थान पर जाकर खड़ा हो गया।

●

(७) नालागिर राजगृह का राजकीय खूँखार हाथी था।

भगवान् राजगृह मे कलन्दक निवाप मे थे। वेणुवन मे विहार कर रहे थे। दर्भ मल्ल पुत्र के सात वर्ष की अवस्था मे अर्हत्व प्राप्त किया था। विचार किया। सघ के शयन, आसन तथा भोजन का नियमन (उद्देश) करे।

सायकाल भगवान् के पास पहुँचा। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। सुअवसर मिलने पर, भगवान् से प्रार्थना की

'भन्ते! विचार होता है। मै सघ के शयनासन का प्रबन्ध करूँ। भोजन का उद्देश करूँ ?''

'साधु दर्भ! साधु!! अवश्य करो।'

भगवान् ने भिक्षु सघ को एकत्रित किया। उनसे बोले

'भिक्षुओ! दर्भ मल्ल पुत्र को सघ शयनासन का प्रबन्धक तथा भोजन का नियामक निर्वाचित करे।'

'भन्ते! निर्वाचन की प्रणाली क्या होगी?'

'आवुसो! पहले ज्ञप्ति करनी होगी। सूचना देनी होगी। सघ शयनासन का प्रज्ञापक तथा भोजन का उद्देशक चुने।'

'उसके पश्चात्—?'

'भिक्षुओ! तत्पश्चात् अनुश्रावण किया जायगा। संघ मे जो भिक्षु दर्भ मल्ल पुत्र के समर्थक हो, वे शान्त रहे। जिन्हे विरोध करना हो, वे बोले।'

'अनन्तर—?'

'भिक्षुओ! धारणा करनी चाहिए। कहना चाहिए—'सघ ने शान्त रहकर दर्भ को उद्देशक निर्वाचित कर लिया है। अतएव सघ चुप है। हम ऐसा समझते है।'

× × ×

दर्भ ने, सूत्रान्तिक, विनयधर, धर्मकथिक, ध्यानी, दण्ड, अपराह्ण, आदि के आसन अलग-अलग सुविधानुसार लगवाया। एक दूसरे के कार्य मे विघ्न न पड सके। इसका ध्यान रखा। अनेक प्रकार के भिक्षु आते थे। उनका भी प्रज्ञापन करते थे।

दर्भ-मल्ल पुत्र

अनूपिया[1] ने एक प्रतिष्ठित कुलीन मल्ल कुल था। दर्भ ने उस कुल में जन्म लिया था। उसके जन्मकाल में ही उसकी माता का देहान्त हो गया था। उसकी मातामही (दादी) ने उसका बाल्यावस्था में लालन-पालन किया था। वह सात वर्ष का हुआ। अनूपिया में भगवान् का आगमन हुआ। भगवान् का प्रथम दर्शन किया। आकर्षित हुआ। उसे प्रव्रज्या लेने की इच्छा हुई।

उसने दादी से आज्ञा माँगी। दादी ने उसे भिक्षु बनने की आज्ञा दे दी। स्वय लेकर भगवान् के पास आयी। उसे बुद्ध शासन में लेने का अनुरोध किया।

भगवान् ने एक भिक्षु को आदेश दिया। दर्भ मल्ल पुत्र को वह धर्म में प्रव्रजित करे। दर्भ का जिस समय मुण्डन किया जा रहा था, उसी समय उसे विमल दृष्टि उत्पन्न हुई। उसे धर्म का ज्ञान हुआ।

भगवान् ने मल्ल देश का त्याग किया। वे राजगृह की ओर चले। वह अकेला रह गया। ध्यान तथा अभ्यास द्वारा धर्म का उत्तरोत्तर ज्ञान प्राप्त करता गया।

× × ×

---

(१) अनूपिया . कपिलवस्तु के पूर्व मल्ल देश में एक निगम था। अनोमा से चलकर भगवान् ने इसी के आम्र वन में विहार किया था। राजगृह जाने के एक सप्ताह पूर्व भगवान् ने प्रव्रज्या पश्चात् यहाँ निवास किया था। बोधि प्राप्ति के पश्चात् कपिलवस्तु से लौटते समय वहाँ पुन गये थे। यहाँ पर सुख विहारी जातक की कथा भगवान् ने यहाँ कही थी। यहा से भगवान् कोसाम्बी गये थे। दर्भ मल्ल पुत्र का यह जन्म स्थान था। एक मत है कि देवरिया जिला के ढाढा के समीप मझन नदी के तट पर स्थित भग्नावशेष ही अनूपिया ग्राम है।

मेत्तिय तथा भुम्मज प्रसन्न थे। उन्हे आशा थी। उन्हे उत्तम भोजन प्राप्त होगा। गृहपति सादर अपने हाथ से परोस कर खिलाएगा। वह इतने प्रसन्न थे कि भोजन की आशा मे रात भर सो नही सके।

दूसरे दिन पूर्वाह्न काल मे उन्होने पात्र उठाया। चीवर लिया। गृहपति के निवास-स्थान पर गये।

दासी ने उन्हे देखा। उसने कोठरी मे बिछे आसन की ओर सकेत किया। वह बोली '

'आसन ग्रहण कीजिए भन्ते।'

भिक्षुओ ने प्रसन्नतापूर्वक आसन ग्रहण किया। विचार किया। भोजन तैयार नही होगा। अतएव बैठने के लिये कहा गया था।

दासी बिलग के साथ कणाजक लायी। उनके सम्मुख परोस कर बोली

'भन्ते। ग्रहण कीजिये।'

'भगिनी।' उन्होने भोजन की ओर देखकर कहा, 'हम बधान वाले है।'

'मालूम है।'

'क्या ?'

'आप वन्धान भोजन वाले है।'

'तब—?'

'गृहपति ने मुझे यही आदेश दिया है।'

दोनो भिक्षु चुप हो गये। भोजन को देखने लगे। दासी बोली :

'भन्ते। ग्रहण कीजिये।'

उनके मन मे चित्त विकार उत्पन्न हो गया। उन्होने सोचा। दर्भ ने उनके विरुद्ध कुछ गृहपति से कह दिया होगा। इसलिए खराब भोजन मिला था। किसी प्रकार उन्होने कुछ भोजन ग्रहण किया।

× × ×

वे आराम मे लौटे। एक कोठे मे सघाटी बिछायी। चुपचाप बैठ रहे। मूक थे। कधा गिरा था। अधोमुख थे। सोच करते-करते

मेत्तिय[1] तथा भुम्मज[2] भिक्षु नवीन थे। भाग्यहीन थे। सघ मे सबसे खराब शयनाशन और भोज उन्हे मिलता था। उस समय राजगृह के नागरिक भिक्षुओ को घी, तैल, उत्तरभिग देते थे। किन्तु भुम्मज तथा मेत्तिय को कणाजक तथा विलगक मिलता था। स्थाविर भिक्षुओ को उत्तम भोजन मिलता था। उनके जिम्मे खराब तथा विडग अनाज पडता था।

कल्याण भक्तित गृहपति सघ को चारो प्रकार का भोजन देता था। वह अपने पुत्र तथा स्त्री के साथ स्वय भोजन देता था।

एक दिन उपदेश के पश्चात् कल्याण भक्तिक ने निवेदन किया

'भन्ते! कल मेरे यहाँ किसका भोजन होगा।'

'गृहपति! मेत्तिय तथा भुम्मज का।'

गृहपति असन्तुष्ट हो गया। वह किसी बडे भिक्षु को भोजन कराना चाहता था।

× × ×

'दासी!' कल्याण भक्तिक गृहपति ने कहा।

'आर्य!'

'कल दो भिक्षु आवेगे।'

'उन्हे क्या खिलाऊँगी।'

'विलग सहित कणाजक खिलाना।'

'कहाँ बैठाऊगी।'

'कोठरी मे।'

× × ×

---

(१) मेत्तिय पटवर्गियो के ६ नेताओ मे एक।

(२) भुम्मज . यह भी पटवर्गीय भिक्षुओ के ६ नेताओ मे एक था। मेत्तेयी-भुम्मजका शब्द मेत्तिय तथा भुम्मज के अनुकरण करने वालो के लिये प्रयुक्त किया गया है। वे राजगृह के समीप निवास करते थे। मेत्तिय तथा भुम्मज दर्भ मल्ल पुत्र पर सर्व प्रथम मेत्त्रिया द्वारा दोप लगवाया। उसमे असफल होने पर लिच्छवी वद्ध को प्रोत्साहित किया कि दर्भ मल्ल पुत्र पर अपनी स्त्री के साथ व्यभिचार करने का दोप भगवान् के सम्मुख लगाये। यह दोप भी निराधार प्रमाणित हुआ।

'दर्भ ! भिक्षुणी की बात सत्य है।'

'भगवान् मुझे जानते है।'

'सत्य है ?'

'भगवान् मुझे जानते है।'

'सत्य है, या नही ?'

'भगवान् मुझे जानते है।

'दर्भ ! दर्भांकुश इस प्रकार नही खुलता। स्पष्ट करो। तुमने कि है या नही।'

'भन्ते ! जन्म से भी मैने स्वप्न मे भी मैथुन नही किया। जागृ अवस्था की बात ही और है।'

'भिक्षुओ !' भगवान् ने भिक्षु सघ से कहा। 'मेन्तिया भिक्षुणी व नष्ट कर दो। दोनो भिक्षुओ पर अभियोग आरोपित किया जाय।'

भगवान् ने आसन त्याग दिया। विहार मे चले गये।

× × ×

भिक्षु सघ से मेन्तिया भिक्षुणी निष्कासित कर दी गयी। मेत्तिय तथ भुम्मजक भिक्षुओ ने उन भिक्षुओ से कहा

'भिक्षुओ ! वह निरपराध है।'

'कैसे ?

'हमने उसे उत्साहित किया था।'

'क्यो ?'

'हम दर्भ से कुपित थे। असन्तुष्ट थे। उसे च्युत कराने की दृष्टि से ।'

'आवुसो ! तुमने निर्मूल दुराचार का दोष लगवाया था ?'

'हाँ।'

भिक्षु चिन्तित हुए।

× × ×

भिक्षुओ ने भगवान् से निवेदन किया। भगवान् बोले .

प्रभाहीन हो गये थे। मेत्तिया[1] भिक्षुणी उनके पास आयी। उन्हे उदास देखकर बोली .

'आर्यो! वन्दना स्वीकार कीजिए।'

भिक्षु नीरव थे। भिक्षुणी चकित हुई। उसने तीन बार पूछा। कोई उत्तर नही मिला।

'क्या मैंने अपराध किया है ?'

'भगिनी! दर्भ मल्ल पुत्र हमे कष्ट देता है। तुम यह देखती हो। हमारी किंचित् मात्र चिन्ता नही करती।'

आर्यो! मै क्या करूँ ?'

'यदि तुम चाहो तो दर्भ मल्ल पुत्र को भगवान् आज ही नष्ट कर देंगे।'

'आर्यो! मै क्या कर सकती हूँ ?'

'भगिनी! भगवान् से जाकर निवेदन कर।'

'क्या निवेदन करूँ ?'

'भगवान् से निवेदन करो—' जो दिशा पूर्व समय ईतिरहित, उपद्रव रहित, भय रहित थी, वह सहसा ईति, भय, उपद्रव सहित हो गयी है। जहाँ हवा नही वहती थी वहाँ प्रवात अर्थात् आँधी आ गयी है। जल गरम हो गया है। मल्ल पुत्र ने हमे दूषित किया है।'

'अच्छा भन्ते !'

× × ×

मेत्तिया भिक्षुणी भगवान् के यहाँ गयी। अभिवादन कर एक ओर खड़ी हो गयी। सुअवसर देखकर बोली .

'भन्ते! यह अनुचित है।'

'क्या अनुचित है ?'

मेत्तिया ने घटना का वर्णन किया! भगवान् ने भिक्षु सघ को आमन्त्रित किया। दर्भ मल्ल पुत्र से प्रश्न किया :

---

(१) मेत्तिया भिक्षुणी इसके विषय मे विशेष कुछ ज्ञात नही है। पर सघ मे मिथ्या दोष लगाने के कारण निकाल दी गयी थी।

भिक्षुओ ने भगवान् को शिरसा प्रणाम किया। दर्भ मल्ल पुत्र निरन्तर धर्म मनन मे, अभ्यास में, ध्यान मे, लगा रहा। उसने एक दिन मनोल्लास मे उदान कहा

'ओ! मै प्रवल दर्भ मुल्ल पुत्र, प्रवल दमन द्वारा दान्त हूँ। सन्तुष्ट हूँ। विगंत शका हूँ। विजयी हूँ। स्थित प्रज्ञ हूँ। पूर्ण रूपेण शान्त हूँ।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे पच्चीसवा स्थान प्राप्त मल्लदेशीय अनूपिया नगर निवासी क्षत्रिय कुलोत्पन्न दर्भ मल्ल पुत्र, शयनाशन प्रज्ञायको मे अग्र हुए थे।

•

आधार ग्रन्थ :

थेर गाथा ५, उदान ५

चुल्लवग्ग ४ २ १

५ २ ६

'क्या यह सत्य है ?'

'हाँ भन्ते ।'

'सघ आमन्त्रित किया जाय ।' भगवान् ने आदेश दिया ।

× × ×

'भिक्षुओ !' आमन्त्रित सघ को भगवान् ने सम्बोधित किया । दर्भ मल्ल पुत्र को स्मृति की विपुलता प्राप्त है । उन्हे स्मृति विनय दिया जाय ।'

'भन्ते ! स्मृति विनय देने की प्रक्रिया क्या होगी ?'

'दर्भ मल्ल पुत्र संघ की सेवा मे उपस्थित हो । उसके एक कन्धा पर उत्तरासग हो । भिक्षुओ के चरणो मे वन्दना करे । उकडूँ बैठ जाय । अंजलिबद्ध कहे —

'भन्ते ! मेत्तिय और भुम्मजक ने निर्मूल दुराचार का दोष लगाया है । स्मृति विपुलता से युक्त हूँ । सघ से स्मृति विनय का आकाक्षी हूँ ।'

'तत्पश्चात् भन्ते ?'

'समर्थ और चतुर भिक्षु सघ को सूचित करे ।'

'किस प्रकार ?'

'भन्ते ! सघ मे ही सुने । यह सूचना है ।'

'अनन्तर –?'

'भन्ते ! सघ मे ही सुने । यह अनुश्रवण है । यह तीन बार कहा जाय ।'

'और –?'

'सघ ने विपुल स्मृति युक्त मल्ल पुत्र को स्मृति विनय दे दिया । सघ चुप है । यह मौन सम्मति है ।'

संघ सुनता रहा ।

'भिक्षुओ !' भगवान् ने कहा, 'पाँच नियमानुकूल स्मृति विनय के दान हैं–(१) भिक्षु निर्दोप सिद्ध होता है । (२) उसके अनुवाद करने वाले होते है । (३) वह स्मृति विनय मागता है । (४) सघ स्मृति विनय देता है । (५) धर्म से समग्र होकर देता है ।'

अजातशत्रु ने पिता की हत्या की थी। तत्पश्चात् महाकोशल राज की कन्या बिम्बसार की पत्नी का भी देहावसान हो गया।

प्रसेनजित् कोशलराजने बहिन के मर जाने पर अपने भानजे अजातशत्रु पर कन्यादान मे दिये गये काशी मण्डल की पुनः प्राप्ति निमित्त सन्देश भेजा। अजातशत्रु से प्रसेनजित् ने कहा .

'माता-पिता के मार देनेके पश्चात् हमारे पिता के दिये ग्रामो को रखने का कोई अधिकार आपको नही है।'

अजातशत्रु ने उत्तर दिया 'वह हमारी माता की भूमि है। पुत्र का माता की सम्पत्तिपर अधिकार होता है।'

अजातशत्रु चतुरगिणी सेना सहित काशी मे आया। प्रसेनजित् ने भी अपनी चतुरगिणी सेना तैयार की। वह भी सेना सहित काशी पहुँचा।

दोनो सेनाओ मे घमासान युद्ध हुआ। राजा प्रसेनजित् पराजित हो गया। प्रसेनजित् कोशल की राजधानी श्रावस्ती की ओर पलायन किया।

× × ×

तथागत श्रावस्ती मे पिण्डाचार के लिये गये। भिक्षुओ से प्रसेनजित् की पराजय का हाल सुना। शास्ता ने कहा :

'भिक्षुओ! अजातशत्रु पाप मित्र है। प्रसेनजित् कल्याण मित्र है। प्रसेनजित् पराजित होकर दुःख से सो रहा है :'

'भन्ते!'

'सुनो भिक्षुओ! जय द्वारा शत्रुता उत्पन्न होती है। पराजित दु ख से सोता है। शान्ति प्राप्त पुरुप जय-पराजय की चिन्ता न कर, शान्ति से शयन करता है।

× × ×

पराजित राजा प्रसेनजित चैन से नही बैठा रहा। उसने फिर आक्रमण करने का विचार किया। अजातशत्रु सेना लेकर काशी आया। प्रसेनजित् और अजातशत्रु मे तुमुल युद्ध हुआ। अजातशत्रु पराजित हो गया। प्रसेनजित् ने उसे जीवित बन्दी बना लिया।

संग्राम

जयं वेरं पसवति दुक्ख सेति पराजितो ।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जय पराजय ॥

(विजय वैर उत्पन्न करता है। पराजित दु ख की निद्रा सोता है। रागादि दोप जिसके उपशान्त हो गये है, वह जय-पराजय मे सुख से सोता है।)

—ध० २०१

महाकौशलराज ने अपनी कन्या का विवाह मगधराज विम्बसार के साथ किया था। मगध तथा कोसल के मध्य एक लाख आय का काशी[1] मण्डल था। महाकोशलराज ने कन्या दान मे मण्डल दे दिया था।

---

(१) काशी . एक जनपद था। इसकी राजधानी वाराणसी थी। पूर्व वुद्ध काल मे इसका नाम सुसन्धन, सुदर्शन, व्रह्मवर्धन, पुष्पवती, मौलिनी और रम्य नगर था। इसका विस्तार १२ योजन था। पूर्व बुद्धवर्ती काल मे यह उत्तर भारत मे सवसे अधिक शक्तिशाली जनपद था। बुद्ध काल मे इसकी शक्ति क्षीण हो गयी थी। प्राय काशी-कोसल मे युद्ध होता था। काशी का चन्दन तथा रगीन वस्त्र प्रसिद्ध थे। इस समय काशीमे चन्दन नही होता। वस्त्र अव भी प्रसिद्ध है।

काशो को राष्ट्र भी कहा गया है। काशो जनपद के उत्तर मे कोसल, पूर्व मे मगध तथा पश्चिम मे वत्स जनपद था। दक्षिण मे सोण नदी इसकी सीमा वनाती थी। पूर्व वुद्ध काल में एक समय दक्षिण मे गोदावरी तक काशी जनपद की सीमा पहुच गयी थी। धजविदेह जातक में इसकी सीमा तीन सौ योजन वतायी गयी है।

वुद्ध साहित्य में धृतराष्ट्र, अंग, उग्गसेन, उदय, धनजय, विस्ससेन, कलावु, सयम, किक, राम, जनकादि यहाँ के राजा की उपाधि एक मत के अनुसार व्रह्मदत्त थी। दूसरा मत है कि व्रह्मदत्त राजा था।

'राजन् !' तथागत ने पूछा, 'किस कारण आप इस शरीर की शुश्रूषा कर रहे हैं। क्या यह मैत्री का उपहार है ?'

'भन्ते ! कृतज्ञता, कृतवादिता के कारण मै शुश्रूषा करता हूँ। मैत्री का उपहार प्रदर्शित करता हूँ।'

●

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद १५ ३

सयुक्त निकाय सग्राम सुत्त ३ २ ४-५

अगुत्तर निकाय ' कोसलसुत्त १०-१-१०

कोशलराज ने विचार किया। यद्यपि अजातशत्रु शत्रुता करता था तथापि वह भानजा है। उसने अजातशत्रु को उसकी सेना लेकर जीवित मुक्त कर दिया।

भिक्षुओ ने आकर भगवान् से प्रसेनजित् के विजय की बात कहा। भगवान् ने उदान कहा

'कोई अपनी इच्छानुसार लूटता है। किन्तु जब दूसरे लूटने लगते है, तो वह लूटने वाला लुट जाता है।

'मूर्ख समझता है। उसने सफलता प्राप्त कर ली है। परन्तु यह तभी तक प्रतीत होता है, जब तक कि उसका पाप नही फलता। किन्तु जब वह पाप फलता है, तो मूर्ख दु ख ही दु ख पाता है।

'हत्यारे को हत्यारा मिलता है। जीतने वाले को जीतने वाला मिलता है। गाली देने वाले को गाली देने वाला मिलता है। बिगडने वाले को बिगडने वाला मिलता है। इस प्रकार अपने कृत कर्मो के चक्कर मे लूटने वाला लुट जाता है।'

× × ×

युद्ध मे विजय प्राप्त कर प्रसेनजित् श्रावस्ती लौट आया। भगवान् विहार कर रहे थे। आराम मे गया जहाँ तक यान से जा सकता था, यान से गया। तत्पश्चात् पैदल भगवान् के समीप पहुँचा।

भिक्षु लोग खुले स्थान मे चारिका कर रहे थे। उनसे भगवान् को दर्शन की इच्छा प्रकट की। भिक्षुओ ने कहा

'राजन्! उस अलिन्द मे पधारिए। वहाँ खास कर अपने आगमन की सूचना दीजिये। अर्गल खट-खटाइए। तथागत आपके लिए द्वार खोल देगे।

राजा ने अर्गल खट-खटाया। भगवान् ने द्वार खोल दिया। प्रवेश करते हुए उसने कहा :

'भन्ते! मै राजा प्रसेनजित् हूँ।'

भगवान् का चरण स्पर्श कर राजा प्रेम से भगवान् का शरीर मर्दन करने लगा।

पुण्य ने सारिपुत्र को एक दिन भिक्षा दी थी। उस पुण्य प्रताप से उसने यथेष्ठ धन अर्जन किया। वह धन श्रेष्ठी बना दिया गया। उसने सात दिन तक भगवान् तथा भिक्षुओं का भिक्षा दान किया। सातवें दिन उपदेश काल में पुण्य सिंह, उसकी स्त्री तथा कन्या सभी श्रोतापन्न हो गये।

सुमन श्रेष्ठी ने अपने पुत्र का विवाह उत्तरा से करना चाहा। परन्तु पूर्ण सिंह ने अस्वीकार कर दिया। वह बुद्ध का अनुयायी नही था। उत्तरा भगवान् की उपासिका थी। प्रतिदिन एक कार्षापण का पुष्प खरीद-कर भगवान् को चढाती थी।

सुमन श्रेठी ने कहा। वह प्रतिदिन दो कार्षापण भगवान् के पुष्प के लिये दिया करेगा। पूर्ण यह सुनकर विवाह निमित्त उद्यत हो गया। उत्तरा का विवाह धूमधाम के साथ सुमन श्रेष्ठी के पुत्र के साथ हो गया।

× × ×

उत्तरा भगवान् की उपासिका थी। उनमे श्रद्धा रखती थी। श्रद्धालु थी। दान मे रुचि रखती थी।

उसका पति विपरीत दृष्टिकोण का व्यक्ति था। वह दान पराङ्मुख था। अदयालु था। दो विपरीत मनोवृत्तियो का विवाह सम्बन्ध था। उसका सुखकर होना सम्भव नही था।

पतिगृह आने के पश्चात् उत्तरा विचित्र वातावरण मे पड गयी। वह दान नही दे सकती थी। उपदेश नही सुन सकती थी। भिक्षु सघ से सम्पर्क रखना कठिन हो गया था। बात बढती गयी। उत्तरा का जीवन कठिनता से व्यतीत होने लगा। वह व्रत भी नही रख सकती थी।

उत्तरा ने अपने पिता के पास सन्देश भेजा—'पतिगृह मेरे लिए बन्धन हो गया है। कैद मे पडी हूँ। दान नही दे सकती। तथागत का दर्शन नही कर सकती। कितना उत्तम होता। विवाह करने की अपेक्षा यदि आप मुझे दासी बनाकर घर से बाहर निकाल दिये होते।'

पूर्ण पुत्री का सन्देश पाकर दु खी हुआ। उसे पुत्री की अवस्था पर दया आयी। उसने दस सहस्र कार्षापण पुत्री के पास भेजा। सन्देश

उत्तरा नन्दमाता

अक्कोधेन जिने कोधं असाधु साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिन ॥

(क्रोध को अक्रोध से, असाधुता को साधुता से, कृपणता को दान से, और असत्य को सत्य से जीतना चाहिए।)

—ध० २२३

राजगृह नगर था। सुमन श्रेष्ठी[1] वहाँ निवास करता था। उसके अधीन पूर्णसिंह[2] था। उसकी पुत्री का नाम उत्तरा था। पुण्यसिंह को पुण्यक भी कहते थे।

---

(१) सुमन श्रेष्ठी . लगभग २५ सुमन नामक व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है। सब एक दूसरे से भिन्न है। द्रष्टव्य है कथा अनाथपिण्डक।

(२) पूर्ण सिंह . राजगृह का श्रेष्ठी था। एक दिन उसके स्वामी सुमन श्रेष्ठी ने उसे काम से छुट्टी दे दी थी। तथापि वह खेत पर काम करने चला गया क्योकि वह अत्यन्त दरिद्र था। वह खेत पर जिस समय काम कर रहा था सारिपुत्र का वहाँ आगमन हुआ। सारिपुत्र ने उसे दातुन तथा पानी दिया। पुण्य की स्त्री पति के लिये भोजन लेकर आ रही थी। मार्ग मे सारिपुत्र से भेट हुई। उसने भोजन सारिपुत्र को दे दिया। घर लौटकर उसने पुनः भात बनाया और पति को भोजन लेकर गयी। पूर्ण भोजन दान की घटना सुनकर बडा प्रसन्न हुआ। वह भोजनोपरान्त पत्नी की पलथी पर मस्तक रख कर सो गया। नीद खुली तो देखा कि खेत सोना हो गया है। उसने राजा को समाचार दिया। राज कर्मचारी के स्पर्श करते ही सोना मिट्टी हो गया। पूर्ण के नाम से सोना स्पर्श किया गया तो वह सोना ही था। राजा ने पूर्ण के नाम से एकत्र किया गया सोना ले लिया। उसे बहुधन श्रेष्ठी की उपाधि दे दी गयी। उसने एक नवीन विहार बनवाया। उसके उद्घाटन के दिन भगवान् तथा भिक्षुओ को भोजन कराया। वहाँ भगवान् का उपदेश सुनकर उसकी स्त्री तथा उत्तरा श्रोतापन्न हो गयी।

उत्तरा ने इन दिनो खूब दान किया। उपदेश सुना। उसके पति को गणिका से फुरसत नही मिली। अतएव वह पत्नी के कार्य मे व्यवधान उत्पन्न नही कर सका।

× × ×

पन्द्रहवाँ दिन आया। उस दिन महापवारण थी। उत्तरा एक दिन पूर्व से ही भिक्षु सघ के दान का प्रबन्ध कर रही थी। घोर परिश्रम कर रही थी। क्लान्त हो गयी थी। उसका शरीर पसीना से भर गया था। शरीर पर उभडे पसीना के विन्दु मिलकर, शरीर से वर्षा-जल की तरह टपक रहे थे।

उत्तरा के पति ने प्रासाद के ऊपरी तल से उत्तरा को देखा। उसका घोर परिश्रम देखा। उसकी क्लान्त मुद्रा देखी। वह हँसने लगा। कह उठा—'अत्यन्त मूढा है।'

सिरिया गणिका ने श्रेष्ठी पुत्र का हँसना देखा। उसे शका हो गयी। उसका केवल एक दिन यहाँ और रहना हो सकता था। उसने समझा। उत्तरा के साथ श्रेष्ठी पुत्र की मित्रता है। वह ईर्ष्या से विदग्ध हो उठी। उसमे नारी जन्य डाह ने मजबूती से घर कर लिया। उसने उत्तरा को देखा। वह नीचे के तल मे कार्य मे दत्तचित्त थी।

× × ×

सिरिया मे प्रतिहिसा की ज्वाला धधक उठी थी। उत्तरा से बदला लेने का विचार किया। उसे कुरूप करना चाहा। कुरूप होने पर कोई पुरुष उसकी तरफ नही देख सकेगा। जिस पति के साथ वह गत चौदह दिनो से थी, और, जो उत्तरा को देखकर, विहँस रहा था, वह कुरूप होने पर उत्तरा की तरफ भूलकर कभी न देखेगा। और न विहँस सकेगा।

उसने एक कछछुल गर्म खौलता घी लिया। नीचे उतर कर आयी। उत्तरा पूर्ववत काम में भिक्षुओ के दान का प्रवन्ध कर रही थी। उसने सिरिया को देखा।

वह क्रूर राक्षसी तुल्य उत्तरा की तरफ कलछुल का तडकता घी लिए वढ रही थी। उसकी आँखे लाल थी। क्रोध से जल रही थी।

भेजा—'राजगृह मे सिरिया[1] नाम्नी अत्यन्त रूपवती गणिका है। वह प्रति रात्रि का एक सहस्र कार्षापण लेती है। उसे अपने पति की सेवा के लिए पन्द्रह दिनो के लिए रख ले। पति गणिका के साथ लगा रहेगा। इन पन्द्रह दिनो मे तुम पुण्य कार्य करना।'

× × ×

उत्तरा ने गणिका को सहस्र कार्षापण प्रतिदिन के हिसाब से देकर रख लिया। वह उसके पति के साथ रहने लगी। चौदह दिन बीत गया।

---

(१) सिरिया राजगृह की गणिका थी। जीवक की कनिष्ठ बहन थी। बुद्धघोष का मत है कि वह शीलावती गणिका की पुत्री थी। उत्तरा के निवास स्थान पर भगवान् का उपदेश सुनकर वह श्रोतापन्न हो गयी थी। उस दिन के पश्चात् नियमित रूप से आठ भिक्षुओ को प्रतिदिन अपने घर पर भिक्षा देती थी।

एक भिक्षु सिरिया के स्थान से तीन योजन दूर रहता था। उसने सिरिया के दान तथा अनुपम सुन्दरता की ख्याति साथी भिक्षु से सुनी। वह सिरिया के निवास स्थान पर भिक्षा निमित्त आया।

सिरिया बीमार थी। उसकी दासी ने भिक्षुको की सेवा की। भोजन परोस दिया गया तो भिक्षुओ को प्रणाम करने वह भोजनशाला मे आयी।

भिक्षु उसे देखते ही मोहित हो गया। भोजन नही कर सका। उसी दिन सिरिया का देहान्त हो गया। भगवान् ने सुनकर आदेश दिया कि स्मशान भूमि मे उसका शव पशु और पक्षियो से रक्षित रख दिया जाय। राजा ने घोपित किया कि जो सिरिया का शव देखने जायगा उसे जुर्माना देना पडेगा। भगवान् उक्त भिक्षु के साथ स्वय स्मशान भूमि मे सिरिया के शव के समीप गये। भगवान् ने राजा से घोपित करवाया कि जो एक सहस्र मुद्रा देगा वह सिरिया का शव ले जा सकेगा। कोई शव खरीदने नही आया। ग्राहक न देखकर एक दमडी शव की कीमत घटाते-घटाते रख दिया गया। कोई शव को लेने नही आया। अन्त मे घोपित किया गया कि जो चाहे सिरिया का शव मुफ्त उठा ले जाय।

भगवान् ने भिक्षुओ से कहा—जो सिरिया के साथ एक रात रहने का एक सहस्र मुद्रा देते थे वे भी उसके शरीर को लेने के लिए तैयार नही थे, शरीर अनित्य है। कामी भिक्षु सुनकर वही श्रोतापन्न हो गया।

सिरिमा के घावो को सुहलाने लगी। उसे दु:ख हुआ। अकारण दासियों ने उसपर हाथ छोडा था। उसने उसे अपनी सगी बहन की तरह उठाया। हृदय से लगा लिया। साथ लेकर अन्त:पुर मे चली गयी।

× × ×

सिरिमा को चोट लगी थी। वेदना से व्यथित थी। उत्तरा ने दासियो को आज्ञा दी। उसके शरीर मे तेल की खूब मालिश की जाय।

जिन दासियो ने उसे हाथो और घूसो से पीटा था, वे हाथ और मुट्ठियाँ उसे मालिश करने लगी। उसे आराम मिला। मर्दन से शरीर की व्यथा कम हुई।

उत्तरा ने उसे स्नान कराया। स्वच्छ शीतल जल स्नान द्वारा उसमे नव-चेतना उत्पन्न हो गयी थी। शरीर मे स्फूर्ति आ गयी थी। स्वच्छ सूक्ष्म वस्त्र पहनकर, वह एक मुन्दरी तुल्य लगने लगी थी। उत्तरा के चरणो पर गिर पडी। उत्तरा के आभार, उसके वैर, उसके शील, उसकी मैत्री मानवीय भावना ने उसे जीत लिया था। उसके नेत्रो से निकलती अविरल अश्रु धारा रुकती नही थी। उसके अश्रुधारा से उत्तरा के चरण आर्द्र हो गये। उत्तरा ने भगिनी सदृश उसे हृदय से लगा लिया। सिरिमा रोती यही कहती रही—'मुझे क्षमा करो बहन! मुझे क्षमा करो। मैने अपराध किया है। मुझे क्षमा करो।'

उत्तरा उसके नेत्रो को अचल से पोछती हुए बोली—'बहन! भगवान् से क्षमा माँगो।'

× × ×

दूसरा दिन था। पन्द्रहवाँ दिन था। उत्तरा ने आज के लिए भगवान् सहित भिक्षु सघ को भोजन निमित्त आमन्त्रित किया था।

समय पर सुआच्छादित भगवान् भिक्षु संघ के साथ उत्तरा के निवास स्थान पर आये। सबके हाथ मे भिक्षा-पात्र था। सब चीवरधारी थे।

स्वच्छ आसन बिछा था। भगवान् ने आसन ग्रहण किया। उनके साथ भिक्षु सघ ने आसन ग्रहण किया। उत्तरा ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की।

सिरिमा लज्जित आयी। अश्रुपूर्ण नेत्रो से आयी। पश्चात्ताप करती

शरीर कम्पित था। होठ फडक रहे थे। ललाट की रेखाएँ वक्र होकर गहरी हो गयी थी।

वह भोगी बिल्ली की तरह दबकी बढ रही थी। उत्तरा पर अकस्मात् जलता घी छोडकर, जला देना चाहती थी। कुरूप करने मे क्रूर उल्लास का अनुभव करना चाहती थी।

उत्तरा का हृदय निर्विकार था। मन निर्मल था। विवेक सन्तुलित था। चित्त स्थिर था। उसमे किंचित् मात्र सिरिमा के लिए अशुभ भावना का उदय नही हुआ। उसके मन मे मैत्री-भाव था। वह सिरिमा को मैत्री दृष्टि से देख रही थी।

उत्तरा ने उसका भयकर उग्र रूप देखा। प्रचण्ड क्रोधानल मे वह प्रज्वलित थी। उसने सोचा था। उत्तरा भागेगी। परन्तु उत्तरा दृढता-पूर्वक उसके सम्मुख खडी हो गयी। उसकी मुद्रा मे किंचित् मात्र व्यग्रता नही थी। भय ने उसमे प्रवेश नही किया था। वह उस उग्र क्रोधानल से किंचित् दुर्बल नही हुई। उसकी सरलता मे परिवर्तन नहीं हुआ। उसने स्वप्न मे भी नही विचार किया। वह कुरूप हो सकती थी। वह जल सकती थी। सिरिमा का वह भयकर रूप देखकर मुसकराई। मनोविकार का विकृत तामसिक रूप देखकर उसे सिरिमा की स्थिति पर दया आयी। सिरिमा उसका सरल रूप देखकर और भडक उठी। उसने दाँत पीसते हुए उस पर गर्म उबलता घी उछाल दिया।

घी उत्तरा के शरीर पर पड़ा। सिरिमा आशा लगाये थी। उत्तरा आर्तनाद कर उठेगी। उसका रूप बिगड जायगा। शरीर पर छाले पड जायेंगे। वस्त्र जल उठेंगे। परन्तु उत्तरा शान्त खडी रही। घी उसके शरीर पर फैला। परन्तु तुषार तुल्य शीतल बन कर।

सिरिमा चकित हुई। उसने समझा। उसका घी शीतल था। प्रभाव नही कर सका। उसे जैसे धक्का लगा। वह स्वय अपने ऊपर चिढ़ गयी। वह पुन. घी लेने चली।

दासियो ने सिरिमा का कुकृत्य देख लिया। वे दौड़ पड़ी। उस पर टूट पड़ी। उसे पीटने लगी। सिरिमा लगी चिल्लाने। लगी प्राण दान माँगने।

उत्तरा दासियो के पास दौडी आयी। उसने दासियो को हटाया।

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु तथा श्रावक-श्राविकाओ की तालिका मे सत्तरहवॉ तथा श्राविका-उपासिकाओ में पॉचवॉ स्थान प्राप्त, मगध राजगृह सुमन श्रेष्ठी के आधीन पूर्ण सिह की पुत्री उत्तरा नन्द माता ध्यानियो मे अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद १७ ३

A IV : 347

A A II 79,

I . 240.

आयी। अपने कर्म पर दु ख प्रकट करती आयी। भगवान् के चरणो पर गिर पडी। उसने अश्रुपूर्ण नेत्रो से कहा

'भगवान्। मुझे क्षमा करे। सुगत, मुझे क्षमा करे। तथागत मुझे क्षमा करे।'

'भगिनी! क्या बात है।' भगवान् ने पूछा

सिरिमा अक्षरश सब घटना सुना गयी। उसने अपने पाप, अपने दोष, अपने अपराध को किंचित् मात्र छिपाने का प्रयास नही किया। उसके आत्म-निवेदन पर भिक्षु संघ चकित हो गया। कारुणिक भगवान् की करुण दृष्टि उत्तरा की ओर उठी

'साधु! उत्तरे! साधु! क्रोध को इसी प्रकार अक्रोध से विजय करना चाहिए।'

उत्तरा ने भगवान् के चरणो मे शिरसा नमन किया। भगवान् ने सिरिमा से स्नेह पूर्ण स्वर मे कहा

'सिरमे! तुम क्षमा की पात्र हो।'

× × ×

परम सुन्दरी राजगृह की गणिका सिरिमा ने प्रव्रज्या ली। उसने स्रोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया था। नित्य भिक्षुओ को अपने निवास-स्थान पर दान देती थी।

उसने एक दिन भिक्षुओ को दान दिया। अकस्मात् व्याधि ग्रस्त हो गयी। तुरन्त ही उसका देहावसान हो गया।

श्मशान मे राजा ने उसका मृत शव सुरक्षित रखवा दिया। तीसरे दिन भगवान् भिक्षु संघ के स्थान श्मशान मे पहुँचे। सिरिमा के शव को देखकर भिक्षुओ को सम्बोधित किया

'भिक्षुओ! इस प्रकार का अनुपम सुन्दर रूप भी नष्ट होता है। इस शरीर को देखो। आयुष्मानो।'

भगवान् ने पुन कहा·

'भिक्षुओ! इस चित्रित शरीर को देखो। वर्णो से युक्त है। फूला है। सकल्पो से युक्त है। इसकी स्थिति अनित्य है।'

× × ×

'हम भगवान् का दर्शन करना चाहते है।'

'अवश्य करना चाहिए आवुसो।'

'हमारी इच्छा है।'

'क्या ?'

'आप हम लोगो के साथ भगवान् के समीप चले।'

'आवुसो! आप लोग अविलम्ब प्रस्थान करे।'

'और आप!'

'मै आप लोगो का अनुकरण कर पीछे आऊँगा।'

'आयुष्मान् की जैसी आज्ञा।'

शुभ काल मे भिक्षु समूह ने राजगृह के लिये प्रस्थान किया।

× × ×

कलन्दक निवाप था। वेणु वन था। राजगृह था। पुण्य सघ के अनेक जाति भूमिक और जाति भूम भिक्षुको ने वर्षावास समाप्त किया। भगवान् के समीप पहुँचे। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। भगवान् ने उनसे कहा

'भिक्षुओ! जाति भूमि मे, जाति भूमि के भिक्षुओ मे कौन ऐसा प्रतिष्ठित भिक्षु है जो निर्लोभ है। भिक्षुओ के निमित्त निर्लोभ कथा कहने वाला है। सन्तुष्ट है। भिक्षुओ निमित्त सन्तोष कथा वाचक है। स्वय एकान्त चिन्तनशील है। चिन्तनशील कथा कहने वाला है। स्वय अनासक्त है। अनासक्त कथा कहने वाला है। स्वय शील सम्पन्न है। शीलसम्पदा कहने वाला है। स्वय समाधि सम्पन्न है। विमुक्ति सम्पदा कहने वाला है। स्वय विमुक्ति ज्ञान दर्शन सम्पन्न है। विमुक्ति ज्ञान दर्शन सम्पदा कहने वाला है। ब्रह्मचारियो के लिए उपदेशक है। विज्ञापक है। सन्दर्शक है। समापदक है। समुत्तेजक है। सम्प्रहर्षक है।'

'भन्ते! पूर्ण मैत्रायणी पुत्र मे यह सब गुण है।'

सारिपुत्र ने मैत्रायणी पुत्र से सम्पर्क स्थापित करने का विचार किया। संलाप करने का विचार किया। भगवान् ने भिक्षु परिषद् समाप्त की। वे उठ गये।

× × ×

भगवान् ने चारिका आरम्भ की। श्रावस्ती पहुँच गये। अनाथ-

मैत्रायणी पुत्र पूर्ण

कपिलवस्तु के समीप द्रोण वस्तु[1] ग्राम था। वहाँ एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण कुल था। कौण्डिन्य का वह कुल था। बहन का नाम मैत्रायणी था। माता के नाम पर मैत्रायणी पुत्र वह कहा जाता था। उसका नाम पुण्य रखा गया था।

भगवान् धर्मचक्र प्रवर्तन का उपदेश दे चुके थे। राजगृह चले गये थे। कौण्डिन्य अपने घर लौट आया था। उसने अपने भतीजा मैत्रायणी पुत्र को प्रव्रजित किया था। उसके पश्चात् कौण्डिन्य राजगृह गया। वहाँ से छद्न्त दह के सुन्दर तट पर विहार करने लगा।

पूर्ण तपस्वी जोवन आरम्भ किया। कपिलवस्तु के पडोस का त्याग किया। घर त्याग किया। सघ मे सम्मिलित हो गया। कुछ ही समय मे उसने अर्हत्त्व पद प्राप्त कर लिया।

पुण्य के अनुयायी पॉच सौ उसके गोत्रीय बन्धु थे। उन्होने भी गृह त्याग किया था। प्रव्रज्या ली थी। उसने शिष्यो को धर्म की शिक्षा दी। अनुशासन की शिक्षा दी। उसे जो कुछ ज्ञान प्राप्त था, निस्सकोच अनुयायियो को बता दिया। उसके अनुयायी भी कुछ दिनो मे अर्हत पद प्राप्त कर लिये।

उसके अनुयायियो ने इच्छा प्रकट की। वे भगवान् का दर्शन करना चाहते थे। उन्होने एक दिन पुण्य से निवेदन किया

'आयुष्मान्! हमारी एक आकाक्षा है।'

'कहो आवुस।'

---

(१) द्रोणवस्तु ग्राम कपिलवस्तु मे द्रोण वस्तु एक ग्राम था। वह ब्राह्मण ग्राम था। यहाँ आज्ञा कौण्डिन्य का भी जन्म हुआ था।

'परिग्रहहीन परिनिर्वाण के लिये आवुस।'

'आवुस! क्या शील विशुद्धि उपादान रहित परिनिर्वाण है?'

'आवुस! नही।'

'ज्ञान दर्शन विशुद्धि उपादान रहित परिनिर्वाण है?'

'नही—आवुस!

'क्या धर्मो से विलग उपादान रहित परिनिर्वाण है?'

'नही आवुस।'

'आपके कहने का तात्पर्य क्या है आवुस?'

'क्या मै एक उपमा देकर कहूँ आवुस!'

'आवुस! अवश्य कहिये।'

'आवुस! मान लो। कोसल नरेश श्रावस्ती मे निवास करते है। साकेत मे कोई आवश्यक कार्य आ जाय। उसके लिए साकेत और श्रावस्ती मे सात रथविनीत स्थापित कर दे। एक के पश्चात् दूसरे रथविनीत पर आरूढ होकर सातवे पर पहुँचे। वहाँ से साकेत के राजद्वार पर पहुंच जाय। वहाँ अमात्यो के यह पूछने पर कि आप इसी रथविनीत द्वारा साकेत पहुँच गये है। आवुस प्रसेनजित् का क्या उत्तर उचित होगा?'

'आवुस!' सारिपुत्र ने कहा। 'राजा यदि इस प्रकार उत्तर दे तो उचित होगा।'

'मै श्रावस्ती मे था। साकेत मे आवश्यक कार्य आ गया। एतदर्थ दोनो के मध्य सात रथविनीत स्थापित किये गये। प्रत्येक रथविनीत से आरूढ होता सातवे रथविनीत से यहाँ पहुँचा हूँ।'

'ठीक है आवुस! इसी प्रकार शील विशुद्धि का तभी तक महत्त्व है, जब तक चित्त विशुद्धि प्राप्त नही होती। चित्त विशुद्धि उस समय तक है, जब तक दृष्टि विशुद्धि प्राप्त नही होती। दृष्टि विशुद्धि उसी समय तक है, जब तक काक्षा वितरण विशुद्धि प्राप्त नही होती। काक्षा वितरण विशुद्धि का महत्त्व तभी तक है, जब तक मार्गामार्ग दर्शन विशुद्धि नही प्राप्त होती। मार्गामार्ग दर्शन विशुद्धि तभी तक है, जब तक प्रतिपद ज्ञान दर्शन विशुद्धि प्राप्त नही होती। प्रतिपद ज्ञान दर्शन विशुद्धि उसी समय तक है, जब तक ज्ञान दर्शन विशुद्धि प्राप्त नही

पिण्डक के जेतवन मे विहार किया। मैत्रायणी पुत्र भी चारिका करते श्रावस्ती पहुँचे। भगवान् का अभिवादन, वन्दना, प्रदक्षिणा की। अन्ध वन मे विहार करने लगे।

सारिपुत्र मैत्रायणी पुत्र से अत्यन्त प्रभावित थे। सर्वदा उनकी प्रशसा किया करते थे। भिक्षुओ ने उनसे मैत्रायणी पुत्र के आगमन का समाचार कहा।

मैत्रायणी पुत्र भगवान् की कथा सुनकर अन्ध वन की ओर प्रस्थान किये। सारिपुत्र उनका अनुमान करने लगे। मैत्रायणी पुत्र ने अन्ध वन मे प्रवेश किया। एक वृक्ष के तले विहार निमित्त आसन ग्रहण किया।

सारिपुत्र ने भी अन्ध वन मे प्रवेश किया। एक वृक्ष के नीचे विहार निमित्त आसन लगाया। आयुष्मान् सारिपुत्र सायकाल प्रति सल्लपन से उठे। मैत्रायणी पुत्र के समीप पहुँचे। कुशल-मगल पूछ कर एक ओर बौद्ध जगत् के दो महापुरुष बैठ गये। सारिपुत्र ने आश्वस्त होने पर मैत्रायणी पुत्र से सानुनय प्रश्न किया

'आवुस! आप तथागत के समीप ब्रह्मचर्य वास करते है?'

'आवुस! हाँ।'

'क्या शील विशुद्धि के हेतु करते है?'

'आवुस! नही।'

'शका निवारण निमित्त तथागत के समीप ब्रह्मचर्य करते है।'

'आवुस! नही।'

'तो क्या मार्ग-अमार्ग ज्ञान दर्शन की विशुद्धि के लिए, ब्रह्मचर्य वास करते है, आवुस?'

'नही, आवुस!'

'मार्ग ज्ञान, दर्शन, विशुद्धि के लिये करते है, आवुस!'

'आवुस! नही!'

'तो क्या ज्ञान दर्शन की विशुद्धि के लिए करते है आवुस?'

'नही। आवुस।'

'आवुस! क्या मै प्रश्न कर सकता हूँ? आप किसलिये भगवान् के पास ब्रह्मचर्य वास करते है?'

आधार ग्रन्थ .

सयुक्त निकाय १३ २ ५

३४ २ ४ · ५

मज्झिम निकाय १ ३ ४

अगुत्तर निकाय १ २३

थेर गाथा ४, उदान ४

A 1 23.

A A : 1 113.

Ap 1 38

J 11 38; 111 382, iv : 314

M 1 : 146

M A 1 362; 11 . 124.

Thag A : 1 37.

S 11 156

होती। और ज्ञान-दर्शन विशुद्धि उसी समय तक है, जब तक उपादान रहित परिनिर्वाण प्राप्त नही होता।'

'भन्ते !'

'आवुस ! मै भगवान् के पास परिनिर्वाण के लिये ब्रह्मचर्य वास करता हूँ।'

'आवुस !' सारिपुत्र ने पूछा, 'स-ब्रह्मचारी आयुष्मान् को किस नाम से सम्बोधित करते है ?'

'आवुस ! मेरा नाम पूर्ण है। सब्रह्मचारी मुझे मैत्रायणी पुत्र नाम से जानते है।'

'आवुस !' पूर्ण ने जिज्ञासा की, 'आयुष्मान् का नाम क्या है ? स-ब्रह्मचारी किस नाम से आपको सम्बोधित करते है ?'

'आवुस !' सारिपुत्र ने कहा, 'उपतित्थ मेरा नाम है। सारिपुत्र कह-कर स-ब्रह्मचारी मुझे सम्बोधन करते हे।

'आप सारिपुत्र है ? यदि मै जानता तो इतनी बात नही करता।'

दोनो महानाग एक दूसरे का परिचय पाकर प्रसन्न हुए। पुण्ण ने उदान कहा—'सत्पुरुषो की सगति पण्डित तथा अर्थदर्शी करते है। वे अप्रमत्त, विलक्षण धैर्य, गम्भीर, दूरदर्शी, निपुण, सूक्ष्म एव महान् अर्थ की प्राप्ति करते है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक मे नवाँ स्थान प्राप्त शाक्य कपिलवस्तु समीपस्थ द्रोण वस्तु ब्राह्मण ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न पूर्ण मैत्रायणी पुत्र धर्मकथिको मे अग्र हुए।

●

भगवान् एव विम्बसार मे प्रतीत होता है कभी उपदेशात्मक सवाद नही हुआ था। भगवान् के लिए विम्बसार के हृदय मे अपूर्व स्नेह था। इस स्नेह का परिचय निम्नलिखित घटना से मिलता है।

लिच्छवियो ने भगवान् को आमन्त्रित किया था। महाली स्वय आमन्त्रित करने आया था। मार्ग मे कष्ट होगा इसलिये विम्बसार ने यात्रा से विरत होने के लिये निवेदन किया। भगवान् जाने पर कटिवद्ध थे।

विम्बसार ने भगवान् को कष्ट न हो इसलिए राजगृह से गगा तट तक सडक की पूरी मरम्मत करायी थी। मार्ग में उसने धर्मशालाओ का निर्माण विश्राम निमित्त प्रत्येक योजन पर करवाया था। यात्रा के समय पचरगे फूलो से मार्ग पर पुष्प-वर्षा की जाती थी। भगवान् के लिये दो छत्र तथा प्रत्येक भिक्षु के लिए एक छाता का प्रबन्ध किया गया था।

यह यात्रा पाच दिनो मे समाप्त हुई थी। विम्बसार ने स्वय भगवान् के साथ यात्रा की थी। उन्हे किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये।

गंगा तट पर उसने दो नावो को एक मे बँधवा कर बडी नाव का रूप दिलवा दिया। उसे पुष्पो तथा रत्नो से सुसज्जित करवाया। स्वय कण्ठ तक जल मे आकर भगवान् को विदा किया।

× × ×

भगवान् गगा पार पहुँच गये। बिम्बसार दूसरे तट पर शिविर लगा कर रह गया। भगवान् जब लिच्छवियो के यहाँ से लौटे, तो पूर्ववत् विम्बसार भगवान् के साथ राजगृह वापस आया।

विम्बसार के पार्षदो एव अमात्यो मे सोण कोटिविंश, सुमन माली, अमात्य कोलिय[1], श्रेष्ठी कुम्भ घोषक[2], तथा जीवक का नाम महत्वपूर्ण है।

---

(१) कोलिय . कथा 'शाक्य कोलिय' द्रष्टव्य है।

(२) कुम्भघोषक . राजगृह के मुख्य श्रेष्ठी का पुत्र था। एक समय राजगृह में प्लेग फैला। कुम्भ घोषक तथा उसकी स्त्री दोनो के प्लेग हो गया। मृत्यु समीप आते ही पिता माता ने पुत्र को भाग जाने के लिए कहा। जीवित रहने पर वह लौटकर गडा धन निकाल ले। वह बारह वर्ष तक जगल में घूमता रहा। तत्पश्चात् लौट कर आया। उसका धन यथावत् गड़ा था।

विम्बसार का अन्त

विम्बसार भगवान् का बाल सखा था। भगवान् से पाँच वर्ष छोटा था। उनके पिता भी मित्र थे। पन्द्रह् वर्ष की अवस्था मे राज-सिहासन पर बैठा था। पन्द्रह् वर्ष राज्य कर चुका तो सर्व प्रथम भगवान् का नाम सुना। भगवान् के प्रव्रज्या लेने के पश्चात् जैसा लिखा जा चुका है। बिम्बसार और भगवान् की प्रथम भेट राजगृह मे पाण्डव पर्वत पर हुई थी। विम्बसार ने भगवान् के विहार निमित्त वेलु वन का निर्माण करा दिया था। विम्बसार भगवान् का अत्यन्त भक्त था। उनके सुखादि के लिये भरसक प्रयत्न करता था।

विम्बसार की अग्रमहिषी कोसला देवी थी। वह प्रसेनजित् कोसल-राज की बहन थी। उसका पुत्र अजातशत्रु था। उसकी माता का नाम कोसला था। विम्बसार की दूसरी पत्नी का नाम क्षेमा[1] था। एक और पत्नी थी। उसका नाम पद्मावती[2] था। वह उज्जैन की थी। क्षेमा और पद्मा-वती दोनो कालान्तर मे भिक्षुणी हो गयी। पद्मावती का पुत्र अभय राज-कुमार था। विम्बसार को अम्वपाली से एक और पुत्र था। उसका नाम विमल कौण्डिन्य था। अन्य स्त्रियो से उसके दो और पुत्र थे। उनका नाम शीलव तथा जयसेन[3] था। उसे एक कन्या थी। उसका नाम चुन्दी[4] था।

(१) क्षेमा . विम्वसार की अग्रमहिषी थी। सम्भ राज की कन्या थी। भद्र देश मे जन्म हुआ था। 'क्षेमा कथा' द्रष्टव्य है।

(२) पद्मावती वह उज्जैन निवासी थी। कालान्तर मे भिक्षुणी हो गयी। उसका नाम अभय माता पडा।

(३) जयसेन बुद्धघोष के अनुसार जयसेन विम्वसार का पुत्र था।

(४) चुन्दी : राजा विम्वसार की कन्या थी। कलन्दक निवाप वेणुवन मे भगवान् ने उसे चुन्दी सुत्त सुनाया था। एक मत है कि उसके भाई का नाम चुन्द था। वह उन तीन महिलाओ में थी जिन्हे उनके पिता ने काफी धन दिया था। अन्य दो विशाखा तथा सुमना है।

कभी विपत्ति नही आती थी। देवदत्त भगवान् को समाप्त करना चाहता था। अतएव प्रथम चरण उसने विम्बसार को समाप्त करने के लिए उठाया। उसने अजातशत्रु को अपना साधन बनाया।

राजा विम्बसार ने पुत्र को युवराज पद दिया। देवदत्त के षड्यन्त्र के कारण राजा ने राज्य भी अजातशत्रु को दे दिया। स्वय राज से अलग हो गया।

× × ×

देवदत्त ने अजातशत्रु को कुमन्त्रण दिया। कुछ समय पश्चात् राजा तुम्हारे अपराध को स्मरण करेगा। वह स्वय राजा बनने का प्रयास करेगा। वह ढोल के अन्दर मूस की तरह है। मूस एक दिन ढोल काट देगा।

अजातशत्रु को देवदत्त ने सलाह दी—'पिता की हत्या कर दी जाय।' अजातशत्रु पितृ हन्ता बनने के लिए उद्यत नही हुआ। उसने स्पष्ट कहा। शास्त्र पिता को अवध्य मानता है। कैसे अपने पिता की हत्या करेगा। दुष्ट प्रकृति देवदत्त ने उपाय निकाल लिया। उसने कहा—'ठीक है। बन्दी गृह मे डाल दोजिए। भूखो मर जायगा। पितृ-हत्या का दोष नही लगेगा।'

अजातशत्रु ने विम्बसार को तापन[१] गृह मे रख दिया। आदेश दिया—'उसकी माता के अतिरिक्त उस गृह मे कोई और न जाने पाये। कडा पहरा बैठा दिया जाय।'

× × ×

राजा का खान-पान बन्द था। रानी अपने उत्सग अचल मे भोजन छिपाकर ले जाती थी। उससे राजा जीवन निर्वाह करने लगा।

पिता को मरता न देखकर अजातशत्रु को सन्देह हुआ। उसने जाँच की। उसे वास्तविकता का पता लग गया। उसने आदेश किया—'माता उत्सग (आँचल) बिना बाँधे भीतर प्रवेश किया करे।'

× × ×

---

(१) तापनगेह . कारागार।

विम्बसार भिक्षुओ तथा भिक्षुणियो की सेवा मे सर्वदा तत्पर रहता था। धर्मदिन्ना ने प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया तो राजा विम्बसार ने नगर मे उसकी शोभा-यात्रा के लिए स्वर्ण शिविका दी थी।

अजातशत्रु माता के गर्भ मे था। उसके गर्भ मे आते ही रानी को पीडा उत्पन्न हुई।

× × ×

राजा ने वैद्यो को बुलाया। उनकी अनुमति पर स्वर्ण छुरी से बाहु चीर कर रक्त निकाला। उसे सुवर्ण प्याली मे रखकर रानी को पिला दिया।

ज्योतिपियो ने सुना। उन्होने भविष्य वाणी की। गर्भ-स्थित शिशु राजा का शत्रु होगा। राजा की उसके द्वारा हत्या होगी।

रानी चिन्तित हुई। उद्यान मे गयी। वहाँ गर्भ-पात का प्रयास किया। किन्तु गर्भ गिर नही सका।

जन्म होते ही रक्षको ने नवजात शिशु को हटा दिया। कुछ चैतन्य होने पर रानी को दिखाया। रानी मे पुत्र-स्नेह उभर आया। वह अपने नवजात शिशु की हत्या न कर सकी।

× × ×

देवदत्त ने राजा को मारने का षड्यन्त्र किया। राजा विम्बसार भगवान् का सबसे बडा समर्थक था। राजाश्रय के कारण भगवान् पर

उसने विचार किया। यदि वह धन खोदेगा और धनी जैसा जीवन व्यतीत करेगा तो लोगो को शका होगी। वह मिस्त्री का काम करने लगा। एक दिन राजा ने उसका स्वर सुनकर कहा—'यह किसी धनी का स्वर है।' राजा की वात कई वार सुनने पर एक दासी उसके धन लेने का विचार करने लगी। दासी कुम्भघोपक के मकान मे अपनी कन्या के साथ रहने के लिए कुम्भघोपक को तैयार कर ली। अपनी कन्या को उसे फँसाने का जाल रच लिया। उनका विवाह निश्चित हो गया। राजा ने उनके विवाह के लिए घोपणा की। विवाह खर्च के लिए वह भूमि खोदने लगा। उसी समय राजा के यहाँ से बुलाहट आ गयी। षड्यन्त्र पूरा हो गया। वह राजा के पास गया। सव घटना अक्षरश उसने राजा से वता दी। राजा प्रसन्न हो गया। अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया।

नापित बिम्बसार के तापन गेह, जहाँ राजा बन्दी था, गया। राजा ने समझा। नापित बाल बनाने आया था। सम्भवत पुत्र को अपनी करनी पर पश्चात्ताप हुआ है। बढे केश तथा नाखून काटने के लिए नापित भेजा था।

नापित के मुख पर प्रसन्नता राजा ने नही देखी। नापित लज्जित था। नत-मस्तक था। राजा ने पूछा .

'भणे ! क्या बात है ?'

'राजन् ! मै आपकी हत्या करने आया हूँ।'

'मेरी हत्या–?'

'हाँ राजन् ! राजा अजातशत्रुकी यही आज्ञा है।'

'नापित ! तुम प्रसन्नतापूर्वक मेरी हत्या करो। मुझे किंचित् दु:ख नही होगा। तुम्हे अपराध नही होगा।'

'राजन्–!'

'हाँ ! मै ठीक कहता हूँ। तुम्हे कोई दोष नही लगेगा।'

'राजन् ! मै विवश हूँ।'

'मै समझता हूँ नापित !'

राजा बिम्बसार सहर्ष प्रसन्नतापूर्वक मरने के लिए सन्नद्ध हो गया। नापित राजा की असीम प्रसन्नता देखकर चकित हो गया।

× × ×

अजातशत्रु अपने पुत्र के जन्म का हाल अमात्यो से पूछकर लौट रहा था। अजातशत्रु को उसके अमात्यो ने पुत्र-जन्म का लेख दिया। लेख पढकर वह प्रसन्न हो गया।

स्वय पिता हो गया। उसने अनुभव किया। पुत्र-स्नेह क्या होता था। उसने सोचा–'मेरे जन्म लेने पर पिता को भी इसी प्रकार का स्नेह मेरे लिए हुआ होगा। जैसा पुत्र प्राप्ति पर मुझे हो रहा था।' वह चिल्ला उठा ·

'पिता को मुक्त करो। पिता को मुक्त करो। बन्दी मुक्त करो।'

अमात्यो ने पिता की मृत्यु का दूसरा लेख अजातशत्रु के हाथ मे रख दिया।

रानी ने जूडे मे भोजन छिपाया। भोजन ले जाने लगी। वह बात भी मालूम हो गयी। खुला जूडा जाने की अनुमति मिली।

× × ×

रानी सुवर्ण पादुका मे भोजन छिपाकर ले जाने लगी। इसका भी पता लग गया। रानी को आदेश दिया गया। वह पादुका विहीन प्रवेश पा सकती है।

× × ×

रानी गधोदक से स्नान करती थी। चार मधुर रस मलती थी। वस्त्र पहन कर स्वामी के कारागार मे प्रवेश करती थी। रानी का शरीर चाटकर राजा जीने लगा।

पिता मरता नही। अजातशत्रु को चिन्ता हुई। उसे पता लग गया। उसने रानी का जाना रोक दिया।

× × ×

रानी नित्य की भाँति कारागार के द्वार पर आयी। उसे रोक दिया गया। रानी द्वार से ही पति से बोली—'आर्य! बालकाल मे आपने इसकी हत्या नही करने दी। आपने अपने शत्रु को स्वय पाला है। स्वयं राज त्याग किया है। यह अन्तिम दर्शन है। अब आपको पुन नही देख सकूँगी। यदि मैंने कोई अपराध किया हो तो क्षमा कीजियेगा।'

रानी करुण रुदन करती लौट आयी।

× × ×

कारागार मे राजा आहार हीन निवास करने लगा। सुख से टहलते हुए जीवन व्यतीत करने लगा।

अजातशत्रु पिता को शीघ्र मरता न देखकर चिन्तित हुआ। उसने नापित को आदेश दिया। पिता की हत्या अविलम्ब कर दी जाय।

नापित हत्या का प्रकार पूछा। राजा ने कहा

'पिता के पैर को छूरे से काट दो। घाव मे नमक और तेल भर दो। खैर की आग मे उस पैर को चिटचिटाते हुए भूनो।'

अजातशत्रु को अपने पिता पर दया नही आयी। नापित चला गया।

× × ×

A . ii 206.

A A i '220, ii 791

D iv 347

D A i 135

DhA . i : 85, 225, 125, 345
iii 206, 438, iv 211.

DpV . iii 50, 52

J i 66, iii 121; ii . 237, 403

M i 95.

M A i 516

MhV ii : 25, v 17

P U A 204, 89

S N vs 405.

S N A ii 386

Thag 64

Thag A i 147.

Vin i 35, 36, 190, 101, 179, 207

पिता की मृत्यु का समाचार पढते ही वह विकल हो गया। माता के पास दौडा गया।

'अम्मा! क्या मेरे पिता का मुझ पर स्नेह था?'

'अज्ञ! पुत्र!! क्या कहता है। बाल्यावस्था मे तेरी उगली मे फोड़ा हुआ था। तू बहुत रो रहा था। परिचायको ने तुम्हे फुसलाना चाहा। समझाना चाहा। उस समय तुम्हारे पिता विनिश्चत शाला मे बैठे थे। परिचायक तुम्हे चुप होता न देखकर तुम्हे लेकर विनिश्चित शाला मे गये। स्नेहभूत पिता ने तेरी उगली अपने मुख मे रख ली। उगली का फोडा मुख मे ही फूट गया। तुम्हारे स्नेह के कारण रक्त मिश्रित पीप को वे थूक न सके। पी गये। इस प्रकार पिता का तुम्हारे ऊपर स्नेह था।

अजातशत्रु रोने लगा। उसने पिता की दाह-क्रिया करने का निश्चय किया।

× × ×

—किन्तु अजातशत्रु ने पितृ-हत्या का जो बीजारोपण किया वह पाँच पीढी तक चलता रहा। अजातशत्रु ने विम्बसार को मारा, उदय ने अजातशत्रु को मारा। महामुण्ड ने उदय को मारा, अनुरुद्ध ने नागदास को मारा, नागदास को मारा, नागदास को राष्ट्रवासियो ने मारा।

●

आधार ग्रन्थ :

दीर्घ निकाय १ २, २ ५

सामज फल सुत्त

सुत्त निपात ३ २

(पवज्जा सुत्त)

९६

देती है। पानी वहा ले जाता है। अप्रिय जनो के हाथो लग जाता है। बिना भोग किये धन व्यर्थ हो जाता है।'

'ठीक कहा भगवन्–।'

'राजन्! कल्पना कीजिए निर्जन स्थान मे एक वापी है। उसका जल स्वच्छ है। शीतल है। स्वास्थ्यकर है। वापी उत्तम घाटो से युक्त है। रमणीय है। किन्तु उसका जल न कोई पीता है। न ले जाता है। न उसमे कोई स्नान करता है। न किसी के उपयोग में आता है। विना उपयोग वह निर्मल पेय जल नष्ट हो जाता है।'

'ठीक है भन्ते।'

राजन्! सज्जनगण धन पाकर उससे स्वय सुख प्राप्त करते है। माता पिता को सुख पहुँचाते है। दान देते है। इस प्रकार भोगा गया धन न तो राजा के कोप मे जाता है। न उसे चोर ले जाते हैं। न वह नष्ट होता है। यह धन सफल होता है।'

'ठीक है भन्ते।'

'राजन्! किसी जन स्थान के समीप वापी है। उसके जल का उपयोग होता है। निस्सन्देह वह जल सफल होता है। शुद्ध होता रहता है। बँधा रहकर नष्ट भा नहीं हाता।'

'भगवान् विचित्र बात है?'

राजन्!' भगवान् ने कहा–'उसका पूर्व वृत्तान्त सुनो। इसने भिक्षुओ को भिक्षा दिलायी थी। वह कहता था–श्रमण को भिक्षा दो।—कहकर उठता था। चला जाता था। तत्पश्चात् उसे घोर पश्चात्ताप होता था। सोचता था। नौकर-चाकर इस भिक्षा दिये अन्न को खा जाते तो अच्छा था।'

'विचित्र बात है—।' राजा ने चकित होकर कहा

—यही नही राजन्। उसने भाई के एकमात्र पुत्र की भी धन के लिए हत्या करवा दी थी।'

'उसका परिणाम क्या हुआ भन्ते?'

'उसने जो भिक्षा दी थी, उसके कारण सातवे स्वर्ग मे जन्म लेकर सुगति पायी थी। वहाँ से पतित होनेपर सात बार श्रावस्ती मे श्रेष्ठी

कंजूस

मध्याह्न काल था। श्रावस्ती मे भगवान् थे। कोसलराज प्रसेनजित् भगवान् के पास आये। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। भगवान् ने पूछा :

'राजन् इस मध्याह्न काल मे आप कैसे पधारे ?'

'भन्ते! श्रावस्ती के श्रेष्ठ गृहपति का देहावसान हो गया है। वह निःसन्तान था।'

'उसका धन क्या हुआ ?'

'भन्ते! उसकी सब सम्पत्ति राज-भवन मे भेजकर आ रहा हूँ।'

'उसके पास क्या था ?'

'उसके पास अस्सी लाख स्वर्णमुद्राएँ थी। रुपयो का गणना करना कठिन था।'

'अच्छा!'

'भन्ते! यह महान् सम्पत्तिशाली खाता क्या था। आप सुनिएगा ?'

'निश्चय।'

'वह घोर मट्ठा के साथ चावल की खुद्दी का भात खाता था। उसका वस्त्र विचित्र था। तीन जुटे हुए टाट पहनता था। उसका रथ दर्शनीय था। वह जराजीर्ण मनुष्य की काया की तरह लगता था। तृण और पत्तो से छाया हुआ था।'

'राजन्! बात ठीक घटी है। बुरे लोग अत्यन्त भोग-सामग्री पाकर भी उसका उपभोग नही करते। वे अपने माता-पिता को सुखी नही करते। स्त्री को सुख नही देते। सेवको–परिचायको को सुख नही देते। प्राप्त धन का परिणाम यही होता है। राजा उन्हे ले जाता है। अग्नि जला

विडूडभ

फेणूपम कायमिम विदित्वा मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो ।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि अदस्सन मच्चुराजस्स गच्छे ॥

(यह काया फेन के समान है । मृगमरीचिका के समान है । अतएव मार के फन्दे को तोडकर यमराज की दृष्टि के परे हो जाइये ।)

-ध० ४६

राजा प्रसेनजित् ने विचार किया। भिक्षु सघ के साथ विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। उनका विश्वास-पात्र होना उचित है। तथागत शाक्य-वशीय थे। अतएव उसने निश्चय किया। शाक्य वश के साथ रक्त सम्बन्ध स्थापित किया जाय।

शाक्यो के पास राजा का दूत पहुँचा। शाक्य सन्थागार मे थे। दूत ने राजा का प्रयोजन उन्हे मधुर शब्दो मे सुनाया। मधुर सम्बन्ध स्थापित करने की बात चलायी। शाक्यो ने दूत का आदर किया। सत्कार किया। उसे ठहरने का प्रबन्ध किया।

शाक्य एकत्रित हुए। परस्पर विचार-विनिमय करने लगे।

'राजा प्रबल है। हमे सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।'

'अस्वीकार करने पर हमारा सहार हो सकता है।'

'किन्तु वह समान कुल नही है।'

'रक्त सम्बन्ध असमान कुल से कैसे हो सकता है ?'

'किन्तु अस्वीकार नही किया जा सकता।'

'मैने एक उपाय सोचा है।' महानाम ने कहा।

'क्या— ?'

'उसे गोपनीय रखना होगा।'

हुआ। उसने दान का पश्चात्ताप किया था। वही कारण था। धन होने पर भी उसका उपभोग नही कर सका।'

'और भतीजे की हत्या— ?'

'उस पाप के कारण नि सन्तान हुआ।'

'अद्भुत भन्ते— !'

'राजन् ! साथ मे धन, धान्य, नौकर-चाकर कोई नही जाता। सब यही छूट जाते है। अपने शरीर से अपने वचन से, अपने चित्त से जो कुछ करता है, वही उसके साथ जाता है। राजन् ! उसका वही अपना होता है। उसी को लेकर जाता है। वही उसके पीछे-पीछे छाया तुल्य जाता है। परलोक मे पुण्य ही प्राणियो का आधार होता है।'

आधार ग्रन्थ

सयुत्त निकाय ३ २ : ६, १०

'यदि कन्या और पिता को एक थाली मे भोजन करते देखना तो कन्या को लाना।'

× × ×

राजा प्रसेनजित् के दूत शाक्यो के यहाँ पहुँचे। शाक्यो को सब बाते मालूम हो गयी थीं।

महानाम ने दूतो को इस प्रकार दिखाया जैसे वह और कन्या एक थाली मे खा रहे थे। दूतो को यही ज्ञान हुआ। वे एक साथ एक पात्र मे जैसे खा रहे थे। दूतो के मन मे सन्देह नही रह गया।

महानाम ने कन्या को सुअलकृत किया। उसे पूर्ण वैभव के साथ विदा किया।

× × ×

राजा प्रसेनजित् ने कन्या देखी। वह अनिन्द्य सुन्दरी थी। राजा प्रसन्न हो गया। उसे अग्रमहिषी बनाया। उस पद पर उसे अभिषिक्त किया।

रानी वाषभ क्षत्रिया ने समय पर सुवर्ण वर्ण पुत्र प्रसव किया। राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने अपनी पितामही के पास सन्देश भेजा। यह भी दूत से कहलवाया कि पुत्र के लिये दादी कोई उपयुक्त नाम का चयन कर दे।

सन्देशवाहक मन्त्री कुछ ऊँचा सुनता था। उसने पुत्र रत्न प्राप्ति की सूचना दी। राजा का सन्देश भी दिया। वार्षभ क्षत्रिया के विषय मे जब बात दादी करने लगी तो वल्लभ के स्थान पर उसने विडूडम नाम सुना। वही नाम पुत्र का भ्रम से रख दिया गया।

अल्प वयस्क होने पर भी राजा ने उसे सेनापति बना दिया।

विडूडम जब सात वर्ष का हुआ तो ननिहाल जाने की उसे प्रबल इच्छा हुई। माता ने बहुत समझाया। मार्ग बहुत लम्बा था। समय जाने का नही था। विडूडभ का ननिहाल जाना उस समय रुक गया।

वह सोलह वर्ष का हुआ। उसने पुन ननिहाल जाने की इच्छा प्रगट की। माता इस समय रोक नही सकी। राजा ने भी जाने की अनुमति दे दी। मार्ग का समस्त प्रबन्ध कर दिया गया। विडूडभ एक भीड़ के साथ सोत्साह ननिहाल के लिए प्रस्थान किया।

'अवश्य—'

'मेरी दासी पुत्री को आप लोग जानते है !'

'हाँ—वापभ क्षत्रिया ।'

'वह अनुपम सुन्दरी है ।'

'युवा है ।'

'राजा के अनुरूप है ।'

'हाँ—हाँ—उसके साथ विवाह कर देना चाहिए ।'

'शाक्य कुलीन कन्या उसे प्रदर्शित किया जाय ।'

'निश्चय ही ।'

शाक्यो ने दूत को बुलाकर स्वीकृति दे दी । कन्या का नाम, गोत्र आदि भी शासन मे लिख दिया ।

× × ×

'राजन् !' दूतो ने प्रसेनजित् से निवेदन किया ।

'शाक्यो के यहाँ से लौट आये ?'

'हाँ, राजन् ।'

'क्या हुआ ?'

'वे अपनी कन्या देने के लिए तैयार है ।'

राजा प्रसन्न हो गया । उसने पुन' पूछा .

'किसकी कन्या है ?'

'सम्यक् सम्बुद्ध के वश की ।'

राजा हर्षित हो गया । वे पुनः बोले

'तथागत के कनिष्ठ चाचा के पुत्र महानाम की कन्या है । उसका नाम वाषभ क्षत्रिया है ।'

'किन्तु क्षत्री शाक्य छली होते है ।'

'राजन् !'

'दासी कन्या भी दे देते है ।'

'तो— ?'

दिये गये सब सम्मानो को छीन लिया। उन्हे दास-दासी के स्थान मे भेज दिया।

× × ×

तथागत का एक दिन प्रसेनजित के राजप्रासाद मे शुभागमन हुआ। राजा ने उनकी वन्दना की। शाक्यो ने जो दुर्व्यवहार उनके साथ किया था कह सुनाया।

'राजन् !' तथागत ने कहा, 'शाक्यो ने अयुक्त कार्य किया है।'

'एक दासी कन्या के साथ—'

'नही राजन् !'

'भन्ते ! आपको सन्देह है।'

'राजन् ! वह राजदुहिता है। क्षत्रिय राजा के प्रासाद मे उसने अभिषेक प्राप्त किया है।'

'मेरा पुत्र–विडूडभ– ?'

'वह भी क्षत्रिय राजा से उत्पन्न हुआ है। आप क्षत्रिय नही है क्या ?'

'किन्तु उसकी माता का गोत्र ?'

'मातृ गोत्र से क्या होता है। पिता का गोत्र प्रमाण माना जाता है। आपका गोत्र तो ठीक है।'

'भन्ते ! मेरा भ्रम दूर हुआ।'

'राजा ने विडूडभ तथा उसकी माता को प्रकृत परिहार किया अर्थात् सम्मान पुन: वापस दे दिया।

× × ×

तक्षशिला के लिए प्रसेनजित, वैशाली का लिच्छवी कुमार महाली तथा कुशीनगगर का मल्ल राजपुत्र बधुल[1] एक साथ अध्ययन निमित्त प्रस्थान किये।

---

(१) बधुल कुशीनारा के मल्लो के सरदार का एक पुत्र था। कालान्तर मे राजा प्रसेनजित का सेनापति हो गया। इन्हे बन्धु मल्ल भी कहा गया है। इसकी स्त्री का नाम मल्लिका था। महालता प्रसाधन विशाखा, देवदानिय चोर तथा मल्लिका केवल तीन के पास था। पति की मृत्यु के पश्चात् महालता

विडूडभ के कपिलवस्तु पहुँचने पर बालक सथागार मे एकत्रित हुए। कुमार सथागार मे गया। वहाँ उनका स्वागत हुआ। उसे दिखाने ओर बताने लगे। कौन उसका मातामह है। कौन उसकी माता तुल्य है। उसने सबकी वन्दना की। उसे आश्चर्य हुआ। किसी ने उसकी वन्दना नही की। उसने पूछा—'हमारी वन्दना कोई क्यो नही कर रहा है ?'

शाक्यो ने सविनय उत्तर दिया—'आपसे अल्प वयस्क कुमार बाहर गये है।'

शाक्यो ने यथोचित सोत्साह उसका स्वागत किया। अभ्यर्थना की। वह सन्तुष्ट हो गया।

उसके जाने का समय आ गया। सबसे विदा लेकर प्रस्थान करना चाहता था।

एक दासी उसके बैठने के फलक को दूध और पानी से धो रही थी। पूछने पर निन्दा करने लगी—'यह वार्षभ क्षत्रिया दासी के पुत्र के बैठने का फलक है। इसलिए धो रही हूँ।'

वहाँ अचानक एक कोशल सैनिक आ गया। वह अपना हथियार भूल गया था। दासी के मुख से उसने बात सुनी। उसे आश्चर्य हुआ। वह पुन दासी से पूछा। दासी ने वही बात दुहराई। सैनिक ने यह बात आकर सेना मे प्रसारित कर दी।

सेना मे कोलाहल हुआ। कोशल और श्रावस्ती से आये लोगो मे कोलाहल हुआ। चारो ओर इसी बात की चर्चा थी। विडूडभ ने सुना। लज्जित हुआ। उसे शाक्यो पर बड़ा क्रोध आया। उसने निश्चय किया। उसके बैठे फलक को दूध जल से धोया गया है। वह शाक्यो मे छिन्न मस्तक से स्रवित रक्त द्वारा अपना आसन धुलवाएगा।'

× × ×

सदल बल विडूडभ श्रावस्ती पहुँचा। जाते समय उत्साह था। लौटते समय उदासी थी। लज्जा थी।

अमात्यों ने राजा से सब हाल कहा। राजा क्रुद्ध हुआ। उसे जिस छल की आशका थी। शाक्यों ने वही किया। उसने माता और पुत्र को

'अच्छा तो मै अपने मित्र प्रसेनजित के पास जाता हूँ।'

माता-पिता से विदा लेकर वह श्रावस्ती आया। प्रसेनजित्त उसके गुणो को जानता था। उसे अपना सेनापति बनाया।

वन्धुल ने अपने माता-पिता को श्रावस्ती बुला लिया। वही का निवासी वन गया।

× × ×

राजा का सेनापति बन्धुल था। उसकी भार्या का नाम मल्लिका था। बहुत दिनो तक उसे सन्तान नही हुई। कालान्तर मे गर्भ ठहर गया। उसे दोहृद उत्पन्न हुआ। उसने वधुल से कहा :

'आर्य ! वैशाली नगर है। उसमे राजकुल द्वारा अभिषिक्त एक पुष्करिणी है। मै उसमे स्नान करना चाहती हूँ। उसका जल चाहती हूँ।'

'इच्छा पूरी होगी मल्लिके।'

बधुल सशक्ति मल्लिका के साथ रथ पर चला। वैशाली के लिए प्रस्थान किया। विद्यार्थी जीवन के सखा, महाली लिच्छवी के बताये द्वार से उस ने वैशाली मे प्रवेश किया।

पुष्करिणी पर कठोर पहरा था। उसका जल कोई ले नही सकता था। लोहे के जाल से आवृत था। पक्षियो का भी उसमे प्रवेश असम्भव था।

बधुल रथ से उतर कर पुष्करिणी पर गया। बेतो से प्रहरियो को पीटा। जाल को काटा। अपनी पत्नी सहित स्नान किया। रथ पर बैठ कर श्रावस्ती की तरफ लौट पडा।

प्रहरियो ने लिच्छवियो को सूचना दी। वे क्रुद्ध हुए। दुन्दुभी बजी। लिच्छवी सन्थागार मे एकत्र हुए। निर्णय लिया गया। बधुल का पीछा किया जाय।

लिच्छवी पाच सौ रथो पर आरूढ हुए। पकडने चले। महाली को मालूम हुआ। उसने उन्हे रोका। सावधान किया। बधुल बली है। सबको मार डालेगा। वे उपेक्षा से बोले—बधुल मल्ल को बन्दी बनाएँगे। किन्तु सघर्ष मे सभी लिच्छवी मारे गये।

बंधुल पत्नी मल्लिका के साथ श्रावस्ती लौट आया। समय पर मल्लिका

तक्षशिला नगर के बाहर धर्मशाला मे तीनो विद्यार्थी मिले। पर-स्पर परिचय प्राप्त कर वे एक दूसरे के मित्र बन गये।

उन्होने अध्ययन समाप्त किया। एक साथ ही तक्षशिला से अपने निवास-स्थान की ओर प्रस्थान किया।

× × ×

प्रसेनजित ने अपनी विद्या का प्रदर्शन किया। पुत्र की निपुणता तथा कौशल देखकर प्रसेनजित् के पिता प्रसन्न हो गये। उन्होने पुत्र का राज्याभिषेक किया।

महाली कुमार ने लिच्छवियो के सम्मुख अपनी विद्या का अनेक प्रकार से प्रदर्शन किया। वे कालान्तर मे अन्धे हो गये। लिच्छवियो ने उनके ज्ञान का यथाशक्ति लाभ उठाने के लिए उन्हे अपने यहाँ रख लिया। वे ५०० विद्यार्थियो को विद्या-दान करने लगे। लिच्छवियो ने उनकी सेवा के पुरस्कार स्वरूप एक लाख आय का नगर उन्हे दे दिया था।

बन्धुल राजकुमार को मल्ल राजकुमारो ने तग किया। उसके शिल्प की परीक्षा लेने के लिए बाँसो में लोहे की शलाका डालकर खडा कर दिया। वह ऊपर से बाँस जैसा दिखाई देता था।

बाँस काटने के लिए उससे कहा गया। बन्धुल आकाश मे उछलकर बाँस पर प्रहार किया। भीतर लोहे की शलाका होनेके कारण तलवार खनखना कर रह गयी।

उसे ग्लानि हुई। तलवार फेककर रोने लगा। उसके किसी ज्ञाति भाई ने लोह शलाका की बात उससे नही बतायी थी।

वह दु:खी अपने माता-पिता के पास पहुँचा। उनसे क्रोधित स्वर मे कहा :

'पिता! मै इन सबको मारकर स्वय राज्य करूँगा।'

पिता ने कहा—'तात! यह प्रवेणी राज्य है। यहाँ ऐसा करना अनुचित होगा।'

प्रसाधन मल्लिका देवी ने उतार दिया। किन्तु भगवान् के शव पर इसने उसे पुन निकाला और उस पर डाल दिया। उसने निश्चय किया कि जब तक वह जीवित रहेगी किसी प्रकार का अलकार धारण नही करेगी।

दीर्घ कारायण मामा की हत्या भूला नही था। अवसर खोज रहा था। प्रतिहिसा उसके शिराओं मे घर कर गयी थी।

बन्धुल की निर्दोप हत्या के पश्चात् राजा खिन्न रहता था। उसका किसी काम में मन नही लगता था। सुख को किंचित्-मात्र अनुभव नही करता था।

उन दिनो शास्ता शाक्यो के उलुम्प[1] नामक ग्राम में विहार कर रहे थे। राजा वहाँ गया। स्कन्धावार (शिविर) डाल दिया। वह स्थान आराम से बहुत दूर नही था। राजा भगवान् के आराम में पहुँचा। अपना छत्र, व्यजन, उष्णीष, खड्ग और पादुका दीर्घ कारायण को दे दिया। एकाकी तथागत के पास गधकुटी मे प्रवेश किया।

गधकुटी मे प्रवेश करते ही दीर्घ कारायण ने दूसरी तरफ उन पाच ककुध भाण्ड के साथ विडूडभ को राजा घोषित कर दिया। समस्त सेना वापस चली गयी। राजा के लिए केवल एक अश्व तथा सेविका छोड दिया गया। विडूडभ राजधानी श्रावस्ती की ओर सवेग चला।

राजा गधकुटी से बाहर निकला। उसे वहाँ दीर्घ कारायण तथा उसके साथी परिचायक आदि नही मिले। राजा ने केवल सेविका को देखा। पूछने पर सब बाते उसे ज्ञात हुई। हतबुद्धि हो गया। उसको समझ मे नही आया क्या करे।

अजातशत्रु की सहायता से विडूडभ को बन्दी बनाने की योजना राजा बनाने लगा। राजगृह के अपने भाजा अजातशत्रु से सहायता प्राप्त करने का विचार किया।

× × ×

सन्ध्या काल था। राजगृह नगर का द्वार बन्द था। राजा एक शाला मे ठहर गया। धूप तथा मार्ग की शिथिलता से वह व्यथित था। वह सोया। फिर न उठा।

रात्रि बीतने पर सेविका ने राजा को मृत पाया। वह रुदन करने

---

(१) उलुम्प शाक्य देश मे एक निगम था। प्रसेनजित राजा अपने सेनापति वधुल की मृत्यु पर भगवान् के सम्मुख उपस्थित होकर पश्चात्ताप किया था।

को युगल पुत्र सोलह बार हुए। वे सब बलवान थे। शूरवीर थे। शिल्प मे निष्णात थे।

× × ×

एक समय बधुल आ रहा था। उसने भीड़ देखी। भीड दुहाई देने लगी। न्यायाधीश घूस ले रहा था। शोर था। बधुल रुक गया। न्यायालय मे गया। विवाद का निर्णय किया। स्वामी को स्वामी बनाया। जनता ने उसका साधुवाद किया।

राजा सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने अमात्यो को हटा दिया। बधुल के जिम्मे न्याय विभाग दे दिया गया। राज्य मे ठीक ढग से न्याय-कार्य चलने लगा।

निकाले गये अवसर प्राप्त न्यायाधीशो का काम घूस के अभाव मे चलना कठिन हो गया। राजा का कान भरना आरम्भ किया। बधुल शक्तिशाली हो गया था। राज्य लेना चाहता था। राजा को पहले शंका हुई। पुन उसके मन मे जुगुप्सा ने बात बैठा दी।

राजा चुगुलखोरो की बात मे आ गया। निश्चय किया। बन्धुल को मरवा दिया जाय।

सीमान्त मे विद्रोह हो गया। बहाना निकाला गया। बन्धुल सीमान्त मे भेज दिया गया। सीमान्त से लौट रहा था। मार्ग मे राजा ने उसकी हत्या निमित्त आयुधधारियो को नियुक्त किया। बन्धुल की उसके पुत्रो के साथ हत्या कर दी गयी।

× × ×

गुप्तचर पुरुषो ने राजा को सूचना दी। बन्धुल तथा उसके पुत्र निर्दोप थे। उनको व्यर्थ हत्या की गयी थी। राजा सविग्न हो गया। बन्धुल मल्ल के निवास-स्थान पर गया। उसकी पत्नी मल्लिका तथा उसकी बहुओ से क्षमा याचना की।

मल्लिका कुशीनगर अपने कुलगृह चली गयी। राजा ने बन्धुल की हत्या का प्रायश्चित्त करने का विचार किया। बन्धुल के भानजे दीर्घ कारायण को सेनापति का पद दे दिया जाय। राजा ने दीर्घ कारायण के विधिवत् सेनापति के पद पर नियुक्ति की घोपणा की।

× × ×

शाक्य लडे थे। उन्होने पूछने पर कहा—'हम शाक्य नही, नल है। हम तृण शाक्य है।'

महानाम तथा उनके समीपस्थ शाक्य केवल बच गये। तृण दबाए हुए शाक्यो का नाम तृण शाक्य पडा। नल पकड़े शाक्यों का नाम नल शाक्य पडा।

दूध पीते नवजात शिशु भी इस हत्या-काण्ड से नहीं बच सके। शाक्यों के छिन्न मुण्ड के निकलते रक्त से उसने फलक धुलवाया। शाक्य वश विडूडभ की कोपाग्नि में जल गया।

महानाम बन्दी बना लिया गया। वह विडूडभ के साथ चला। विडू-डभ को भोजन की बात स्मरण थी। उसकी मा के साथ उसने भोजन नही किया था। विडूडभ ने अपने नाना महानाम से अपने साथ भोजन करने के लिये कहा। महानाम को यह अपमान सह्य नही था! उसने एक उपाय निकाल लिया।

विडूडभ से कहा। भोजन के पूर्व स्नान करना आवश्यक है। विडू-डभ जानता था। भोजन के पूर्व स्नान करना आवश्यक माना जाता था। उसने स्नान करने की आज्ञा दे दी।

महानाम सरोवर पर स्नान निमित्त आया। उसने निश्चय कर लिया था। दासी-पुत्र के साथ खाने की अपेक्षा मर जाना अच्छा था। आत्म-हत्या की दृष्टि से वह सरोवर मे कूद पडा। डूब कर मरना चाहा।

किन्तु सरोवर के नागो ने उसकी जान बचा ली। उसे नागलोक ले गये।

इस महासहार के पश्चात् विडूडभ ने अचिरवती नदी के तट पर शिविर स्थापित किया। उसके सैनिक और साथी कुछ तटीय बालू पर लेट गये। कुछ लोग तटीय भूमि पर सो गये।

घोर घरघराती मेघ घटा उठी। भयकर ओला-वृष्टि होने लगी। बाढ आ गयी। कोई भागकर बच नही सका। विडूडभ अपनी सेना सहित सरिता मे बहता समुद्र मे पहुँच गया।

●

लगी। समाचार अजातशत्रु के पास पहुँचा। अजातशत्रु ने मामा प्रसेन-जित की अन्त्येष्टि राजानुरूप और पूर्ण सत्कार के साथ की।

× × ×

विडूडभ को शाक्यों की बातें भूली नही थी। वह प्रतिहिसा से जल रहा था। उसने बहुत बडी सेना एकत्रित की। कपिलवस्तु की ओर प्रस्थान किया।

कपिलवस्तु पहुँचकर देखा। तथागत एक अत्यन्त क्षीण छाया वाले वृक्ष के नीचे बैठे थे। वहा छाया और धूप चितकबरी गाय की तरह लगती थी।

विडूडभ की राज्य-सीमा मे एक बहुत घनी छाया वाला वट वृक्ष था। उसने शास्ता को देखा। समीप गया। अभिवादन किया। वन्दना की। निवेदन किया·

'भन्ते ! बडी गर्मी है। स्वल्प छाया वाले वृक्ष के नीचे क्यो बैठे हैं। आइये उस वट के नीचे चलिये।'

'महाराज !' तथागत ने कहा, 'जाति वालो की छाया शीतल होती है।'

विडूडभ समझ गया। शास्ता अपने जाति वालो की रक्षा निमित्त आये थे। वह लौट गया। इसी प्रकार वह तीन बार सदल बल आया। किन्तु शास्ता को देखकर लौट गया।

× × ×

चौथी बार वह पुन बडी सेना के साथ आया। शाक्य भी युद्ध निमित्त निकले। किन्तु विडूडभ को वे मारना नही चाहते थे। आदेश दिया। विडूडभ की सेना पर इस प्रकार बाण चलाया जाय कि वह मर न सके। शाक्य सेना ने आदेश का पालन किया।

विडूडभ को शाक्यो की बात बताई गयी। वह क्रोधित हो गया। आदेश दिया। जहाँ शाक्य मिले उन्हे निश्शक मारा जाय। केवल महा-नाम तथा उनके समीपस्थ व्यक्तियो पर कोई हाथ न उठाये।

आतंक फैल गया। शाक्य घास-मूली की तरह कटने लगे। कितने ही शाक्यो ने शाक्य होना अस्वीकार कर दिया। कितने ही मुख मे तृण रख कर बोले—'हम शाक्य नही, तिनका है। नल को पकड़कर वहुत से

उपसेन

नालक गाम था। उसमे एक कुलीन ब्राह्मण था। उपसेन[1] ने वही जन्म ग्रहण किया था। उसकी माता का नाम रूपसारि था। वह तीनो वेदो मे पारगत था। उसके पिता का नाम वंगत था। सारिपुत्र का कनिष्ठ भ्राता था।

उसने एक समय भगवान् का उपदेश सुना। गृह त्याग किया। प्रव्रज्या ली। एक वर्ष के पश्चात् उसने विचार किया। धर्म मे जनता को दीक्षित करना चाहिये। प्रव्रजित करना चाहिए।

उसने एक भिक्षु को प्रव्रजित किया। नव प्रव्रजित के साथ भगवान् के समीप गया। भगवान् से उसने अपने कार्य का वर्णन किया। भगवान् प्रसन्न नही हुए। उसकी मत्वर प्रक्रिया की निन्दा की।

उसने निश्चय किया। एक को भिक्षु बनाकर यदि अपराध किया है तो उसी के कारण अर्हत पद प्राप्त करेगा। समय पर परिश्रम, अभ्यास तथा तपस्या के कारण उसने अर्हत्व प्राप्त किया। उसकी अन्तर्दृष्टि खुल गयी। उसने अपनी तपस्या के कारण दूसरो को आकर्षित किया। उन्हे भी अभ्यास तथा उद्योग से अर्हत्व प्राप्त करने के लिए पथ प्रदर्शित किया। इसमे उसे सफलता मिली। भगवान् उसपर प्रसन्न हुए।

× × ×

उपसेन ने एक दिन विचार करते हुए उदान कहा .

'ध्यान के लिए निर्जन, नि.शब्द, वन जन्तुओ द्वारा सेवित स्थान श्रेयस्कर है। घूर पर से, श्मसान भूमि से, गलियो मे पड़े चिथड़ो की मोटी सघाटी बनाकर उसे धारण करना अच्छा है। ओ भिक्षु ! अपने

---

(१) उपसेन ' बौद्ध धर्म ग्रन्थो मे विजितसेन भिक्षु के भाई तथा दूसरे सुजात वुद्ध के पुत्र उपसेन. गध वश का उल्लेख मिलता है।

आधार ग्रन्थ

धम्मपद ४ ३

मज्झिम निकाय २ ४ ९

Ap 1 300

DhA I 346-349, 357-361

J. 1 133, IV. 146, 151

M 2 110, 127

UdA 1. 265

'हाँ वह देखो जा रहा है।'

सर्प पत्थरो की ओट मे लुप्त हो गया। सर्प इतना अधिक विषैला था कि देखते-देखते उपसेन के शरीर पर विष प्रभाव दिखायी देने लगा। शरीर मलिन हो गया। उठने को शक्ति जाती रही। उसने निवेदन किया।

'भिक्षुओ! इस शरीर को खाट पर लिटा दो।'

भिक्षुओ ने उपसेन के शरीर को खाट पर लिटा दिया।

उपसेन ने कहा—'भिक्षुओ! खाट को बाहर आकाश के नीचे रख दो।'

'भिक्षुओ! कुछ काल पश्चात् यह शरीर एक मुट्ठी भूसे की तरह बिखर जायगा।'

सारिपुत्र समाचार सुनते ही वहाँ पहुँच गये। भिक्षुओ की ओर देखते हुए बोले.

'उपसेन के शरीर मे विकलता नही है। इन्द्रियो को विपरिणत नही देख रहा हूँ।'

उपसेन ने ज्येष्ठ भ्राता की बात सुन ली। उसने कहा :

'आयुष्मान्! सारिपुत्र! शरीर उसी का विकल होता है। इन्द्रियाँ उसी की विपरिणत होती है, जो समझता है। मै चक्षु हूँ। यह चक्षु मेरा है। मै मन हूँ। यह मन मेरा है।'

सारिपुत्र सहोदर भाई की अन्तिम बिदाई देख रहा था। कुछ बोला नही। उपसेन का शरीर काला पड गया था। उसने कहा.

'सारिपुत्र! मेरा मन कैसे विकल होगा। मेरी इन्द्रियाँ कैसे विपरिणत होगी। मै शरीर नही हूँ। मै इन्द्रिय नही हूँ।'

मृत्यु वेग से उपसेन को अपने अक मे ले रही थी।

शनै-शनै. उपसेन का स्पन्दन बन्द हो गया। विष ने अपना प्रभाव दिखाया। शरीर की शक्ति एक मुट्ठी भूसे को तरह बिखर गयी।

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे चौबीसवाँ स्थान प्राप्त मगध नालक ब्राह्मण ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न बगत पुत्र उपसेन समस्त प्रसादिको मे अग्र हुए थे।

●

इन्द्रिय द्वारों का तू निरोध कर। सुसयत होकर, एक ओर से दूसरी ओर तक नम्रतापूर्वक भिक्षा चरण करो।

ओ ! भिक्षु !' रसमय भोजन से ध्यान नही होता। उसकी चिन्ता त्याज्य है। रुक्ष भोजन सन्तोष निमित्त पर्याप्त है। अल्पेच्छुक, सन्तुष्ट एव एकान्तवासी गृहस्थ एव प्रव्रजित दोनो से दूर रह कर विहार करो।

'मुने !' पण्डितो के समूह मे अधिक भाषण अपेक्षित नही है। जगत् के सम्मुख जड और मूक तुल्य रहना उचित है। हिसा का त्याग कर। दोषारोपण का त्याग कर। प्रतिमोक्ष के नियमो मे सयत हो, उचित मात्रा मे भोजन प्राप्त कर। समाधि का विचार पूर्णरूपेण ग्रहण कर, चितोत्पाद मे कुशलता प्राप्त करते हुए, शमथ भावना तथा विदर्शना मे तत्पर होना अच्छा है। योगाभ्यास मे वीरता तथा तत्परता से युक्त होना उचित है। बिना दु'ख के अन्त को प्राप्त किये, पण्डित को अपनी प्राप्ति पर विश्वास करना, उचित नही लगता। शुद्धि कामेच्छु भिक्षु के आस्रव क्षीण हो जाते हैं। वह परम शान्ति प्राप्त करता है।'

× × ×

राजगृह था। सप्प सोण्डिक[1] प्राग्भार था। उसमे शीत वन था। वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र और उपसेन विहार करते थे।

उपसेन भिक्षा ग्रहण कर चुके थे। सप्प सौण्डिक प्राग्भार की छाया मे विश्राम कर रहे थे। शीतल वायु चल रही थी। वह अपना वस्त्र ठीक कर रहे थे। दो सर्प गुफा के ऊपर खेल रहे थे। उपसेन ने वस्त्र उतार दिया था। उनका स्कन्ध प्रदेश खुला था। खेलते-खेलते एक सर्प ऊपर से उनके स्कन्ध प्रदेश पर पडा। उन्हे काट लिया।

उपसेन घबडाया नही। उसके शरीर मे विप फैलने लगा। उसने समीप ही उपस्थित अपने ज्येष्ठ भ्राता सारिपुत्र तथा अन्य भिक्षुओ को बुलाया। उनसे प्रार्थना की ·

'आयुष्मानो ! मुझे विपधर सर्प ने काट लिया है।'

'अरे ?'

---

(१) सप्प सौण्डिक (पब्भार) सर्प शौण्डिक प्राग्भार यह राजगृह मे पर्वतीय गुफा था। इस पर्वत का आकार सर्प के फण के समान था। वह झुका पर्वत था। यह पर्वत सीतवन मे था।

चुल्ल पन्थक

उट्ठानेनप्पमादेन, संयमेन दमेन च।
दीपं कयिराथ मेधावी य ओघो नाभिकीरति ॥

(उद्योग, अप्रमाद, संयम एव दम्भ द्वारा मेधावी पुरुष ऐसे द्वीप की रचना करता है जो जलप्लावन से प्लावित नही होता।)

—ध० २ . ३ (२५)

चुल्ल पन्थक मगध राजगृह श्रेष्ठि का पुत्र था। उसके दूसरे भाई का नाम महापथक था।

दोनो ने त्रिरन्त की शरण ली थी। भिक्षु हुए थे। महापन्थक प्रव्रजित हुआ। महा मेधावी था। कुछ समय पश्चात् अर्हत पद प्राप्त कर लिया। चुल्ल पन्थक जहाँ का तहाँ रह गया।

देखा गया है। युगल सन्ताने भी समबुद्धि, सममेधा, सम कार्य कुशल नही होती। इन दोनो भ्राताओं के विषय मे यही बात लागू होती थी। यही पर कर्म सिद्धान्त की प्रामाणिकता मानने के लिए मानव बाध्य हो जाता है। युगलो का एक ही समय गर्भाधान होता है। एक ही समय जन्म होता है। उनके एक ही माता-पिता होते है। एक ही साथ लालन-पालन होता है। उनके ग्रह, नक्षत्र राशि प्रायः सब एक ही होते है। भौतिक दृष्टि से उन्हे एक समान होना चाहिये।

परन्तु देखा गया है। एक महा मेधावी होता है। दूसरा होता है महामूर्ख। एक महा धनी बन जाता है और दूसरा दरिद्रता मे बढ़ता है। रोते दिन बिताता है। कुछ ऐसी बात चुल्ल और महापन्थक के सम्बन्ध मे भी हुई।

चुल्ल और महापन्थक दोनो एक समय राजगृह के वेणु वन मे रहते थे। उस समय भगवान् भी उसी विहार मे विहार कर रहे थे।

आधार ग्रन्थ :

सयुक्त निकाय ३४ २ २ ७

महावग्ग १ २ ७

थेर गाथा २३८, उदान ५६८-५५७

अगुत्तर निकाय १ २४

धम्मपद

A i 24

A A i : 152

D A . ii 525

DhA ii 188

J ii 449

S iv 40.

S A iii 10

Thag A i 525,

Vin i 59; iii 230

चुल्ल पन्थक आम्र वन मे चला गया। एकान्तसेवी बन गया। उसने उद्योग, अभ्यास एव परिश्रम का आश्रय लिया।

उसे दिव्य चक्षु प्राप्त हो गये। वह विशुद्ध हो गया। पूर्व जन्मो का ज्ञान हो गया। तीनो विद्याओ को प्राप्त किया। बुद्ध शासन मे पूर्णतया रत हो गया। मल दूर हो गये थे। निखरे बस्त्र की तरह मलो से शुद्ध हो गया।

एक दिन वह आम वृक्ष मूल मे बैठा था। अपने आपमे लीन था। उसने देखा। एक आगन्तुक। चुल्ल पन्थक चकित हुआ। दूत ने समीप आकर प्रणाम किया।

'स्वागत बन्धु ! चुल्ल पन्थक ने दूत का खडे होकर स्वागत किया। दूत ने देखा। एक वीतराग भिक्षु।

'आयुष्मान् ! भगवान् ने मुझे भेजा है।'

'भगवान् !' चुल्ल पन्थक ने भगवान् का स्मरण किया। उन्हे अजलि-बद्ध प्रणाम किया। दूत ने कहा :

'आयुष्मान् ! काल है।'

'किसका काल है दूत ?'

'भगवान् ने आपको स्मरण किया है।'

'आवुस ! आसन ग्रहण कीजिये।'

चुल्ल पन्थक ने तृण आसन दूत को दिया। दूत ने आसन ग्रहण किया। चुल्ल पन्थक ने पूछा

'भगवान् कुशल से है ?'

'हाँ, आयुष्मान्।'

'चलता हूँ।'

चुल्ल पन्थक ने आसन लपेट कर वृक्ष मूल मे रख दिया। भिक्षापात्र उठाया। चीवर लिया। उसने दूत से कहा :

'आवुस ! मै चलता हूँ।'

'अवश्य चले आयुष्मान्।'

चुल्लपन्थक आकाश मार्ग से गमन किया।

× × ×

चुल्लपन्थक भगवान् के विहार मे पहुँचा। भगवान् का अभिवादन की। पाद वन्दना की। एक ओर बैठ गया।

चुल्ल पन्थक मन्द बुद्धि था। स्मरण शक्ति दुर्बल थी। वह एक गाथा चार मास मे भी नही स्मरण कर पाता था। महापन्थक इसके ठीक विपरीत था। उसकी स्मरण शक्ति तीव्र थी। बुद्धि कुशाग्र थी।

× × ×

महापन्थक एक दिन भाई पर बहुत बिगड़ा। उसे विहार त्याग देने के लिए कहा। उसे अपने भाई की मन्द बुद्धि से उपायास हो गया था। चुल्ल पन्थक क्या करता? उसके हाथ मे स्मरण शक्ति तेज करना नही था। बुद्धि कुशाग्र करना नही था। अच्छा यही समझा। विहार त्याग कर चला जाय।

चुल्ल पन्थक को महापन्थक ने स्पष्ट कह दिया। घर लौट जाय। उसका स्थान विहार नही था। उसकी बुद्धि धर्म के लिए अनुपयुक्त थी।

चुल्ल पन्थक अपमानित होता था। विहार का जीवन कठिन हो गया। विहार से निकल आया। द्वार पर खडा हो गया। उसे निराशा हुई। दु:खी हुआ। उदास हो गया। द्वार पर खडा रहा।

भगवान् का उस ओर आगमन हुआ। भगवान् ने चुल्ल पन्थक को उदास खड़ा देखा। उसके समीप आये। चुल्ल पन्थक ने भगवान् की अश्रुपूर्ण नेत्रो से वन्दना की। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। भगवान् ने जिज्ञासा की :

'आवुस ! उदास क्यो हो।'

'भन्ते ! भाई महापन्थक ने विहार से निकाल दिया है।'

'क्यो ?' भगवान् ने सविस्मथ पूछा।

'कहते है—मै मन्द बुद्धि हूँ।'

भगवान् सघाराम मे पहुँचे। आसन ग्रहण किया। शास्ता ने पाद पोछनी की ओर चुल्लपन्थक को सकेत किया। चुल्ल पाद पोछनी लेकर बैठ गया। भगवान् ने चुल्ल पन्थक से सहा :

'आवुस ! तुम शुद्ध वस्त्र का मनन करो।'

भगवान् ने प्रात. काल से मध्याह्न काल तक चुल्ल पन्थक को उपदेश दिया। विपश्यना द्वारा चुल्ल पन्थक ने प्रति सम्भिदाओ को प्राप्त किया।

× × ×

'(जिसने आरा पर गिरते सरसो के समान राग, द्वेप, मान, मत्सर (अमरख) को फेक दिया है। मै उसे ब्राह्मण कहता हूँ, भिक्षुओ)'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु अग्र श्रावको मे ग्यारहवॉं स्थान प्राप्त मगध राज गृह श्रेष्ठी कन्या पुत्र चुल्ल पन्थक मनोमय काय निर्माणकर्त्ताओ तथा चित्त विवर्त चतुरो मे अग्र हुआ था।

●

आधार ग्रन्थ

चुल्ल पन्थक—थेर गाथा २३६, उदान ५५८-५६७
धम्मपद २ ३
चुलसेथ जातक

'आयुष्मान् ! प्रसन्न हैं ।'

'भगवान् ! की कृपा— ।' चुल्लपन्थक ने नमन करते हुए निवेदन किया ।

'चुल्लपन्थक ! धर्म मे रुचि है ।'

'शास्ता ! वन्दना स्वरूप मेरी दक्षिणा स्वीकार करे ।'

'स्वीकार है चुल्लपन्थक ।'

× × ×

भिक्षुओ को इस परिवर्तन पर आश्चर्य हुआ । उन्होने भगवान् से जिज्ञासा की :

'भन्ते ! चुल्ल पन्थक ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है ?'

'हाँ भिक्षुओ ।'

'भन्ते ! जो व्यक्ति चार मास मे एक गाथा नही स्मरण कर सकता था । वह किस प्रकार कुछ घड़ियो मे अर्हत्व पद प्राप्त कर लिया ?'

'भिक्षुओ ! उद्योगी पुरुप अर्हत् पद प्राप्त कर लेता है ।'

× × ×

भिक्षुओ मे चर्चा फैली । महापन्थक क्षीणास्रव था । तथापि उसने चुल्लपन्थक पर क्रोध किया था । अर्हतो को क्रोध शोभा नही देता । महापन्थक की निन्दा होने लगी । भगवान् ने सुना । भगवान् ने भिक्षुओ से कहा :

'भिक्षुओ ! क्षीणास्रवो को रागादि न होने से क्लेश नही होते ।'

'भन्ते ! तथापि उसने अपना क्रोध प्रदर्शित किया । चुल्लपन्थक को बाहर निकाल दिया ।'

'आवुसो !' भगवान् ने कहा, 'महापन्थक ने धर्म एव अर्थ का विचार कर यह कदम उठाया था ।'

भिक्षु चुप हो गये । भगवान् ने गाथा कही :

यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो ।
सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मण ॥

—घ० २६ . २५ (४०७)

'भन्ते ! महापन्थक का कार्य अशोभनीय था। उसने चुल्लपन्थक को व्यर्थ विहार से बाहर निकाल दिया।'

'कहने का तात्पर्य भिक्षुओ ?'

'भन्ते ! भिक्षुओ के लिये क्रोध वर्जित है।'

'आयुष्मानो ! क्षीणास्रवो मे राग नही होता। क्रोध नही होता। क्लेश नही होता।'

'किन्तु ?'

'आवुसो ! महापन्थक ने अर्थ एव धर्म को देखते हुए कार्य किया था।'

'कैसे भन्ते ?'

'आयुष्मानो ! आरो के दाँतो के ऊपर सरसो के दाने ठहर सकते हैं ?'

'नही भन्ते।'

'जिसने अपने चित्त से राग, द्वेष, मान, म्रक्ष, निकाल कर फेक दिया है। उसमे क्रोध कैसे प्रवेश करेगा ?'

'भन्ते--!'

'आवुसो ! मै इसी प्रकार के व्यक्तियो को ब्राह्मण कहता हूँ।'

महापन्थक ने भिक्षु सघ मे ही उठ कर भगवान् की शिरसा नमन किया।

× × ×

महापन्थक धर्म-पथ पर बढता चला गया। क्षीणास्रव हो गया था। अर्हत्व प्राप्त कर लिया था। उसने ध्यान किया। ध्यान करते समय उसने उदान कहा·

'मैने सर्व प्रथम अकुतोभय शास्ता का दर्शन किया। उनका अवलोकन करते ही मुझमे सवेग उत्पन्न हुआ। मै अपने घर गया। गृह-त्याग का निश्चय किया।

'मैने एक दिन गृह-त्याग दिया। खाली हाथ जिस गृह मे जन्म लिया था, वहाँ से खाली हाथ बाहर निकल आया। मैंने पुत्र, पत्नी, सम्पत्ति, शस्य, सबका मोह त्याग दिया। अपने सुन्दर केशो को मुड़वा दिया।

महा पन्थक

राजगृह मे धन सेठी का पौत्र महापन्थक[1] था। वह अपने प्रपितामह के साथ भगवान् का उपदेश सुनने जाया करता था। चुल्ल पन्थक का ज्येष्ठ भ्राता था।

वह स्रोतापन्न हुआ। प्रव्रजित हुआ। चारो अरूप ध्यान से उसने साधना की। वह अर्हत हुआ।

महापन्थक त्रैविद्य था। उसके साथ उसका कनिष्ठ भ्राता चुल्ल पन्थक भी विहार मे रहता था। चुल्ल पन्थक की मन्द बुद्धि के कारण एक दिन उसने कनिष्ठ भ्राता को विहार से निकाल दिया।

× × ×

भिक्षु क्रोध करता है। यह जानकर अन्य भिक्षुओ को दु ख हुआ। उन्हे महापन्थक का कार्य रुचिकर नही लगा। भिक्षु सघ मे एक दिन चर्चा उठी। भिक्षुओ ने कहा

---

(१) महापन्थक थेर गाथा मे महापन्थक को राजगृह के सम्पन्न परिवार की एक कन्या का पुत्र कहा गया है जिसकी उत्पत्ति कन्या के पिता के दास द्वारा हुई थी। अनुवादो तथा मूल कथा मे बडा अन्तर पड गया है। अतएव मैंने यहाँ थेर गाथा के एक अश को आधार नही माना है। परन्तु स्पष्ट कर दिया है कि थेर गाथा में उसकी वश परम्परा उसकी माता के पिता के एक दास—सेवक द्वारा हुआ कहा गया है। थेर गाथा हिन्दी (भिक्षु धर्मरक्षित) तथा पाली टेक्स सोसायटी मे भी अन्तर है। पहले में पद सख्या ५११-५१८ और अग्रेजी मे ५१०-५१७ दिया गया है। किन्तु अगुत्तर निकाय मे पिता का नाम न देकर 'कन्या पुत्र' चुल्ल तथा महापन्थक दोनो के लिये दिया गया है। इससे स्पष्ट है। उनके पिता का नाम सन्दिग्ध था। अतएव 'कन्या पुत्र' नाम पिता के स्थान पर दिया गया है।

आधार ग्रन्थ ·

थेर गाथा २३१, उदान ५११-५१८
धम्मपद २६ २४
जातक १ १४
A 1 24
A A 1 118
DhA 1 241
J 1 114
Thag A 1 490
Thag Vas 510-517

मुख पर के बाल बनवा दिये। मै मुण्ड हो गया। गृहहीन परिव्राजक हो गया। प्रव्रजित हो गया।

'मै सम्बुद्ध को प्रणाम करता हूँ। मै शिक्षा एव शुद्ध आजीविका से मुक्त हुआ। इन्द्रियो को सयत किया। अपराजित हुआ। विहारशील हुआ। मुझमे सकल्प अंकुरित हुआ। अभिलाषा वर्षाकालीन लता की तरह प्रवल वेग से बढी। मै इस शरीर मे घुसे तृष्णा वाण को बिना निकाले नही रहूँगा। शरीर मे बिद्ध बाण जिस प्रकार अनेक कष्टो का कारण होता है। शरीर से रक्तस्राव कर, शरीर को शिथिल कर देता है। उसी प्रकार तृष्णा मेरे शरीर मे चुभ गयी थी। उसने मुझे निर्बल कर दिया था। शिथिल कर दिया था। मुझे मुहूर्त मात्र इस तृष्णा के साथ रहने मे महान् कष्ट का बोध होने लगा।

'मैने अपने सुदृढ पराक्रम द्वारा तीनो विद्याओ को प्राप्त किया है। मैने दृढ़ निश्चय के साथ बुद्ध शासन को पूर्ण किया है।'

'मुझे पूर्व जन्म का ज्ञान है। पूर्व जन्म मे मैने क्या किया था। जानता हूँ। मुझ दिव्य चक्षु प्राप्त हो गये है। मै विशुद्ध हूँ। मै अर्हत हूँ। मै दक्षिणार्द्ध हूँ। पूर्णरूपेण मुक्त हूँ। मै वासना रहित हूँ।

'मुझे ज्ञान हुआ। इस ज्ञान मे मुझे उत्साह हुआ। मनन की शक्ति उत्पन्न हुई। धर्म का रहस्य समझ सका। रात्रि के अवसान काल मे, प्रत्यूष काल मे, अपनी समस्त तृष्णाओ को सब प्रकार शोषित कर पद्मासन पर बैठ गया।'

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे बारहवॉ स्थान प्राप्त मगधराज गृहश्रेष्ठी कन्या द्वारा उत्पन्न महापन्थक सज्ञा विवर्त चतुरो मे अग्र हुआ था।

'सुगत ! अनुज्ञा दीजिये ।'

तथागत ने सारिपुत्र को एक बार ऊपर से नीचे तक देखा।

'भन्ते ! मेरा परिनिर्वाण काल आ गया है ।'

तथागत की दृष्टि गम्भीर हुई।

'भन्ते ! मेरा आयु-सस्कार समाप्त हो गया है ।'

'आयुष्मान् ! किस स्थान पर परिनिर्वाण करने का विचार किया है ।'

'भन्ते ! नालक ग्राम में ।'

'क्यो ?'

'मगध मे । वह हमारा जन्म-स्थान है। जहाँ यह शरीर पाया है वही इस शरीर का त्याग करूँगा ।'

'समय के अनुसार कार्य करो सारिपुत्र !'

सारिपुत्र के कोमल हाथ फैल गये। भगवान् के चरण-कमलो का स्पर्श किया। सारिपुत्र बोले .

'भन्ते ! अमर, क्षेम, सुख, शीतल, अभय, निर्वाण स्थान को प्राप्त करूँगा। मेरे कायिक, वाचिक कर्म यदि भगवान् को कभी अरुचिकर हुए हो तो भन्ते ! क्षमा कीजिएगा। यह मेरे अन्तिम प्रस्थान का समय है ।'

'आयुष्मान् ! तुम्हे क्षमा प्राप्त है। तुम्हारा कायिक तथा वाचिक कोई कार्य कभी मुझे अरुचिकर नही लगा ।'

'भन्ते !' सारिपुत्र ने भगवान् का चरण-कमल पुन. स्पर्श किया।

आयुष्मान् ! जिसका तुम काल समझते हो करो ।'

चरणो की वन्दना कर सारिपुत्र उठा। भगवान् ने अपना आसन त्याग दिया। धर्मासन से उठे। गन्धकुटी के सम्मुख मणिफलक तक अपने शिष्य सारिपुत्र को पहुँचाने आये। वहाँ जाकर खडे हो गये।

सारिपुत्र ने भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की। चारों स्थानो से. वन्दना की।

'तथागत ! आपका यह अन्तिम दर्शन है। अब दर्शन न होगा ।'

दश नखो से युक्त समुज्ज्वल अजलिबद्ध भगवान् को प्रणाम करते उलटे सारिपुत्र चलते रहे। भगवान् जब तक दृष्टिगत थे, उनके सम्मुख

सारिपुत्र का परिनिर्वाण

सारिपुत्र[1] ने निश्चय किया। जहाँ उन्होने जन्म लिया है वही परि-निर्वाण प्राप्त करेंगे।

सारिपुत्र ने चुन्दस्थविर[2] से कहा 'आयुष्मान् चुन्द! मेरे ५०० भिक्षुओं को सूचना दो। मै नालक ग्राम[3] के लिए प्रस्थान करूँगा।'

आदेश मिलते ही सारिपुत्र के भिक्षुगणो ने शयनासन ठीक किया। पात्र-चीवर लिया। सारिपुत्र के समीप उपस्थित हुए।

सारिपुत्र ने अपना शयनासन ठीक किया। दिवा स्थान जहाँ दिन मे विश्राम करता था, उसके द्वार पर खडा हुआ। उसने अन्तिम वार अपने दिवास्थान को देखा। अनन्तर अपने भिक्षुओं के साथ तथागत के समीप आया। उनका अभिवादन किया। वन्दना की। विनयपूर्वक निवेदन किया।

'भन्ते! अनुज्ञा दीजिये।'

भगवान् ने सारिपुत्र की ओर देखा।

---

(१) सारिपुत्र कथा 'सारिपुत्र' प्रष्टव्य है।

(२) चुन्द बुद्ध साहित्य मे ४ चुन्दो का वर्णन है। एक पावा का कर्मार पुत्र था। महाचुन्द, चुल्लचुन्द तथा चुन्द समनुद्देश थे। महाचुन्द सारिपुत्र का भ्राता था। चुण्ड अर्थात् चुण्डक भगवान् की अन्तिम यात्रा मे कुशीनगर साथ गया था।

(३) नालक ग्राम उपतिष्य ग्राम मगध के राजगृह के समीप एक ग्राम था। राजगृह समीपस्थ नालक ग्राम ही यह ग्राम माना जाता है। इसे नाल, नालक एव नालिका भी कहते हैं। यह ब्राह्मण ग्राम था; सारिपुत्र का पूर्व नाम उपतिष्य था। अतएव उनके नाम पर इस गांव का उल्लेख उपतिष्य रूप मे भी मिलता है। उपतिष्य नगर नाम से भी उल्लेख मिलता है।

'और— ?'

'जन्मगृह मेरा साफ कर दिया जाय।'

'यह भिक्षुवर्ग ?'

'इनके विश्राम का भी प्रवन्ध करना होगा।'

× × ×

'नानी!'

'क्या है पुत्र ?'

'मामा जी का आगमन हुआ है।'

'कहाँ है।' माता ने पुत्र को देखने की शुभकामना से आतुरतापूर्वक पूछा।

'ग्राम द्वार पर है।'

'एकाकी है।'

'नही। पाँच सौ भिक्षु है।'

'उनके आने का कारण मालूम है ?'

अपनी नानी से उसने जो कुछ बात मामा के साथ हुई थी कह सुनायी। वृद्धा की समझ मे नही आ रहा था। इतने लोगो के लिए क्या व्यवस्था की जाय।

माता ने जन्म-घर साफ कराया। भिक्षुओ के रहने का स्थान ठीक कराया। दण्ड दीपिका प्रज्वलित करायी। द्वार पर सन्देश भेजा। सब ठीक था। आना चाहिये।

सारिपुत्र अपने जन्म-कोष्ठ मे आये। बैठ गये। भिक्षुओ को उनके आसनो पर भेज दिया।

× × ×

सारिपुत्र को मरणातक पीडा हुयी। रक्तस्राव होने लगा। माता ने लक्षण अच्छा नही देखा। वह वासगृह द्वार पर खडी हो गयी।

द्वार पर वह गयी। चुन्द से पूछा .

'तात! क्या बात है ?'

माता से उसने सब बात बता दी। पुत्र को देखने की कामना माता ने प्रकट की। चुन्द ने बाहर से ही पूछा ·

मुख किये पीछे बढते गये। भगवान् की दृष्टि ओझल होने पर वह भिक्षुओ के साथ नालक ग्राम की ओर प्रस्थान किये।

× × ×

सारिपुत्र के प्रस्थान के पश्चात् भिक्षुओ ने तथागत को घेर लिया। भगवान् ने कहा :

'भिक्षुओ! सारिपुत्र तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता है। उनका अनुगमन करो।'

केवल तथागत अपने स्थान पर रह गये। भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक, उपासिका तथा चतुपरिषद जेतवन से बाहर निकली। श्रावस्ती के नगर-वासी भरे नेत्रो से सारिपुत्र का अन्तिम दर्शन करने घर से बाहर निकल आये। उनके केश बिखरे थे। हाथो मे गन्ध था। माला थी। अश्रुपूर्ण नेत्रो से रुदन करते, विलाप करते, सारिपुत्र को विदा किया।

सारिपुत्र ने भिक्षु सघ को लौटाया। अपने मित्रो को तथागत की यथाशक्ति सेवा करने का उपदेश दिया। सबसे यथायोग मिलकर श्रावस्ती का सर्वदा के लिए त्याग किया।

× × ×

सारिपुत्र मार्ग मे एक-एक रात्रि विश्राम करते थे। मार्ग मे सात दिन उपदेश देने के पश्चात् सायकाल नालक ग्राम पहुँचे। नालक ग्राम को ही उपतिष्य[3] ग्राम भी कहते थे। वह राजगृह के समीप था।

ग्राम द्वार पर वट वृक्ष था। उसकी छाया मे खडे हो गये। सारिपुत्र का भानजा उपरेवत[4] ग्राम से बाहर जा रहा था। सारिपुत्र को देखा। सादर समीप जाकर वन्दना की। विनयपूर्वक आदेश के लिए खडा हो गया। सारिपुत्र ने पूछा :

'गृह मे तुम्हारी नानी कैसी है।'

'भन्ते! कुशल से है।'

'उनको मेरे आगमन की सूचना दो।'

'और क्या कहूँ?'

'उनसे कहना मै एक रात्रि यहाँ विश्राम करूँगा।'

---

(४) उपरेवत सारिपुत्र का भानजा था।

सारिपुत्र चीवर शरीर पर खीच लिए। दाहिने करवट सो गये। प्रथम ध्यान से चतुर्थ ध्यान तक लगाया। चतुर्थ ध्यान से उठते ही, उन्हे निर्वाण प्राप्त हुआ।

महाउपासिका उसकी माता सारिपुत्र को शान्त देखकर रोने लगी। पैर, पीठ सब सुहलाती जैसे प्राण खोजने लगी। उसने समझा। पुत्र ने परिनिर्वाण प्राप्त किया। हृदय विदारक करुण क्रन्दन से स्थान दुखमय हो गयी। पुत्र के शव पर गिर पडी।

× × ×

शाल का महा मण्डप बनाया गया। मण्डप के मध्य मे महाकूटागार स्थापित किया गया। उसमे सारिपुत्र का शव रखा गया। उत्सव होने लगा।

एक सप्ताह उत्साहमय उत्सव चलता रहा। सुगन्धित काष्ठो एव द्रव्यो से चिता रची गयी। उनका शव चिता पर रखा गया। खस के पुजो से भर दिया गया। दग्ध स्थान पर रात्रि पर्यन्त उपदेश तथा धर्म वार्ता होती रही।

अनुरुद्ध स्थविर ने गन्धोदक से चिता शीतल किया।

चुन्द स्थविर ने अस्थि चयन किया। उन्हे कलश मे रखा गया।

अनन्तर सारिपुत्र के पात्र, चीवर तथा धातु के साथ चुन्द श्रावस्ती के लिए प्रस्थान किया।

× × ×

सारिपुत्र का पात्र, चीवर तथा धातु लेकर, चुन्द श्रावस्ती मे अनाथ-पिण्डक के जेत वन मे आया। आयुष्मान् आनन्द को अभिवादन कर चुन्द ने कहा

'सारिपुत्र ! परिनिवृत्ति हो गये है।'

'आनन्द ने धातु-पात्र देखा। वह शान्त हो गया। उसने धातु-पात्र को अजल्विद्ध नमस्कार किया।

'यह उनका पात्र है। यह उनका चीवर है। यह उनका धातु परि-श्रावण है।'

'आवुस चुन्द ! यह कथा भगवान् से चल कर कहे।'

'भन्ते ! महा उपासिका आई है ।'

'यह समय है चुन्द ।'

'आपको देखने आई है ।'

अपने पुत्र का आदर-सत्कार तथा लोगो की श्रद्धा देखकर माता का हृदय प्रफुल्लित हो गया था। माता के हृदय मे प्रीति उत्पन्न हुई थी। सारिपुत्र ने समझा। उपसेन काल उपस्थित जाना। माता से बोला .

'महा उपासिके ! क्या विचार कर रही हो ?'

'यदि तुममे इतने गुण है, तो तुम्हारे शास्ता मे कितने गुण होगे ?'

'महा उपासिके ! उनके समान शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति ज्ञान दर्शन और किसी मे नही है ।'

पुत्र ने माता को उपदेश दिया। माँ बोली

'उपतिष्य ! तुमने मुझे अमृत तुल्य यह बाते पूर्वकाल मे क्यो नही बतायी ?'

'महा उपासिके ! जाइये ।'

माता भरे मन चली गयो। सारिपुत्र ने चुन्द से पूछा

'चुन्द ! समय क्या है ।'

'भन्ते ! प्रारम्भिक प्रत्यूष काल है ।'

भिक्षु सघ एकत्रित करो ।'

× × ×

'भन्ते ! सघ एकत्रित है ।'

'चुन्द ! मुझे उठाकर बैठा दो ।'

भिक्षुओ से स्थविर सारिपुत्र ने कहा :

'भिक्षुओ ! मेरे साथ आप लोगो को विचरते हुए चौवालीस वर्ष व्यतीत हो गये। आवुसो ! मेरे कायिक, वाचिक जिन बातो को आपने अरुचिकर माना हो उन्हे आज क्षमा कर दीजिये ।'

'भन्ते ! हम छाया तुल्य आपके साथ रहे। कभी हमे कोई बात अरुचिकर नही लगी। आप हमारे दोषो को कृपया क्षमा कीजिये ।'

× × ×

अनुकपन थे। उन्होंने कारुणिक निर्वाण पद प्राप्त किया है। उस निर्वाण प्राप्त सारिपुत्र की वन्दना करो।'

'जैसे दीन काय चाण्डाल पुत्र नगर मे प्रविष्ट होता है। मन मारे चलता है। कपाल हाथ मे लिए विचरण करता है। उसी प्रकार दीन मन बना, विनीत सारिपुत्र विचरता था। उसने निर्वाण प्राप्त किया है। उसको वन्दना करो।

'जिस प्रकार भग्न सीग साड (वृषभ) नगर के भीतर विना किसी को क्षति पहुँचाता, शान्त विचरता है, उसी प्रकार सारिपुत्र विचरता था। उसने निर्वाण प्राप्त किया है। उसकी वन्दना करो।'

वह दिन कार्तिक पूर्णिमा का था।

अग्र भिक्षु श्रावक वगीश ने सारिपुत्र का मूल्याकन करते हुए उदान कहा

'सारिपुत्र महाप्रज्ञ है। गम्भीर है। मेधावी है। मार्गामार्ग मे कुशल है। सक्षेप तथा विस्तार युक्त उपदेश तथा भाषितो मे निपुण है। उनका स्वर सारिका जैसा मधुर है। उनके स्वर द्वारा ज्ञान प्रस्फुटित होता है। उनके रजनीय, श्रवणीय एव मजु स्वर मे, उपदेश काल मे, प्रमुदित, प्रसन्न भिक्षु ध्यानपूर्वक उनका उपदेश सुनते है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे अग्रश्रावक स्थान प्राप्त मगध देशान्तर्गत उपतिष्य अर्थात् नालक ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न सारिपुत्र महा प्रज्ञो मे अग्र हुए थे।

●

'भन्ते !'

वे भगवान् के समीप पहुँचे। भगवान् को अभिवादन तथा वन्दना कर एक ओर बैठ गये। आनन्द ने मन्द स्वर से कहा

'भन्ते! चुन्द आयुष्मान् सारिपुत्र का चीवर, पात्र तथा धातु लेकर आये है।'

'आनन्द!' भगवान् ने कहा। सारिपुत्र शील स्कन्ध को लेकर परि-निवृत्त हुए है। या समाधि स्कन्ध को लेकर परिनिवृत्त हुए है। या प्रज्ञ स्कन्ध को लेकर परिनिवृत्त हुए है। या विमुक्ति स्कन्ध को लेकर परि-निवृत्त हुए है या विमुक्ति ज्ञान दर्शन को लेकर परिनिवृत्त हुए है?'

'भन्ते! सारिपुत्र किसी स्कन्ध को लेकर परिनिवृत्त नही हुए है। वह मेरे उपदेशक थे। ज्ञात-अज्ञात के विज्ञापक थे! प्रेरक थे। समुत्तेजक थे। सप्रशसक थे। धर्म देशना के अभिलाषी थे। ब्रह्मचारियो के अनुग्राहक थे। सारिपुत्र का यही धर्म स्वभाव था। हम इस धर्मानुग्रह का आज स्मरण करते है।'

'आनन्द! प्रियो से, नाना भाव, विना भाव, अन्य का भाव होता है! जो कुछ उत्पन्न हुआ है। जो कुछ सस्कृत है। सबका अन्त होगा।' नाश न हो, अन्त न हो, यहाँ सम्भव नही है। आनन्द! महाभिक्षु सघ के रहने पर भी सारिपुत्र परिनिवृत्त हो गये! वह अब पुन मिलने वाले नही है। आनन्द! आत्मदीप बनो। आत्म शरण लो। अपरावलम्बी होकर विहार करो। धर्मदीप, धर्मशरण, अनन्य शरण होकर विहार करो आनन्द!'

शास्ता ने सारिपुत्र की पवित्र अस्थि किवा धातु हाथ पर लिया। भिक्षुसघ को आन्त्रित कर कहा .

'भिक्षुओ! सारिपुत्र ने परिनिर्वाण की अनुज्ञा मागी थी। यह उन्ही का शख वर्ण धातु आपके सामने उपस्थित है। उन्होने पारमिताएँ पूर्ण की थी। धर्मचक्र प्रवर्त्तन का अनुप्रवर्तन करने वाले थे। महा प्रज्ञावान थे। अल्पेच्छ (त्यागी) थे। सन्तुष्ट थे। एकात प्रेमी थे। अससृष्ट थे। उद्योगी थे। पाप निन्दक थे। भिक्षुओ! देखो महाप्रज्ञ की धातुओ को। वीतराग, जितेन्द्रिय, निर्वाण प्राप्त सारिपुत्र की वन्दना करो। वह क्षमा मे पृथ्वी तुल्य थे। अक्रोधी थे। इच्छाएँ कभी उन्हे विचलित नही कर सकी। वे

मोग्गल्लान (महा मौद्गलायन) का परिनिर्वाण

तैर्थिको ने मन्त्रणा की। जव तक मौद्गलायन जीवित रहेगा, तैर्थिको का लाभ सत्कार नही होगा। केवल मौद्गलायन के कारण श्रमण गौतम का लाभ सत्कार होता था। वह योग बल से देवलोक भी चला जाता था। देवताओ का कार्य पूछकर मनुष्यो से कहता था। नरक मे उत्पन्न हुए लोगो से भी बाते पूछकर मानवो से कहता था। उसकी बात सुनकर, लोग उसका बहुत लाभ सत्कार करते थे। उसे मारना अपने लिए हित-कर होगा। सघ टूटेगा। श्रमण गौतम की मान्यता कम हो जायगी।

तैर्थिको ने पेशेवर हत्यारो को बुलाया। उन्हे एक सहस्र कार्षापण देने का प्रलोभन दिया। उन्हे आदेश दिया। मौद्गलायन काल शिला[1] मे निवास करता था। वहाँ जाकर उसकी हत्या करनी चाहिए। तैर्थिको ने उन हत्यारो को कार्षापण दे दिया।

हत्यारो ने मौद्गलायन के निवास-स्थान को घेर लिया। मौद्गलायन योगबल से ताली के छिद्र से बाहर निकल आया। हत्यारे स्थविर को नही पा सके। लौट गये।

(१) काल शिला राजगृह मे इशिगिल पर्वत के समीप काल शिला थी। एक तरह से इशिगिल पर्वत पर ही काल शिला थी। फाहियान ने अपनी यात्रा वर्णन मे उल्लेख किया है कि एक वडी चौकोर शिला उसने राजगृह मे देखी थी। उसे तत्कालीन जन-समुदाय काल शिला कहता था।

वक्कलि तथा गोधिय भिक्षुओ ने यहाँ आत्महत्या की थी। यूआन चुआङ ने उनकी स्मृति मे बने हुए स्तूपो को देखा था। वे गिरिवज्र। किंवा प्राचीन राजगृह के उत्तरी द्वार के पश्चिम तथा दक्षिणगिर के उत्तर मे थे।

आधार ग्रन्थ

थेर गाथा २५९, उदान १२३५-१२३७

धम्मपद ७ ६-८, ८ ५-७, २६ ७, २६ ९, २६ १७

मज्झिम निकाय १ १ ५, १०, १ २ २, ९, १ ३ ४,
१ ४ २, २ २ ७, ३ २ १,
३ २ ४, ३ २ ८, ३ ४ ११,
३ ५ १, ३ ५ २, ३ ५ ९,

संयुत्त निकाय २ २ १०, १२ ३ ४-६, १२ ४ १-२,
२ ३ ६, ६ १ १०, ८ ६
१२ ७ ७, १३ २ ५, १४ २ १०
१५ २ २७ १-१० ३४ २ ४ ४
३४ ३ २ ७, ३४ ४ ३ ५ ३६ ५-१२,
४२ ३-६, ४३ १ ३, ४४ १ ४-८,
४५ २ १-६, ४६ ५ ४, १० ४६ ६ ८,
५० १ ४, ९, ५३ १ ४, ५

महावग्ग १ १ १८, १ २ ४, १ ३ १२, १० २ २

चुल्लवग्ग १ ३ १, ६, १ ४ १, ६ ३ २
६ ४ १, ६ ५ २, ७ १ ६
७ २ ८, ८ २ २

दीर्घ निकाय २ १, ३, ३ ५, ११

सुत्त निपात ३६

महापरिनिर्वाण सुत्त १६

महापन्थक २६ २४

आधार ग्रन्थ

धम्मपद १० ७
सुत्त निपात ३६
थेर गाथा २६३, उदान १२५३-१२५५
महापरिनिर्वाण सुत्त १६
दीर्घ निकाय २ १
अंगुत्तर निकाय १ २३, १८८, ४ ४२२
संयुत्त निकाय ४५ २ ४, ६ १ ५-१०, ८ . १०,
१३ २ ५, १४ २ १०, १६ ३ ३,
१८ १ १-२, २० १, ३, ३४ ४ , ४ ६,
३८ १-१०, ४२ ७, ४४ २ ५,
४५ २ ४, ४५ ३ ६, ४६ २ ४,
४९ ३ ११, ५० १ १-४, ५२ २ ८-९
मज्झिम निकाय १ १ ५, १ ४ २, ७, १ ५ १०
२ २ ९, ३ २ ८, ३ ४ ११
महावग्ग १ १ १८, १० २ २
चुल्लवग्ग १ ३ १, ६, ७ १ ४, १ ४ १,
७ २ ८, ६ ५ २, ९ : १

दूसरे दिन पुन वे गये। स्थविर योगबल से छत फाड कर आकाश मे चले गये। इस प्रकार दो मास का समय निकल गया।

मौद्गलायन को प्रतिभास हुआ। उनका समय आ गया। कर्म का परिणाम भोगना होगा। अपनी रक्षा का प्रयास त्याग दिया।

हत्यारो ने मौद्गलायन को पकड लिया। उनकी हड्डी को कूट कर चावल की खुदी की तरह बना दिया। उन्हे एक झाडी के पीछे फेंककर चले गये।

मौद्गलायन ने निश्चय किया। शास्ता को देखकर परिनिवृत्त होगे। अतएव शरीर को ध्यानवेष्ठन से वेष्ठित किया। स्थिर किया। आकाश मार्ग से शास्ता के समीप पहुँचे। शास्ता की वन्दना की। निवेदन किया :

'भन्ते ! परिनिवृत्त होऊँगा।'

'परिनिवृत्त—मौद्गलायन'

'हॉ भन्ते।'

'किस स्थान पर ?'

'काल शिला प्रदेश मे।'

'अच्छा—आवुस।'

शास्ता की वन्दना की। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। काल शिला प्रदेश मे पहुँचे। वहॉ परिनिवृत्त हुए।

वंगीस अग्र भिक्षुश्रावक ने मौद्गलायन के जीवन का बडा ही उत्तम मूल्याकन किया है·

'राजगृह ऋषिगिलि पर्वत समीप आसीन, मुनि की सेवा त्रैविद्य मृत्युनाशक श्रावक करते है। ऋद्धि सम्पन्न मौद्गलायन, उनके चित्त का अपने चित्त द्वारा ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। पूर्णता प्राप्त दु ख पारगत, विविध गुणो से युक्त, वे भगवान् को सेवा करते है।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे अग्रस्थान प्राप्त मगध देशान्तर्गत राजगृह के कोलित ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न महामौद्गलायन ऋद्धिमानो मे अग्र था।

अग्नि, जल तथा पारस्परिक कलह।'

× × ×

कि शव का उठाना तथा उसका दाह-सस्कार करना कठिन हो गया। शव गलने लगे। सडने लगे। उनकी दुर्गन्धि से वैशाली गन्धा उठी। कीटाणु के फैलने के कारण बीमारी फैल गयी। बिना सेवा, बिना उपचार, बिना औषधि वैशाली निवासी काल मुख मे प्रवेश करने लगे।

जनता ने वैशाली के राजन्य वर्ग से निवेदन किया। इस आपदा से त्राण पाना आवश्यक था। वैशाली के सस्थागार मे राजन्य वर्ग एकत्रित हुआ। बहस के पश्चात् निर्णय लिया गया—'भगवान् को वैशाली आगमन का निमन्त्रण भेजा जाय।'

भगवान् वेलु वन मे थे। वैशाली का पुरोहित महाली भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुआ। महाली ने वैशाली की करुण गाथा वर्णन की। महाली के सुझाव पर भगवान् ने वैशाली यात्रा का निश्चय किया। बिम्बसार ने राज-गृह से गगा तट का मार्ग खूब सुसज्जित किया। भगवान् के साथ गगा तट तक आया।

भगवान् का वैशाली तट पर अभूत पूर्व स्वागत लिच्छवियो ने किया। बिम्ब-सार के प्रबन्ध की अपेक्षा लिच्छवियो का प्रबन्ध उत्तम था।

भगवान् के चरण-कमल वैशाली की तटीय भूमि का स्पर्श किये। उत्साहमय तूर्य ध्वनि के साथ भगवान् का अभिनन्दन किया गया। और घटा घिर आयी। प्यासी भूमि अघा उठी।

गगा तट से वैशाली तीन योजन दूर थी। वज्जि देश मे पहुँचते ही शाक्यो ने भगवान् का अभिनन्दन किया।

सायकाल भगवान् ने रतन सुत्त का उपदेश आनन्द को दिया। आदेश दिया कि इस सुत्त का पाठ नगर के तीनो प्राकारो के अन्दर किया जाय। नगर की परिक्रमा लिच्छवी राजन्य वर्ग करे। आनन्द ने रात्रि के तीनो यामो मे यह किया। वैशाली का कष्ट दूर हो गया।

भगवान् ने चौरासी हजार जनता के मध्य स्वय रतन सुत्त का पाठ किया। सात दिन तक वैशाली मे इसका पाठ होता रहा। तत्पश्चात् भगवान् ने वैशाली से प्रस्थान किया। लिच्छवी गण भगवान् को गगा तट तक पहुँचाने के लिये आये।

एक कथा है। वैशाली की इस यात्रा के समय भगवान् के पिता शुद्धोदन की

वैशाली का पतन

इमेसु च सन्तसु अपरिहानियेसु
धम्मेसु वज्जी सन्दिस्सिस्सन्ति,
वुद्धि येव ब्राह्मण ! वज्जीनं
पाटिकखा नो परिहानि, ति ।

(यह सात अपहारिणीय धर्म जब तक वज्जियो मे रहेगे तब तक ब्राह्मण ! वज्जियो की वृद्धि समझना चाहिए, हानि नही ।)

—म० प० नि० सु० ५

गगा के तट के समीप आधा योजन राज्य लिच्छवियो का था । आधा योजन अजातशत्रु का था । पर्वत पाद से बहुमूल्य सुगन्धित सामान आता था । अजातशत्रु के कर लेने के पहले लिच्छवी आकर शुल्क वसूल कर लेते थे । अजातशत्रु सुनता था । क्रोधित होता था । उसमे इतनी शक्ति नही थी । लिच्छवी से युद्ध करता ।

अजातशत्रु ने वज्जियो तथा लिच्छवियो का सामना करने के लिए पाटलिपुत्र नगर बसाना आरम्भ किया । उसने बुद्धिमानी तथा कौशल से कार्य निकालने का विचार किया । उसने वर्षकार ब्राह्मण से मन्त्रणा करना उचित समझा ।

भगवान् ने सुना । वे बोले—इस वैशाली[1] नगर के तीन शत्रु होगे—

---

(१) वैशाली : लिच्छवियो की राजधानी वैशाली थी । भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्ति के पाँचवे वर्ष वैशाली मे वर्षावास किया था । वैशाली मे सात हजार सात राजा निवास करते थे । उनके प्रासाद थे । उनके सेवक थे । दास थे । दासियाँ थी । वैशाली धन-धान्य से पूर्ण थी । सुन्दर उद्यानो से पूर्ण थी । वैशाली मे भयकर अवर्षण हुआ । भयकर अकाल ग्रस्त क्षेत्र वैशाली हो गयी । जनता अत्यधिक सख्या मे मरने लगी । इतनी अधिक मृत्यु होने लगी

'तो—?'

'तथागत तुम्हारे कहने पर अपना विचार प्रकट करेंगे। मुझसे आकर अक्षरश वे बातें कहना।'

'अच्छा—राजन्।'

महामात्य वर्षकार[1] ब्राह्मण राजा का उद्देश्य समझ गया। उसने उत्तम शक्तिशाली यानो को योजित कराया। उत्तम यान पर राजगृह से निकला। गृद्धकूट पर्वत पर पहुँचा। जहाँ तक यान जा सकता था। यान से गया। तत्पश्चात् पैदल चला। भगवान् के समीप पहुँचा। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् के संकेत पर बोला :

'गौतम। 'वैदेही'[2] पुत्र राजा अजातशत्रु चरणो मे शिरसा नमन करता है।'

भगवान् ने वर्षकार की ओर देखा। वर्षकार ने कहा

'गौतम। राजा की इच्छा है। वज्जियो को वह उच्छिन्न करे।'

आनन्द पृष्ठभाग मे खड़ा विजन कर रहा था। भगवान् ने आनन्द को सम्बोधित किया .

'आनन्द। क्या तुमने सुना है? वज्जिगण सन्निपात बहुल हैं?'

'हाँ भन्ते। वे नियमित रूप से मिलते हैं।'

'आनन्द। जब तक वज्जी सन्निपात बहुल रहेंगे। तब तक उनकी समृद्धि समझना चाहिए। उन्नति समझना चाहिए।'

वर्षकार और गम्भीर हो गया। तथागत ने पुन पूछा—

'क्या वज्जी बैठक का आह्वान सुनते ही एकत्रित हो जाते है?'

'सुना है भन्ते।'

'क्या वे एक साथ उत्थान करते है।'

---

(१) वर्षकार अजातशत्रु का महामात्य था।

(२) वैदेही पुत्र अजातशत्रु के लिए इस पदवी का प्रयोग किया गया है। बुद्धघोष का मत है कि वैदेही का अर्थ गुणी और वैदेही पुत्र का अर्थ गुणी स्त्री का पुत्र है। क्योकि अजातशत्रु की माता विदेह की नही थी बल्कि कोसलराज प्रसेनजित की बहन थी।

तथागत राजगृह मे गृद्धकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। तथागत को वैदेही पुत्र अजातशत्रु का अभिप्राय ज्ञात हो गया। वह लिच्छवी तथा वज्जियो का सहार करने पर सन्नद्ध हो गया।

अजातशत्रु ने वर्षकार महामात्य को बुलाया। उससे कहा

'ब्राह्मण ! तथागत के पास पधारिए। मेरी ओर से भगवान् की शिर से वन्दना कीजियेगा।'

'महाराज !'

'उनसे कहिएगा—तथागत ! राजा ने आरोग्य पूछा है। सुख विहार पूछा है।'

'और—?'

'तथागत से निवेदन करना—राजा वज्जि आक्रमण का इच्छुक है। उनके सहार का इच्छुक है।'

मृत्यु हो गयी। वैशाली मे भगवान् ने विनय के अनेक नियमो की रचना की थी। महाप्रजापति गौतमी यही प्रव्रजित हुई थी। यही पर भगवान् ने स्त्रियो के प्रव्रजित होने की आज्ञा दी थी।

वैशाली मे उदयन चैत्य, चापाल चैत्य, गौतमक चैत्य, साम्वक चेत्य, बहुपुत्त चैत्य, सारनद्ध चैत्य, कूटगार शाला अनेक पूजनीय तथा दर्शनीय स्थान थे। वैशाली जलाशयो से पूर्ण थी। सरोवरो मे दिन मे सरोज तथा रात्रि मे कुमु-दिनी फूलती थी। वहाँ अनेक उद्यान थे। वह राजनीतिक, सास्कृतिक धाराओ का केन्द्र थी। वैशाली के बाहर से हिमालय तक प्राकृतिक महा-वन था। समीप ही अन्य वन गोसिगल साल आदि थे। वैशाली मे भगवान् ने, महाली, महासिंह नाद, चूलसच्चक, महा सच्चक, तेविज्ज, वच्छगोत्त, सुनक्खत्त और रतन सुत्तो का उपदेश दिया था। तेलो वाद तथा सिगाल जातक यही भगवान् ने कहा था।

भगवान् कुशीनगर की अन्तिम यात्रा काल मे वैशाली होकर गये थे। भग-वान् के परिनिर्वाण के पश्चात् उनके धातु पर यहाँ चैत्य बनाया गया था।

वैशाली का नाम विशाला भी था। नाग जाति वैशाली मे रहती थी। उन्हे वेशाला कहा जाता था।

किन्तु इस वैशाली के जीवन का नाटक अत्यन्त दु खान्त है। जिन्होने वैशाली को सुन्दर बनाया था, उसके गौरव थे, वही उसके नाश के कारण हुए।

'आनन्द ! क्या तुमने सुना है ? वज्जिगण अर्हतो की रक्षा करते है, सत्कार करते है। ज्ञप्ति गुप्ति करते है। भविष्य के अर्हत उनके राज्यो मे आये। इसका ध्यान रखते है। आगत अर्हत सुख से विहार करे। इसका प्रबन्ध करते है ?'

'हॉ सुना है भन्ते !'

'आनन्द ! जब तक वज्जी यह सब करते रहेगे। वे उच्छिन्न नही होगे।'

वर्षकार उदास हो गया। भगवान् ने कहा :

'ब्राह्मण ! एक समय मे वैशाली के सारन्दद चैत्य मे विहार कर रहा था। उन्हे मैने यह सातो अपहरणीय धर्म का उपदेश दिया था। यह सातो धर्म जब तक उनमे वर्तमान रहेगे उनका नाश नही होगा। उनकी वृद्धि होती रहेगी।'

'गौतम ! एक भी अपहरणीय धर्म से उनकी वृद्धि समझनी चाहिए। हम बहुत कृत्य है। बहुत करणीय है। आज्ञा दीजिये।'

'ब्राह्मण ! जिसका काल आप समझें।'

वर्षकार ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की। आसन त्याग कर चला।

भगवान् ने आनन्द से कहा—'भिक्षु सघ एकत्रित करो।'

'अच्छा भन्ते।'

× × ×

भिक्षु सघ एकत्रित हुआ। तथागत ने कहा : 'भिक्षुओ ! सात अपहरणीय धर्म का आपको उपदेश करता हूँ। सुनो।'

'अच्छा भन्ते।'

भिक्षु सावधान होकर बैठ गये। तथागत ने कहा :

'भिक्षुओ ! जब तक तुम सन्निपात बहुल रहोगे। तुम्हारी वृद्धि होती जायेगी।

'भिक्षुओ ! जब तक एक साथ बैठक करोगे, एक साथ उत्थान करोगे, एक होकर सघ मे करणीय करोगे, तुम्हारी वृद्धि होती रहेगी। भिक्षुओ !

'सुना है भन्ते !'

'वे एकमत करणीय करते है ?'

'सुना है भन्ते !'

'आनन्द ! जब तक वज्जी अविहित, अप्रज्ञप्त को विहित नही करते, विहित का उच्छेद नही करते, उच्छिन्न नही होगे। उनका नाश नही होगा।'

वर्षकार ने भगवान् के मुख की ओर देखा। भगवान् ने शून्य गगन की ओर देखते हुए प्रश्न किया

'आनन्द ! वज्जि पुरातन नियम का पालन करते है ? व्यवहार करते है ?'

'हॉ भन्ते ! सुना है।'

'आनन्द ! जब तक वे यह करते रहेगे वे उच्छिन्न नही होगे।'

वर्षकार की मुद्रा गम्भीर होने लगी। तथागत ने गगन से दृष्टि हटाते हुए पूछा :

'आनन्द ! तुमने सुना है ? वज्जि अपने वृद्धो का सत्कार करते है ?'

'हॉ सुना है।'

'आनन्द ! क्या वे वृद्धो का गुरुकार करते हैं ? उनको मानते है ? उनकी पूजा करते है ? उनकी सुनने योग्य बात ध्यानपूर्वक सुनते है ?'

'सुना है भन्ते।'

'आनन्द ! जब तक वे वृद्धो का सत्कार, गुरुकार, पूजा, श्रोतव्य-श्रवण करते रहेगे। उच्छिन्न नही होगे।'

वर्षकार की दृष्टि नत हो गयी। तथागत ने पुन प्रश्न किया :

'आनन्द ! क्या तुमने सुना है। वे कुल की स्त्रियो, कुल की कुमारियों को शक्ति से नही छीनते। शक्ति से उन्हे कही नही बसाते ?'

'हॉ सुना है भन्ते !'

'आनन्द ! क्या वज्जि अपने चैत्यो की पूजा करते है। सत्कार करते है ? उन पर किये गये दान को धर्मानुसार लुप्त नही होने देते ?'

'हॉ सुना है भन्ते !'

'मै कहूँगा ।—महाराज आपसे उनसे क्या सम्बन्ध । वे अपनी कृषि, वाणिज्य, द्वारा अपना जीवनयापन करते है । उसमे व्यवधान उपस्थित करने की क्या आवश्यकता है ।'

'अच्छा—।'

'मै यह कहकर वहाँ से उठकर चला आऊँगा ।'

'उसके बाद ?'

'आप कहिएगा—'यह ब्राह्मण वज्जियो का समर्थक है ।'

'इससे क्या होगा ?'

'यह बात फैलेगी । वज्जियो के कानो तक पहुँचेगी । वे मुझे अपना समर्थक समझेगे । मेरा विश्वास करेगे । उस समय उनमे भेद डालने का अवसर मिलेगा ।'

अजातशत्रु के अधरो मे कुटिल मुसकुराहट दिखाई पड़ी ।

'हाँ ! मै उनके पास उसी दिन पर्णाकार (भेट) भेजूंगा ।'

'अच्छा—?'

'आप अप्रसन्नता प्रकट कीजिएगा । मेरा भेजा भेट पकडवा मंगाइएगा । मेरे ऊपर दोष लगाइएगा ।' बधन, ताड़न आदि न कर मेरा सर मुडकर, अपमानित कर, नगर से बाहर निष्कासित कर दीजिएगा ।'

'पुन.—?'

'मै क्रोधित होकर कहूँगा ।'—'मैने आपके नगर के प्राकार का निर्माण कराया है । परिखा का निर्माण कराया है । मै सामरिक दृष्टि से आपके दुर्बल और गम्भीर स्थानो को जानता हूँ । आपके इस अपमान का पाठ पढा दूगा ।'

'फिर—?'

'उस समय आप बिगडकर कहिएगा—'अच्छा चले जाओ यहाँ से ।'

× × ×

लिच्छवियो ने घटना सुनी । उनको मन्त्रणा हुई । एक ने कहा—'वह शठ है । मायावी है । उसे गगा पार नही उतरने देना चाहिए ।'

'वाह ! हमारे समर्थन मे राजा से बाते करता है ।'

जब तक प्रज्ञप्त को अप्रज्ञप्त नही करोगे, जब तक प्रज्ञप्त का उच्छेद नही करोगे, प्रज्ञप्त शिक्षाविदो के अनुसार व्यवहार करोगे। तुम्हारी वृद्धि होती रहेगी।

'भिक्षुओ! जब तक धर्मानुरागी, चिर प्रव्रजित, सघ के पिता, सघ के नायक, स्थविर भिक्षुओ का सत्कार करोगे, गुरुकार करोगे, मानोगे, पूजोगे, तुम्हारी वृद्धि होती रहेगी।

'भिक्षुओ! जब तक तृष्णा के वश मे नही होगे। तुम्हारी वृद्धि होती रहेगी।

भिक्षुओ! जब तक तुम लोग अरण्य के शयनासन अर्थात् वन की कुटियो मे शयन के इच्छुक रहोगे तुम्हारी वृद्धि होती रहेगी। भिक्षुओ! जब तक तुममे से प्रत्येक भिक्षु यह स्मरण रखेगा कि अनागत उत्तम ब्रह्मचर्य से आये, आगत ब्रह्मचारी सुख से विहार करे, भिक्षुओ! तब तक तुम्हागी वृद्धि होती रहेगी।

भगवान् ने गणतन्त्रीय विधान को भिक्षुसघ के सघटन के लिए निश्चित किया।

× × ×

वर्षकार अजातशत्रु के पास लौट आया। राजा ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा

'ब्राह्मण! तथागत ने क्या कहा ?'

'उन्होने कहा' . 'वज्जियो पर विजय पाना कठिन है।'

'तब—?'

'उपलायन और पारस्परिक कलह से उन पर विजय प्राप्त की जा सकती है।'

'वर्षकार! उपलायन से हमारे हाथी-घोडो की हानि होगी। भेद मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए।'

'महाराज! मैने एक उपाय सोचा है।'

'क्या ?'

'आप वज्जियो की चर्चा परिषद् मे उठाइए।'

'तत्पश्चात्—?'

उसने सत्य बात बता दी। लोगो ने समझा। झूठ बोल रहा था बात छिपा रहा था। उनमे वैमनस्य हो गया।

× × ×

दूसरे दिन लिच्छवी खडे थे। वहाँ महामात्य गया। एक को एकान्त मे ले जाकर पूछा—

'तुम्हारे भोजन का व्यजन क्या था ?'

उसका उत्तर सुनकर चुपचाप लौट पडा।

उसके साथियो ने पूछा। महामात्य ने क्या कहा। उसने सत्य बात बता दी। लोगो को विश्वास नही हुआ। महामात्य इतनी छोटी बात इतने एकान्त मे ले जाकर क्या कहेगा ?

उनमे वैमनस्य घर करने लगा।

× × ×

एक दिन एक लिच्छवी से वर्षकार ने पूछा •

'तुम अत्यन्त निर्धन हो।'

'किसने कहा।'

वर्षकार ने एक लिच्छवी का नाम बता दिया। कहा नाम किसी से बताना मत। अनिष्ट होगा।

× × ×

एक दिन एक लिच्छवी से अपनत्व प्रदर्शित करते हुए एक ओर ले गया। पूछा।

'आप कायर है क्या ?'

'किसने कहा ?'

'अमुक लिच्छवी ने कहा है। लेकिन उसका नाम वताना मत। अनिष्ट हो सकता है।'

× × ×

इस प्रकार परस्पर विरोधी बातों का प्रचार होते-होते तीन वर्षों मे लिच्छवियो मे भयंकर द्वेषाग्नि फैल गयी। सघटन मे फूट पड़ गया। ऐसा

'नही—नही। उसे आने दिया जाय।'

बिना समझे लिच्छवियों ने वर्षकार को नगर मे आने की अनुमति दे दी।

× × ×

वर्षकार ने नगर मे प्रवेश किया। लिच्छवि अपने संस्थागार मे एकत्र हुए। उससे प्रश्न किया :

'ब्राह्मण! यहाँ आगमन का कारण?'

राजा ने जिस प्रकार उसे अपमानित किया था। वर्षकार ने सब कुछ बता दिया।

'इतनी तुच्छ बात के लिए इतना बडा दण्ड!'

'हमारे लिए ब्राह्मण दण्डित हुआ है।' एक आवाज सस्थागर मे उठी।

'पूछो इनका वहाँ क्या पद था?'

'मै वहाँ विनिश्चित महामात्य था।'

'इन्हे वही स्थान यहाँ दिया जाय।'

'यही दिया जाय।'

भावावेश मे गण के लोगो ने अपनी सम्मति प्रकट की।

× × ×

वर्षकार सुचारु ढंग से न्याय करता था। लिच्छवि राजकुमार गण उसके यहाँ विद्या पढने आते थे। अपने गुणो के कारण उसने सबको मोह लिया। अपने स्थान पर सुदृढ सुप्रतिष्ठित हो गया।

एक दिन वर्षकार ने एक लिच्छवी को एक ओर ले जाकर कान मे कहा।

'आप खेत जोतते है।'

'हाँ।'

'दो बैलो से।'

'हाँ।'

वह चला आया। दूसरे लिच्छवियो ने उससे पूछा—

'महामात्य ने क्या कहा?'

आधार ग्रन्थ

दीघ निकाय २ ३
अट्ठक ८ ६
सयुक्त निकाय ४५ १ ९
उदान अ० क० ८ ५

समय आ गया। दो लिच्छवी एक साथ एक मार्ग मे चलना नापसन्द करने लगे।

एक दिन सन्निपात होने का नगाडा बजाया गया। दुन्दुभि बजायी गयी। लिच्छवी एकत्रित नही हुए। वर्षकार ने समझ लिया। विप काम कर गया। अपनी मौत लिच्छवी मरने वाले थे।

उसने दूसरे समय सभा घोषित की 'ईश्वर लोग एकत्रित हो।'

कोई लिच्छवी सभा-मध्य एकत्रित नही हुआ।

× × ×

वर्षकार ने अजातशत्रु को अविलम्ब आक्रमण करने के लिए शासन भेजा।

अजातशत्रु ने बलभेरी बजवायी। सेना एकत्रित हुई। वह वैशाली की ओर प्रयाण किया।

वैशाली वालो ने अजातशत्रु के आक्रमण की बात सुनी। उन्होने सुनकर भेरी बजवायी। सन्थागार मे एकत्रित हुए। बोले

राजा को गगा पार नही उतरने देना चाहिए।

किन्तु वैशाली के लोग बोले 'देवराज, सुरराज जाये। हमसे क्या मतलब।'

वे एकत्रित नही हो सके।

× × ×

पुन वैशाली मे भेरी बजी। लोगो ने कहा—'नगर मे अजातशत्रु की सेना न प्रवेश करने पाये। नगर का द्वार वन्द कर दिया जाय।'

कोई भी भेरी घोष पर एकत्रित नही हुआ।

राजा अजातशत्रु अनावृत नगर द्वार से घूमा। नगर नष्ट किया। लिच्छवियों को नष्ट किया। और हँस उठे वर्पकार और अजातशत्रु लिच्छवियो की मूढता पर। और हो गया गणतत्र का लोप। लुप्त हुआ वैशाली का वैभव। सर्वदा के लिए।

अम्बपाली ने सुन्दर सुअलकृत यानो को योजित करवाया। यान पर आरूढ हुई। सुन्दर यानो पर चली। उसका वैभव अपूर्व था। यानो की पक्ति अपूर्व थी। वैशाली, राजपथ पर उमड़ आयी थी। वह अपने आराम की ओर अग्रसर हुई। प्रतिभा के साथ। तेजस्विता के साथ। गौरव के साथ।

जहाँ तक यान चल सकता था। यान घण्टिया के नाद के साथ पहुँचा। रथ पर फरफराती पताका के साथ पहुँचा। अश्वो के उठते, गिरते टाप के साथ पहुँचा। पीछे धूल उडाते पहुँचा।

अम्बपाली यान से उतरी। पैदल चली। जहाँ तथागत थे पहुँची। उसने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गयी।

भगवान् ने धार्मिक कथा से अम्बपाली को समुत्तेजित किया। उसने भगवान् के उपदेशो को सुना। उसे लज्जा न थी। वह गणिका थी। वह रूपाजीवा थी। अन्य वृत्तियो के समान अपनी वृत्ति मे गर्व का अनुभव करती थी। समाज मे अपना उच्च स्थान रखती थी। समाज मे उसका आदर था। निरादर नही था।

अम्बपाली ने सानुनय अजलिवद्ध निवेदन किया :

'भगवान्! कल का भोजन स्वीकार करे।'

भगवान् ने मौन स्वीकृति दी। अम्बपाली ने भगवान् की प्रदक्षिणा की। अभिवादन किया। वन्दना की। अपने निवास-स्थान के लिए प्रस्थान किया।

× × ×

विहार मे प्रत्येक ग्रामो मे आम, बाँस तथा शीशो के वृक्ष किंवा बारी मिलेगी। प्रत्येक प्रतिष्ठित परिवार के पास भी आम, तथा बाँस का वगीचा होता है। शीशो के वाग अव कम मिलते है। वे प्राय तालाबो के भीटो अथवा वगीचो के खावो पर लगाये जाते है। वह वगीचे प्राय ग्राम की आवादी के वाहर होते है। मेरे भी कुछ गाँव काशी तथा विहार के शाहावाद जिले मे थे। वहाँ आम तथा बाँस की वँसवारी अव भी लगी है। शीशम के वृक्ष भीटो पर लगे है। पलास वन भी प्रत्येक गाँव मे होते थे। परन्तु अव वे प्राय काट कर खेत बना लिये गये है। मेरी वाल्यावस्था मे मेरे गाँवो मे पलास के वन थे। परन्तु अब वे समास हो गये हैं।

अम्बपाली

सचेपि मे अय्य पुत्त !
वेसालि साहारं दस्सथ एवमहं
तं भत्तं न दस्सामीति ।

(आर्य पुत्रो ! यदि वैशाली का जनपद भी आप दें तो भी मैं इस महान् भात को नही दूँगी—अम्बपाली)

—म० प० नि० सुत्त ५०

वैशाली जनपद था । राजा का आम्र वन था । एक आम्र वृक्ष के नीचे राजोद्यान के माली ने अभिजात कन्या पायी । वह अनिन्द्य सुन्दरी थी । वह आम के नीचे मिली थी । अतएव उसका नाम अम्बपाली रखा गया था ।

वह युवती हुई । उसकी सुन्दरता पर अनेक राजपुत्र कुलपुत्र अनुरक्त हो गये । परस्पर युवको मे उसकी प्राप्ति की स्पर्धा उठी ।

अन्त मे निर्णय किया गया । वह किसी एक व्यक्ति की पत्नी बनकर नही रहेगी । वह जनपद कल्याणी बनी ।

× × ×

वैशाली मे तथागत का अन्तिम आगमन था । अम्बपाली गणिका के आम्र वन[1] मे तथागत ने विहार किया ।

---

(१) अम्बपाली वन अम्बपाली का आम्रवन वैशाली मे था । पर आम्रवन वैशाली के समीप दक्षिण दिशा मे स्थित था । प्रधान चीज भगवान् को यहाँ पर एक अशोक स्तम्भ मिला था ।
आम, वेणु अर्थात् वास तथा सिसमा अर्थात् शीशम किंवा शीशो के बगीचे मे प्राय निवास या विहार करते थे । पूर्वीय उत्तर प्रदेश एवं पश्चिमी

'ओह ! अम्बिका ने हमे जीत लिया। अम्बिका ने हमे वचित कर दिया।'

कुमारो ने अफसोस की।

'हाँ—हम पीछे रह गये।'

कुमारो ने पराजय स्वीकार किया।

अम्बपाली धूल उडाती, तरुणो को धूल खिलाती, निकल गयी। लिच्छवी अम्बपाली के आम्र वन मे पहुँचे।

× × ×

लिच्छवियो को भगवान् ने आते देखा। भिक्षुओ को आमन्त्रित किया।

'भिक्षुओ। देखो यह लिच्छवियो की परिपद् है। आ रही है। भिक्षुओ ! यह देव परिपद् तुल्य है।'

लिच्छवियो ने यान त्याग दिया। पैदल भगवान् तक पहुँचे। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। भगवान् ने उन्हे धार्मिक कथा से समुत्तेजित किया। लिच्छवीगण ने भगवान् से अजलिबद्ध निवेदन किया

'भन्ते ! हमारा कल का भात कृपया स्वीकार करे।'

'लिच्छवियो ! मैने अम्बपाली गणिका का भात स्वीकार कर लिया है।'

लिच्छवी लज्जित हो गये। अगुलिया तोड़ने लगे

'अम्बपाली ने हमे जीत लिया। हमे तथागत के स्वागत से वञ्चित कर दिया।'

वे उदास हो गये। वैशाली मे भगवान् गणिका के यहाँ भात खायेंगे। वे कुछ न कर सके। उन्होने भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन किया। अनुमोदन किया। आसन से उठे। भगवान् की प्रदक्षिणा कर चले गये।

× × ×

अम्बपाली ने सर्वश्रेष्ठ, स्वादिष्ठ भोजन का आयोजन किया। जो

वैशाली के लिच्छवियो ने सुना । भगवान् का वैशाली आगमन हुआ है । उन्होने उत्तम अलकार तथा वस्त्रो को पहना । नील वर्ण लिच्छवी ने नीला वस्त्र पहना । नीला अलंकार धारण किया । कोई पिगल वर्ण लिच्छवी ने पीत वसन, पीत अलकार धारण किया । कोई लोहित वर्ण लिच्छवी ने लोहित वर्ण वस्त्र तथा अलकार धारण किया । कोई श्वेत वर्ण लिच्छवी ने श्वेत वर्ण वस्त्र एव श्वेत वर्ण अलकार धारण किया । वे सब अपने-अपने यानो पर आम्र वन की ओर चले ।

अम्बपाली गर्वीली थी । भगवान् ने उसके यहाँ भोजन स्वीकार किया था । वह गर्व से और फूल गयी । उसमे असीम उत्साह था । उल्लास था । आह्लाद था । शोभनीय यान वेग से दौडाती लौट रही थी । प्रसन्न थी । उसका रथ गर्व से धावित था । तरुण लिच्छवियो के धुरो से धुरा, पहियो से पहिया, जुओ से जूआ, लडाती उपेक्षा से देखती, व्यग्य बोलती, उपहास करती हंसती, प्रसन्नता से देखती, सवेग चल रही थी ।

तरुण लिच्छवियो ने प्रश्न किया

'ओ अम्बपाली ! धुरो से धुरा क्यो टकराती है ?'

'आर्यपुत्रो ! तुमने नही सुना ?'

'क्या सुनना है ?'

'मैने कल तथागत को भिक्षुसघ सहित आमन्त्रित किया है ।'

'किसलिये श्रमणो को आमन्त्रित किया है ।' एक तरुण ने व्यग किया ।

'भोजन के लिए ।'

'तथागत ने स्वीकार किया है ?'

'हाँ ।'

अम्बपाली ने उचक कर अश्वो की पीठ पर चाबुक मारा । वे उछलकर और वेग से चले । लिच्छवि राजकुमार विस्मित हुए ।

'ओह अम्बपाली, सौ हजार लेकर यह भात हमे करने के लिये छोड दे ।'

'लिच्छवियो ! नही ।' अम्बपाली विहँस कर बोली ।

'क्यो—।'

'यदि समस्त जनपद दे दे तब भी यह भात नही छोडने वाली हूँ ।' अम्बपाली ने गर्व से कहा ।

'मेरे विस्तृत उज्ज्वल नेत्रो मे नील मणियो तुल्य दो पुतलियाँ थी। उनमे ज्योति थी। जरा ने उन्हे प्रभाहीन बना दिया है। कुरूप बना दिया है। यौवन के उठते सुन्दर शिखर तुल्य मेरी कोमल सुदीर्घ नासिका थी। जरा ने उसने दबा दिया है। वह बैठ गयी है। चतुर शिल्पी द्वारा प्रस्तुत कंकण तुल्य मेरे कर्ण शिखर थे। जरा ने उन्हे शिथिल बना दिया है। लटका दिया है। कदली की कली के समान मेरी दन्त पक्तिया थी। जरा ने उन्हे खण्डित कर दिया है। उन्हे पाण्डु वर्ण बना दिया है।

'मेरी वाणी वन भ्रमित कोकिल की कूक की तरह मधुर थी। प्रिय थी। जरा ने उसे स्खलित बना दिया है। उसमे भर्राहट पैदा कर दी है। मेरी ग्रीवा खरादे हुए चिकने शंख के समान सुन्दर थी। जरा ने उसे भग्न एवं विनमित बना दिया है। गदा के समान सुन्दर सुगोल मेरी बाहु-लता थी। उन्हे जरा ने पाडर वृक्ष की शाखा तुल्य दुर्बल बना दिया है। मेरी उँगलियाँ मुन्दरिकाओ व स्वर्णालंकारो से विभूषित रहती थी। जरा ने उन्हे गठीला और निर्बल बना दिया है। वक्षस्थल पर स्थूल, सुगोल, उन्नत स्तन शोभित थे। जरा ने पानी की लटकी रीती थैली जैसा उसे बना दिया है। विशुद्ध स्वर्ण फलक तुल्य मेरे शरीर की प्रभा सुवर्ण थी। जरा ने उसे सूक्ष्म झुर्रियो से भर दिया है। मेरा ऊरु प्रदेश हाथी के सूँड की तरह था। जरा ने उन्हे पोपले बास की नली की तरह बना दिया है। नूपुर एवं स्वर्णालंकारो सुसज्जित मेरी जघाएँ रहती थी। जरा ने उन्हे शुष्क तिल के डंठल के समान बना दिया है। मेरे दोनो कोमल पद रुई के फाहो के समान हलके थे जरा ने उन्हे सुखा दिया है। उन्हे झुर्रियो से भर दिया है। वह शरीर एक दिन सुख का आगार था। प्रसन्नता का केन्द्र था। काम का मन्दिर था। जरा ने उसे जीर्ण बना दिया है। दुख का आलय बना दिया है। बिना मरम्मत, बिना लिपाई-पोताई के जिस प्रकार घर गिर जाता है, उसी प्रकार जरा का यह भवन किंचित् मात्र सेवा बिना गिर जायगा। नष्ट हो जायगा। कंकाल का खडहर मात्र रह जायगा। यह सब मिथ्या है परन्तु भगवान् का वचन मिथ्या नही होता।'

कुछ सम्भव था, जो कुछ प्राप्त था, सबका आम्रपाली ने सग्रह किया। भोजन बन जाने पर काल की सूचना तथागत को दी गयी।

तथागत पूर्वाह्न समय सुआच्छादित हुए। पात्र उठाया। चीवर उठाया। भिक्षुसघ के साथ भोजन स्थान पर पहुँचे।

तथागत ने आसन ग्रहण किया। बिछे आसनो पर बैठ गये। अम्बपाली ने अपने हाथो से भोजन परोसा। लोगो को समर्पित किया।

भोजन समाप्ति के पश्चात् तथागत तथा अन्य भिक्षु संघ यथास्थान बैठ गये। भगवान् के समीप एक नीला आसन बिछा कर अम्बपाली बैठ गयी। भगवान् का संकेत पाकर बोली :

'भन्ते! इस आराम को मै भिक्षु संघ को देती हूँ।'

भगवान् ने मौन रह कर दान भिक्षु सघ के लिए स्वीकार किया।

× × ×

समय दौडता गया।

भगवान् के उपदेश के कारण उसमे धर्म-भावना अकुरित हुई। उसका पुत्र विमल कौण्डिन्य प्रव्रजित हो गया था। पुत्र का उपदेश सुनकर उसने स्वयं प्रव्रज्या ग्रहण की। उसने अपने रूप को आयु के साथ परिवर्तित होता देखा। उसका यौवन ढल गया था। उसने यौवन-श्री बिखरते देखी। उसे भगवान् के वचनो की सत्यता प्रत्यक्ष दिखाई पडी। अपने शरीर की यह अवस्था देखकर उसने उदान कहा :

'मेरे केश के अग्र भाग काले भौरो की तरह काले और घुंघराले थे। आज वे आयु के प्रभाव के कारण सन जैसे श्वेत हो गये है। मेरे केश सुरभित पुष्प मालाओ से गुँथे रहते थे। उनसे यूथिका की सुगन्धि निकलती थी। आज जरा के कारण खरहा के रोओ की तरह उनमे से दुर्गन्धि उत्पन्न होती है। कंघी आदि से सुसज्जित मेरा केश-विन्यास सुन्दर रोपे हुए सघन उपवन के सदृश शोभित था। जरा आक्रमण के द्वारा के सुन्दर केश यत्र-तत्र गिर गये है। विरल हो गये है। मेरा जूडा स्वर्ण सूत्रो से सुसज्जित रहता था। चोटियाँ सुरभित रहती थी। जरा के कुप्रभाव से वही मस्तक आज विनत है। चित्रकार मेरे भ्रू को कौशल से चित्रित करता था। उस भ्रूभंगिमा की शोभा अनुपम होती थी। जरा ने उसमे अब झुर्रियाँ उत्पन्न कर दी है। वे नत हो गयी है।

महापरिनिर्वाण

हन्द दानि भिक्खवे !
आमन्तयामि वो, वयधम्मा
संखारा, अप्पमादेन
सम्पादेथा इति ।

(कृत वस्तु नाशमान है । अप्रमाद के साथ सम्पादन करो ।'–भगवान् के अन्तिम शब्द ।)

—परिनिर्वाण सुत्त १६३

भगवान् वैशाली से वेलुवग्राम[1] मे गये । वहा भगवान् ने वर्षावास किया ।

वर्षावास के समय भगवान् को कडी बीमारी हुई । मरणान्तक वेदना होने लगी । भगवान् ने उस वेदना को बिना दु ख सहन किया । भगवान् ने व्याधि को मनोबल द्वारा आराम किया । प्राण शक्ति को दृढतापूर्वक धारण किया । विहार करने लगे ।

'आनन्द ! मै वृद्ध हुआ । अस्सी वर्ष का हुआ । पुरानी गाडी जैसे मरम्मत कर चलायी जाती है वैसे ही मै यह शरीर चला रहा हूँ ।'

आनन्द दु खी हुआ । उसे भविष्य जैसे अन्धकारमय प्रतीत होने लगा । भगवान् ने कहा ·

'आनन्द ! स्वयं अपने अवलम्बन बनो । अन्य की सहायता की अपेक्षा करना व्यर्थ है । धर्म ही दीपशिखा है । सत्य ही तुम्हारा चिर सखा है ।'

पूर्वाह्ण काल मे भगवान् सुआच्छादित हुए । पात्र उठाया । चीवर लिया । अस्सी वर्ष के वृद्ध भगवान् स्वयं भिक्षाचार के लिए निकले ।

---

(१) वेणुग्राम वेलुव ग्राम, यह वैशाली मे था ।

आधार ग्रन्थ .

सयुक्त निकाय ४५ १ १-२

५० १ ९

महा परिनिर्वाण सुत्त ४७-५३

Ap ii 613

D ii 95-8

D A ii 545

Thig A i 206-7, 213, 146

Vein i 368, 231-9

राम[1] रमणीय है। चौर प्रपात[2] रमणीय है। वैभारगिरि[3] के पार्श्व मे काल शिला[4] रमणीय है। सीतवन[5] मे सर्प सैडिक[6] पर्वत रमणीय है। तपोदा-राम[7] रमणीय है। वेणुवन कलन्दक निवाप[8] रमणीय है। जीवकम्ब[9]-वन रमणीय है। मद्रकुक्षि[10] मृगदाव रमणीय है।

---

(१) न्यग्रोधाराम न्यग्रोधाराम का अर्थ होता है—वटवृक्ष का बाग। न्यग्रोधा-राम वट का बगीचा था। यह कपिलवस्तु आदि मे था।

(२) चोर प्रपात यह एक भयकर प्रपात था। यह एक पर्वत था। एक ओर से चढने का मार्ग था। दूसरी तरफ किनारा कटा था। यहाँ से अपराधी चोर गिरा दिये जाते थे। उनकी मृत्यु हो जाती थी।

(३) वैभार गिर वैभार पर्वत नाम है। महाभारत मे वैहार तथा जैन अभि-लेखो मे वैभार तथा व्यवहार कहा गया है। विविधतीर्थकल्प मे नाम वैभार ही दिया गया है। इसका आज भी पूर्व नाम ही प्रचलित है। इसमे सत्तवण्णी गुफा है। इस पर्वत के उत्तरीय भाग मे थी। श्री कनिंघम इसे वैभार गिर के दक्षिण मूल मे बताया है। यहाँ प्रथम सगति किंवा बुद्ध परिषद् हुई थी।

(४) काल शिला टिप्पणी कथा 'मोग्गलायन का परिनिर्वाण' द्रष्टव्य है।

(५) सीतवन यह एक स्मशान वन राजगृह मे था। इसके समीप ही बिम्बसार ने नवीन राजगृह आबाद किया था। राजगृह निगम के पश्चिम एक स्मशान आज भी है।

(६) सर्प सैण्डिक पर्वत . टिप्पणी कथा 'उपसेन' द्रष्टव्य है।

(७) तपोदाराम यह मगध राज्य मे था। वैभार गिर के मूल मे गर्म पानी के स्रोत तप्तोदका होने के कारण तपोदा कहे जाते थे। तपोदा के समीप ही तपोदाराम विहार था। सबसे बडे गर्म स्रोत को आजकल सात धारा कहते है। विपुल पर्वत पर भी गर्म पानी का सोता है।

(८) कलन्दक निवाप कथा 'सुदिन्न', 'देवदत्त' की टिप्पणियाँ द्रष्टव्य है।

(९) जीवकम्ब वन इसका नाम 'जीवकाम्र वन' है। जीवक ने इसे बनवाया था। उसके निवास स्थान के समीप राजगृह मे था। वहाँ से वेणुवन तथा गृध्रकूट कुछ दूर पडते थे। राजगृह के अन्तिम नगर के पूर्वीय द्वार से तथा गृध्रकूट की छाया मे होता यहाँ पहुँचा जाया जाता था। फाहियान ने इसे उत्तर पूर्व दिशा मे देखा था।

(१०) भद्र कुच्छि मृगदाव कथा 'देवदत्त' की टिप्पणी द्रष्टव्य है।

शिक्षाटन से लौटकर आये। भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया। बोले

'आनन्द! चलो, दिन मे चापाल चैत्य[1] मे विहार करेंगे।'

'भन्ते! बहुत अच्छा।'

आनन्द ने आसन उठाया। वह भगवान् के पीछे-पीछे चलने लगा।

भगवान् चापाल चैत्य मे पहुँचकर बिछे आसन पर बैठ गये।

भगवान् ने आनन्द से कहा :

'वैशाली रमणीय है आनन्द! उदयन[2] चैत्य रमणीय है। गौतमक[3] चैत्य रमणीय है। सत्तम्बरक[4] चैत्य रमणीय है। बहुपुत्रक[5] चैत्य रमणीय है। सारन्दद[6] चैत्य रमणीय है। यह चापाल चैत्य रमणीय है।'

'आनन्द! राजगृह मे गृद्धकूट रमणीय है। कपिलवस्तु मे न्यग्रोधा-

---

(१) चापाल चैत्य . वैशाली मे था। इसे चापाल चेतिय भी कहते है। भगवान् ने चापाल चैत्य मे ही अपने परिनिर्वाण की भविष्यवाणी की थी।

(२) उदयन चैत्य वैशाली मे था। इसे उदेन चेतिय कहा गया है। वह वैशाली के पूर्व द्वार के समीप था। यह वर्तमान कामन छपरा के चौमुखी महादेव का स्थान कहा जाता है।

(३) गौतमक चैत्य वैशाली मे था।

(४) सत्तम्बक चैत्य वैशाली मे था। इसका नाम सप्ताम्र चैत्य था। वैशाली के पश्चिम द्वार के समीप स्थित था।

(५) बहुपुत्रक चैत्य राजगृह और नालन्दा के मध्य राजगृह से पौन योजन दूर बहुपुत्रक न्यग्रोध के समीप बहुपुत्रक चैत्य था। वैशाली का बहुपुत्रक चैत्य उक्त चैत्य से भिन्न था। अश्वघोष का मत है कि वैशाली का बहुपुत्रक चैत्य भी बहुपुत्रक न्यग्रोध के समीप था। महिलाएँ अनेक पुत्र प्राप्ति की कामना से उसके मूल मे आकर मनौती मानती थी अतएव इस प्रकार के वटवृक्ष का नाम बहुपुत्रक पड गया था। यह वैशाली के उत्तर मे था। इस समय बनिया गाँव के बाहर महादेव स्थान है।

(६) सारन्दद चैत्य वैशाली मे था।

भगवान् ने चौपाल चैत्य मे अपनी जीवनी शक्ति का त्याग किया : भगवान् महावन पहुँचे। महावन पहुँचने पर भगवान् ने कहा ·

'आनन्द ! वैशाली मे जितने भिक्षु इस समय विहार कर रहे है, सबको एकत्रित करो।'

× × ×

भगवान् उपस्थान शाला मे गये। बिछाये आसन पर बैठ गये। भिक्षुओ को धर्मोपदेश देते हुए कहा—

'भिक्षुओ ! कृत वस्तु नाशमान है। प्रमाद रहित होकर सम्पादन करो।'

मेरी आयु पूर्ण हो चुकी है। त्याग का समय आ गया है। करने योग्य मैने सब कर लिया है। आलस्य रहित, सुशील एवं सावधानी से जीवन निर्वाह करो। संकल्पो का समाधान कर चित्त की रक्षा करो। शीघ्र ही मेरा परिनिर्वाण होगा। आज से ठीक तीन माह पश्चात्।'

× × ×

भगवान् पूर्वाह्ण काल मे सुआच्छादित हुए। पात्र लिया। चीवर लिया। वैशाली मे पिण्डचार के लिए निकले। वैशाली का अन्तिम बार दर्शन[1] करते हुए कहा

'आनन्द ! यह मेरा वैशाली का अन्तिम दर्शन है। आर्यशील, आर्य समाधि, आर्य प्रज्ञा, एव आर्य विमुक्ति न होने के कारण आवागमन होता है।'

भगवान् ने पुन· आनन्द को सम्बोधित किया ·

'आनन्द ! चलो मण्ड ग्राम चले।'

वहाँ से भगवान् का आगमन अम्बग्राम मे हुआ। जम्बूग्राम मे विहार किया। भोग नगर मे पहुँचे। नगर मे भगवान् ने आनन्द चैत्य मे विहार किया।

---

(१) अन्तिम दर्शन वैशाली के उत्तर पश्चिम में युआन चुआङ ने एक स्तूप निर्मित देखा था। वही पर भगवान् ने खडे होकर वैशाली को अन्तिम नमस्कार किया था।

भगवान् ने अत्यन्त शान्त मुद्रा मे कहा :

'आनन्द । प्रियों से वियोग होता है । मैने तुमसे पूर्वकाल मे ही कह दिया था ।'

आनन्द सतर्क हुआ । भगवान् के स्वर की ओर ध्यान लगाया । भगवान् ने सौम्य स्वर मे कहा

'मेरा परिनिर्वाण समीप आ गया है । तीन मास पश्चात् मेरा परिनिर्वाण होगा ।'[1]

× × ×

भगवान् ने चापाल चैत्य मे स्मृतिमान, और सप्रज्ञ होकर आयु संस्कार का त्याग किया । भगवान् के जीवन शक्ति का त्याग करते ही रोमाचकारी भूकम्प[2] आया । भगवान् ने उदान कहा :

'निर्वाण और भव को तौलते हुए, संस्कार का त्याग किया है । अध्यात्म रत और समाहित होकर आत्म सम्भव कवच विदीर्ण कर दिया है ।

आनन्द की आँखे भर आयी । उसने भगवान् के चरणो पर मस्तक रख दिया । भगवान् ने आनन्द के मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा

'आनन्द । चलो । महावन कूटागार[3] मे चले ।'

---

(१) फाहियान तथा युआन चुआङ को आम्रपालि के वन के समीप एक स्तूप बना मिला था । जहाँ भगवान् ने तीन मास पश्चात् परिनिर्वाण होने की भविष्य वाणी की थी ।

(२) भूकम्प बौद्ध देशो मे भगवान् बुद्ध तथा महान्पुरुषो के मृत्यु के समय भूकम्प का आना माना जाता है । पं० जवाहरलाल के निधन काल के समय जापानी राजदूत से मुझे यह बात दिल्ली मे पण्डित जी के शव के समीप ही मालूम हुई थी । इसका उल्लेख मैंने अपनी पुस्तक 'नेहरू के महाप्रस्थान' मे किया है ।

(३) महावन कूटागार यह वैशाली में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था । यहाँ पर एक शाला स्तम्भो पर बनी थी । उस पर शिखर अर्थात् कूट बना था । अतएव उसे महावन कूटागार शाला कहते थे । यह विमान शैली का निर्माण था । फाहियान ने वैशाली के उत्तर दो तल्ला विहार देखा था । वहाँ उसने पुराने अधिष्ठान पर बने एक स्तूप का भी वर्णन किया है । यह स्थान कोल्हुआ बसाढ से तीन मील उत्तर है । यहाँ एक अशोक स्तम्भ प्रतिष्ठित था ।

आनन्द जल लाये। भगवान् ने जल पिया। भगवान् के पास उस समय भी केवल एक मृत्तिका का भिक्षा-पात्र था। चीवर था। युवावस्था मे जैसे प्रव्रजित हुए थे। उनके पास जो था। वही अस्सी की अवस्था तक रहा।

वे एक साधारण भिक्षु तुल्य थे। अपने लिए कोई विशेष सामान नही रखा।

अलार कालाम[1] का शिष्य पुक्कुस[2] मल्ल कुशी नगर पावा के मध्य चला जा रहा था। उसने भगवान् को वृक्ष के नीचे बैठा देखा। भगवान् के समीप आया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। उसने सविनय कहा

'इसी प्रकार मेरे गुरु एक बार वृक्ष से लग कर बैठे थे। उनके सामने से ५०० गाडियाँ निकल गयी। उन्हे ध्यान नही रहा कि गाड़ियाँ जा रही है।

'क्या आपने गाडियाँ जाती देखा है ?'

'नही।'

'क्या आपने गाडियो की आवाज सुनी है ?'

'नही।'

'क्या आप निद्रित थे ?'

'नही।'

'जाग्रत थे ?'

'हाँ।'

पुन अभिवादन कर बोला

'भगवान्! मुझे आज से अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण कीजिये।'

---

(१) अलार कालाम तपस्या कथा द्रष्टव्य है।

(२) पुक्कुस यह एक मल्ल राजपुत्र था। अलार कालाम का शिष्य था। बुद्धघोप का मत है कि पुक्कुस एक व्यापारी था। उसके पास पाँच सौ गाडियाँ थी। चार पुक्कुस नाम के व्यक्तियो का उल्लेख है। सभी भिन्न व्यक्ति थे।

वैशाली से कुशीनगर के मार्ग मे दूसरा पडाव आनन्द चैत्य था। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओ को चार महाप्रदेश का उपदेश दिया।

भोगनगर से भगवान् ने पावा की ओर प्रस्थान किया। वहाँ चुन्द कर्मार पुत्र के आम्र वन मे विहार किया।

'चुन्द कर्मार पुत्र को मालूम हुआ। भगवान् उसके आम्रवन मे विहार कर रहे थे। उसने पहुँचकर भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् को दूसरे दिन भोजन के लिए आमन्त्रित किया। भगवान् ने मौन सम्मति प्रकट की।

शूकर मार्दव तैयार हुआ। चुन्द ने भगवान् को काल की सूचना दी। पूर्वाह्ण काल तथागत ने पात्र उठाया। चीवर लिया। भिक्षुसघ के साथ चुन्द कर्मार पुत्र के निवास-स्थान पर पहुँचे।

भगवान् को भोजन के पश्चात् मरणान्तक वेदना होने लगी। वेदना को भगवान् ने बिना दुःख के सहन किया। भगवान् को रक्तस्राव की व्याधि हुई। उनकी पूर्व बीमारी बढ गयी। भगवान् ने आनन्द से कहा :

'आनन्द! कुशीनगर चलो।'

'अच्छा भन्ते।'

भगवान् मार्ग से हटकर वृक्ष की छाया मे बैठ गये। आनन्द से बोले :

'आनन्द! चौपेती सघाटी बिछा दो। मै शिथिल हो गया हूँ। बैठूँगा।'

आनन्द ने सघाटी बिछा दी। भगवान् उस पर बैठ गये। मन्द स्वर मे बोले

'आनन्द! प्यास लगी है।'

'भन्ते!' आनन्द ने पात्र उठाते हुए कहा, 'कुकुत्था[1] नदी समीप है। जल लाता हूँ।'

---

(१) कुकुत्था नदी इसे ककुत्था, ककुधा भी कहते है। एक मत है कि यह आजकल बरही नदी है। छोटी नदी है। कुसीनगर की अधो दिशा मे आठ मील दूर छोटी गण्डक में मिलती है। कतिपय विद्वान् इसे वर्तमान घाघी और कुछ कुकु नदी इसे मानते है। मैंने यहाँ की यात्रा नही की है। अतएव कुछ निश्चय पूर्वक नही कह सकता।

'मैने कहा · भणे ! इसमे आश्चर्य की बात नही है। प्रव्रजित शान्ति से विहार करता है। वह इन्द्रियो के अधीन नही होता। इन्द्रियाँ उसके अधीन होती है।'

आनन्द ! मै आज रात्रि के पिछले याम मे यमक शाल के मध्य कुशीनगर[1] के उपवत्तन[2] (माथा कुमर) शाल वन मे वहाँ निर्वाण प्राप्त करूंगा।

आनन्द को रुलाई आने लगी। भगवान् ने कहा

'आनन्द ! कुक्कुसा नदी जहाँ बहती है मै वहाँ चलूँगा।'

भगवान् आनन्द के साथ कुकुत्था नदी तट की ओर चले।

× × ×

भगवान् ने नदी मे अवगाहन किया। स्नान किया। जल पिया। नदी के तट के आम्र वन मे गये। आयुष्मान् चुन्द से भगवान् ने कहा :

'चुन्दक ! थक गया हूँ। चौपेती सघाटी बिछा दो। मे शयन करूगा।'

'अच्छा भन्ते।'

भगवान् दाहिने करवट पैर के ऊपर पैर रखकर सिह शय्या से लेट गये।

'आनन्द !' आनन्द से भगवान् बोले . 'चुन्द कर्मकार को इस चिन्ता से मुक्त करना। उससे कहना—उसके यहाँ भोजन करने के कारण मे व्याधिग्रस्त नही हुआ था। उसे मन मे किसी प्रकार का विषाद नही लाना चाहिए। उसका भोजन प्राप्त कर मैने परिनिर्वाण प्राप्त किया है।

'आनन्द ! मेरे जीवन मे दो भोजन विशेष महत्त्व रखते है। सुजाता का भोजन प्राप्त कर मुझे सम्यक् सबोधि प्राप्त हुआ था और चुन्द कर्मकार के भोजन के पश्चात् निर्वाण प्राप्त कर रहा हूँ।'

'आनन्द !' भगवान् ने किंचित् ठहर कर कहा . 'हिरण्यवती नदी के

---

(१) कुशी नगर पावा और कुशीनारा के मध्य भगवान् ने पच्चीस स्थानो पर निर्वलता के कारण विश्राम किया था। यह कुशीनारा कुशीनगर स्थान हैं।

(२) उपवत्तन यह शाल वन था। हिरण्यवती नदी के तट पर कुशीनारा के समीप उत्तर दिशा मे था। इसका शुद्ध नाम उपवर्तन था।

भगवान् ने उसे धार्मिक कथा से समुत्तेजित किया। वह भगवान् को प्रदक्षिणा कर बोला .

'भन्ते ! यह ई गुर वर्ण दो जोडा शाल है। आप ग्रहण करे।'

'अच्छा ! एक मुझे ओढा दो। दूसरा आनन्द को।'

वह शाल देकर चला गया। आनन्द ने भगवान् के शरीर पर शाल फैला दिया।

आनन्द ने कहा :

'भन्ते ! यह दुशाला आपके शरीर पर किरण तुल्य प्रकट हो रहा है।'

'आनन्द ! प्रथम बार का वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध हो गया था। जब सम्यक् सम्बोधि का साक्षात् कर दिया था और दूसरी बार परिनिर्वाण के समय होगा।'

उसे आश्चर्य हुआ। श्रद्धा प्रकट कर चला गया।

'जाग्रत बोधावस्था मे गाडियो का आना-जाना सुनना-देखना कठिन होता है। या होश मे जागते हुए, पानी बरसते हुए, बादल गरजते हुए, बिजली कडकते हुए, और बिजली गिरते हुए न सुनना, न देखना, न जानना।'

'आपका कहना सत्य है।'

'भन्ते ! एक समय मै भुसागार मे विहार कर रहा था। घोर वर्षा हुई। बादल गरजे। बिजली चमकी। वज्रपात हुआ। दो कृषक तथा चार बैल मर गये। वहाँ भीड एकत्रित हो गयी।

'मै भुसागार से निकला। जघा विहार कर रहा था। भीड़ से एक व्यक्ति निकलकर मेरे पास आया। उसने पूछा ·

'भन्ते ! आपने क्या देखा ?'

'कुछ नही।'

'क्या आप घोर निद्रा मे थे ?'

'नही।'

'आश्चर्य—!' वह स्तम्भित हुआ।

'आनन्द ! इस शरीर की चिन्ता मत करना। सत्य पदार्थ के लिए प्रयत्न करना। सत् अर्थ के लिए उद्योग करना। सत् अर्थ के अप्रमाद रूप से रहना। उद्योगी बनना। और आत्म सयम के साथ विहार करना।'

'आनन्द !' भगवान् पुन. बोले : 'मेरा धर्म उत्तर दिशा मे फैलकर बहुत दिनों तक रहेगा।'

'भन्ते ! आपके शरीर का क्या होगा।'

'चक्रवर्ती के शरीर के साथ जो क्रिया की जाती है। वही इस शरीर के साथ करना आनन्द !'

'भन्ते ! चक्रवर्ती के साथ क्या होता है ?'

'चक्रवर्ती के शरीर को नवीन वस्त्र मे लपेटते है। नवीन वस्त्र से लपेटे जाने पर नवीन धुनी रुई से लपेटते है। पुन: नवीन वस्त्र से लपेटते है। तेल की लौह द्रोणी मे उसे रख देते है। दूसरी लौह द्रोणी से उठे ढक दिया जाता है। गन्ध युक्त काष्ठ चिता रची जाती है। शरीर को अग्नि देते है। भस्म होने के पश्चात् चौराहे पर स्तूप बनाते है।'

भगवान् ने मरण पश्चात् की व्यवस्था बता दी। आनन्द का दु:ख उमड आया। वह भावावेश मे विहार मे चला गया। खडा रहा। दु:ख मे खुरी पकड लिया। रोने लगा।

भगवान् ने भिक्षुओ को आमन्त्रित किया। आनन्द को नही देखा।

भिक्षुओ से पूछा

'आनन्द कहॉ है ?'

'भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द विहार मे चले गये हैं।

'क्यो ?'

'भन्ते ! वहॉ अकेले खड़े रो रहे हैं।'

'भिक्षु ! आनन्द से जाकर कहो—शास्ता बुला रहे है।'

आनन्द आये—अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। आनन्द की आखों मे ऑसू देखकर भगवान् बोले

'आनन्द ! शोक मत करो। रोओ मत। प्रिय से वियोग अवश्यम्भावी

दूसरे तट पर कुशीनगर का उपवत्तन है। मल्लोका शाल वन है। वहाँ चलें।'

'अच्छा भन्ते !'

भगवान् ने आनन्द और भिक्षु संघ सहित हिरण्यवती नदी को पार किया। कुशीनगर के मल्लो के उपवत्तन शाल वन मे प्रवेश किया। तथागत आनन्द से बोले

'आनन्द, यमकशालो के मध्य दक्षिण पाद उत्तर शीर्ष करके मचक बिछा दे। थका हूँ। लेटूँगा।'

आनन्द ने मचक बिछा दिया। भगवान् उस पर सिंह शय्या से दाहिने करवट लेट गये।

आयुष्मान् उपवाण[1] शनै -शनै पखा डुला रहे थे। भगवान् ने कहा ·

'आवुस, रहने दो।'

आनन्द से कुछ काल पश्चात् भगवान् ने कह :

'सस्कृति अनित्य है। श्रद्धालु कुलपुत्रो के लिए लुम्बिनी, बुद्ध गया, सारनाथ तथा कुशीनगर यह चार स्थान दर्शनीय है। सवेजनीय है।'

'भन्ते।' आनन्द ने पूछा . 'स्त्रियो के साथ हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए ?'

'अदर्शन।'

'यदि दर्शन हो जाय–?'

'आलाप नही करना चाहिए।'

'यदि आलाप करना हो तो ?'

'स्मृति को सयमित कर के आलाप कर।'

आनन्द कुछ देर तक ठहरकर अत्यन्त वेदनामय मन्द स्वर मे निवेदन किया .

'भन्ते। आपके शरीर की अन्त्येष्टि हम किस प्रकार करेंगे ?'

---

(१) उपवाण श्रावस्ती के एक धनी ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुए थे। जेतवन जब सघ को दान किया जाता था तो प्रभावित होकर उसने प्रव्रज्या ले ली थी। आनन्द के उपस्थान होने के पूर्व वह भगवान् का उपस्थान था।

मल्ल पुत्र, कटे वृक्ष की तरह गिरते थे। भूमि पर लोटते थे। दुःख पूर्ण गात्र से वे भगवान् के स्थान की ओर चले।

रात्रि के प्रथम याम तक सभी मल्लो एव दर्शनार्थियो को आनन्द ने दर्शन करा दिया।

× × ×

कुशीनगर मे उन दिनो सुभद्र[1] परिव्राजक निवास करता था। उसे धर्मविषयक शका थी। वह आनन्द के पास पहुँचा। अपना तात्पर्य व्यक्त किया। आनन्द ने कहा

'आवुस! सुभद्र!! तथागत को इस समय कष्ट देना उचित न होगा।'

भगवान् आनन्द और सुभद्र का सलाप सुन रहे थे। उन्होने लेटे हुए ही कहा

'आनन्द, सुभद्र को आने दो। वह परम ज्ञान की इच्छा से प्रश्न करेगा।'

'आवुस! भगवान् के पास जाओ।'

आनन्द ने सुभद्र को भगवान् के समीप भेजते हुए कहा।

भगवान् के साथ संमोदन कर सुभद्र एक ओर जाकर बैठ गया। उसने प्रश्न किया

'श्रमण, ब्राह्मण, संघी, गणाचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर यथा, पूर्ण काश्यप, मक्खी गोशाल, अजित केश कम्वल, पकुध कच्चायन, संजय वेलट्ठ पुत्र, निगठ नाथ पुत्र सभी अपने-अपने मत का दावा करते है। उनका कहना है। उनका मत ही सत्य है।

'सुभद्र! उससे क्या मतलब? तुम मेरे मत को यदि समझ सको तो समझो।'

---

(१) सुभद्र उच्च कुल के ब्राह्मण थे। गृह त्याग के पश्चात् कुशीनारा मे निवास करते थे। बुद्धघोप का मत है कि भगवान् ने सुभद्र को प्रव्रजित करने का आदेश दिया तो आनन्द उसे बाहर ले गये। उसके मूर्धा पर जल डाला। उसका मुण्डन सस्कार किया गया। उसे पीत चीवर पहनाया गया। उसने तीन वचनो से शरण जाने की प्रतिज्ञा दुहराई। तत्पश्चात् उसे पुन भगवान् के पास ले गये।

है। जो उत्पन्न हुआ है उसका विनाश होगा। शरीर नाश से बच जाय यह असम्भव है आनन्द ?'

'भन्ते! आप इस शाखा नगर मे परिनिर्वाण प्राप्त करेगे। यह क्षुद्र नगर है। चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी जैसे महाजनपद मे निर्वाण प्राप्त करना उचित होगा।'

'आनन्द, ऐसा नही है। पूर्वकाल मे यहाँ प्रसिद्ध कुशावती नगरी थी। राजा सुदर्शन की राजधानी थी। महासुदर्शन चारो दिशाओ का विजेता था। देशो पर अधिकार प्राप्त किया था। सात रत्नो से युक्त था। धार्मिक था। चक्रवर्ती राजा था। यह राजधानी पूर्व-पश्चिम लम्बाई मे बारह योजन थी। उत्तर-दक्षिण विस्तार मे सात योजन थी। राजधानी समृद्ध स्फीत, सघन, सुभिक्ष थी। देवताओ की आलकमन्दा[1] नामक राजधानी समृद्ध, स्फीत, यक्षो से भरी हुई और सुभिक्ष है उसी प्रकार आनन्द! कुशावती नगरी दिन-रात हस्ति शब्द, अश्व शब्द, रथ शब्द, भेरी शब्द, वीणा शब्द' गीत शब्द, ताल शब्द, खाइये, पीजिये इन दस शब्दो से गूँजती रहती थी।'

भगवान् शान्त थे। भिक्षुसघ शान्त था। आनन्द शान्त था। भगवान् ने कहा

'आनन्द! कुशीनगर मल्लो से जाकर कहो—वाशिष्ठो! आज तथागत का परिनिर्वाण होगा।'

'अच्छा भन्ते!'

आनन्द नगर मे चला।

× × ×

कुशीनगर के मल्ल कार्यवश संथागार मे एकत्रित थे। वहाँ जाकर आनन्द ने घोषित किया

'वाशिष्ठो, आज भगवान् परिनिवृत्त होगे।'

सुनते ही मल्ल सभा उदास हो गयी। परिनिर्वाण की बात सुनकर मल्ल वधुएँ, मल्ल आर्याएँ, दुखित हुई। दुःख समर्पित चित्त उनके बाल बिखर गये। एक दूसरे की बाहु मे पकडकर विलाप करने लगी। मल्ल,

---

(१) आलकमन्दा यह कुवेर की अलकापुरी थी। उत्तरकुरु मे थी।

मेरे पश्चात् छन्न भिक्षु को ब्रह्म दण्ड करना चाहिए।'

'भन्ते ! ब्रह्मदण्ड क्या है।'

'भिक्षु ! तुम्हे चाहे जो कोई, जो कुछ कहे, किन्तु उन्हे उपदेश नही देना चाहिए। सम्भापण नही करना चाहिए। और न उन्हे उपदेश अथवा अनुशासन करना चाहिए।'

'आनन्द !' भगवान् ने पुनः कहा –भिक्षुसंघ को एकत्रित करो।'

भिक्षुसंघ एकत्रित हुआ। भगवान् ने पूछा :

'भिक्षुओ ! धर्म के सम्बन्ध मे यदि कोई शका हो तो प्रश्न कर लो।'

किसी ने नही प्रश्न किया।

भगवान् ने पुन: प्रश्न किया।

किसी ने प्रश्न नही किया।

भगवान् ने पुन पूछा।

किसी ने कोई प्रश्न नही किया।

'अच्छा भिक्षुओ ! धर्म कहता हूँ·

'संस्कार व्ययधर्मा है। अप्रमाद के साथ जीवन संपादन करो।' यह तुम्हारे तथागत का अन्तिम वाक्य है।

भगवान् ने प्रथम ध्यान प्राप्त किया। प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान प्राप्त किया। द्वितीय ध्यान से उठकर तृतीय ध्यान प्राप्त किया। तृतीय ध्यान से उठकर चतुर्थ ध्यान प्राप्त किया। आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त किया। विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त किया। आकिंचन्यायतन को प्राप्त किया। नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त किया। संज्ञा वेदयित निरोध को प्राप्त किया।

'भन्ते ! अनिरुद्ध !!' आनन्द ने अनिरुद्ध से कहा 'भगवान् परिनिवृत्त हो गये।'

'हाँ आवुस आनन्द।' अनिरुद्ध ने कहा : 'भगवान् परिनिवृत्त हुए। सज्ञा वेदयित निरोध को प्राप्त हुए।

तत्पश्चात् भगवान् सज्ञा वेदयित निरोध समापत्ति से उठकर, नैवसज्ञानासज्ञायतन को प्राप्त हुए। द्वितीय ध्यान से उठकर प्रथम ध्यान

'अच्छा भन्ते !'

'सुभद्र ! अष्टागिक मार्ग जिस धर्म नियम मे उपलब्ध नही होता, वहाँ श्रमण उपलब्ध नही होते । द्वितीय श्रमण सकृदागामी भी उपलब्ध नही होते । तृतीय श्रमण अनागामी भी नही उपलब्ध होते । चतुर्थ श्रमण अर्हत भी नही उपलब्ध होते । जिस धर्म विनय मे अष्टागिक मार्ग उपलब्ध होता है वहाँ श्रमण उपलब्ध होते है ।'

'भन्ते !'

'सुभद्र ! उनतीस वर्ष की अवस्था मे मै प्रव्रजित हुआ था । प्रव्रज्या लिये मुझे इक्कावन वर्ष व्यतीत हुए है ।'

'भन्ते ! मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले ।'

'सुभद्र, अन्य तैर्थिक, अन्य पंथवाले, मेरे इस धर्म मे यदि प्रव्रज्या चाहते है, उन्हे चार मास परीक्षार्थ परिवास करना होता है । चार मास के पश्चात् आरब्ध चित्त भिक्षु प्रव्रजित करते है । भिक्षु होने के लिए उपसपन्न करते हैं ।'

'भन्ते ! यदि धर्म ज्ञान के लिए, इस धर्म मे सम्मिलित होने के लिए, चार मास ठहरना पडता है, तो मै चार वर्ष ठहर सकता हूँ ।'

'आनन्द ! सुभद्र प्रव्रज्या योग्य है । इसे प्रव्रजित करो ।'

'अच्छा भन्ते !'

सुभद्र परिव्राजक ने भगवान् के समीप प्रव्रज्या प्राप्त की । उपसम्पदा प्राप्त की । वह भगवान् के अन्तिम शिष्य थे ।

× × ×

'आनन्द !' भगवान् ने आनन्द से कहा 'मेरे पश्चात् तुम्हारा कोई शास्ता नही होगा । मेरा उपदेश ही तुम्हारा शास्ता है ।'

आनन्द और सघ नीरव था ।

'आनन्द ! भिक्षुगण एक दूसरे को 'आवुस' कह कर सम्बोधन करते है । मेरे पश्चात् वे ऐसा नही करेगे । पुराने भिक्षु नवीन भिक्षु को नाम से, गोत्र अथवा आवुस कहकर सम्बोधन किया करे । नवीन भिक्षु अपने से पुराने भिक्षु को 'भन्ते' अथवा 'आयुष्मान्' कहकर सम्बोधित करे । इच्छा होने पर सघ मेरे पश्चात्, छोटे-छोटे भिक्षु नियमो को त्याग दे ।

'अच्छा भन्ते।'

आनन्द ने चीवर उठाया। पात्र उठाया। एकाकी कुशीनगर मे प्रविष्ट हुए। मल्लगण सस्थागार मे किसी कार्यवश एकत्रित हुए थे। आनन्द ने वहाँ पहुँचकर कहा .

'वाशिष्ठो ! भगवान् परिनिवृत्त हुए। जिसका तुम काल समझो करो।'

सस्थागार दु खी हुई। रुदन ध्वनि उठी। विलाप सुनायी पडा। शोक-चीत्कार उठा। केश बिखरे। वस्त्र अस्त-व्यस्त हुए। भूमि पर कोई लेट कर रोया। कोई एक दूसरे को पकडकर रोया।

शोक कम होते ही कुशीनगर के मल्लो ने पुरुषो को आज्ञा दी

'भणे ! कुशीनगर मे प्राप्त सभी गंध, माल्य तथा वाद्य एकत्रित किए जाएँ।'

× × ×

भगवान् महानिर्वाण मुद्रा मे थे। उनका शरीर चीवर वेष्ठित था। पद एक के ऊपर एक थे। दाहिने हाथ की हथेली पर दाहिना गाल था। दाहिने करवट भगवान् लेटे थे। प्रतीत होता था। वह शयन कर रहे थे।

मल्ल समुदाय आया। गन्ध माला से भगवान् का सत्कार किया। सभी प्रकार के वाद्यो के साथ आये। नृत्य, गीत, वाद्य माला, गन्ध से सत्कार करने लगे। प्रात काल का विलाप करने वाला मल्ल समुदाय शव के सम्मुख गीत, वाद्य-नृत्य मे रम गया।

भगवान् का सत्कार होता रहा। मल्लो ने नवीन वस्त्र का वितान बनवाया। मण्डप बनाया जाने लगा। इस प्रकार प्रथम दिन योजना मे बीत गया। मल्लो ने निश्चय किया। विकाल हो गया था। शरीर दाह कल किया जाय।

दूसरा दिन भी विविध आयोजनो मे बीत गया। दाह-सस्कार नही हुआ। इसी प्रकार तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठाँ दिन नृत्य, गान, उत्सव मे बीतता चला गया।

सातवें दिन कुशीनगर के मल्लो ने निश्चय किया। भगवान् का शरीर नगर के दक्षिण से ले जाया जाय। बाहर ही बाहर नगर के दक्षिण शव-दाह किया जाय।

को प्राप्त हुए। चतुर्थ ध्यान से उठने के अनन्तर भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

भगवान् के परिनिर्वाण होते ही भीषण भूकम्प हुआ। सहमति ब्रह्मा ने कहा—'जगत् के प्राणी मात्र जीवन से गिरेंगे। लोक मे अद्वितीय पुरुष ।बल प्राप्त, तथागत, शास्ता बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए है।'

'ओ· !' देवेन्द्र शक्र ने कहा 'उत्पन्न और नष्ट होने वाले ! जो उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं। उनका शान्ति ही सुख है।'

आयुष्मान् अनिरुद्ध ने कहा :

'स्थिर चित्त तथागत को श्वास कुश्वास नही रहा। शान्ति निमित्त मुनि ने निष्कम्प होकर काल किया।'

आयुष्मान् आनन्द ने कहा .

'सर्वश्रेष्ठ आकार से युक्त तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए, इस समय भीपणता हुई। उस समय रोमाच हुआ।'

अवीत राग भिक्षु क्रन्दन करने लगे। विलाप ध्वनि से स्थान भर गया। वे एक दूसरे का बाहु पकडकर रोते थे। कटे वृक्ष की तरह गिरते थे। भूमि पर विकल होकर लोटते थे।

किन्तु वीतराग भिक्षु शान्त थे। वे कहते थे—'संस्कार असत्य है। वह कहाँ प्राप्त होगा ?'

लोगो को घोर विलाप करते देखकर आयुष्मान् अनिरुद्ध ने कहा

'आवुसो ! शोक करना व्यर्थ है। रोना व्यर्थ है। तुम्हे स्मरण नही है–भगवान् ने पहले ही कहा था–प्रियो से वियोग होना अवश्यंभावी है।'

भगवान् के महापरिनिर्वाण आसन की शय्या के पास, शेष रात्रि अनिरुद्ध तथा आनन्द ने धर्म कथा मे व्यतीत किया। वह दिन था वैशाख पूर्णिमा का।

× × ×

प्रात काल अनिरुद्ध ने आनन्द से कहा .

'आवुस ! कुशीनगर के मल्लो से कहना चाहिए—'वाशिष्ठो ! भगवान् परिनिवृत्त हुए है। जिसका आप काल समझे करे।'

'जिस प्रकार चक्रवर्ती राजाओ के शरीर का किया जाता है।'

'किस प्रकार भन्ते।'

'सुनो।' आनन्द ने तथागत के कहे हुए विधान को बता दिया।

मल्लो ने पुरुषो को आदेश दिया

'भणे! मल्लो! धुनी रुई लाओ।'

भगवान् का शरीर यथाविधि बतायी प्रक्रिया अनुसार द्रोणी मे रखकर सुगन्धित काष्ठ की चिता पर रखा गया।

महा काश्यप पाँच सौ भिक्षुओ के साथ पावा और कुशीनगर के मार्ग मध्य गमनशील थे। वह मार्ग से हट कर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। उस समय उन्होने एक आजीवक देखा। वह मन्दार पुष्प लिए कुशीनगर से पावा जा रहा था। उससे महाकाश्यप ने पूछा .

'आजीवक! मालूम है हमारे शास्ता कहाँ है?'

'आवुस! तथागत परिनिवृत्त हुए।'

सुनते ही भिक्षु सघ स्तब्ध हो गया। आजीवक ने चलते हुए कहा .

'मैने यह पुष्प कुशीनगर मे पाया है।'

'कब हुए—आजीवक!' काश्यप आजीवक के समीप आ गये। उसे पकड कर पूछा।

'आज सात दिन हो गया।'

भिक्षु रोने लगे। विकल हुए। एक दूसरे से लिपट कर रोने लगे। उनकी यह अवस्था देखकर नव प्रव्रजित एक वृद्ध भिक्षु सुभद्र[1] जिसकी आयु १२० वर्ष थी उन्हे उद्बोधित किया .

आवुसो! शोक मत कीजिए। विलाप मत कीजिए। हम सुमुक्त हो गये है। उस महाश्रमण से हम परेशान रहा करते थे। सर्वदा क्या करना चाहिए, क्या नही करना चाहिए। नित्य की इन कठिनाइयो से दूर हो गये। अपनी इच्छानुसार हम विहार करेगे। अपनी इच्छानुसार काम करेगे। जिसको इच्छा नही होगी उसे नही करेगे।'

---

(१) सुभद्र यह आतुपा का एक नापित अर्थात् नाई था। भगवान् के महापरिनिर्वाण पर सुभद्र की आलोचना महाकाश्यप ने सुनी थी। उसी से प्रेरित होकर प्रथम बुद्धपरिषद् बुलाने का निश्चय किया था।

मल्लो के आठ प्रमुखो ने दिव्य स्नान किया। नवीन वस्त्र धारण किया। भगवान् के शरीर को उठाना चाहा। परन्तु शरीर उठा नही। उन लोगो ने आयुष्मान् अनिरुद्ध से पूछा

'भन्ते! क्या कारण है। हम शरीर उठा नही पा रहे है ?'

'वाशिष्ठो! आपका अभिप्राय दूसरा है। देवताओ का दूसरा है।'

'भन्ते! देवताओ का अभिप्राय क्या है ?'

'वाशिष्ठो! तुम्हारा अभिप्राय है। नृत्य, वाद्य, सगीत के साथ भगवान् का शरीर नगर के दक्षिण से ले जाकर, बाहर ही बाहर नगर के दक्षिण मे दाह-कर्म करे।'

'हॉ, और— ?'

'किन्तु, देवताओ का अभिप्राय दूसरा है।'

'वह क्या ?'

'देवता चाहते है। भगवान् के शरीर का दिव्य नृत्य से सत्कार करते हुए नगर के उत्तर ले जाकर, उत्तर द्वार से नगर मे प्रवेश कर, नगर के मध्य से चलते, नगर के पूर्व द्वार से निकल कर, नगर के पूर्व, जहॉ मुकुट बन्ध[1] मल्लो का चैत्य है, वहॉ शरीर दाह किया जाय।'

'भन्ते! देवताओ के अभिप्राय के अनुसार कार्य होगा।' मल्लो ने कहा।

उस दिन कुशी नगर मे जघा पर्यन्त मन्दार दिव्य पुष्प की वर्पा हुई थी। भगवान् के शरीर को दिव्य तथा मनुष्य नृत्य से सत्कार करते हुए, नगर के उत्तर से मुकुटबंध चैत्य पर ले गये। वहॉ भगवान् का शरीर रखा गया।

'भन्ते! मल्लो ने आनन्द से पूछा तथागत के शरीर का दाह-संस्कार कैसे किया जाय ?'

---

(१) मुकुटबन्ध चैत्य कुशीनगर के पूर्व दिशा मे स्थित था। यहॉ मल्ल राजाओ का अभिपेक कर उनके मूर्धा पर मुकुट वॉधा जाता था इसलिए इसका नाम मुकुट वन्ध चैत्य पडा था। वर्तमान रामाभार सरोवर के पश्चिम तट स्थित एक विशाल स्तूप के ध्वन्सावशेप से इसे सम्बन्धित किया जाता है। माथा कुँअर से एक मली दूर स्थित है। मै यहॉ जा चुका हूँ।

गार में रखा। सोत्साह नृत्य, वाद्य, संगीत, गन्ध, पुष्प से सत्कार किया। गुरुकार किया। पूजा की।

× × ×

मगधराज अजातशत्रु ने सुना। भगवान् परिनिवृत्त हुए थे। उन्होंने अपना दूत मल्लो के पास भेजा। दूत ने राजा का वचन सुनाया :

'भगवान् क्षत्रिय थे। मैं भी क्षत्रिय हूँ। भगवान् की धातु में मेरे भी अधिकार हैं। अस्थि पर स्तूप निर्माण करूँगा। पूजा करूँगा।'

वैशाली के लिच्छवियों ने सुना। उन्होंने अस्थि मॉगी।

कपिलवस्तु के शाक्यों ने सुना। उन्होंने दूत भेजा –'भगवान् हमारी जाति के हैं। हमारा भी अधिकार है।'

अल्लकप्प के बुलियों ने सुना। दूत भेजा –'हमारा अधिकार है। मिलना चाहिए।'

रामग्राम के कोलियों ने सुना। उन्होंने दूत भेजा –'अस्थि पर हमारा अधिकार है। हमारा भाग मिलना चाहिए।'

वेठ द्वीप (विष्णु द्वीप) के ब्राह्मणों ने सुना। उन्होंने दूत भेजा – 'भगवान् क्षत्रिय थे। हम ब्राह्मण हैं। हमें भी अस्थि का भाग मिलना चाहिए।'

पावा के मल्लों ने सुना। उन्होंने भी दूत भेजा –'हमें अस्थि का भाग मिलना चाहिए।'

कुशीनगर के मल्लों ने उन संघों तथा गणों से कहा –'भगवान् हमारे ग्राम में परिनिवृत्त हुए हैं। हम अस्थियों का भाग नहीं देंगे।'

द्रोण ब्राह्मण ने मल्लों को समझाया :

'यदि आप लोग मेरी बात सुनें तो मैं कुछ निवेदन करूँ।'

'सुनें–इस ब्राह्मण की बात सुनें।' मल्लों में आवाज़ उठी।

'बात सुनने में क्या आपत्ति है।' वृद्धों ने कहा।

'हाँ–कहो ब्राह्मण !'

'तथागत क्षान्तिवादी (क्षमाशील) थे।'

'हाँ, यह सत्य है।'

सुभद्र की असमय की यह बात लोगो को रुची नही। महाकाश्यप ने भिक्षुओ को आमन्त्रित किया।

'भिक्षुओ! भगवान् ने पहले ही कह दिया था। जो जन्म लेता है उसका अन्त होता है। अन्त न हो यह कल्पना सम्भव नही है।'

× × ×

चार प्रमुख मल्लो ने स्नान किया। नवीन वस्त्र धारण किया। चिता-स्थान लीपना चाहते थे। किन्तु लीप नही पा रहे थे। उन्होने अनिरुद्ध से पूछा :

'भन्ते! अनिरुद्ध!! क्या कारण है। हम लीप नही पा रहे है?'

'वाशिष्ठो! देवताओ का दूसरा अभिप्राय है।'

'क्या अभिप्राय है?'

'वाशिष्ठो! महाकाश्यप भिक्षुओ के साथ पावा और कुशीनगर के मार्ग मे है। यह चिता उस समय तक नही प्रज्वलित होगी, जब तक महाकाश्यप यहाँ नही आ जाते।'

'भन्ते! देवताओ के अभिप्राय अनुसार कार्य किया जाय।'

× × ×

महाकाश्यप भगवान् की चिता के पास भिक्षुसघ के साथ पहुँचे। चीवर कन्धा पर रखा। अंजलिबद्ध चिता की तीन बार परिक्रमा की। भगवान् का चरण खोला। चरण पर मस्तक रख कर वन्दना की। उन पाँच सौ भिक्षुओ ने भी एक कन्धे पर चीवर रखा। चिता की तीन बार परिक्रमा की। भगवान् के चरणो पर मस्तक रखकर वन्दना की।

उनकी वन्दना समाप्त होते ही चिता स्वयं जलने लगी। शरीर पूरा जल गया। केवल अस्थियाँ रह गयी।

चिता शान्त करने के लिए जल की आवश्यकता नही पडी। मेघ आकाश मे आ गये। वर्षा जल से चिता शान्त हुई। मल्लो की परम्परा के अनुसार गन्ध मिश्रित जल से चिता शीतल की गयी।

अस्थि चयन कर मल्लो ने भगवान् के धातु-कलश को अपने सस्था-

मल्लो ने कहा—'भगवान् का शरीर धातु विभाजित हो चुका है। यदि इच्छा हो तो अंगार (कोयला) ले जाओ। मोरियो ने कोयला ले लिया।'

भगवान् के धातु, तुम्ब तथा कोयला पर दस स्तूपो का निर्माण हुआ। अजातशत्रु ने राजगृह मे स्तूप निर्माण करवाया। वैशाली मे लिच्छवियो ने स्तूप बनवाया। कपिलवस्तु के शाक्यो ने स्तूप बनवाया। अल्लकप्प के बुलियो ने स्तूप बनवाया। रामग्राम के कोलियो ने स्तूप बनवाया।

से दस मील दक्षिण पूर्व मे है। यहाँ के अंग्रेज जमीदार श्री पीपी ने खनन कार्य कराया था। वहाँ से बहुमूल्य सामग्री निकली थी। ब्राह्मी लिपि मे एक शिलालेख, एक घडा तथा उसपर सुवर्ण मछली का ढक्कन मिला था। पिपरहवा को कुछ लोग नया कपिलवस्तु और कुछ पिप्पली वन मानते है। इस पर विशेष अनुसन्धान की आवश्यकता है। अभी किसी स्थान के विषय मे निर्णय देना कठिन है।

(३) मोरिय एक मत मोरिय को मौर्य मानता है। इनकी जाति क्षत्रिय थी। दूसरा मत है कि मोरिय शाक्यो की एक शाखा थी। विडूडभ के भय के कारण हिमालय की ओर चले गये थे। वहाँ पिप्पली वन मे नगर आबाद किया। अतएव उस स्थान का नाम पिप्पली वन पड गया था। तीसरा मत है कि जहाँ मोरिय रहते थे वहाँ मोर बहुत रहा करते थे। मोरो की अधिकता के कारण उनका नाम मोरिय पड गया था। चौथा मत है कि उनके भवन मोर के समान नीले रग के कण्ठ के समान होते थे। अतएव उनके प्रदेश तथा उनका नाम मोरिय पड गया। पाँचवाँ मत है कि मोरिय लोग मौर्य सम्राटो के पूर्वज थे। सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य इस मत के अनुसार मोरिय राजा की प्रधान महिषी का पुत्र था। महावश की टीका के अनुसार अशोक की माता धम्मा मोरिय राजकुमारी थी। मोरियो का भूखण्ड कोलियो के उत्तर पूर्व तथा मल्ल राज के दक्षिण पश्चिम मे स्थित था। दक्षिण मे मगधराज था।

(१) बुलिय महापरिनिर्वाण सुत्त मे सात गणराज्यो का उल्लेख है। उसमे एक बुलिय गणतन्त्र भी है। इस राज्य का विस्तार केवल दस योजन था। कुछ भावुक महानुभावो से इसे बलिया जिला माना है। यह सगत नही प्रतीत होता। इस पर इतनी सामग्री नही मिल सकी है कि इस स्थान का निश्चय किया जा सके।

'क्या क्षान्तिवादी के अस्थि विभाजन मे विवाद होगा।'

'विवाद नही होना चाहिए।' मल्लो ने स्वीकार किया।

'ठीक कहते है।'

'तो क्या किया जाय ?' मल्लो ने प्रश्न किया।

'भणे।' द्रोण ने कहा–'आप अस्थियो को आठ भागो मे विभाजित कीजिये। उन पर दिशाओ मे आठ स्तूप का निर्माण हो सकेगा। वुद्ध स्तूप देखकर बहुत लोग प्रसन्न होगे।'

'ठीक कहा।'

'ब्राह्मण। आप ही उन्हे समान भागो मे विभाजित कर दीजिए।'

'अच्छा भो।'

'यदि अस्थि रखे इस खाली तुम्ब को दे तो मै इस पर कुम्भ का स्तूप बनाऊँगा। पूजा करूँगा।' द्रोण ने निवेदन किया।

मल्लो ने सहर्ष तुम्ब द्रोण[1] को दे दिया।

पिप्पली[2] वन के मोरियो[3] ने सुना। उन्होने सन्देशवाहक भेजे। तथागत क्षत्रिय थे। हम भी क्षत्रिय है। हमे भाग मिलना चाहिए।

---

(१) द्रोण यह ब्राह्मण थे। सर्व प्रथम द्रोण ने भगवान् से भेट उकन्थ तथा सेतव्य के वीच किया था। तत्पश्चात् भगवान् के चरण चिह्न का अनुसरण करते भगवान् जहाँ एक वृक्ष के नीचे वैठे थे आये। वहाँ भगवान् ने उन्हे उपदेश दिया। द्रोण एक शिक्षक थे। उनकी प्रतिष्ठा थी। उनके अनेक शिष्य थे। भगवान् का उपदेश सुनकर वह अनागामी हो गये। उन्होने भगवान् के सम्बन्ध मे द्रोण गज्जित काव्य की रचना की थी।

(२) पिप्पली वन मोरिय लोगो की राजधानी थी। एक मत है कि युआङ चुआङ ने जो न्यग्रोध वन देखा था वह पिप्पली वन था। इससे पूर्वोत्तर चलकर चीनी यात्री कुशीनगर पहुँचा था। कारलाइल का मत है कि यह स्थान आधुनिक उपधौली का डीह है। यह गोरखपुर से चौदह मील दूर दक्षिण पूर्व गुर्रा नदी के तटपर है। मोरिय ने जिस अगार स्तूप को वनाया था छन्दक के लौटाये जाने के स्थान से चार योजन पूर्व तथा कुशीनारा से वारह योजन पश्चिम में देखा था। वर्तमान पिपरहवा ग्राम मे खुदाई हुई थी। वह लुम्बिनी से १२ मील दक्षिण पश्चिम तथा तिलौरा कोट कपिलवस्तु

आधार ग्रन्थ

महापरिनिर्वाण सुत्त
धम्मपद १८ १२

भगवान् बुद्ध की महान् कृपा एवं आशीर्वाद से रघुनाथ सिह सुत स्वर्गीय बटुकनाथ सिह मुहल्ला घोहट्टा, काशी क्षेत्र, वाराणसी नगर निवासी ने भगवान् के साथ अग्र श्रावक-श्राविका, उपासक-उपासिकाओ का पवित्र चरित्र हिन्दी भाषा मे लोक वृद्धि वर्द्धनार्थ, मगलवार पौष सत्तरह, शक सवत् १८९० तदनुसार सात जनवरी सन् १९६९ ई० विक्रम सवत २०२५ माघ वदी ६ को लिपि वद्ध किया--इति—धन्यवाद।

नोट १ हिरण्यवती नदी कुशीनगर के समीप है। इसे कुसुम्ही नाला भी कहते है।

२ सैथवार जाति है। वाशिष्ठ गोत्र है।

वेठ द्वीप[1] के ब्राह्मणो ने स्तूप बनवाया। पावा[2] के मल्लो ने स्तूप बनवाया। कुशीनगर के मल्लो ने स्तूप बनवाया। इस प्रकार भगवान् के आठ शरीर स्तूपो का निर्माण हुआ। नवाँ स्तूप द्रोण ब्राह्मण ने तुम्ब पर बनाया। उसका नाम कुम्भ स्तूप हुआ। दसवाँ स्तूप पिप्पली वन मे मोरियो ने कोयला पर बनवाया। उसका नाम अगार स्तूप हुआ।

चक्षुष्मान् का शरीर-अस्थि आठ द्रोण था। सात द्रोण जम्बू द्वीप मे पूजित होते है। पुरुषोत्तम का एक द्रोण रामग्राम मे नागो द्वारा पूजित होता है। और एक गन्धार मे पूजा जाता है। एक की कलिगराज और एक की पूजा नागराज करते है।

●

---

(१) वेठद्वीप वेठद्वीप मे बने कुम्भ स्तूप को कुम्भ चैत्य की भी सज्ञा दी गयी है। युआन चुआड ने महासार अर्थात् वर्तमान सार आरा से छ मील दक्षिण से एक सौ ली दक्षिण पूर्व वताया है। एक मत है कि वेतिया नगर प्राचीन वेठदीप है। अभी कुछ भी निश्चित रूप से नही कहा जा सकता।

(२) पावा मल्लो की एक शाखा की राजधानी थी। भोगनगर से भगवान् वहाँ पधारे थे। वहाँ से कुशीनगर के लिये प्रस्थान किये थे। पावा से कुशीनगर तीन गव्यूती अर्थात् ६ मील दूर था। पावा के समीप चुन्द कर्मार पुत्र का आम्रवन था। यहाँ अजक पालक किंवा अजक पालिय नामक चैत्य मे निवास किया था। यहाँ अजकलाय यक्ष को अजवलि दी जाती थी। स्थविर खण्ड सुमन की जन्म भूमि पावा थी।

पावा निर्गन्थो अर्थात् निग्गण्ठो का भी केन्द्र था। यहाँ जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ था। जनरल कनिंघम गोरखपुर के पडरौना निगम को पावा मानते है। श्री कारलाइल ने कुसीनारा से दस मिल दक्षिण पूर्व फाजिल नगर किंवा फाजिलपुर के टीला और मुदवतपा सठियाव डीह को पावा माना है। सुमगल विलासिनी मे पावा कुसीनारा के मध्य तीन गव्यूती की दूरी वतायी गयी है। जैन धर्मानुयायी भगवान् महावीर का निर्वाण स्थान विहार शरीफ से सात मील दक्षिण पूर्व दिशा स्थित पावा नगर मानते है। एक मत है कि कुशीनगर से वारह मील दूरस्थ छोटी लाइन रामकोला स्टेशन के समीप वउअर ग्राम मानते है। कुछ विद्वान् पावा तथा कुशीनगर को एक ही मानते है। इस पर विशेप अनुसन्धान की आवश्यकता है।

आ

नामानुक्रमणिका

घ

च

ख

ग

त

३०-३१-३२-३३-३४-३५

तैर्थिको के आराम में माणविका आती थी। उसने वन्दना की। एक ओर खडी हो गयी। उससे किसी ने बात नही की। उपेक्षा दिखायी। उसने सोचा। उससे कोई अपराध हो गया।

उसने निवेदन किया। यदि उसका कोई अपराध हो तो उसे बताया जाय। चिन्ता से लोगो ने कहा :

'बहिन! बुद्ध का लाभ सत्कार यहाँ हो रहा है।'

'यह तो देख रही हूँ।'

'क्या तुम इसे नित्य नही देख रही हो?'

'देखती हूँ।'

'हमारा तो विनाश हो रहा है।'

'हूँ—।'

'चिन्ता—।'

'आर्यो! कहिए। हम क्या करे?'

'बहिन! सचमुच तुम हमारा सुख चाहती हो तो श्रमण गौतम की अपकीर्ति करा सकती हो।'

माणविका सोचने लगी।

'बहिन!' तैर्थिक उसकी रुचि देखकर बोले। 'श्रमण गौतम के लाभ सत्कार का विनाश होना आवश्यक है।'

'आर्यो! मै आप का कार्य करूँगी।'

'सचमुच!'

'हाँ—आप चिन्ता न करे।'

× × ×

माणविका त्रिया चरित्र मे निपुण थी। मायावी थी। उसने भगवान् को बदनाम करने का मार्ग निकाल लिया।

जिस समय श्रावस्ती निवासी धर्म कथा सुनकर समूह मे जेत वन से निकलते थे। उस समय वह जेत वन की ओर चलती थी। खूब शृगार करती थी। वीरवहूटी की तरह वस्त्र धारण करती थी। गन्ध हाथ मे

फ

ब

श

'देखूँगा।'

"क्या ?'

'किस कारण लोग आकर्षित हो रहे है ?'

साथी चुप थे। उनका मस्तक नत हो गया। उदास हो गया।

× × ×

वगीश ब्राह्मण साथियो के साथ भगवान् के पास गये। भगवान् ने जान लिया था। वगीश अपने साथियो के साथ आ रहे थे। भगवान् ने चार मनुष्यो के कपाल के साथ एक अर्हत का भी कपाल मंगाया।

वगीश आया। उसने भिक्षु सघ को एकत्रित देखा। भगवान् के सम्मुख रखी खोपडियाँ देखी। वह प्रसन्न हो गया। उसके साथी प्रसन्न हो गये। वगीश अपनी विद्या दिखायेगा। लोग अद्भुत चमत्कार देखेगे। उनका व्यवसाय पुनः चमक उठेगा।

'वगीश !' क्या इन खोपडियो का जन्म-स्थान बता सकते हो। वे पूर्व जन्म मे कहाँ उत्पन्न हुए थे ?' भगवान् ने उसे देखकर कहा।

'अवश्य।' वगीश ने गर्व से कहा।

वगीश अभिमान से आगे बढा। उसके साथी प्रसन्न मुद्रा मे चारो ओर गर्व से देखने लगे। वगीश ने खोपडियाँ उठायी। उलट-पुलट, ठोक कर उनका जन्म-स्थान बता दिया।

वगीश के साथी प्रसन्नता से ताली बजाने लगे। 'साधु वाद' करने लगे। उपस्थित जन-समूह चकित हो गया। भगवान् केवल मुसकराये।

वगीश ने पाँचवी खोपडी उठायी। उसे उलटा। उसे पलटा। उसे ठोका। उसने दो-तीन बार यह प्रक्रिया की। कुछ बोल नही सका। साथी उसके विलम्ब पर गुस्सा करने लगे। उनका उत्साह तिरोहित होने लगा। उन्होने समझ रखा था। वगीश तुरन्त चार खोपडियो के समान इसका भी जन्म-स्थानादि बता देगे।

'वंगीश।' भगवान् ने मृदु स्वर मे सम्बोधन किया।

वगीश चुप था। उसके साथी उस पर जल उठे। उन्हे गुस्सा आ रहा